GL H 294.5563
SAT

121516
LBSNAA

त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
L.B.S. National Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY
121516

अवाप्ति संख्या
Accession No. 4295
वर्ग संख्या
Class No. GL H 294.5563
पुस्तक संख्या
Book No. SAT सत्यार्थ

सत्यार्थप्रकाश

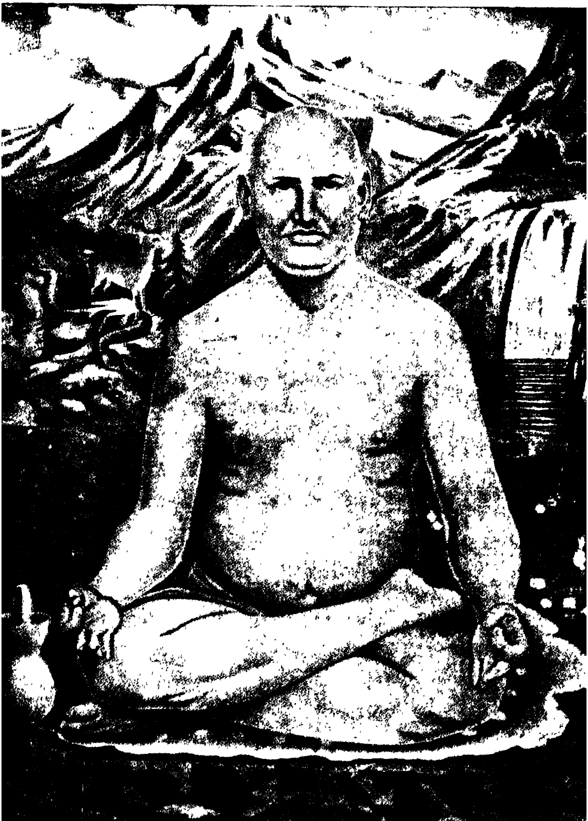

* ओ३म् *

सत्यार्थ प्रकाश पर होने वाली शंकाओं का समाधान व अकारादिक्रम से प्रमाण तथा विषय सूची सहित

सत्यार्थप्रकाश

वेदादिविविधसच्छास्त्रप्रमाणसमन्वितः
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्-
दयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः

अजमेर वैदिक यन्त्रालय के
बाइसवें संस्करणके अनुकूल

प्रकाशकः—गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन, नई सड़क देहली

मुद्रक—आर्य प्रिन्टिङ्ग प्रेस, चावड़ी बाजार देहली

संवत् १९९६ वि० दयानन्दाब्द ११६

छठीवार २००० | सन् १९३९

मूल्य
देहली से बाहर ||—) प्रति
देहली में ||) "
२५ प्रतियें एक साथ |≡) "

❀ धन्यवाद ❀

इस संस्करण की विशेषता एवं उपयोगिता को देख कर, आर्य-जगत् के प्रसिद्ध पत्र 'आर्य-मित्र' आगरा 'वेदोदय' प्रयाग, "आर्य" लाहौर तथा आर्य विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है तथा आर्य जनता ने भी इसके पाँचों संस्करणों को अपना कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। हमारा आरम्भ से ही यह लक्ष्य रहा है कि साहित्य को सस्ता रखने के साथ २ उसे बढ़िया भी रक्खा जाय। आशा है जनता भविष्य में भी हमारे उत्साह को इसी प्रकार निरन्तर बढ़ाती रहेगी।

हम अजमेर (राजस्थान) के प्रसिद्ध आर्य श्रीमान् सेठ मूलराज गोपाल गुप्त जी के सुपुत्र श्रीमान् सेठ हंसराज जी गुप्त के भी विशेष आभारी हैं जिन्होंने इस प्रकाशन में पर्याप्त सहयोग दिया है। सेठ जी भविष्य में भी इसी प्रकार आर्य-साहित्य प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते रहेंगे—ऐसी हमें प्रबल आशा है।

—प्रकाशक

ग्रन्थकार का परिचय

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म काठियावाड़ के मोरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा ग्राम में सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) में हुआ था। यह औदीच्य ब्राह्मण थे। इन का बचपन का नाम 'मूलजी' था और इन के पिता का नाम करसन जी था। करसन जी एक प्रतिष्ठित जमींदार थे।

सामयिक कुल-प्रथा के अनुसार स्वामी जी को बाल्यावस्था में रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन आरम्भ कराया गया था। जब इन की आयु १४ वर्ष की हुई तो इनके पिता ने इन को शिवरात्रि पर व्रत (उपवास) रखने की आज्ञा दी। इन्होंने बड़ी श्रद्धा से व्रत रक्खा। रात्रि को जागरण के समय मन्दिर में शिव जी की पिंडी पर चूहे के चढ़ने और चढ़ाई हुई सामग्री को खाने से इन की मूर्ति पूजा से श्रद्धा जाती रही और उसी दिन से यह सच्चे शिव की खोज में लग गये।

कुछ समय बीतने पर इन के चाचा और भगिनी की मृत्यु हो गई। इस घटना ने इन को अमरत्व की खोज की ओर झुकाया। सच्चे शिव की खोज के साथ २ अब अमरत्व प्राप्ति के लिये योग का अभ्यास करने के विचार से यह किसी अच्छे योगी की भी खोज में रहने लगे। शिक्षा में भी स्वामी जी का बड़ा अनुराग था और विद्या-प्राप्ति के लिये काशी आदि स्थानों में जाना चाहते थे। जहां यह घर बार से पृथक हो जाने की उधेड़ बुन में संलग्न थे, माता पिता इन्हें विवाह-बन्धन में जकड़ कर अपने कारोबार में लगा देने के मीठे स्वप्न ले रहे थे। किन्तु उन्हें कहाँ पता था कि 'मूल इस पिंजड़े में बन्द रहने वाला पक्षी नहीं है, वह तो स्वयं मुक्त होकर समग्र संसार को सच्ची मुक्ति का सन्देश देगा।'

अन्त में स्वामी जी घर से निकल ही पड़े। भ्रमण करते हुए सिद्धपुर के मेले में पहुंचे। परन्तु उधर पिता के गुप्तचर छाया की भांति

पीछे लगे हुए थे, उन्होंने इन्हें जा ही पकड़ा। एक बार मूल जी को पकड़ कर घर की ओर ले चलने में वह सफल हो गये, किन्तु मूल जी के वैराग्य की कोई सीमा न रही थी, वह रास्ते में ही रात्रि को भाग निकले। फिर तो इन्होंने उत्तर में अलकनन्दा के तट पर पहुंच कर विश्राम किया। यहां रहते हुए इन्होंने कई साधु महात्माओं से योग-क्रियाएं सीखीं। परन्तु इन्हें विद्या-प्राप्ति की बड़ी उत्कट इच्छा थी। जब इन्होंने स्वा० विरजानन्द जी के विषय में सुना तो तुरन्त मथुरा पहुँचे। स्वामी विरजानन्द जी ८१ वर्ष के वयोवृद्ध सन्यासी थे। आंखों से अन्धे थे। इतना होते हुए भी विलक्षण विद्वान् और महात्मा थे। स्वामी दयानन्द जी ने इन की बड़ी सेवा की और वेदों का बड़े मन से अध्ययन किया। विद्या-समाप्ति पर गुरु जी को दीक्षान्त के अवसर पर लौंगें भेंट कीं, तो गुरु ने उन को आदेश दिया कि "संसार वेदों को भूल गया है, तुम उसे सन्मार्ग पर लाओ। अनाचारों का नाश करके लोगों को वेद-विहित सदाचार पर आरूढ़ करो।"

स्वामी जी ने अपने गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया, जिसकी साक्षी उन के जीवन भर के कार्य्यों ने भली भांति दी है। स्वामी जी के विस्तृत जीवन-चरित्र का सम्यक् रूप से अध्ययन करने पर पता लगता है कि किस प्रकार स्वामी जी कठिन तपस्या के अनन्तर विद्या-प्राप्ति के अधिकारी बने थे और पश्चात् कितनी लगन के साथ पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर संसार को उपदेश देने के योग्य बने थे। स्वामी जी के अखण्ड ब्रह्मचर्य, महान् त्याग और सर्वांग कुशलता (शारीरिक ए आध्यात्मिक) एवम् अद्भुत तर्क-शक्ति ने भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों " क्रान्ति की धूम मचा दी। स्वामी जी की प्रतिभा, सत्यग्रहण-शक्ति ए सत्य-प्रतिपादन -सामर्थ्य ने अपना चमत्कार भारत में ही नहीं दिखाय अपितु सात समुद्र पार योरुपीय देशों के विद्वानों पर भी अपना भार सिक्का बैठा दिया। जो विदेशी विद्वान् संसार के पुस्तकालय की प्रथम पुस्तक वेद को गडरियों के गीत मात्र कहने का दुस्साहस कर रहे थे, उन

की धारणाओं में मूल-परिवर्तन करने का सर्व-प्रथम श्रेय यदि किसी को मिल सकता है तो वह जगद् गुरु महर्षि दयानन्द को ही; जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य जगत् से कोसोंदूर रहते हुए भी धर्म और वेदों का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक रूप उपस्थित किया है।

स्वामी जी के प्रचार के पूर्व की स्थिति सचमुच बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू-जगत् के बहुत से विद्वान् वेदों के सच्चे अर्थों से हीन होने के कारण पथ-भ्रष्ट हो रहे थे, उन की मंझधार में डूबती हुई नय्या को ऋषि ने ही बचाया, अन्यथा वेद-शास्त्र, हिन्दू धर्म एवं बड़े २ विद्या-केन्द्र अब तक इतिहास की भूतपूर्व घटनायें मात्र रह जाते। जिन कठिनाइयों का स्वामी जी को सामना करना पड़ा है, उनका उल्लेख यद्यपि इस संक्षिप्त परिचय में नहीं किया जा सकता, तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि समस्त कठिनाइयों का वर्णन स्वार्थियों के षड्यन्त्र और भोली जनता के अन्ध-विश्वासों से भरा पड़ा है *। विष-पान करते हुए, पत्थरों की मार सहते हुए भी ऋषि ने भारतवर्ष के लोगों के अन्धविश्वास रूपी फोड़ों की चीर-फाड़ करके उन्हें सदा के लिये जीवित जाग्रत बना दिया। ऋषि ने निर्भय होकर बुराइयों की कड़ी आलोचना की, इस के लिये उन्होंने सर्वप्रियता, मानापमान यहाँ तक कि अपने प्राणों तक की पर्वा न की। उन्हें सारे संसार द्वारा पुजने का लोभ लेश-मात्र भी न था, अन्यथा वह अन्य धर्मावलम्बियों से कोई समझौता करके पर्याप्त यश और नाम कमा सकते थे, परन्तु उन्हें इस की चिन्ता न थी। धार्मिक सच्चाइयों के सामने उन्हें 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' अथवा 'यद्यपि शुद्धम् लोक-विरुद्धम् नाचरणीयं नाचरणीयम्' के पचड़े एक आँख भी न भाते थे। अपनी अकाट्य युक्तियों और प्रमाणों से उन्होंने प्रत्येक रूढ़ि और अन्ध-विश्वास को निर्मूल सिद्ध कर दिया।

ऋषि दयानन्द जहाँ एक महान् पण्डित और संशोधक हुए हैं,

---

* देखिये श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश (स्वामी दयानन्द जी का स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा रचित जीवन चरित्र).

वहाँ सामाजिक एवं अन्य क्षेत्रों में भी उन्होंने मौलिक परिवर्तन करने के लिये महान् प्रयत्न किये हैं। मातृ-शक्ति का अपमान करके भारतीयों ने जो पाप किये थे, उनका प्रायश्चित करने के लिये आपने उन्हें आदेश दिया और समाज में स्त्रियों को समान अधिकार देने के लिये उन्होंने अपने ग्रन्थों और उपदेशों द्वारा बड़ी प्रेरणा की। छूत-छात का भूत हिन्दू-जाति पर सवार हो गया था, उसे गुण कर्म स्वभाव द्वारा वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन कर सदा के लिये मिटाने का महान् प्रयत्न ऋषि ने किया।

ऋषि ने राजकीय विषय को भी अछूता नहीं छोड़ा। स्वराज्य और स्वदेशी पर उन्होंने कितना अधिक बल दिया है। स्वराज्य को उन्होंने 'सुराज्य' से कितना उत्तम ठैराया है, पढ़ने ही योग्य है।※ सारांश मे भारतवर्ष एवं समस्त संसार में शान्ति का प्रचार कर सर्व प्रकार की उन्नति करना ही उनका महान् उद्देश था।

उपरोक्त उद्देश को भली प्रकार सफल बनाने के लिये आपने सर्वप्रथम बम्बई में सम्वत् १९३२ (सन् १८७५) में आर्य्य-समाज की स्थापना की। इस के पश्चात् अन्य स्थानों में भी आर्य्य-समाज की स्थापना की गई। आज प्रायः समस्त संसार में आर्य-समाजें स्थापित हो चुकी हैं।

ऋषि दयानन्द जी ने राजपूताने के राजाओं को भी समय २ पर अमूल्य उपदेश दिये। उन्हें सदाचार-पालन की अपूर्व शिक्षा दी। इसी महान् कार्य के लिये ऋषि को अपने प्राणों की भी बाज़ी लगानी पड़ी। जोधपुर राज्य के राज्य महलों मेंमहर्षि ने वेश्याओं के नृत्य बन्द करा दिये थे, इसी से रुष्ट हो एक वेश्या ने जगन्नाथ नामक ऋषि के पाचक द्वारा ऋषि को पिसा हुआ काँच दूध में डलवा कर पिलवा दिया। और ऋषि दयानन्द समग्र संसार को बिलखता हुआ छोड़ कर कार्तिक की अमावस्या को सम्वत् १९४० (सन् १८८३) में अजमेर-स्थान पर इस नश्वर देह को त्याग इस संसार से विदा हुए।

※इसी ग्रन्थ के अष्टम् समुल्लास को देखिये।

ओ३म्

सत्यार्थप्रकाशः

विषय सूची

समुल्लास	विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
१	ईश्वरके ओंकारादि सौ नामों की व्याख्या तथा मंगलाचरण समीक्षा	१	२८
२	बालशिक्षा, भूतप्रेत जन्मपत्रादि समीक्षा	२९	३९
३	ब्रह्मचर्य, पठनपाठन, गुरुमन्त्र व्याख्या, सत्यासत्य ग्रन्थोंके नाम और पढ़ने पढ़ानेकी रीति	४०	९२
४	विवाह और गृहाश्रमका व्यवहार	९३	१५४
५	वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमकी विधि और कर्त्तव्याकर्त्तव्य	१५५	१७३
६	राजा-प्रजा धर्म राज्य व्यवस्था और कर्त्तव्याकर्त्तव्य	१७४	२२८
७	ईश्वर, वेद तथा जीव और		

समुल्लास	विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
	प्रार्थनोपासना विषय	२२६	२७१
८	जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय	२७२	३०६
९	विद्या अविद्या, बन्ध और मोक्षकी व्याख्या	३०७	३४१
१०	आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय	३४२	३६२
११	आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तरोंका खण्डन-मण्डन	३६५	५३५
१२	चार्वाक, बौद्ध और जैनमत खण्डन-मण्डन	५३८	६२६
१३	ईसाईमतका खण्डनमण्डन	६३०	७०१
१४	मुसलमानोंके मतका खंडन मण्डन	७०४	७८८
शेषमें	स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	७८९	७९८
परिशिष्टमें	शंकासमाधान	७९९	८२१

सूचना—विस्तृत विषय सूची तथा प्रमाण सूची पुस्तकके शेष भागमें अकारादि क्रमसे देखिये।

ओ३म्

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः ।

भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठनमें संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारणसे मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखनेका अभ्यास हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थको भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है कहीं २ शब्द, वाक्य, रचनाका भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये विना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी; परन्तु अर्थका भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपनेमें कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ कर दी गई है ॥

यह ग्रन्थ १४ (चौदह) समुल्लास अर्थात् चौदह विभागोंमें रचा गया है। इसमें १० (दश) समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ (चार) उत्तरार्द्धमें बने हैं, परन्तु अन्त्यके दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारणसे प्रथम नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं ॥

(१) प्रथम समुल्लासमें ईश्वरके ओंकारादि नामोंकी व्याख्या ।

(२) द्वितीय समुल्लासमें सन्तानोंकी शिक्षा ।

(३) तृतीय समुल्लासमें ब्रह्मचर्य्य, पठनपाठन

व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थोंके नाम और पढ़ने पढ़ानेकी रीति ।

(४) चतुर्थ समुल्लासमें विवाह और गृहाश्रमका व्यवहार ।

(५) पञ्चम समुल्लासमें वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमकी विधि ।

(६) छठे समुल्लासमें राजधर्म ।

(७) सप्तम समुल्लासमें वेदेश्वर विषय ।

(८) अष्टम समुल्लासमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय ।

(९) नवम समुल्लासमें विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्षकी व्याख्या ।

(१०) दशवें समुल्लासमें आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय ।

(११) एकादश समुल्लाशमें आर्य्यावर्त्तीय मत मतान्तरका खण्डन मण्डन विषय ।

(१२) द्वादश समुल्लासमें चार्वाक, बौद्ध और जैनमतका विषय ।

(१३) त्रयोदश समुल्लासमें ईसाईमतका विषय ।

(१४) चौदहवें समुल्लासमें मुसलमानोंके मतका

विषय । और चौदह समुल्लासोंके अन्तमें आर्य्योंके सनातन वेदविहित मतकी विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूं ॥

मेरा इस ग्रन्थके बनानेका मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थका प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थका प्रकाश समझा है । वह सत्य नहीं कहाता जो सत्यके स्थानमें असत्य और असत्यके स्थानमें सत्यका प्रकाश किया जाय । किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वालेके सत्यको भी असत्य सिद्ध करनेमें प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता । इसीलिये विद्वान् आप्तोंका यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेखद्वारा सब मनुष्योंके सामने सत्यासत्यका स्वरूप समर्पित करदें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थका ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्दमें रहें । मनुष्यका आत्मा सत्यासत्यका जाननेवाला है । तथापि अपने प्रयोजनकी सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषोंसे सत्यको छोड़ असत्यमें झुक जाता है । परन्तु इस ग्रन्थमें ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसीका मन दुखाना वा किसीकी हानि पर तात्पर्य है । किन्तु जिससे मनुष्यजातिकी उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्यको मनुष्य लोग जानकर सत्यका ग्रहण और असत्यका परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेशके विना अन्य कोई भी मनुष्यजातिकी उन्नतिका कारण नहीं है ॥

इस ग्रन्थमें जो कहीं २ भूल चूकसे अथवा शोधने तथा छापनेमें भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा

वैसा ही कर दिया जायगा। और जो कोई पक्षपातसे अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हां जो वह मनुष्यमात्रका हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा। यद्यपि आजकल बहुतसे विद्वान प्रत्येक मतोंमें हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो २ बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरेसे विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीतिसे वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत्का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानोंके विरोधसे अविद्वानोंमें विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःखकी वृद्धि और सुखकी हानि होती है। इस हानिने, जोकि स्वार्थी मनुष्योंको प्रिय है, सब मनुष्योंको दुःखसागरमें डुबा दिया है। इनमेंसे जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्यमें धर प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करनेमें तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः" अर्थात् सर्वदा सत्यका विजय और असत्यका पराजय और सत्य ही से विद्वानोंका मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चयके आलम्बनसे आप्त लोग परोपकार करनेसे उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करनेसे नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि "यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्" यह गीताका वचन है इसका अभिप्राय यह है कि जो २ विद्या और धर्मप्राप्तिके कर्म हैं वे प्रथम करनेमें विषके तुल्य और पश्चात् अमृतके सदृश होते हैं। ऐसी बातोंको चित्तमें धरके मैंने इस ग्रन्थको रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेमसे देखके इस ग्रन्थका सत्य २ तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो जो सब मतोंमें सत्य २ बातें हैं वे २ सबमें अविरुद्ध होनेसे उनका स्वीकार करके जो २ मतमतान्तरोंमें मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि जब मतमतान्तरोंकी गुप्त वा प्रकट बुरी बातोंका प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्योंके सामने रक्खा है, जिससे

सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देशमें उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देशके मतमतान्तरोंकी झूठी बातोंका पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नतिवालोंके साथ भी वर्त्तता हूं जैसा स्वदेश वालोंके साथ मनुष्योन्नतिके विषयमें वर्त्तता हूं वैसा विदेशियोंके साथ भी तथा सब सज्जनोंको भी वर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एकका पक्षपाती होता तो जैसे आजकलके स्वमतकी स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मतकी निन्दा, हानि और बन्द करनेमें तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपनसे बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलोंको दुःख देते और मार भी डालते हैं। जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्यस्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलोंकी रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है वह जानो पशुओंका भी बड़ा भाई है।

अब आर्यावर्त्तियोंके विषयमें विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासोंमें जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होनेसे मुझको सर्वथा मन्तव्य हैं। और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातोंका खण्डन किया है वे त्यक्तव्य हैं। जो १२ बारहवें समुल्लासमें दर्शाया चार्वाकका मत यद्यपि इस समय क्षीणास्तसा है और यह चार्वाक बौद्ध जैनसे बहुत सम्बन्ध अनीश्वरवादादिमें रखता है। यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टाका रोकना अवश्य है। क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसारमें बहुतसे अनर्थ प्रवृत्त हो जायँ। चार्वाकका जो मत है वह तथा बौद्ध और जैनका जो मत है वह भी १२ वें समुल्लासमें संक्षेपसे लिखा गया है। और बौद्धों तथा जैनियोंका भी चार्वाकके मतके साथ मेल है और कुछ थोड़ासा विरोध भी है। और जैन भी बहुतसे अंशोंमें चार्वाक और बौद्धोंके साथ मेल रखता है और थोड़ीसी बातोंमें भेद है। इस-

लिये जैनोंकी भिन्न साखा गिनी जाती है। यह भेद १२ बारहवें समुल्ला-समें लिख दिया है यथायोग्य वहीं समझ लेना। जो इनका भेद है सो १२ बारहवें समुल्लासमें दिखलाया है बौद्ध और जैन मतका विषय भी लिखा है। इनमेंसे बौद्धोंके दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थोंमें बौद्धमत-संग्रह सर्वदर्शनसंग्रहमें दिखलाया है उसमेंसे यहां लिखा है और जैनियोंके निम्नलिखित सिद्धान्तोंके पुस्तक हैं उनमेंसे चार मूल सूत्र, जैसे—

१—आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकालिकसूत्र और ४ पाक्षिकसूत्र ॥ ११ (ग्यारह) अङ्ग, जैसे—

१—आचारांगसूत्र, २ सुगडांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायांगसूत्र, ५ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपासकदशासूत्र, ८ अन्तगड्दशासूत्र, ९ अनुत्तरोववाईसूत्र, १० विपाकसूत्र, ११ प्रश्नव्याकरणसूत्र ॥ १२ (बारह) उपांग, जैसे—

१—उपवाईसूत्र, २ रायपसेनीसूत्र, ३ जीवाभिगमसूत्र, ४ पन्नवणासूत्र, ५ जंबुद्वीपपन्नत्तीसूत्र, ६ चन्दपन्नतीसूत्र, ७ सूरपन्नतीसूत्र, ८ निरियावलीसूत्र, ९ कप्पियासूत्र, १० कपवड़ीसयासूत्र, ११ पुप्फियासूत्र, और १२ पुप्फचूलियासूत्र, ॥ ५ कल्पसूत्र, जैसे—

१—उत्तराध्ययनसूत्र, २ निशीथसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहारसूत्र, और ५ जीतकल्पसूत्र, ॥ छः छेद, जैसे—

१—महानिशीथबृहद्वाचनासूत्र, २ महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३ मध्यमवाचनासूत्र, ४ पिंडनिरुक्तिसूत्र, ५ ओघनिरुक्तिसूत्र, ६ पर्यूषणासूत्र, ॥ १० (दश) पयन्नासूत्र, जैसे—

१—चतुस्सरणसूत्र, २ पञ्चखाणसूत्र, ३ तदुलवैयालिकसूत्र, ४ भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ चन्दाविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ मरणसमाधिसूत्र, ९ देवेन्द्रस्तमनसूत्र और १० संसारसूत्र, तथा नन्दीसूत्र योगोद्धारसूत्र, भी प्रामाणिक मानते हैं ॥ ५ पञ्चाङ्ग, जैसे—

१—पूर्व सब ग्रन्थोंकी टीका, २ निरुक्ति, ३ चरणी, ४ भाष्य, ये

बाहर अवयव और सब मूल मिलके पञ्चांग कहाते हैं, इनमें ढूंढिया अवयवोंको नहीं मानते और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं। इनके मत पर विशेष विचार १२ (बारहवें) समुल्लासमें देख लीजिये। जैनियोंके ग्रन्थोंमें लाखों पुनरुक्त दोष हैं। और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत वालेके हाथमें हो वा छपा हो तो कोई २ उस ग्रन्थको अप्रमाण कहते हैं। यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह ग्रन्थ जैनमतसे बाहर नहीं हो सकता। हां ! जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनीने माना हो तब तो अग्राह्य हो सकता है। परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इसलिये जो जिस ग्रन्थको मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसीके लिये समझा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थको मानते जानते हों तो भी सभा वा संवादमें बदल जाते हैं, इसी हेतुसे जैन लोग अपने ग्रन्थोंको छिपा रखते हैं। और दूसरे मतस्थको न देते न सुनाते और न पढ़ाते इसलिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बातें भरी हैं जिनका कोई भी उत्तर जैनियोंमेंसे नहीं दे सकता। झूठ बातको छोड़ देना ही उत्तर है ॥

१३ वें समुल्लासमें ईसाइयोंका मत लिखा है। ये लोग बायबिलको अपना धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष समाचार उसी १३ तेरहवें समुल्लासमें देखिये। और १४ चौदहवें समुल्लासमें मुसलमानोंके मत विषयमें लिखा है ये लोग कुरानको अपने मतका मूलपुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४ वें समुल्लासमें देखिये। और इसके आगे वैदिक मतके विषयमें लिखा है। जो कोई इसे ग्रन्थकर्त्ताके तात्पर्य्यसे विरुद्ध मनसासे देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वाक्यार्थबोधमें चार कारण होते हैं, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थको देखता है तब उसको ग्रन्थका अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। "आकाङ्क्षा" किसी विषय पर वक्ताकी और

वाक्यस्थपदोंकी आकांक्षा परस्पर होती है। "योग्यता" वह कहाती है कि जिससे जो होसके जैसे जलसे सींचना। "आसत्ति" जिस पदके साथ जिसका सम्बन्ध हो उसीके समीप उस पदको बोलना वा लिखना। "तात्पर्य" जिसके लिये वक्ताने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसीके साथ उस वचन वा लेखको युक्त करना। बहुतसे हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ताके अभिप्रायसे विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मतके आग्रहसे उनकी बुद्धि अन्धकारमें फँसके नष्ट हो जाती है। इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियोंके ग्रन्थ, बायबिल और कुरानको प्रथम ही बुरी दृष्टिसे न देखकर उनमेंसे गुणोंका ग्रहण और दोषोंका त्याग तथा अन्य मनुष्यजातिकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है। इन मतोंके थोड़े २ ही दोष प्रकाशित किये हैं जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मतका निर्णय कर सकें और सत्यका ग्रहण तथा असत्यका त्याग करने करानेमें समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्यजातिमें बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरेको शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानोंके स्वभावसे बहिः है। यद्यपि इस ग्रन्थको देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे। इसलिये मैं अपने परिश्रमको सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनोंके सामने धरता हूं। इसको देख दिखलाके मेरे श्रमको सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थका प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयोंका मुख्य कर्त्तव्य काम है। सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपासे इस आशयको विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥ अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ॥

॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणाजीका उदयपुर,
भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत् १९३९ } (स्वामी) दयानन्दसरस्वती

ओ३म्

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशः

प्रथम समुल्लासः

ईश्वरके ओंकारादि नामोंकी व्याख्या ।

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥ १ ॥

अर्थ—(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है । इस एक नामसे परमेश्वरके बहुतसे नाम आते है, जैसे—अकारसे विराट्, अग्नि और विश्वादि । उकारसे हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि । मकारसे ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और ग्राहक है । उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं ।

प्रश्न—परमेश्वरसे भिन्न अर्थोंके वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्रमें शुण्ठ्यादि ओषधियोंके भी ये नाम हैं वा नहीं ?

उत्तर—हैं, परन्तु परमात्माके भी हैं।

प्रश्न—केवल देवोंका ग्रहण इन नामोंसे करते हो वा नहीं ?

उत्तर—आपके ग्रहण करनेमें क्या प्रमाण है ?

प्रश्न—देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं इससे मैं उनका ग्रहण करता हूं।

उत्तर—क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है ? पुनः ये नाम परमेश्वरके भी क्यों नहीं मानते ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा, इससे आपका यह कहना सत्य नहीं। क्योंकि आपके इस कहनेमें बहुतसे दोष भी आते हैं जैसे—"उपस्थितं परित्यज्याऽनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः" किसीने किसीके लिये भोजनका पदार्थ रखके कहा कि आप भोजन कीजिये और वह जो उसको छोड़के अप्राप्त भोजनके लिये जहां तहां भ्रमण करे, उसको बुद्धिमान न जानना चाहिये। क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थको छोड़के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थकी प्राप्तिके लिये श्रम करता है। इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान नहीं वैसा ही आपका कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट् आदि नामोंके जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थोंका परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादिके ग्रहणमें श्रम करते हैं। इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं। जो आप ऐसा कहें कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसीका ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसीने किसीसे कहा कि "हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय" अर्थात् तू सैन्धवको ले आ, तब उसको समय अर्थात् प्रकरणका विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थोंका है एक घोड़े और दूसरे लवणका। जो स्वस्वामीका गमन-

समय हो तो घोड़े और भोजनकाल हो तो लवणको ले आना उचित है। और जो गमनसमयमें लवण और भोजन समयमें घोड़को ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमयमें लवण और भोजनकालमें घोड़ेके लानेका क्या प्रयोजन था? तू प्रकरणवित् नहीं है नहीं तो जिस समयमें जिसको लाना चाहिये था उसीको लाता। जो तुझको प्रकरणका विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है, मेरे पाससे चला जा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थका ग्रहण करना चाहिये तो ऐसा ही हम और आप सब लोगोंको मानना और करना भी चाहिये।

अथ मन्त्रार्थः ।

ओ३म् खम्ब्रह्म ॥१॥ यजुः अ० ४० मं० १७ ॥

देखिये वेदोंमें ऐसे २ प्रकरणोंमें 'ओम्' आदि परमेश्वरके नाम हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥२॥ छान्दोग्य उपनिषत् [मं० १]

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥३॥ माण्डूक्य [मं० १]

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥४॥ कठोपनिषदि [वल्ली २ मं० १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि। रुक्माभं

स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥५॥

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥६॥

[मनु० अ० १२ श्लो० १२२। १२३]

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥७॥

कैवल्य उपनिषत् ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥८॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ४६

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥९॥ यजुः अ० १३ मं० १८ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥१०॥ सामवेद प्रपा० ६ त्रिक ८ मं० २ ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥११॥ अथर्ववेद काण्ड ११ अ० २ सू० ४ मं० १ ॥

अर्थ—यहां इन प्रमाणोंके लिखनेमें तात्पर्य यही है कि जो ऐसे २ प्रमाणोंमें ओंकारादि नामोंसे परमात्माका ग्रहण होता है यह लिख

आये। तथा परमेश्वरका कोई भी नाम अनर्थक नहीं। जैसे लोकमें दरिद्री आदिके धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थोंके वाचक हैं। "ओम्" आदि नाम सार्थक हैं जैसे—

(ओं खं०) "अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म" रक्षा करनेसे (ओ३म्) आकाशवत् व्यापक होनेसे (खम्) और सबसे बड़ा होनेसे (ब्रह्म) ईश्वरका नाम है ।।१।।

(ओमित्येत०) (ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसीकी उपासना करनी योग्य है। अन्यकी नहीं ।। २ ।।

(ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रोंमें परमेश्वरका प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है। अन्य सब गौणिक नाम है ।। ३ ।।

(सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उसका नाम "ओ३म्" है ।। ४ ।।

(प्रशासिता०) जो सबको शिक्षा देनेहारा, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धिसे जानने योग्य है, उसको परमपुरुष जानना चाहिये ।। ५ ।।

और स्वप्रकाश होनेसे "अग्नि" विज्ञानस्वरूप होनेसे "मनु" सबका पालन करनेसे "प्रजापति" और परमैश्वर्यवान् होनेसे "इन्द्र" सबका जीवनमूल होनेसे "प्राण" और निरन्तर व्यापक होनेसे परमेश्वरका नाम "ब्रह्म" है ।। ६ ।।

(स ब्रह्मा स विष्णु०) सब जगत्के बनानेसे "ब्रह्मा" सर्वत्र व्यापक होनेसे "विष्णु" दुष्टोंको दण्ड देके रुलानेसे "रुद्र" मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होनेसे "शिव" "यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्" ।। १ ।। "यः स्वयं राजते स स्वराट्" ।। २ ।। "योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्त्ता स कालाग्निरीश्वरः" ।। ३ ।। (अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाशस्वरूप

और (कालाग्नि०) प्रलयमें सबका काल और कालका भी काल है इसलिये परमेश्वरका नाम कालाग्नि है ॥ ७ ॥

(इन्द्रं मित्रं०) जो एक अद्वितीय सत्यब्रह्म वस्तु है उसीके इन्द्रादि सब नाम हैं। "द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः" "शोभनानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः" "यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा" (दिव्य) जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थोंमें व्याप्त (सुपर्ण) जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान है (मातरिश्वा) जो वायुके समान अनन्त बलवान् हैं इसलिये परमात्माके दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् और मातरिश्वा ये नाम हैं। शेष नामोंका अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ८ ॥

(भूमिरसि०) "भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः" जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं इसलिये ईश्वरका नाम "भूमि" है। शेष नामोंका अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ९ ॥

(इन्द्रो मह्ना०) इस मन्त्रमें इन्द्र परमेश्वर ही का नाम है इस लिये यह प्रमाण लिखा है ॥ १० ॥

(प्राणाय०) जैसे प्राणके वश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे परमेश्वरके वशमें सब जगत् रहता है ॥ ११ ॥

इत्यादि प्रमाणोंके ठीक २ अर्थोंके जाननेसे इन नामों करके परमेश्वरहीका ग्रहण होता है। क्योंकि ओ३म् और अग्न्यादि नामोंके मुख्य अर्थसे परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि ऋषि मुनियोंके व्याख्यानोंसे परमेश्वरका ग्रहण देखनेमें आता है वैसा ग्रहण करना सबको योग्य है परन्तु 'ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामोंसे परमेश्वरके ग्रहणमें प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं वहीं इन नामोंसे परमेश्वरका

ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि :—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। श्रोत्रा-द्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत। तेन देवा अय-जन्त। पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ यजुः अ० ३१॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आ-काशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्न-रसमयः॥ [ब्रह्म, वल्ली अ. १]

यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है। ऐसे प्रमाणोंमें विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थोंके होते हैं। क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वरका ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारोंसे पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रोंमें उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं। इसीसे यहां विराट् आदि नामोंसे परमात्माका ग्रहण न होके संसारी पदार्थोंका ग्रहण होता है। किन्तु जहां २ सर्व-ज्ञादि विशेषण हों वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां २ जीवका ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये। क्योंकि परमेश्वरका जन्म, मरण कभी नहीं होता इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणोंसे जगत्के जड़ और जीवादि पदार्थोंका ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं। अब जिस प्रकार विराट् आदि नामोंसे परमेश्वरका ग्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो।

अथ ओङ्कारार्थः। (वि) उपसर्गपूर्वक (राजृ दीप्तौ) इस

धातुसे क्विप् प्रत्यय करनेसे "विराट्" शब्द सिद्ध होता है। "यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्" विविध अर्थात् जो बहु प्रकारके जगत्को प्रकाशित करे इससे विराट् नामसे परमेश्वरका ग्रहण होता है।

(अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं इनसे "अग्नि" शब्द सिद्ध होता है। "गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः" "योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति वा सोऽयमग्निः" जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम "अग्नि" है।

(विश प्रवेशने) इस धातुसे "विश्व" शब्द सिद्ध होता है। "विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "विश्व" है। इत्यादि प्रमाणों का ग्रहण अकारमात्रसे होता है।

"ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः" जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थोंका गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वरका नाम 'हिरण्यगर्भ' है। इसमें यजुर्वेदके मन्त्रका प्रमाण है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ [यजुः अ. १३ मं. ४]

इत्यादि स्थलोंमें "हिरण्यगर्भ" से परमेश्वरहीका ग्रहण होता है।

(वा गतिगन्धनयोः) इस धातुसे "वायु" शब्द सिद्ध होता है।

(गन्धनं हिंसनम्) "यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः" जो चराऽचर जगत्का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानोंसे बलवान् है इससे उस ईश्वरका नाम "वायु" है।

(तिज निशाने) इस धातुसे "तेजः" और इससे तद्धित करनेसे "तैजस" शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकोंका प्रकाश करनेवाला है इससे उस ईश्वरका नाम "तैजस" है। इत्यादि नामार्थ उकारमात्रसे ग्रहण होते हैं।

(ईश ऐश्वर्ये) इस धातुसे "ईश्वर" शब्द सिद्ध होता है। "य ईष्टे सर्वैश्वर्य्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः" जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्माका नाम "ईश्वर" है।

(दो अवखण्डने) इस धातुसे "अदिति" और इससे तद्धित करनेसे "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है। "न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः+अदितिरेव आदित्यः" जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वरकी "आदित्य" संज्ञा है।

(ज्ञा अवबोधने) 'प्र' पूर्वक इस धातुसे "प्रज्ञ" और इससे तद्धित करनेसे "प्राज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः+प्रज्ञ एव प्राज्ञः" जो निर्भ्रान्त ज्ञान-युक्त सब चराऽचर जगत्के व्यवहारको यथावत् जानता है इससे ईश्वरका नाम "प्राज्ञ" है। इत्यादि नामार्थ मकारसे गृहीत होते हैं।

जैसे एक २ मात्रासे तीन २ अर्थ यहां व्याख्या किये हैं वैसेही अन्य नामार्थ भी ओंकारसे जाने जाते हैं। जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मन्त्रमें मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वरके हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठहीकी की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म्म स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारोंमें सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ठोंमें भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है ? जैसे परमेश्वरके सत्य न्याय,

कृपा, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीवके नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण, कर्म्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्योंको योग्य है कि परमेश्वर हीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्नकी कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्योंने भी परमेश्वरहीमें विश्वास करके उसीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना की, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सबको करना योग्य है। इसका विशेष विचार युक्ति और उपासना विषयमें किया जायगा।

प्रश्न—मित्रादि नामोंसे सखा और इन्द्रादि देवोंके प्रसिद्ध व्यवहार देखनेसे उन्हींका ग्रहण करना चाहिये।

उत्तर—यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसीका मित्र है वही अन्यका शत्रु और किसीसे उदासीन भी देखनेमें आता है। इससे मुख्यार्थमें सखा आदिका ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत्का निश्चित मित्र, न किसीका शत्रु और न किसीसे उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकारका कभी नहीं हो सकता। इसलिये परमात्माहीका ग्रहण यहां होता है। हां! गौण अर्थमें मित्रादि शब्दसे सुहृदादि मनुष्योंका ग्रहण होता है।

(ञिमिदा स्नेहने) इस धातुसे औणादिक "क्त" प्रत्ययके होनेसे "मित्र" शब्द सिद्ध होता है। "मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः" जो सबसे स्नेह करके और सबको प्रीति करने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम मित्र है।

(वृञ् वरणे, वर ईप्सायाम्) इन धातुओंसे उणादि 'उनन्' प्रत्यय होनेसे "वरुण" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी, विद्वान, मुक्तिकी इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओंका स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट,

मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओंसे ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है। अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" जिसलिये परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये उसका नाम "वरुण" है।

(ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातुसे "यत्" प्रत्यय करनेसे "अर्य्य" शब्द सिद्ध होता है और "अर्य्य" पूर्वक (माङ् माने) इस धातुसे "कनिन्" प्रत्यय होनेसे "अर्यमा" शब्द सिद्ध होता है। "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमिते मान्यान् करोति सोऽर्यमा" जो सत्य न्यायके करनेहारे मनुष्योंका मान्य और पाप तथा पुण्य करनेवालोंको पाप और पुण्यके फलोंका यथावत् सत्य २ नियमकर्त्ता है इसीसे उस परमेश्वरका नाम "अर्यमा" है।

(इदि परमैश्वर्ये) इस धातुसे 'रन्' प्रत्यय करनेसे "इन्द्र" शब्द सिद्ध होता है "य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः" जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है इससे उस परमात्माका नाम "इन्द्र" है।

"बृहत्" शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातुसे "डति" प्रत्यय बृहत्के तकारका लोप और सुडागम होनेसे "बृहस्पति" शब्द सिद्ध होता है। "यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः" जो बड़ोंसे भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डोंका स्वामी है इससे उस परमेश्वरका नाम "बृहस्पति" है।

(विष्लृ व्याप्तौ) इस धातुसे "नु" प्रत्यय होकर "विष्णु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" चर और अचररूप जगत्में व्यापक होनेसे परमात्माका नाम "विष्णु" है।

"उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होनेसे परमात्माका नाम "उरुक्रम" है।

जो परमात्मा (उरुक्रमः) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सबका सुहृत् अविरोधी है वह (शम्) सुखकारक, वह (वरुणः) सर्वोत्तम, वह (शम्) सुखस्वरूप, वह (अर्यमा) न्यायाधीश, वह (शम्)

सुखप्रचारक, वह (इन्द्रः) जो सकल ऐश्वर्यवान्, वह (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक, वह (बृहस्पतिः) सबका अधिष्ठाता (शम्) विद्याप्रद और (विष्णु) जो सबमें व्यापक परमेश्वर है, वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो॥

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओंसे "ब्रह्म" शब्द सिद्ध होता है। जो सबके ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्तबलयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर! (त्वमेव प्रत्यक्षम्ब्रह्मासि) आपही अन्तर्यामिरूपसे प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) मैं आपहीको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब जगतमें व्याप्त होके सबको नित्यही प्राप्त हैं (ऋतं वदिष्यामि) जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसीका मैं सबके लिये उपदेश और आचरण भी करूंगा (सत्यं वदिष्यामि) सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्यही करूंगा (तन्मामवतु) सो आप मेरी रक्षा कीजिये (तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ताकी रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञामें मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है वही धर्म्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म्म है (अवतु मामवतु वक्तारम्) यह दूसरी वार पाठ अधिकार्थके लिये है। जैसे "कश्चित् कंचित्प्रति वदति त्वं ग्रामं गच्छ गच्छ" इसमें दो वार क्रियाके उच्चारणसे तू शीघ्रही ग्रामको जा ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहां कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात धर्मसे सुनिश्चित और अधर्मसे घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा।

(ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) इसमें तीन वार शान्तिपाठका यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसारमें तीन प्रकारके दुःख हैं एक 'आध्यात्मिक' जो आत्मा शरीरमें अविद्या, राग, द्वेष मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "आधिभौतिक" जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादिसे प्राप्त होता है। तीसरा "अधिदैविक" अर्थात् जो

अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियोंकी अशान्तिसे होता है। इन तीन प्रकारके क्लेशोंसे आप हम लोगोंको दूर करके कल्याणकारक कर्मोंमें सदा प्रवृत्त रखिये। क्योंकि आपही कल्याणस्वरूप सब संसारके कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्षुओंको कल्याणके दाता हैं। इसलिये आप स्वयं अपनी करुणासे सब जीवोंके हृदयमें प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्मका आचरण और अधर्मको छोड़के परमानन्दको प्राप्त हों और दुःखोंसे पृथक् रहैं।

"सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस यजुर्वेदके वचनसे जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करनेसे परमेश्वरका नाम "सूर्य्य" है।

(अत सातत्यगमने) इस धातुसे 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत्में निरन्तर व्यापक हो रहा है।

"परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदिसे उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाशसे भी अतिसूक्ष्म और सब जीवोंका अन्तर्यामी आत्मा है इससे ईश्वरका नाम "परमात्मा" है।

सामर्थ्यवालेका नाम ईश्वर है। "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थोंमें समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो उसका नाम "परमेश्वर है।

(षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओंसे 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। "अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः" जो सब जगत्की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वरका नाम 'सविता' है।

(दिवु क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु)

इस धातुसे 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (क्रीड़ा) जो शुद्ध जगत्को क्रीड़ा कराने (विजिगीषा) धार्मिकोंको जितानेकी इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टाके साधनोपसाधनोंका दाता (द्युति) स्वयंप्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसाके योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरोंको आनन्द देनेहारा (मद ; मदोन्मत्तोंका ताड़नेहारा (स्वप्न) सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलयका करनेहारा (कान्ति) कामनाके योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "देव" है। अथवा "यो दीव्यति क्रीडति स देवः" जो अपने स्वरूपमें आनन्दसे आप ही आप क्रीड़ा करे अथवा किसीके सहायताके बिना क्रीड़ावत् सहजस्वभावसे सब जगत्को बनाता वा सब क्रीड़ाओंका आधार है। "विजिगीषते स देवः" जो सबका जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके। "व्यवहारयति स देवः" जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारोंका जाननेहारा और उपदेष्टा "यश्चराचरं जगत् द्योतयति" जो सबका प्रकाशक "यः स्तूयते स देवः" जो सब मनुष्योंको प्रशंसाके योग्य और निन्दाके योग्य न हो "यो मोदयति स देवः" जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरोंको आनन्द कराता, जिसको दुःखका लेश भी न हो "यो माद्यति स देवः" जो सदा हर्षित, शोकरहित और दूसरोंको हर्षित करने और दुःखोंसे पृथक् रखने वाला "यः स्वापयति स देवः" जो प्रलय समय अव्यक्तमें सब जीवोंको सुलाता "यः कामयते काम्यते वा स देवः" जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब शिष्ट करते हैं तथा "यो गच्छति गम्यते वा स देवः" जो सबमें व्याप्त और जाननेके योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम "देव" है।

(कुवि आच्छादने) इस धातुसे "कुवेर" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वं कुवति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुवेरो जगदीश्वरः" जो अपनी व्याप्तिसे सबका आच्छादन करे इससे उस परमेश्वरका नाम "कुवेर" है।

(प्रथ विस्तारे) इस धातुसे "पृथिवी" शब्द सिद्ध होता है "यः प्रथते सर्वजगद्विस्तृणाति स पृथिवी" जो सब विस्तृत जगत्‌का विस्तार करनेवाला है इसलिये उस परमेश्वरका नाम पृथिवी है।

(जल घातने) इस धातुसे "जल" शब्द सिद्ध होता है "जलति घातयति दुष्टान्, संघातयति—अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्" जो दुष्टोंका ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओंका अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है वह परमात्मा "जल" संज्ञक कहाता है।

(काशृ दीप्तौ) इस धातुसे "आकाश" शब्द सिद्ध होता है, "यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः" जो सब ओरसे जगत्‌का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्माका नाम "आकाश" है।

(अद भक्षणे) इस धातुसे "अन्न" शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥ १ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः ॥ २ ॥ तैत्ति० उपनि० [अनुवाक २ । १०] अत्ताचराचरग्रहणात् [वेदान्तदर्शने अ० १ । पा० २ । सू० ९]

यह व्यासमुनि कृत शारीरिक सूत्र है। जो सबको भीतर रखने वा सबको ग्रहण करने योग्य, चराचर जगत्‌का ग्रहण करनेवाला है, इससे ईश्वरके "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं। और जो इसमें तीन वार पाठ है सो आदरके लिये है। जैसे गूलरके फलमें कृमि उत्पन्न होके उसीमें रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे ही परमेश्वरके बीचमें सब जगत्‌की अवस्था है।

(वस निवासे) इस धातुसे "वसु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीश्वरः" जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सबमें वास कर रहा

है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "वसु" है।

(रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातुसे "णिच्" प्रत्यय होनेसे "रुद्र" शब्द सिद्ध होता है। "यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः" जो दुष्ट कर्म करनेहारोंको रुलाता है इससे उस परमेश्वरका नाम "रुद्र" है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥

यह यजुर्वेदके ब्राह्मणका वचन है। जीव जिसका मनसे ध्यान करता उसको वाणीसे बोलता, जिसको वाणीसे बोलता उसको कर्मसे करता, जिसको कर्मसे करता उसीको प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसाही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वरकी न्यायरूपी व्यवस्थासे दुःखरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है, इसलिये परमेश्वरका नाम "रुद्र" है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

मनु० [अ० १ श्लोक १०]

जल और जीवोंका नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका इसलिये सब जीवोंमें व्यापक परमात्माका नाम "नारायण" है।

(चदि आह्लादे) इस धातुसे "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः" जो आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देनेवाला है इसलिये ईश्वरका नाम "चन्द्र" है।

(मगि गत्यर्थक) धातुसे "मङ्गेरलच्" इस सूत्रसे "मङ्गल" शब्द सिद्ध होता है। "यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः" जो आप मङ्गल

स्वरूप और सब जीवोंके मङ्गलका कारण है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "मङ्गल" है।

(बुध अवगमने) इस धातुसे "बुध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः" जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवोंके बोधका कारण है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "बुध" है। "बृहस्पति" शब्दका अर्थ कह दिया।

(ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातुसे "शुक्र" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः" जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्गसे जीव भी पवित्र हो जाता है इसलिये ईश्वरका नाम "शुक्र" है।

(चर गतिभक्षणयोः) इस धातुसे "शनैस्" अव्यय उपपद होनेसे "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सबमें सहजसे प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वरका नाम "शनैश्चर" है।

(रह त्यागे) इस धातुसे "राहु" शब्द सिद्ध होता है। "यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति वा स राहुरीश्वरः" जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूपमें दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं हो दुष्टोंको छोड़ने और अन्यको छुड़ाने हारा है इससे परमेश्वरका नाम "राहु" है।

(कित निवासे रोगापनयने च) इस धातुसे "केतु" शब्द सिद्ध होता है "यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत्का निवासस्थान सब रोगोंसे रहित और मुमुक्षुओंको मुक्ति समयमें सब रोगोंसे छुड़ाता है इसलिये उस परमात्माका नाम "केतु" है।

(यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातुसे "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यज्ञो वै विष्णुः" यह ब्राह्मणग्रन्थका वचन है। "यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः" जो सब जगत्के पदार्थोंको संयुक्त करता और सब विद्वानोंका पूज्य है और ब्रह्मासे ले के सब ऋषि मुनियोंका पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्माका नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

(हु दानाऽदनयोः, आदाने चेत्येके) इस धातुसे "होता" शब्द सिद्ध हुआ है "यो जुहोति स होता" जो जीवोंको देने योग्य पदार्थोंका दाता और ग्रहण करने योग्योंका ग्राहक है इससे उस ईश्वरका नाम "होता" है ।

(बन्ध बन्धने) इससे "बन्धु" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वस्मिन् चराचरं जगद्बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मानां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः" जिसने अपनेमें सब लोकलोकान्तरोंको नियमोंसे बद्ध कर रक्खे और सहोदरके समान सहायक है इसीसे अपनी २ परिधि वा नियमका उल्लंघन नहीं कर सकते । जैसे भ्राता भाइयोंका सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकोंके धारण रक्षण और सुख देनेसे "बन्धु" संज्ञक है ।

(पा रक्षणे) इस धातुसे "पिता" शब्द सिद्ध हुआ है । यः पाति सर्वान् स पिता" जो सबका रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है वैसेही परमेश्वर सब जीवोंकी उन्नति चाहता है इससे उसका नाम "पिता" है । "यः पितॄणां पिता स पितामहः" जो पिताओंका भी पिता है इससे उस परमेश्वरका नाम "पितामह" है । "यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः" जो पिताओंके पितरोंका पिता है इससे परमेश्वरका नाम "प्रपितामह" है ।

"यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता" जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानोंका सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवोंकी बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वरका नाम "माता" है ।

(चर गतिभक्षणयोः) आङ् पूर्वक इस धातुसे "आचार्य्य" शब्द सिद्ध होता है "य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य्य ईश्वरः" जो सत्य आचारका ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओंकी प्राप्तिका हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इससे परमेश्वरका नाम "आचार्य" है ।

(गॄ शब्दे) इस धातुसे "गुरु" शब्द बना है । "यो धर्म्यान्

शब्दान् गुणात्युपदिशति स गुरुः" ॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥

योग सू० । समाधिपादे सू० २६ ॥

यह योगसूत्र है। जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदोंका उपदेश करता, सृष्टिकी आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओंका भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इसलिये उस परमेश्वरका नाम "गुरु" है।

(अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओंसे "अज" शब्द बनता है "योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जानाति वा कदाचिन्न जायते सोऽजः" जो सब प्रकृतिके अवयव आकाशादि भूत परमाणुओंको यथायोग्य मिलाता शरीरके साथ जीवोंका सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इससे उस ईश्वरका नाम "अज" है।

(बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओंसे "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृहति वर्द्धयति स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है इसलिये परमेश्वरका नाम "ब्रह्मा" है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है "सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म" जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं उनमें साधु होनेसे परमेश्वरका नाम सत्य है। जो सब जगत्का जाननेवाला है इससे परमेश्वरका नाम "ज्ञान" है। जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसलिये परमेश्वरका नाम "अनन्त" है।

(डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातुसे "आदि" शब्द और नञ्पूर्वक "अनादि" शब्द सिद्ध होता है। "यस्मात् पूर्वं नास्ति परं

चास्ति स आदिरित्युच्यते [महाभाष्य १।१।२१] न विद्यते आदि: कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः" जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको आदि कहते हैं। जिसका आदिकारण कोई भी नहीं है इसलिये परमेश्वरका नाम अनादि है।

(टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातुसे "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्दको प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवोंको आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वरका नाम "आनन्द" है।

(अस भुवि) इस धातुसे "सत्" शब्द सिद्ध होता है "यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म" जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालोंमें जिसका बाध न हो उस परमेश्वरको "सत्" कहते हैं।

(चिती संज्ञाने) इस धातुसे "चित्" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवोंको चिताने और सत्याऽसत्यका जनानेहारा है इसलिये उस परमात्माका नाम "चित्" है, इन तीनों शब्दोंके विशेषण होनेसे परमेश्वरको "सच्चिदानन्दस्वरूप" कहते हैं।

"यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः"। जो निश्चल अविनाशी है सो नित्य शब्दवाच्य ईश्वर है।

(शुन्ध शुद्धौ) इससे "शुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियोंसे पृथक् और सबको शुद्ध करने वाला है इससे उस ईश्वरका नाम "शुद्ध" है।

(बुध अवगमने) इस धातुसे "क्त" प्रत्यय होनेसे "बुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः" जो सदा सबको जाननेहारा है इससे ईश्वरका नाम "बुद्ध" है।

(मुच्लृ मोचने) इस धातुसे "मुक्त" सब्द सिद्ध होता है "यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून स मुक्तो जगदीश्वरः" जो सर्वदा अशुद्धियोंसे अलग और सब मुमुक्षुओंको क्लेशसे छुड़ा देता है इसलिये परमात्माका नाम "मुक्त" है । "अतएव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः" इसी कारणसे परमेश्वरका स्वभाव नित्य शुद्ध [बुद्ध] मुक्त है ।

"निर् और आङ् पूर्वक (डुकृञ् करणे) इस धातुसे "निराकार" शब्द सिद्ध होता है । "निर्गत आकारात्स निराकारः" जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वरका नाम "निराकार" है ।

(अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातुसे "अञ्जन" शब्द और निर् उपसर्गके योगसे "निरञ्जन" शब्द सिद्ध होता है "अञ्जनं व्यक्तिर्म्लक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूताः स निरञ्जनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियोंके विषयोंके पथसे पृथक् है इससे ईश्वरका नाम "निरञ्जन" है ।

(गण संख्याने) इस धातुसे "गण" शब्द सिद्ध होता और इसके आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखनेसे "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं । "ये प्रकृत्यादयो जड़ा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थोंका स्वामी वा पालन करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "गणेश" वा "गणपति" है ।

"यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः" जो संसारका अधिष्ठाता है इससे उस परमेश्वरका नाम "विश्वेश्वर" है ।

"यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः" जो सब व्यवहारोंमें व्याप्त और सब व्यवहारोंका आधार होके भी किसी व्यवहारमें अपने स्वरूपको नहीं बदलता इससे

परमेश्वरका नाम "कूटस्थ" है। जितने "देव" शब्दके अर्थ लिखे हैं उतने "देवी" शब्दके भी हैं। परमेश्वरके तीनों लिङ्गोंमें नाम है जैसे—

"ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति" जब ईश्वरका विशेषण होगा तब "देव" जब चितिका होगा तब "देवी" इससे ईश्वरका नाम "देवी" है।

(शक्लृ शक्तौ) इस धातुसे "शक्ति" शब्द बनता है "यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः" जो सब जगत्के बनानेमें समर्थ है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "शक्ति" है।

(श्रिञ् सेवायाम्) इस धातुसे "श्री" शब्द सिद्ध होता है। "यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः" जिसका सेवन सब जगत् विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस परमात्माका नाम "श्री" है।

(लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातुसे "लक्ष्मी" शब्द सिद्ध होता है "यो लक्षयति पश्यत्यङ्क्ते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः" जो सब चराचर जगत्को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता; जैसे शरीके नेत्र, नासिका और वृक्षके पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जलके कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चंद्र, सूर्य्यादि चिह्न बनाता, तथा सबको देखता, सब शोभाओंकी शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियोंका लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम "लक्ष्मी" है।

(सृ गतौ) इस धातुसे "सरस्" उससे मतुप् और ङीप् प्रत्यय होनेसे "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है, "सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वरका नाम "सरस्वती" है।

"सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः" जो अपने कार्य करनेमें किसी अन्यकी सहायताकी इच्छा नहीं करता,

अपने ही सामर्थ्यसे अपने सब काम पूरा करता है इसलिये उस पर-मात्माका नाम "सर्वशक्तिमान्" है ।

(णीञ् प्रापणे) इस धातुसे 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है । प्रमाणै-रर्थपरीक्षणं न्यायः" यह वचन न्यायसूत्रोंपर वात्स्यायमुनिकृत भाष्य-का है । "पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः" जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी परीक्षासे सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है । "न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः" जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वरका नाम "न्यायकारी" है ।

(दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातुसे "दया" शब्द सिद्ध होता है । "दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः" जो अभयका दाता सत्याऽसत्य सर्व विद्याओंको जानने, सब सज्जनोंकी रक्षा करने और दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड देनेवाला है इससे परमात्माका नाम "दयालु" है ।

'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्" अर्थात् "सजातीयविजा-तीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म" दो का होना वा दोनोंसे युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत इससे जो रहित है सजातीय जैसे मनुष्यका सजा-तीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्यसे भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीरमें जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवोंका भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मामें तत्त्वान्तर वस्तुओंसे रहित एक परमेश्वर है इससे परमात्माका नाम "अद्वैत" है ।

"गण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः" जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश

जीवके गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि उपनिषदोंका प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है इससे परमात्माका नाम "निर्गुण" है।

"यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः" जो सबका ज्ञान सर्वसुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणोंसे युक्त है इसलिये परमेश्वरका नाम "सगुण" है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणोंसे "सगुण" और इच्छादि गुणोंसे रहित होनेसे "निर्गुण" है वैसे जगत् और जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे परमेश्वर "निर्गुण" और सर्वज्ञादि गुणोंसे सहित होनेसे "सगुण" है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणतासे पृथक् हो। जैसे चेतनके गुणोंसे पृथक् होनेसे जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणोंसे सहित होनेसे सगुण वैसे ही जड़के गुणोंसे पृथक् होनेसे जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणोंसे सहित होनेसे सगुण। ऐसे ही परमेश्वरमें भी समझना चाहिये।

'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत्के भीतर व्यापक होके सबका नियम करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "अन्तर्यामी" है।

'यो धर्मे राजते स धर्मराजः" जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्मसे रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "धर्म्मराज" है।

(यमु उपरमे) इस धातुसे "यम" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः" जो सब प्राणियोंके कर्मफल देनेकी व्यवस्था करता और सब अन्यायोंसे पृथक् रहता है इसलिये परमात्माका नाम "यम" है।

(भज सेवायाम्) इस धातुसे "भग" इससे मतुप् होनेसे "भगवान्" शब्द सिद्ध होता है। "भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्" जो समग्र ऐश्वर्यसे युक्त वा भजनेके योग्य है इसीलिये उस ईश्वरका नाम "भगवान्" है।

(मन ज्ञाने) धातुसे "मनु" शब्द बनता है। "यो मन्यते स मनुः" जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वरका नाम "मनु" है।

(पॄ पालनपूरणयोः) इस धातुसे "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगत्में पूर्ण हो रहा है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "पुरुष" है।

(डुभृञ् धारणपोषणयोः) "विश्व" पूर्वक इस धातुसे "विश्वम्भर" शब्द सिद्ध होता है। "यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः" जो जगत्का धारण और पोषण करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "विश्वम्भर" है।

(कल संख्याने) इस धातुसे "काल" शब्द बना है। "कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः" जो जगत्के सब पदार्थ और जीवोंकी संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "काल" है।

(शिष्लृ विशेषणे) इस धातुसे "शेष" शब्द सिद्ध होता है। "यः शिष्यते स शेषः" जो उत्पत्ति और प्रलयसे शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्माका नाम "शेष" है।

(आप्लृ व्याप्तौ) इस धातुसे "आप्त" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः" जो सत्योपदेशक सकल विद्यायुक्त सब धर्मात्माओंको प्राप्त होता और धर्मात्माओंसे प्राप्त होने योग्य छल कपटादिसे रहित है इसलिये उस परमात्माका नाम "आप्त" है।

(डुकृञ् करणे) "शम्" पूर्वक इस धातुसे "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुखका करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "शङ्कर" है।

"महत्" शब्द पूर्वक "देव" शब्दसे "महादेव" शब्द सिद्ध होता है। "यो महतां देवः स महादेवः" जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थोंका प्रकाशक है इसलिये उस

परमात्माका नाम "महादेव" है ।

(प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातुसे "प्रिय" शब्द सिद्ध होता है । "यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः" जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टोंको प्रसन्न करता और सबको कामनाके योग्य है इसलिये उस ईश्वरका नाम "प्रिय" है

(भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातुसे "स्वयम्भू" शब्द सिद्ध होता है । "यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः" जो आपसे आप ही है किसीसे कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्माका नाम "स्वयम्भू" है ।

(कु शब्दे) इस धातुसे "कवि" शब्द सिद्ध होता है । "यः कौति शब्दयति सर्वा विद्या स कविरीश्वरः" जो वेदद्वारा सब विद्याओंका उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "कवि" है ।

(शिवु कल्याणे) इसधातुसे "शिव" शब्द सिद्ध होता है । "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याणका करनेहारा है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "शिव" है ।।

ये सौ नाम परमेश्वरके लिखे हैं । परन्तु इनसे भिन्न परमात्माके असंख्य नाम हैं । क्योंकि जैसे परमेश्वरके अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसेही उसके अनन्त नाम भी हैं । उनमेंसे प्रत्येक गुण कर्म्म और स्वभावका एक २ नाम है । इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्रके सामने विन्दुवत् हैं, क्योंकि वेदादि शास्त्रोंमें परमात्माके असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं । उनके पढ़ने पढ़ानेसे बोध हो सकता है और अन्य पदार्थोंका ज्ञान भी उन्हींको पूरा २ हो सकता है जो वेदादि शास्त्रोंको पढ़ते हैं ॥

प्रश्न—जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्तमें मङ्गलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया ?

उत्तर—ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि, मध्य

और अन्तमें मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थमें आदि मध्य तथा अन्तके बीचमें जो कुछ लेख होगा वह अमङ्गलही रहेगा, इसलिये "मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति" यह सांख्यशास्त्र [अ० ५ । सू० १] का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपातरहित, सत्य वेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा है उसीका यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है। ग्रन्थके आरम्भसे लेके समाप्तिपर्यन्त सत्याचारका करनाही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। देखिये महाशय महर्षियोंके लेखको—

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपाठक ७ । अनु० ११] का वचन है। हे सन्तानो! जो "अनवद्य" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुमको करने योग्य हैं अधर्मयुक्त नहीं। इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थोंमें "श्रीगणेशाय नमः" "सीतारामाभ्यां नमः" "राधाकृष्णाभ्यां नमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः" "हनुमते नमः" "दुर्गायै नमः" "बटुकाय नमः" "भैरवाय नमः" "शिवाय नमः" "सरस्वत्यै नमः" "नारायणाय नमः" इत्यादि लेख देखनेमें आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समझते हैं, क्योंकि वेद और ऋषियोंके ग्रन्थोंमें कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षग्रन्थोंमें "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखनेमें आते हैं। देखो—

"अथ शब्दानुशासनम्" अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते । इति व्याकरणमहाभाष्ये ॥

"अथातो धर्मजिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्यय-

नानन्तरम् । इति पूर्वमीमांसायाम् ॥ "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः । वैशेषिकदर्शने ॥ "अथ योगानुशासनम्" अथेत्ययमधिकारार्थः । योगशास्त्रे ॥ "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" सांसारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः । सांख्यशास्त्रे ॥ "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" । "चतुष्टयसाधनसम्पत्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्" । इदं वेदान्तसूत्रम् ॥ "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" । इदं छान्दोग्योपनिषद्वचनम् ॥ "ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्" इदं च माण्डूक्योपनिषद्वचनम् ॥

ऐसेही अन्य ऋषि मुनियोंके ग्रन्थोंमें "ओ३म्" और "अथ" शब्द लिखे हैं वैसेही (अग्नि इट् अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति०) ये शब्द चारों वेदोंके आदिमें लिखे हैं । "श्रीगणेशाय नमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं । और जो वैदिक लोग वेदके आरम्भमें "हरिः ओ३म्" लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तान्त्रिक लोगोंकी मिथ्या कल्पनासे सीखे हैं । वेदादि शास्त्रोंमें "हरि" शब्द आदिमें कहीं नहीं । इसलिये "ओ३म्" वा "अथ" शब्द ही ग्रन्थके आदिमें लिखना चाहिये । यह किञ्चिन्मात्र ईश्वरके विषयमें लिखा इसके आगे शिक्षाके विषयमें लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित
ईश्वरनामविषये प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।

यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है । वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों । जितना मातासे सन्तानोंको उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसीसे नहीं । जैसे माता सन्तानों पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिये (मातृमान्) अर्थात् "प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्" धन्य वह माता है कि जो गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीलताका उपदेश करे ॥

माता और पिताको अति उचित है कि गर्भाधानके पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थोंको छोड़के जो शान्ति, आरोग्य, बल बुद्धि, पराक्रम और सुशीलतासे सभ्यताको प्राप्त करें वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थोंका सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य्य भी दोषोंसे रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों । जैसा ऋतुगमनका विधि अर्थात् रजोदर्शनके पांचवें दिवससे लेकर सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देनेका समय है उन दिनोंमें से प्रथमके चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशीको छोड़के बाक़ी १० रात्रियोंमें गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शनके दिनसे ले के १६ वीं रात्रिके पश्चात् न समागम करना। पुनः जबतक ऋतुदानका समय पूर्वोक्त न आवे तबतक और

गर्भस्थितिके पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों। जब दोनोंके शरीरमें आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकारका शोक न हो। जैसा चरक और सुश्रुतमें भोजन छादनका विधान और मनुस्मृतिमें स्त्री पुरुषकी प्रसन्नताकी रीति लिखी है उसी प्रकार करें और वर्त्तें। गर्भाधानके पश्चात् स्त्रीको बहुत सावधानीसे भोजन छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुषका सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्योंहीका सेवन स्त्री करती रहे कि जबतक सन्तानका जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जलसे बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादिके होम * और स्त्रीके भी स्नान भोजनका यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्रीका शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूधमें भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूताका दूध छः दिन तक बालकको पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे परन्तु धायी-को उत्तम पदार्थोंका खान पान माता पिता करावें। जो कोई दरिद्र हों धायीको न रख सकें तो वे गाय वा बकरीके दूधमें उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों उनको शुद्ध जलमें भिगो औटा छानके दूधके समान जल मिलाके बालक को पिलावें। जन्मके पश्चात् बालक और उसकी माताको दूसरे स्थानमें जहांका वायु शुद्ध हो वहां रक्खें, सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देशमें भ्रमण करना उचित है कि जहांका वायु शुद्ध हो। और जहां धायी, गाय, बकरी आदिका दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें। क्योंकि प्रसूता स्त्रीके शरीरके अंशसे बालकका शरीर होता है

* बालकके जन्म-समयमें "जातकर्मसंस्कार" होता है उसमें हवनादि वेदोक्त कर्म होते हैं वे "संस्कारविधि" में सविस्तर लिख दिये हैं।

इसीसे स्त्री प्रसवसमय निर्बल होजाती है, इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकनेके लिये स्तनके छिद्र पर उस औषधिका लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करनेसे दूसरे महीनेमें पुनरपि युवती होजाती है। तबतक पुरुष ब्रह्मचर्य्यसे वीर्यका निग्रह रक्खे, इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल पराक्रमकी वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम बल, पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनिसंकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य्यका स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

बालकोंको माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्गसे कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालककी जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्णका स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान और स्पष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठोंको मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ प्लुत अक्षरोंको ठीक २ बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न २ श्रवण होवे। जब वह कुछ २ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा विद्वान् अदिसे भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदिकी भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय विद्याप्रिय और सत्संगमें रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थमें लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रियके स्पर्श और मर्दनसे वीर्यकी क्षीणता नपुंसकता होती और हस्तमें दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण शौर्य्य धैर्य्य, प्रसन्नवदन आदि गुणोंकी प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें। जब पांच २ वर्षके लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरोंका अभ्यास करावें। अन्यदेशीय भाषाओंके अक्षरोंको भी। उसके पश्चात् जिनसे

अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदिसे कैसे २ वर्तना इन बातोंके मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसहित कंठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्तके बहकानेमें न आवें और जो २ विद्याधर्मविरुद्ध भ्रान्तिजालमें गिरानेवाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करदें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातोंका विश्वास न हो।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥

मनु० [अ० ५। ६५]

अर्थ—जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक-शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतकको उठानेवालोंके साथ दशमें दिन शुद्ध होता है। और जब उस शरीरका दाह होचुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों वर्त्तमानमें आके न रहें वे भूतस्थ होनेसे उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मासे लेके आज पर्यन्तके विद्वानोंका सिद्धान्त है, परन्तु जिसको शङ्का, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं। देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्यके वश होकर परमेश्वरकी व्यवस्थासे सुख दुःखके फल भोगनेके अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वरकी व्यवस्थाका कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्याके पढ़ने, सुनने और विचारसे रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगोंका नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकारके ढोंग,

छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र यन्त्र बान्धते बन्धवाते फिरते हैं, अपने धनका नाश, सन्तान आदिकी दुर्दशा और रोगोंको बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं। जब आंखके अन्धे और गांठके पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियोंके पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुषको न जाने क्या होगया है?" तब वे बोलते हैं कि "इसके शरीरमें बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आगई है जबतक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी लेलेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेट दो तो हम मन्त्र जप पुरश्चरणसे झाड़के इनको निकाल दें।" तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि "महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये।" तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त्त कहते हैं "अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवताको भेट और ग्रहदान कराओ।" झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमेंसे एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूदके कहता है "मैं इसका प्राण ही ले लूंगा।" तब वे अन्धे उस भङ्गी चमारादि नीचके पगोंमें पड़के कहते हैं "आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये।" तब वह धूर्त्त बोलता है "मैं हनुमान हूं, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मनका रोट और लाल लंगोट।" "मैं देवी वा भैरव हूं, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र" जब वे कहते हैं कि "जो चाहो सो लो" तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेट पांच जूता दण्डा वा चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करनेके प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभासके पास जाके वे कहते हैं "हे महाराज! इसको क्या है?" तब वे कहते हैं कि "इस पर सूर्य्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्तिपाठ, पूजा,

दान कराओ तो इसको सुख होजाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।"

उत्तर—कहिये ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्य्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादिसे भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें?

प्रश्न—क्या जो यह संसारमें राजा प्रजा सुखी दुखी हो रहे हैं यह ग्रहोंका फल नहीं है?

उत्तर—नहीं ये सब पाप पुण्योंके फल हैं।

प्रश्न—तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है?

उत्तर—नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फलकी लीला है वह सब झूठी है।

प्रश्न—क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है?

उत्तर—हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम "शोकपत्र" रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तानका जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तबतक होता है कि जबतक जन्मपत्र बनके ग्रहोंका फल न सुनें, जब पुरोहित जन्मपत्र बनानेको कहता है तब उसके माता, पिता पुरोहितसे कहते हैं "महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये" जो धनाढ्य हो तो बहुतसी लाल पीली रेखाओंसे चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीतिसे जन्मपत्र बनाके सुनानेको आता है। तब उसके मा बाप ज्योतिषीजीके सामने बैठके कहते हैं "इनका जन्मपत्र अच्छा तो है? ज्योतिषी कहता है "जो है सो सुना देता हूं। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान, जिस सभामें जा बैठेगा तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीरसे आरोग्य और राज्यमानी होगा।" इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं "वाह २ ज्योतिषीजी आप बहुत अच्छे हो।" ज्योतिषीजी समझते हैं इन

बातोंसे कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि "यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २ ग्रहके योगसे ८ वर्षमें इसका मृत्युयोग है।" इसको सुनके माता पितादि पुत्रके जन्मके आनन्दको छोड़के, शोकसागरमें डूबकर ज्योतिषीजीसे कहते हैं कि "महाराजजी! अब हम क्या करें?" तब ज्योतिषीजी कहते हैं "उपाय करो।" गृहस्थ पूछे "क्या उपाय करें" ज्योतिषीजी प्रस्ताव करने लगते हैं कि "ऐसा २ दान करो। ग्रहके मन्त्रका जप कराओ और नित्य ब्राह्मणोंको भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहोंके विघ्न हट जायेंगे।" अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वरके ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुतसा यत्न किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो, हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणोंकी कैसी शक्ति है! तुम्हारे लड़केको बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठसे कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तोंसे ले लेने चाहियें। और बचजाय तो भी ले लेने चाहियें क्योंकि जैसे ज्योतिषियोंने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वरके नियम तोड़नेका सामर्थ्य किसीका नहीं" वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वरके नियमसे बचा है तुम्हारे करनेसे नहीं" और तीसरे गुरु आदि भी पुण्यदान कराके आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषीयोंको दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसेही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि "जो हम मन्त्र पढ़के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्रके प्रतापसे उसको कोई विघ्न नहीं होने देते।" इनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वरके नियम और कर्मफलसे भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करनेसे भी कितनेही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घरमें भी मर जाते हैं और क्या तुम मरणसे बच सकोगे? तब वे

कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी, इससे इन सब मिथ्या व्यवहारोंको छोड़कर धार्मिक, सब देशके उपकारकर्त्ता, निष्कपटतासे सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगोंका प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत्का उपकार करते हैं, इस कामको कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये। इत्यादि मिथ्या बातोंका उपदेश बाल्यावस्थाहीमें सन्तानोंके हृदयोंमें डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसीके भ्रमजालमें पड़के दुःख न पावें और वीर्यकी रक्षामें आनन्द और नाश करनेमें दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे "देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुखकी प्राप्ति होती है। इसके रक्षणमें यही रीति है कि विषयोंकी कथा, विषयी लोगोंका संग, विषयोंका ध्यान, स्त्रीका दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्मसे ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्व विद्याको प्राप्त होवें। जिसके शरीरमें वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणोंसे रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्याके ग्रहण, वीर्यकी रक्षा करनेमें इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्ममें तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मोंके करनेवाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्याग्रहण और शरीरका बल बढ़ाना चाहिये।" इसी प्रकारकी अन्य २ शिक्षा भी माता और पिता करें। इसीलिये "मातृमान् पितृमान्" शब्दका ग्रहण उक्त वचनमें किया है अर्थात् जन्मसे ५ वें वर्ष तक बालकोंको माता, ६ ठे वर्षसे ८ वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और ९ वें वर्षके आरम्भमें द्विज अपनी सन्तानोंका उपनयन करके आचार्य्यकुलमें अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा

और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़कियोंको भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेज दें। उन्हींके सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ानेमें सन्तानोंका लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्यका प्रमाण है:—

सामृतैः पाणिघ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः। लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥ [अ० ८-१-८]

अर्थ—जो माता पिता और आचार्य्य सन्तान और शिष्योंका ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्योंको अपने हाथसे अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्योंका लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्योंको विष पिलाके नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़नसे सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़नासे गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़नासे प्रसन्न और लाड़नसे अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेषसे ताड़न न करें। किन्तु ऊपरसे भयप्रदान और भीतरसे कृपादृष्टि रक्खें। जैसी अन्य शिक्षाकी वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष मोह आदि दोषोंके छोड़ने और सत्याचारके ग्रहण करनेकी शिक्षा करें क्योंकि जिस पुरुषने जिसके सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्य्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवालेकी होती है वैसी अन्य किसीकी नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसीने किसीसे कहा कि "मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समयमें मिलूंगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समयमें तुमको मैं दूंगा" इसको वैसे ही पूरी करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिये सदा सत्यभाषण

और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिये। किसीको अभिमान न करना चाहिये। छल, कपट वा कृतघ्नतासे अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरेकी क्या कथा कहनी चाहिये। छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरेको मोहमें डाल और दूसरेकी हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। "कृतघ्नता उसको कहते हैं कि किसीके किये हुए उपकारको न मानना। क्रोधादि दोष और कटुवचनको छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ोंको मान्य दे, उनके सामने उठकर जाके उच्चासन पर बैठावे प्रथम "नमस्ते" करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभामें वैसे स्थानमें बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसीसे न करे। सम्पन्न होकर गुणोंका ग्रहण और दोषोंका त्याग रक्खें। सज्जनोंका संग और दुष्टोंका त्याग, अपने माता, पिता और आचार्यकी तन मन और धनादि उत्तम उत्तम पदार्थोंसे प्रीतिपूर्वक सेवा करे॥

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥ तैत्ति० [प्रपा० ७ अनु० ११]

इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्योंको सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहैं कि जो २ हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन उनका ग्रहण करो और जो २ दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो २ सत्य जानें उन २ का प्रकाश और प्रचार करें। किसी पाखण्डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस २ उत्तम कर्मके लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें उस २ का यथेष्ट पालन करें जैसे माता, पिताने धर्म, विद्या, अच्छे आचरणके श्लोक "निघण्टु" "निरुक्त" "अष्टाध्यायी" अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन २ का पुनः अर्थ विद्यार्थियोंको

विदित करावें। जैसे प्रथम समुल्लासमें परमेश्वरका व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करें। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य मांसादिके सेवनसे अलग रहें। अज्ञात गम्भीर जलमें प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थसे दुःख और जो तैरना न जाने तो डूब ही जा सकता है "नाविज्ञाते जलाशये" यह मनुका वचन है, अविज्ञात जलाशयमें प्रविष्ट होके स्नानादि न करें॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेत्॥ मनु० [६-४६]

अर्थ—नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थानको देखके चले, वस्त्रसे छानके जल पीवे, सत्यसे पवित्र करके वचन बोले, मनसे विचारके आचरण करे॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥
चाणक्यनीति अ० २ श्लो० ११॥

वे माता और पिता अपने सन्तानोंके पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्याकी प्राप्ति न कराई, वे विद्वानोंकी सभामें वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसोंके बीचमें बगुला। यही माता, पिताका कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्तिका काम है जो अपने सन्तानोंको तन, मन, धनसे विद्या, धर्म सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना। यह बालशिक्षामें थोड़ासा लिखा इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥

अथ तृतीयसमुल्लासारम्भः

अथाऽध्ययनाध्यापन विधिं व्याख्यास्यामः

अब तीसरे समुल्लासमें पढ़ने पढ़ानेका प्रकार लिखते हैं । सन्तानोंको उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म्म और स्वाभावरूप आभूषणोंका धारण कराना माता, पिता, आचार्य्य और सबन्धियोंका मुख्य कर्म है । सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नोंसे युक्त आभूषणोंके धारण करानेसे मनुष्यका आत्मा सुभूपित कभी नहीं हो सकता । क्योंकि आभूषणोंके धारण करनेसे केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदिका भय तथा मृत्युका भी सम्भव है । संसारमें देखनेमें आता है कि आभूषणोंके योग्यसे बालकादिकोंका मृत्यु दुष्टोंके हाथसे होता है ।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः, सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः । संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये, धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषोंका मन विद्याके विलासमें तत्पर रहता, सुन्दर शीलस्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, और जो अभिमान अपवित्रतासे रहित, अन्यकी मलीनताके नाशक, सत्योपदेश, विद्यादानसे ससारी जनोंके दुःखोंके दूर करनेसे सुभूषित, वेदविहित कर्मोंसे पराये उपकार करनेमें रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं । इसलिये आठ वर्षके हों तभी लड़कोंको लड़कोंकी और लड़कियोंको लड़कियोंकी पाठशालामें भेज देवें । जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें । किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही

पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं । द्विज अपने घरमें लड़कोंका यज्ञोपवीत और कन्याओंका भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य्य कुल अर्थात् अपनी २ पाठशालामें भेज दें । विद्या पढ़नेका स्थान एकान्त देशमें होना चाहिये और वे लड़के और लड़कियोंकी पाठशाला दो कोस एक दूसरेसे दूर होनी चाहिये । जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओंकी पाठशालामें सब स्त्री और पुरुषोंकी पाठशालामें पुरुष रहैं । स्त्रियोंकी पाठशालामें पांच वर्षका लड़का और पुरुषोंकी पाठशालामें पांच वर्षकी लड़की भी न जाने पावे । अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं तबतक स्त्री वा पुरुषका दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीड़ा, विषयका ध्यान और सङ्ग इन आठ प्रकारके मैथुनोंसे अलग रहैं और अध्यापक लोग उनको इन बातोंसे बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मासे बलयुक्त होके आनन्दको नित्य बढ़ा सकें । पाठशालाओंसे एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहै । सबको तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्रके सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये । उनके माता पिता अपने सन्तानसे वा सन्तान अपने माता पिताओंसे न मिल सकें और न किसी प्रकारका पत्रव्यवहार एक दूसरेसे कर सकें, जिससे संसारी चिन्तासे रहित होकर केवल विद्या पढ़ानेकी चिन्ता रक्खें । जब भ्रमण करनेको जायें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिससे किसी प्रकारकी कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

मनु० [अ० ७ । श्लोक १५२]

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्षसे आगे कोई अपने लड़कों

और लड़कियोंको घरमें न रख सकें। पाठशालामें अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कोंका यज्ञोपवीत घरमें हो और दूसरा पाठशालामें आचार्य्यकुलमें हो। पिता माता वा अध्यापक अपने लड़के लड़कियोंको अर्थसहित गायत्री मन्त्रका उपदेश करदें। वह मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ य० ३६। ३॥

इस मन्त्रमें जो प्रथम (ओ३म्) है उसका अर्थ प्रथमसमुल्लासमें कर दिया है, वहींसे जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियोंके अर्थ संक्षेपसे लिखते हैं। "भूरिति वै प्राणः" "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत्के जीवनका आधार, प्राणसे भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राणका वाचक होके "भूः" परमेश्वरका नाम है। "भुवरित्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखोंसे रहित, जिसके सङ्गसे जीव सब दुःखोंसे छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वरका नाम "भुवः" है। "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नानाविध जगत्में व्यापक होके सबका धारण करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "स्वः" है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७। अनु० ५] के हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत्का उत्पादक और सब ऐश्वर्यका दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखोंका देनेहारा और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब करते हैं उस परमात्माका जो (वरेण्यम्) "वर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी परमात्माके स्वरूपको हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें। किस प्रयोजनके लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव

परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धिः" बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामोंसे छुड़ाकर अच्छे कामोंमें प्रवृत्त करे । "हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अज निरञ्जन निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वाधार जगत्पते ! सकलजगदुत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन् ! हे करुणामृतवारिधे ! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्ववंरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह । हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् । स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे"

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थोंमें समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्तस्वभाववाला, कृपासागर, ठीक २ न्यायका करनेहारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकार रहित सबके घट २ का जाननेवाला, सबका धर्त्ता पिता, उत्पादक, अन्नादिसे विश्वका पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत्का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्तिकी कामना करने योग्य है उस परमात्माका जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसीको हम धारण करें । इस प्रयोजनके लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियोंका अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्गसे हटाके श्रेष्ठाचार सत्य मार्गमें चलावें, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तुका ध्यान हम लोग नहीं करें । क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है । वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखोंका देनेहारा है ॥

इस प्रकार गायत्रीमन्त्रका उपदेश करके सन्ध्योपासनकी जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें । प्रथम स्नान इसलिये है कि जिससे शरीरके बाह्य अवयवोंकी शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं । इसमें प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

[मनु० अ० ५ । श्लोक १०९]

जलसे शरीरके बाहरके अवयव, सत्याचरणसे मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकारके कष्ट भी सहके धर्म ही के अनुष्ठान करनेसे जीवात्मा ज्ञान अर्थात् पृथिवीसेलेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थोंके विवेकसे बुद्धि, दृढ़ निश्चय पवित्र होते हैं। इससे स्नान भोजनके पूर्व अवश्य करना। दूसरा प्राणायाम इसमें प्रमाण—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

[योगशास्त्र साधनपादे सूत्र २८]

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर कालमें अशुद्धिका नाश और ज्ञानका प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तबतक उसके आत्माका ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

[मनु० अ० ६ । ७१]

जैसे अग्निमें तपानेसे सुवर्णादि धातुओंका मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियोंके दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायामकी विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥

योग० [समाधिपादे] सू० ३४ ॥

जैसे अत्यन्त वेगसे वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राणको बलसे बाहर फेंकके बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रियको ऊपर खींच रक्खे तबतक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब

घबराहट हो तब धीरे २ भीतर वायुको लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मनमें (ओ३म्) इसका जप करता जाय। इस प्रकार करनेसे आत्मा और मनकी पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोकके। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही वार जहांका तहां प्राणको यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतरसे बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देनेके लिये बाहरसे भीतर ले और जब बाहरसे भीतर आने लगे तब भीतरसे बाहरकी ओर प्राणको धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरेके विरुद्ध क्रिया करें तो दोनोंकी गति रुककर प्राण अपने वशमें होनेसे मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप होजाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषयको भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीरमें वीर्य्य वृद्धिको प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रोंको थोड़े ही कालमें समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करें। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटेसे यथायोग्य व्यवहार करनेका उपदेश करें। सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। "आचमन" उतने जलको हथेलीमें लेके उसके मूल और मध्यदेशमें ओष्ठ लगाके करे कि वह जल कण्ठके नीचे हृदय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोड़ीसी होती है। पश्चात् "मार्जन" अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वरकी स्तुति, प्रार्थना और उपासनाकी रीति सिखलावे। पश्चात् "अघमर्षण" अर्थात् पाप करनेकी इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्यो-

पासन एकान्त देशमें एकाग्रचित्तसे करे ॥

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥ मनु० २-१०४

जङ्गलमें अर्थात् एकान्त देशमें जा, सावधान होके जलके समीप स्थित होके नित्यकर्मको करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्रका उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलनको करे, परन्तु यह जप मनसे करना उत्तम है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानोंका संग सेवादिकसे होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही कालमें करे। दो ही रात दिनकी सन्धिवेला हैं अन्य नहीं। न्यूनसे न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्माका ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे। तथा सूर्योदयके पश्चात् और सूर्यास्तके पूर्व अग्निहोत्र करनेका समय है उसके लिये एक किसी धातु वा मट्टीके ऊपर १२ वा १६

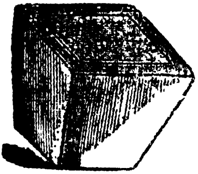

अंगुल चौकोन उतनी ही गहरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाणसे वेदी इस प्रकार बनावें अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहै। उसमें चन्दन पलाश वा आम्रादिके श्रेष्ठ काष्ठोंके टुकड़े उसी वेदीके परिमाणसे बड़े छोटे करके उसमें रक्खे उसके मध्यमें अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इन्धन रखदे एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा और तीसरा प्रणीतापात्र इस प्रकारका और

इस प्रकारकी आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखनेका पात्र और चमसा 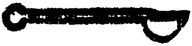 ऐसा सोने, चांदी वा काष्ठका बनवाके प्रणीता और प्रोक्षणीमें जल तथा घृत रखके घृतको तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये है कि उससे हाथ धोनेको जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घीको अच्छे प्रकार देख लेवे फिर इन मन्त्रोंसे होम करें॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

इत्यादि अग्निहोत्रके प्रत्येक मन्त्रको पढ़कर एक २ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तोः—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ यजुः ३०। ३॥

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्रसे आहुति देवें। "ओं भूः" और "प्राणः" आदि ये सब नाम परमेश्वरके हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। स्वाहा शब्दका अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मामें हो वैसा ही जीभसे बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वरने सब प्राणियोंके सुखके अर्थ इस सब जगत्‌के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्योंको भी परोपकार करना चाहिये॥

प्रश्न—होमसे क्या उपकार होता है?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जलसे रोग, रोगसे प्राणियोंको दुःख और सुगन्धित वायु तथा जलसे आरोग्य और

रोगके नष्ट होनेसे सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न—चन्दनादि घिसके किसीके लगावे या घृतादि खानेको देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्निमें डालके व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानोंका काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्यका अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहांसे दूर देशमें स्थित पुरुषके नासिकासे सुगन्धका ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्धका भी। इतने ही से समझलो कि अग्निमें डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैलके वायुके साथ दूर देशमें जाकर दुर्गन्धकी निवृत्ति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदिके घरमें रखनेसे सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर—उस सुगन्धका वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायुको बाहर निकाल कर शुद्ध वायुका प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंको छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायुका प्रवेश कर देता है।

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़के होम करनेका क्या प्रयोजन है?

उत्तर—मन्त्रोंमें वह व्याख्यान है कि जिससे होम करनेके लाभ विदित हो जायं और मन्त्रोंकी आवृत्ति होनेसे कण्ठस्थ रहें वेदपुस्तकोंका पठन पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न—क्या इस होम करनेके विना पाप होता है?

उत्तर—हां! क्योंकि जिस मनुष्यके शरीरसे जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जलको बिगाड़ कर रोगोत्पत्तिका निमित्त होनेसे प्राणियोंको दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्यको होता है। इसलिये उस पापके निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जलमें फैलाना चाहिये। और खिलाने पिलानेसे

इसी एक व्यक्तिको सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्यके होमसे लाखों मनुष्योंका उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्माके बलकी उन्नति न होसके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुतिका कितना परिमाण है?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्यको सोलह २ आहुति और छः छः माशे घृतादि एक एक आहुतिका परिमाण न्यूनसे न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे, लोग बहुतसा होम करते और कराते थे। जबतक इस होम करनेका प्रचार रहा तबतक आर्यावर्त्त देश रोगोंसे रहित और सुखोंसे पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही होजाय। ये दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना संध्योपासन ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्रसे लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानोंकी सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्यमें केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्रको ही करना होता है॥

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥

यह सुश्रुतके सूत्रस्थानके दूसरे अध्यायका वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य; तथा वैश्य एक वैश्य वर्णका यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचा-

षोंका है। पश्चात् पाचवें वा आठवें वर्षसे लड़के लड़कोंकी पाठशालामें और लड़की लड़कियोंकी पाठशालामें जावें। और निम्नलिखित नियमपूर्वक अध्ययनका आरम्भ करें॥

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्। तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥ मनु० ३। १॥

अर्थ—आठवें वर्षसे आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक १ वेदके साङ्गोपाङ्ग पढ़नेमें बारह १२ वर्ष मिलके छत्तीस और आठ मिलके चवालीस अथवा अठारह वर्षोंका ब्रह्मचर्य और आठ पूर्वके मिलके छब्बीस वा नौ वर्ष तथा जबतक विद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तबतक ब्रह्मचर्य रक्खे॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं, चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति॥ १॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ २॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳसवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति॥ ३॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिनँ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाँ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिँशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिँशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्यान्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदँ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥

यह छान्दोग्योपनिषद् [प्रपाठक ३ खण्ड १६] का वचन है। ब्रह्मचर्य तीन प्रकारका होता है। कनिष्ठ, मध्यम, और उत्तम। उनमेंसे कनिष्ठ-जो पुरुष अन्नरसमय देह और पुरि अर्थात् देहमें शयन करनेवाला जीवात्मा यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणोंसे सङ्गत और सत्कर्तव्य है इसको आवश्यक है कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षाका ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करे तो उसके शरीरमें प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणोंके वास करानेवाले होते हैं। इस प्रथम वयमें जो उसको विद्याभ्यासमें संतप्त करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्खे कि जो मैं प्रथम अवस्थामें ठीक २ ब्रह्मचारी रहूंगा तो मेरा शरीर और आत्मा

आरोग्य बलवान् होके शुभगुणोंको बसानेवाले मेरे प्राण होंगे। हे मनुष्यो! तुम इस प्रकारसे सुखोंका विस्तार करो, जो मैं ब्रह्मचर्यका लोप न करूं २४ वर्षके पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूंगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक रहेगी। मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण, इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होके सब दुष्टोंको रुलाने और श्रेष्ठोंका पालन करनेहारे होते हैं। जो मैं इसी प्रथम वयमें जैसा आप कहते हैं कुछ तपश्चर्या करूं तो मेरे ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। हे ब्रह्मचारी लोगो! तुम इस ब्रह्मचर्यको बढ़ाओ जैसे मैं इस ब्रह्मचर्यका लोप न करके यज्ञस्वरूप होता हूं और उसी आचार्यकुलसे आता और रोगरहित होता हूं जैसा कि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है वैसा तुम किया करो। उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्तका तीसरे प्रकारका होता है, जैसे ४८ अक्षरकी जगती वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओंका ग्रहण करते हैं। जो आचार्य और माता पिता अपने सन्तानोंको प्रथम वयमें विद्या और गुणग्रहणके लिये तपस्वी कर और उसीका उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवनसे तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्यका सेवन करके पूर्ण अर्थात् चारसौ वर्ष पर्यन्त आयुको बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्यको प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकारके रोगोंसे रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता।

ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥

यह सुश्रुतके सूत्रस्थान ३५ अध्यायका वचन हैं। इस शरीरकी चार अवस्था हैं एक (वृद्धि) जो १६ वें वर्षसे लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओंकी बढ़ती होती है। दूसरी (यौवन) जो २५ वें वर्षके अन्त और २६ वें वर्षके आदिमें युवावस्थाका आरम्भ होता है। तीसरी (सम्पूर्णता) जो पच्चीसवें वर्षसे लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओंकी पुष्टि होती है। चौथी (किञ्चित्परिहाणि) जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णताको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीरमें नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है, वही ४० वां वर्ष उत्तम समय विवाहका है अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्षमें विवाह करना।

प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचर्यका नियम स्त्री वा पुरुष दोनोंका तुल्य ही है?

उत्तर—नहीं जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ (सोलह) वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे अर्थात् ४८ वें वर्षसे आगे पुरुष और २४ वें वर्षसे आगे स्त्रीको ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियोंका है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुषका है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो

कामके वेगको थांभके इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपा० ७। अनु० ९] का वचन है। पढ़ने पढ़ानेवालोंके नियम हैं। (ऋतं०) यथार्थ आचरणसे पढ़े और पढ़ावें (सत्यं०) सत्याचारसे सत्य विद्याओंको पढ़ें वा पढ़ावें (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रोंको पढ़ें और पढ़ावें (दमः०) बाह्य इन्द्रियोंको बुरे आचरणोंसे रोकके पढ़ें और पढ़ाते जायें (शमः) मनकी वृत्तिको सब प्रकारके दोषोंसे हटाके पढ़ते पढ़ाते जायें (अग्नयः०) आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदिको जानके पढ़ते पढ़ाते जायें और (अग्निहोत्रं०) अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावें (अतिथयः०) अतिथियोंकी सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें (मानुषं०) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारोंको यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहें (प्रजा०) सन्तान और राज्यका पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें (प्रजन०) वीर्यकी रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें (प्रजातिः०) अपने सन्तान और शिष्यका पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें।

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

मनु० [अ० ४ । २०४]

यम पांच प्रकारके होते हैं:—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

योग० [साधनपादे सू० ३०]

अर्थात् (अहिंसा) वैराग्य (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना (अस्तेय) अर्थात् मन वचन कर्मसे चोरी त्याग (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रियका संयम (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमानरहित होना इन पांच यमोंका सेवन सदा करें, केवल नियमोंका सेवन अर्थात्:—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

योग० [साधनपादे सू० ३२]

(शौच) अर्थात् स्नानादिसे पवित्रता (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना होसके उतना करना हानि लाभमें हर्ष वा शोक न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवनसे भी धर्मयुक्त कर्मोंका अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वरकी भक्तिविशेषसे आत्माको अर्पित रखना ये पांच नियम कहाते हैं। यमोंके विना केवल इन नियमोंका सेवन न करे किन्तु इन दोनोंका सेवन किया करे जो यमोंका सेवन छोड़के केवल नियमोंका सेवन करता है वह उन्नतिको नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसारमें गिरा रहता है:—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥

मनु० [२ । २८]

अर्थ—अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसीके लिये भी श्रेष्ठ नहीं क्योंकि जो कामना न करे तो वेदोंका ज्ञान और वेदविहित कर्मादि उत्तम कर्म किसीसे न होसकें। इसलिये:—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥
मनु० [अ० २। २८]

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने (व्रत) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम सत्यका ग्रहण असत्यका त्याग और सत्य विद्याओंका दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान विद्याके ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियोंके सेवनरूप पंचमहायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञोंके सेवनसे इस शरीरको ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वरकी भक्तिका आधाररूप ब्राह्मणका शरीर किया जाता है। इतने साधनोंके विना ब्राह्मणशरीर नहीं बन सकता:—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम्॥ मनु० [२। ८८]

अर्थ—जैसे विद्वान् सारथि घोड़ोंको नियममें रखता है वैसे मन और आत्माको खोटे कामोंमें खेंचनेवाले विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंके निग्रहमें प्रयत्न सब प्रकारसे करे क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥ मनु० [२।९३]

अर्थ—जीवात्मा इन्द्रियोंके वश होके निश्चित बड़े २ दोषोंको प्राप्त होता है और जब इन्द्रियोंको अपने वशमें करता है तभी सिद्धिको प्राप्त होता है:—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥
मनु० [२ । ९७]

जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके । नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि । १ । नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् । ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ।२। मनु० २ । १०५-१०६

वेदके पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञोंके करने और होममन्त्रोंमें अनध्याय विषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है क्योंकि नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं होता जैसे श्वास प्रश्वास सदा लिये जाते हैं बन्द नहीं किये जा सकते वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये न किसी दिन छोड़ना क्योंकि अनध्यायमें भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है जैसे झूठ बोलनेमें सदा पाप और सत्य बोलनेमें सदा पुण्य होता है वैसे ही बुरे कर्म करनेमें सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करनेमें सदा स्वाध्याय ही होता है ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ मनु, २।१२१॥

जो सदा नम्र सुशील विद्वान् और वृद्धोंकी सेवा करता है उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥२॥
मनु० २। १५९-१६०॥

विद्वान् और विद्यार्थियोंको योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़के सब मनुष्योंको कल्याणके मार्गका उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोलें। जो धर्मकी उन्नति चाहे वह सदा सत्यमें चले और सत्य ही का उपदेश करे ॥ १ ॥ जिस मनुष्यके वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं वही सब वेदान्त अर्थात् सब वेदोंके सिद्धान्तरूप फलको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥ मनु० २-१६२

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वरको जानता है जो प्रतिष्ठासे विषके तुल्य सदा डरता है और अपमानकी इच्छा अमृतके समान किया करता है ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः। गुरौ वसन् संश्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥ मनु० २-१६४

इसी प्रकारसे कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे २ वेदार्थके ज्ञानरूप उत्तम तपको बढ़ाते चले जायें ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ मनु० २।१६८

जो वेदको न पढ़के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्रभावको शीघ्र ही प्राप्त होजाता है ॥

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।

शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥२॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥३॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥४॥
मनु० २। १७७-१८० ॥

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुषका सङ्ग, सब खटाई, प्राणियोंकी हिंसा ॥ १ ॥ अङ्गोंका मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रियका स्पर्श, आंखोंमें अञ्जन जूते और छत्रका धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्षा, द्वेष, नाच, गान और बाजा बजाना ॥ २ ॥ द्यूत, जिस किसीकी कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियोंका दर्शन, आश्रय, दूसरेकी हानि आदि कुकर्मोंको सदा छोड़ देवें ॥ ३ ॥ सर्वत्र एकाकी सोवे वीर्य्यस्खलित कभी न करें, जो कामनासे वीर्य्यस्खलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्यव्रतका नाश करदिया ॥ ४ ॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वा-

ध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामा स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र वर्त्तेथाः। एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्॥ तैत्तिरीय० प्रपा० ७। अनु० ११। क० १।२।३।४॥

आचार्य्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओंको इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण, ब्रह्मचर्य्यसे समस्त विद्याओंको ग्रहण और आचार्य्यके लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर प्रमादसे सत्यको कभी मत छोड़, प्रमादसे धर्मका त्याग मत कर, प्रमादसे आरोग्य और चतुराईको मत छोड़, प्रमादसे उत्तम ऐश्वर्यकी

वृद्धिको मत छोड़, प्रमादसे पढ़ने और पढ़ानेको कभी मत छोड़, देव विद्वान् और माता पितादिकी सेवामें प्रमाद मत कर, जैसे विद्वान्का सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य्य और अतिथिकी सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर जो कोई हमारे मध्यमें उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हींके समीप बैठ और उन्हींका विश्वास किया कर, श्रद्धासे देना, अश्रद्धासे देना, शोभासे देना, लज्जासे देना, भयसे देना और प्रतिज्ञासे भी देना चाहिये। जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञानमें किसी प्रकारका संशय उत्पन्न हो तो जो वे विचारशील पक्षपातरहित योगी अयोगी आर्द्रचित्त धर्मकी कामना करनेवाला धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्म-मार्गमें वर्त्तें वैसे तू भी उसमें वर्त्ता कर। यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश, यही वेदकी उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिये ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥

मनुः २ । ४ ॥

मनुष्योंको निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुषमें नेत्रका संकोच विकाशका होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो २ कुछ भी करता है वह २ चेष्टा कामनाके विना नहीं है ॥

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ।१।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥२॥

मनुः १ । १०८-१०९ ॥

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ानेका फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मका आचरण करना इसलिये धर्माचारमें सदा युक्त रहे ॥ १ ॥ क्योंकि जो धर्माचरणसे रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फलको प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुखको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥

मनुः २ । ११ ॥

जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिकको जाति, पङ्क्ति और देशसे बाह्य कर देना चाहिये, क्योंकिः—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

मनुः २ । १२ ॥

वेद, स्मृति, वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषोंका आचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म्म और अपने आत्मामें प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्यभाषण, ये चार धर्मके लक्षण अर्थात् इन्हींसे धर्माऽधर्मका निश्चय होता है जो पक्षपातरहित न्याय सत्यका ग्रहण असत्यका सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसीका नाम धर्म और इससे विपरीत जो

पक्षपातसहित अन्यायाचरण सत्यका त्याग और असत्यका ग्रहणरूप कर्म है उसीको अधर्म कहते हैं ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु २। १३ ॥

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादिमें नहीं फंसते हैं उन्हींको धर्मका ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्मके ज्ञानकी इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्मका निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्मका निश्चय विना वेदके ठीक २ नहीं होता ॥

इस प्रकार आचार्य्य अपने शिष्यको उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनोंको भी विद्याका अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादिकी वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादिसे जीविकाको प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविकाके आधीन और क्षत्रियादिके आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथमें चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानोंके सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मनमें आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादिको वेदादि सत्यशास्त्रका अभ्यास अधिक प्रयत्नसे करावें क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म राज्य और लक्ष्मीकी वृद्धि करनेहारे हैं; वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्याव्यवहारमें पक्षपाती भी नहीं हो सकते और जब सब वर्णोंमें विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहारको नहीं चला सकता

इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादिको नियममें चलानेवाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण संन्यासीको सुनियममें चलानेवाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णोंके स्त्री पुरुषोंमें विद्या और धर्मका प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है—परीक्षा पांच प्रकारसे होती है। एक— जो २ ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोंसे अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो २ सृष्टिक्रमसे अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रमसे विरुद्ध है वह सब असत्य है जैसे कोई कहे कि विना माता पिताके योगसे लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होनेसे सर्वथा असत्य है। तीसरी "आप्त" अर्थात् जो धार्मिक विद्वान, सत्यवादी, निष्कपटियोंका संग उपदेशके अनुकूल है वह २ ग्राह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अग्राह्य है। चौथी—अपने आत्माकी पवित्रता विद्याके अनुकूल अर्थात् जैसा अपनेको सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसीको दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इनमेंसे प्रत्यक्षके लक्षणादिमें जो २ सूत्र नीचे लिखेंगे वे २ सब न्यायशास्त्रके प्रथम और द्वितीय अध्यायके जानो॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्प्रत्यक्षम्॥ न्याय० अ० १। आह्निक १। सूत्र ४॥

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राणका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियोंके साथ मनका और मनके साथ आत्माके संयोगसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात्

संज्ञासंज्ञीके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसीने किसीसें कहा कि "तू जल ले आ" वह लाके उसके पास धरके बोला कि "यह जल है" परन्तु वहां "जल" इन दो अक्षरोंकी संज्ञा लाने वा मंगानेवाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थका नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्दसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द-प्रमाणका विषय है। "अव्यभिचारि" जैसे किसीने रात्रिमें खम्भेको देखके पुरुषका निश्चय कर लिया जब दिनमें उसको देखा तो रात्रिका पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा ऐसे विनाशीज्ञानका नाम व्यभि-चारि है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। "व्यवसायात्मक" किसीने दूरसे नदीके बालूको देखके कहा कि "वहां वस्त्र सूख रहे हैं जल है वा और कुछ है" "वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त" जबतक एक निश्चय न हो तबतक वह प्रत्यक्षज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसीको प्रत्यक्ष कहते हैं॥

दूसरा अनुमान—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टश्च॥ न्याय० अ० १ आ० १ सू० ५॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एकदेश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा कालमें प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देशसे सहचारी एक देशके प्रत्यक्ष होनेसे अदृष्ट अवयवीका ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्रको देखके पिता, पर्वतादिमें धूमको देखके अग्नि, जगत् में सुख दुःख देखके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकारका है।

एक "पूर्ववत्" जैसे बादलोंको देखके वर्षा, विवाहको देखके सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियोंको देखके विद्या होनेका निश्चय होता है, इत्यादि जहां २ कारणको देखके कार्यका ज्ञान हो वह "पूर्ववत्"।

दूसरा "शेषवत्" अर्थात् जहां कार्यको देखके कारणका

ज्ञान हो जैसे नदीके प्रवाहकी बढ़ती देखके ऊपर हुई वर्षाका, पुत्रको देखके पिताका, सृष्टिको देखके अनादि कारणका तथा कर्त्ता ईश्वरका और पाप पुण्यके आचरण देखके सुख दुःखका ज्ञान होता है* इसीको "शेशवत्" कहते हैं।

तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसीका कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकारका साधर्म्य एक दूसरेके साथ हो जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थानको नहीं जा सकता वैसे ही दूसरोंका भी स्थानान्तरमें जाना विना गमनके कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्दका अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्षके पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूमके प्रत्यक्ष देखे विना अदृष्ट अग्निका ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० अ० १। आ० १। सू० ६॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्यसे साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञानका सिद्धि करनेका साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसीने किसी भृत्यसे कहा कि "तू विष्णुमित्रको बुला ला" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामीने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहां गया और देवदत्तके सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जङ्गलमें जिस पशुको गायके तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसीका नाम गवय है।

चौथा शब्दप्रमाण—

* और पाप पुण्यके आचरणका सुख दुःख देखके ज्ञान होता है।

आप्तोपदेशः शब्दः॥ न्या० अ० १ आ० १ सू० ७॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मामें जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसीके कथनकी इच्छासे प्रेरित सब मनुष्योंके कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् [जो] जितने पृथिवीसे लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वरके उपदेश वेद हैं उन्हींको शब्दप्रमाण जानो।

पांचवां ऐतिह्य—

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्।

न्याय० २।२।१॥

जो इतिह अर्थात् इस प्रकारका था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसीके जीवनचरित्रका नाम ऐतिह्य है।

छठा अर्थापत्ति—

"अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः" केनचिदुच्यते "सत्सु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्य्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यते, असत्सु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्यं न भवति" जैसे किसीने किसीसे कहा कि "बद्दल के होनेसे वर्षा और कारणके होनेसे कार्य उत्पन्न होता है" इससे विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विना बद्दल वर्षा और विना कारणके कार्य्य कभी नहीं हो सकता।

सातवां सम्भव—

"सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः" कोई कहे कि "माता पिताके विना सन्तानोत्पत्ति, किसीने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्रमें पत्थर तराये, चन्द्रमाके टुकड़े किये, परमेश्वरका अवतार हुआ, मनुष्यके सींग देखे और वन्ध्याके पुत्र और पुत्रीका विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्योंकि ये सब सृष्टिक्रमसे विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रमके अनुकूल हो वही सम्भव है।

आठवां अभाव—

"न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः" जैसे किसीने किसीसे कहा कि "हाथी ले आ" वह वहां हाथीका अभाव देखकर जहां हाथी था वहांसे ले आया। ये आठ प्रमाण। इनमेंसे जो शब्दमें ऐतिह्य और अनुमानमें अर्थापत्ति, सम्भव और अभावकी गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इन पांच प्रकारकी परीक्षाओंसे सत्यासत्यका निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ वैशेषिक। अ० १ आ० १ सू० ४ ॥

जब मनुष्य धर्मके यथायोग्य अनुष्ठान करनेसे पवित्र होकर "साधर्म्य" अर्थात् जो तुल्य धर्म है जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकारसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थोंके तत्वज्ञानसे अर्थात् स्वरूपज्ञानसे "निःश्रेयसम्" मोक्षको प्राप्त होता है।

पृथिव्याऽपस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥ वै० अ० १ आ० १ सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

वैशे० १। १। १५ ॥

"क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिन्स्तत् क्रियागुणवत्" जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं। उनमेंसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रिया रहित गुणवाले हैं।

(समवायि) "समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं समवायिं च तत्कारणं च समवायिकारणम्" "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्" जो मिलनेके स्वभावयुक्त कार्यसे कारण पूर्वकालस्थ हो उसीको द्रव्य कहते हैं जिससे लक्ष्य जाना जाय जैसा आंखसे रूप जाना जाता है उसको लक्षण कहते हैं।

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी॥ वै०। २। १। १॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायुके योगसे हैं॥

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः॥ वै० २। २। २॥

पृथिवीमें गन्ध गुण स्वाभाविक है। वैसे ही जलमें रस, अग्निमें रूप, वायुमें स्पर्श और आकाशमें शब्द स्वाभाविक है॥

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः॥

वैशे० २। १। २॥

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जलका रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायुके योगसे हैं॥

अप्सु शीतता॥ वै० २। २। ५॥

और जलमें शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है॥

तेजो रूपस्पर्शवत्॥ वै० २। १। ३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायुके योगसे है॥

स्पर्शवान् वायुः॥ वै० २। १। ४॥

स्पर्श गुणवाला वायु है। परन्तु इसमें भी उष्णता, शीतलता, तेज और जलके योगसे रहते हैं॥

न आकाशे न विद्यन्ते ॥ वै० २ । १ । ५ ॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाशमें नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाशका गुण है ॥

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥

वैशे० २ । १ । २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाशका लिङ्ग है ॥

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥

वैशे० २ । १ । २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्योंसे प्रकट न होनेसे शब्द स्पर्श गुणवाले भूमि आदिका गुण नहीं है किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥

वैशे० २ । २ । ६ ॥

जिसमें अपर पर (युगपत्) एकवार (चिरम्) विलम्ब (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं ॥

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥

वैशे० २ । २ । ९ ॥

जो नित्य पदार्थोंमें न हो और अनित्योंमें हो इसलिये कारणमें ही काल संज्ञा है ॥

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥ वै० २।२।१०॥

यहांसे यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर नीचे जिसमें यह व्यवहार होता है उसीको दिशा कहते हैं ॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥ वै० २ । २ । १४ ॥

जिस ओर प्रथम आदित्यको संयोग हुआ, है, होगा, उसको पूर्व

दिशा कहते हैं। और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं पूर्वाभिमुख मनुष्यके दाहिनी ओर दक्षिण और बाई ओर उत्तर दिशा कहाती है॥

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥

वैशे० २।२।१६॥

इससे पूर्व दक्षिणके बीचकी दिशाको आग्नेयी, दक्षिण पश्चिमके बीचको नैर्ऋति, पश्चिम उत्तरके बीचको वायवी और उत्तर पूर्वके बीचको ऐशानी दिशा कहते हैं॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥ न्याय० अ० १ सू० १० ॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा [कहाता] है। वैशेषिकमें इतना विशेष है॥

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

वैशे० ३।२।४॥

(प्राण) बाहरसे वायुको भीतर लेना (अपान) भीतरसे वायुको निकालना (निमेष) आंखको नीचे ढांकना (उन्मेष) आंखको ऊपर उठाना (जीवन) प्राणका धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियोंको विषयोंमें चलाना उनसे विषयोंका ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारोंका होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्माके लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं॥

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम् ॥

न्याय० १।१।१६॥

जिससे एक कालमें दो पदार्थोंका ग्रहण ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं। यह द्रव्यका स्वरूप और लक्षण कहा अब गुणोंको कहते हैं—

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इ-च्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ वै० १ । १ । ६ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं ॥

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ वै० १ । २ । १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्यके आश्रय रहे अन्य गुणका धारण न करे संयोग और विभागमें कारण न हो (अनपेक्ष) अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षा न करे ॥

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ महाभाष्ये ॥

जिसकी श्रोत्रोंसे प्राप्ति, जो बुद्धिसे ग्रहण करने योग्य और प्रयोगसे प्रकाशित तथा आकाश जिसका देश है वह शब्द कहाता है। नेत्रसे जिसका ग्रहण हो वह रूप, जिह्वासे जिस मिष्टादि अनेक प्रकारका ग्रहण होता है वह रस, नासिकासे जिसका ग्रहण हो वह गन्ध, त्वचासे जिसका ग्रहण होता है वह स्पर्श एक द्वि इत्यादि गणना जिससे होती है वह संख्या, जिससे तोल अर्थात् हलका भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरेसे अलग होना वह पृथक्त्व, एक दूसरेके साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरेसे मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग, इससे यह पर है वह पर, उससे यह उरे है

वह अपर, जिससे अच्छे बुरेका ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्दका नाम सुख, क्लेशका नाम दुःख, इच्छा-राग, द्वेष-विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकारका बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघलजाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरेके योगसे वासनाका होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनतासे विरुद्ध कोमलता ये चौवीस (२४) गुण हैं ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥ वै० १ । १ । ७ ॥

"उत्क्षेपण" ऊपरको चेष्टा करना "अवक्षेपण" नीचेको चेष्टा करना "आकुञ्चन" सङ्कोच करना "प्रसारण" फैलाना "गमन" आना जाना घूमना आदि इनको कर्म कहते हैं। अब कर्मका लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥ वै० १ । १ । १७ ॥

"एकन्द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तदगुणं संयोगेषु विभागेषु चापेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्" अथवा "यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्" द्रव्यके आश्रित गुणोंसे रहित संयोग और विभाग होनेमें अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म्म कहते हैं ॥

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥

वैशे० १ । १ । १८ ॥

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्मका कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ वै० १ । १ । २३ ॥

जो द्रव्योंका कार्य द्रव्य है वह कार्यपनसे सब कार्योंमें सामान्य है।

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥

वैशे० १। २। ५॥

द्रव्योंमें द्रव्यपन, गुणोंमें गुणपन, कर्मोंमें कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं क्योंकि द्रव्योंमें द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्वसे द्रव्यत्व विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥

वैशे० १। २। ३॥

सामान्य और विशेष बुद्धिकी अपेक्षासे सिद्ध होते हैं। जैसे—मनुष्य व्यक्तियोंमें मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादिसे विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व भी विशेष है। ब्राह्मण व्यक्तियोंमें ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादिसे विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानो॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥

वैशे० ७। २। २६॥

कारण अर्थात् अवयवोंमें अवयवी कार्योंमें क्रिया क्रियावान् गुण गुणी जाति व्यक्ति कार्य कारण अवयव अवयवी इनका नित्य सम्बन्ध होनेसे समवाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्योंका परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है॥

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥

वैशे० १। १। ९॥

जो द्रव्य और गुणका समान जातीयक कार्यका आरम्भ होता है उसको साधर्म्य कहते हैं। जैसे पृथिवीमें जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जलमें भी जड़त्व और हिम आदि स्वसदृश कार्यका आरम्भ पृथिवीके साथ जलका और जलके साथ पृथिवीका तुल्य धर्म है अर्थात् "द्रव्यगुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं

वैधर्म्यम्" यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुणका विरुद्ध धर्म और कार्यका आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं । जैसे पृथिवीमें कठिनत्व शुष्कत्व और गन्धवत्व धर्म जलसे विरुद्ध और जलका द्रवत्व कोमलता और रस गुणयुक्तता पृथिवीसे विरुद्ध है ॥

कारणभावात् कार्यभावः ॥ वै० ४ । १ । ३ ॥

कारणके होने ही से कार्य होता है ।

न तु कार्याभावात्कारणाभावः ॥ वै० १ । २ । २ ॥

कार्यके अभावसे कारणका अभाव नहीं होता ॥

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः ॥ वै० । १ । २ । १ ॥

कारणके न होनेसे कार्य कभी नहीं होता ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ वै० २ । १ । २४ ॥

जैसे कारणमें गुण होते हैं वैसे ही कार्यमें होते हैं । परिणाम दो प्रकारका है :—

अणु महदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च ॥

वैशे० ७ । १ । ११ ॥

(अणु) सूक्ष्म (महत्) बड़ा जैसे त्रसरेणु लिक्षासे छोटा और द्व्यणुकसे बड़ा है तथा पहाड़ पृथिवीसे छोटे वृक्षोंसे बड़े हैं ॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥

वैशे० १ । २ । ७ ॥

जो द्रव्य गुण और कर्मोंमें सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् "सद् द्रव्यम्—सद् गुणः—सद् सत्कर्म" सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्दका अन्वय सबके साथ रहता है ।

भावोनुवृत्तेरेवहेतुत्वात्सामान्यमेव ॥

वैशे० १ । २ । ४ ॥

जो सबके साथ अनुवर्त्तमान होनेसे सत्तारूप भाव है सो महासामान्य

कहाता है यह क्रम भावरूप द्रव्योंका है और जो अभाव है वह पांच प्रकारका होता है।

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत्॥ वै० ६। १। १॥

क्रिया और गुणके विशेष निमित्तके अभावसे प्राक् अर्थात् पूर्व (असत्) न था जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्तिके पूर्व नहीं थे इसका नाम प्रागभाव। दूसरा:—

सदसत्॥ वैशेषिक। ६। १। २॥

जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट होजाय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है। तीसरा:—

सच्चासत्॥ वैशेषिक। ६। १। ४॥

जो होवे और न होवे जैसे "अगौरश्वोऽनश्वो गौः" यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़ेमें गायका और गायमें घोड़ेका अभाव और गायमें गाय, घोड़ेमें घोड़ेका भाव है। यह अन्योन्याभाव कहाता है॥ चौथा:—

यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥ वैशेषिक ६। १। ५॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावोंसे भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे—"नरशृङ्ग" अर्थात् मनुष्यका सींग "खपुष्प" आकाशका फूल और बन्ध्यापुत्र" बन्ध्याका पुत्र इत्यादि। पांचवां—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्ग प्रतिषेधः॥ वैशेषिक ६। १। १०॥

घरमें घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घरके साथ घड़ेका सम्बन्ध नहीं है, ये पांच अभाव कहाते हैं।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या॥

वैशे० ६। २। १०॥

इन्द्रियों और संस्कारके दोषसे अविद्या उत्पन्न होती है।

तद्दुष्टज्ञानम् ॥ वै० ६ । २ । ११ ॥

जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं।

अदुष्टं विद्या ॥ वै० ६ । २ । १२ ॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं।

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥ वै० ७ । १ । २ ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० ७ । १ । ३ ॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं ये सब द्रव्योंके अनित्य होनेसे अनित्य हैं और जो इससे कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्योंमें गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।

सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० ४ । १ । १ ॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्—"सत्कारणवदनित्यम्" जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं।

यस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥ वै० ९ । २ । १ ॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायी, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकारका लैङ्गिक अर्थात् लिङ्गलिङ्गी के सम्बन्धसे ज्ञान होता है। "समवायि" जैसे आकाश परिमाण वाला है "संयोगि" जैसे शरीर त्वचावाला है इत्यादिका नित्य संयोग है "एकार्थसमवायि" एक अर्थमें दोका रहना जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का लिङ्ग अर्थात् जाननेवाला है "विरोधि" जैसे हुई वृष्टि होनेवाली वृष्टिका विरोधी लिङ्ग है "व्याप्ति":—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः।

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः। आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः॥ सांख्य० ५। २९-३१-३२॥

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्रका निश्चित धर्म का सहचार है उसीको व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और अग्निका सहचर है॥ २९॥ तथा व्याप्त जो धूम उसकी निज शक्तिसे उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तरमें दूर धूम जाता है, तब विना अग्नि-योगके भी धूम स्वयं रहता है। उसीका नाम व्याप्ति है अर्थात् अग्नि के छेदन भेदन, सामर्थ्यसे जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है॥३१॥ जैसे महत्तत्वादिमें प्रकृत्यादिकी व्यापकता बुद्ध्यादिमें व्याप्ता धर्मके सम्बन्धका नाम व्याप्ति है। जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् आधाररूपका सम्बन्ध है॥३२॥ इत्यादि शास्त्रोंके प्रमाणादिसे परीक्षा करके पढ़ें और पढ़ावें। अन्यथा विद्यार्थियोंको सत्य बोध कभी नहीं हो सकता। जिस २ ग्रन्थको पढ़ावें उस २ की पूर्वोक्त प्रकारसे परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह २ ग्रन्थ पढ़ावें जो २ इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन ग्रन्थोंको न पढ़ें न पढ़ावें क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।

लक्षण जैसा कि "गन्धवती पृथिवी" जो पृथिवी है वह गन्धवाली है ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थोंका निर्णय हो जाता है इसके विना कुछ भी नहीं होता।

अथ पठनपाठनविधिः॥

अब पढ़ने पढ़ानेका प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षरका यह स्थान यह प्रयत्न यह करण है जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभकी क्रिया करनी करण कहाता है। इसी प्रकार यथा-

योग्य सब अक्षरोंका उच्चारण माता पिता आचार्य सिखलावें । तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायीके सूत्रोंका पाठ जैसे "वृद्धिरादैच्" फिर पदच्छेद जैसे "वृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्" फिर समास "आच्च ऐच्च आदैच्" और अर्थ जैसे "आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते" अर्थात् आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा [कीजाती] है "तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः" तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकारसे परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं तपरका प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुतकी वृद्धि संज्ञा न हुई । उदाहरण (भागः) यहां 'भज्' धातुसे "घञ्" प्रत्ययके परे "घ, ञ्" की इत्संज्ञा होकर लोप होगया पश्चात् "भज् अ" यहां जकारके पूर्व भकारोत्तर अकारको वृद्धिसंज्ञक आकार होगया है । तो भाज् पुनः "ज्" को ग् हो अकारके साथ मिलके "भागः" ऐसा प्रयोग हुआ । "अध्यायः" यहां अधि-पूर्वक "इङ्" धातुके ह्रस्व इके स्थानमें "घञ्" प्रत्ययके परे "ऐ" बृद्धि और उसको "आय्" हो मिलके "अध्यायः" । "नायकः" यहां "नीञ्" धातुके दीर्घ ईकारके स्थानमें "ण्वुल्" प्रत्ययके परे "ऐ" बृद्धि और उसको आय् होकर मिलके "नायकः" । और "स्तावकः" यहां "स्तु" धातुसे "ण्वुल्" प्रत्यय होकर ह्रस्व उकारके स्थानमें औ वृद्धि आव् आदेश होकर अकारमें मिल गया तो "स्तावकः" । (कृञ्) धातुसे आगे "ण्वुल्" प्रत्यय ल् की इत्संज्ञा होके लोप "वु" के स्थानमें अक आदेश और ऋकारके स्थानमें "आर्" वृद्धि होकर "कारकः" सिद्ध हुआ । जो २ सूत्र आगे पीछेके प्रयोगमें लगें उनका कार्य सब बतलाता जाय और स्लेट अथवा लकड़ीके पट्टे पर दिखला दिखलाके कच्चा रूप धरके जैसे "भज्+घञ्+सु" इस प्रकार धरके प्रथम घकारका फिर ञ् का लोप होकर "भज्+अ+सु" ऐसा रहा फिर अ को आकार वृद्धि और ज् के स्थानमें "ग्" होनेसे "भाग्+अ+सु" पुनः अकारमें मिल जानेसे "भाग+सु" रहा, अब उकारकी इत्संज्ञा "स्" के स्थानमें

"रु" होकर पुनः उकारकी इत्संज्ञा लोप होजाने पश्चात् "भागर्" ऐसा रहा अब रेफके स्थानमें (ः) विसर्जनीय होकर "भागः" यह रूप सिद्ध हुआ। जिस २ सूत्रसे जो २ कार्य होता है उस उसको पढ़ पढ़ाके और लिखवा कर कार्य कराता जाय इस प्रकार पढ़ने पढ़ानेसे बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है। एक वार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ाके धातुपाठ अर्थसहित और दश लकारोंके रूप तथा प्रक्रिया सहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे "कर्मण्यण्" कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्रसे अण् प्रत्यय हो जैसे "कुम्भकारः" पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे "आतोऽनुपसर्गे कः" उपसर्ग भिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातुसे "क" प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओंसे "अण्" प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्रके विषयमेंसे आकारान्त धातुको "क" प्रत्ययने ग्रहण कर लिया जैसे उत्सर्गके विषयमें अपवाद सूत्रकी प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्रके विषयमें उत्सर्ग सूत्रकी प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्ती राजाके राज्यमें माण्डलिक और भूमिवालोंकी प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादिके राज्यमें चक्रवर्त्तीकी प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार पाणिनि महर्षिने सहस्र श्लोकोंके बीचमें अखिल शब्द अर्थ और सम्बन्धोंकी विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठके पश्चात् उणादिगणके पढ़ानेमें सर्व सुबन्तका विषय अच्छे प्रकार पढ़ाके पुनः दूसरी वार शङ्का, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषाकी घटनापूर्वक, अष्टाध्यायीकी द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे। अर्थात् जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धिके चाहनेवाले नित्य पढ़ें पढ़ावें तो डेढ़ वर्षमें अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्षमें महाभाष्य पढ़के तीन वर्षमें पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दोंका व्याकरणसे बोध कर पुनः अन्य शास्त्रोंको शीघ्र सहजमें पढ़ पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरणमें होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रोंमें करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके

पढ़नेसे तीन वर्षोंमें होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादिके पढ़नेसे पचास वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगोंने सहजतासे महान विषय अपने ग्रन्थोंमें प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्योंके कल्पित ग्रन्थोंमें क्योंकर हो सकता है। महर्षि लोगोंका आशय, जहांतक होसके वहांतक सुगम और जिसके ग्रहणमें समय थोड़ा लगे इस प्रकारका होता है और क्षुद्राशय लोगोंकी मनसा ऐसी होती है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रमसे पढ़के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़का खोदना कौड़ीका लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थोंका पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियोंका पाना व्याकरणको पढ़के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः वा आठ महीनेमें सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादिमें अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे वैदिक लौकिक छन्दोंका परिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनानेकी रीति भी यथावत् सीखें। इस ग्रन्थ और श्लोकोंकी रचना तथा प्रस्तारको चार महीनेमें सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं। और वृत्तरत्नाकर आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थोंमें अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण और महाभारतके उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे २ प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त हो वैसे काव्यरीतिसे अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण और भावार्थको अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें। इनको वर्षके भीतर पढ़लें। तदनन्तर पूर्वमीमांसा वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहांतक बन सके वहांतक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानोंकी सरलव्याख्यायुक्त छः शास्त्रोंको पढ़ें पढ़ावें। परन्तु वेदान्त सूत्रोंके पढ़नेके पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदोंको पढ़के छः शास्त्रोंके

भाष्य वृत्तिसहित सूत्रोंको दो वर्षके भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें। पश्चात् छः वर्षोंके भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणोंके सहित चारों वेदोंके स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासहित पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाणः—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ निरुक्त १। १८॥

यह निरुक्तमें मन्त्र है। जो वेदको स्वर और पाठमात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदिका भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भारका उठानेवाला है और जो वेदको पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्दको प्राप्त होके देहान्तके पश्चात् ज्ञानसे पापोंको छोड़ पवित्र धर्माचरणके प्रतापसे सर्वानन्दको प्राप्त होता है॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ऋ० मं० १० सू० ७१ मं० ४॥

जो अविद्वान् हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या वाणीके रहस्यको नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्धका जाननेवाला है उसके लिये विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पतिकी कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूपका प्रकाश पतिके सामने करती है वैसे विद्या विद्वान्के लिये अपने स्वरूपका प्रकाश करती है अविद्वानोंके लिये नहीं॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे

निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ ऋ० १। १६४। ३९॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वरमें सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदोंका मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्मको जो न जानता वह ऋग्वेदादिसे क्या कुछ सुखको प्राप्त हो सकता है? नहीं २ किन्तु जो वेदोंको पढ़के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्मको जानते हैं वे सब परमेश्वरमें स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्दको प्राप्त होते हैं। इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये। इस प्रकार सब वेदोंको पढ़के आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र हैं उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तुके गुण ज्ञानपूर्वक ४ (चार) वर्षके भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्यमें सभा सेनाके अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या नाना प्रकारके व्यूहोंका अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल "क़वायद" कहते हैं जो कि शत्रुओंसे लड़ाईके समयमें क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजाके पालन और वृद्धि करनेका प्रकार है उनको सीखके न्यायपूर्वक सब प्रजाको प्रसन्न रक्खे दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड श्रेष्ठोंके पालनका प्रकार सब प्रकार सीखलें। इस राजविद्याको दो २ वर्षमें सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदिको यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेदका गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें परन्तु भड़ुवे वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियोंके गर्दभशब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें। अर्थवेद कि

जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण विज्ञान क्रियाकौशल नानाविध पदार्थोंका निर्माण पृथिवीसे लेके आकाश पर्यन्तकी विद्याको यथावत् सीखके अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्यको बढ़ानेवाला है उस विद्याको सीखके दो वर्षमें ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है इसको यथावत् सीखें । तत्पश्चात् सब प्रकारकी हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदिको सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदिके फलके विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझके कभी न पढ़ें और पढ़ावें ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे बीस वा इक्कीस वर्षके भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्दमें रहें जितनी विद्या इस रीतिसे बीस वा इक्कीस वर्षोंमें हो सकती है उतनी अन्य प्रकारसे शतवर्षमें भी नहीं हो सकती ॥

ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंको इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं ॥

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत, न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें पढ़ावें इत्यादि सूत्रोंको कल्प अङ्गमें भी गिनना चाहिये जैसे ऋग्यजु, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदोंके अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदोंके उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदोंके उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनिके किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो २ वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस २ को

छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होनेसे निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेदका प्रमाण वेदहीसे होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है वेदकी विशेष व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकामें देख लीजिये और इस ग्रन्थमें भी आगे लिखेंगे ॥

अब जो परित्यागके योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेपसे किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जालग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरणमें कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमदी, शेखर, मनोरमादि। कोशमें अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थमें वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षामें अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा इत्यादि। ज्योतिषमें शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्यमें नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसामें धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिकमें तर्कसंग्रहादि। न्यायमें जागदीशी आदि। योगमें हठप्रदीपिकादि। सांख्यमें सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि। वेदान्तमें योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यकमें शार्ङ्गधरादि। स्मृतियोंमें मनुस्मृतिके प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्व भाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थोंमें कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे 'विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे युक्त होनेसे छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण इतिहासको नहीं मानते ?

उत्तर—हां मानते हैं परन्तु सत्यको मानते हैं मिथ्याको नहीं।

प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है ?

उत्तर—ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्

गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादिका वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि, ब्राह्मण लिख आये उन्हींके इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादिका नाम पुराण नहीं।

प्रश्न—जो त्याज्य ग्रन्थोंमें सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

उत्तर—जो २ उनमें सत्य है सो २ वेदादि सत्य शास्त्रोंका है और मिथ्या उनके घरका है। वेदादि सत्य शास्त्रोंके स्वीकारमें सब सत्यका ग्रहण होजाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थोंसे सत्यका ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे। इसलिये "असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति" असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्नको।

प्रश्न—तुम्हारा मत क्या है ?

उत्तर—वेद अर्थात् जो २ वेदमें करने और छोड़नेकी शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्योंको विशेष आर्य्योंको ऐकमत्य होकर रहना चाहिये।

प्रश्न— जैसे सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थोंका परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रोंमें भी है जैसा सृष्टिविषयमें छः शास्त्रोंका विरोध है:—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है ?

उत्तर—प्रथम तो विना सांख्य और वेदान्तके दूसरे चार शास्त्रोंमें सृष्टिका उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं क्योंकि तुमको विरोधाविरोधका ज्ञान नहीं। मैं तुमसे पूछता हूं कि विरोध किस स्थलमें होता है ? क्या एक विषयमें अथवा भिन्न २ विषयोंमें ?

प्रश्न—एक विषयमें अनेकोंका परस्पर विरुद्ध कथन हो उसको

विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है।

उत्तर—क्या विद्या एक है वा दो, एक है, जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष् आदिका भिन्न २ विषय क्यों है जैसा एक विद्यामें अनेक विद्याके अवयवोंका एक दूसरेसे भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टिविद्याके भिन्न भिन्न छः अवयवोंका शास्त्रोंमें प्रतिपादन करनेसे इनमें कुछ भी विरोध नहीं जैसे घड़ेके बनानेमें कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादिका पुरुषार्थ, प्रकृतिके गुण और कुंभार कारण है वैसे ही सृष्टिका जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसामें, समयकी व्याख्या वैशेषिकमें, उपादान कारणकी व्याख्या न्यायमें, पुरुषार्थकी व्याख्या योगमें, तत्वोंके अनुक्रमसे परिगणनकी व्याख्या सांख्यमें और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्तशास्त्रमें है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्रमें निदान, चिकित्सा, औषधि, दान और पथ्यके प्रकरण भिन्न २ कथित हैं परन्तु सबका सिद्धान्त रोगकी निवृत्ति है वैसे ही सृष्टिके छः कारण हैं इनमेंसे एक-एक कारणकी व्याख्या एक-एक शास्त्रकारने की है इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं इसकी विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरणमें कहेंगे॥

जो विद्या पढ़ने पढ़ानेके विघ्न हैं उनको छोड़ देवें जैसा कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयीजनोंका संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्थामें विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्षसे पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्षसे पूर्व स्त्रीका विवाह होजाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न होना, राजा, माता पिता और विद्वानोंका प्रेम, वेदादि शास्त्रोंके प्रचारमें न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वा देनेमें आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्याका लाभ न समझना, ब्रह्मचर्यसे बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धनकी वृद्धि न मानना, ईश्वरका ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्त्तिके दर्शन पूजनमें व्यर्थ काल खोना, माता पिता, अतिथि और आचार्य्य

विद्वान् इनको सत्य मूर्त्ति मानकर, सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रमके धर्मको छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादिके नामस्मरणसे पाप दूर होनेका विश्वास, पाखण्डियोंके उपदेशसे विद्या पढ़नेमें अश्रद्धाका होना, विद्या धर्म योग परमेश्वरकी उपासनाके विना मिथ्या पुराणनामक भागवतादिकी कथादिसे मुक्तिका मानना, लोभसे धनादिमें प्रवृत्त होकर विद्यामें प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारोंमें फंसके ब्रह्मचर्य्य और विद्याके लाभसे रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं॥

आजकलके संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरोंको विद्या सत्संगसे हटा और अपने जालमें फंसाके उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजालसे छूट और हमारे छलको जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नोंको राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियोंको विद्वान् करनेके लिये तन, मन, धनसे प्रयत्न किया करें।

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़नेमें प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है:—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः॥

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्रको पढ़नेका अधिकार है। तुम कुआमें पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पनासे हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थकी नहीं। और सब मनुष्योंके वेदादि शास्त्र पढ़ने सुननेके अधिकारका प्रमाण यजुर्वेदके छब्बीसवें अध्यायमें

दूसरा मन्त्र है:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म-राजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

[यजु० अ० २६ । २]

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीका (आ, वदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो। यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्दसे द्विजोंका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदोंके पढ़नेका अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णोंका नहीं।

उत्तर—(ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादिके लिये भी वेदोंका प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदोंको पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञानको बढ़ाके अच्छी बातोंका ग्रहण और बुरी बातोंका त्याग करके दुःखोंसे छूट कर आनन्दको प्राप्त हों। कहिए अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वरकी ? परमेश्वरकी बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदोंका निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रोंका भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदोंको पढ़ने सुननेका शूद्रोंके लिये निषेध और द्विजोंके लिये विधि करे ? जो परमेश्वरका अभिप्राय शूद्रादिके पढ़ाने सुनानेका न होता तो इनके शरीरमें वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता। जैसे परमात्माने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं

वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं। और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ानेसे कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होनेसे शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियोंके पढ़नेका निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिताका प्रभाव है। देखो वेदमें कन्याओंके पढ़नेका प्रमाणः—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व० [कां० ११ । प्र० २४ । अ० ३ । मं० १८]

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवनसे पूर्ण विद्या और सुशिक्षाको प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियोंके साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्थामें अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुषको (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य और विद्याका ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

प्रश्न—क्या स्त्री लोग भी वेदोंको पढ़ें ?

उत्तर—अवश्य देखो श्रौतसूत्रादिमें:—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥

अर्थात् स्त्री यज्ञमें इस मन्त्रको पढ़े। जो वेदादि शास्त्रोंको न पढ़ी होवे तो यज्ञमें स्वरसहित मन्त्रोंका उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके भारतवर्षकी स्त्रियोंमें भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रोंको पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शतपथब्राह्मणमें स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् होतो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घरमें मचा रहै फिर सुख कहां ? इसलिये जो स्त्री न पढ़ें तो कन्याओंकी पाठशालामें अध्यापिका क्योंकर होसकें तथा राजकार्य्य न्यायाधीशत्वादि गृहाश्रमका

कार्य्य जो पतिको स्त्री और स्त्रीको पति प्रसन्न रखना, घरके सब काम स्त्रीके आधीन रहना इत्यादि काम विना विद्याके अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते ॥

देखो आर्य्यावर्त्तके राजपुरुषोंकी स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो केकयी आदि दशरथ आदिके साथ युद्धमें क्योंकर जा सकतीं ? और युद्ध कर सकतीं । इसलिये ब्राह्मणी और क्षत्रियाको सब विद्या, वैश्याको व्यवहार विद्या और शूद्राको पाकादि सेवाकी विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये । जैसे पुरुषोंको व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहारकी विद्या न्यूनसे न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियोंको भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्यही सीखनी चाहिये । क्योंकि इनके सीखे विना सत्यासत्यका निर्णय, पति आदिसे अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घरके सब कार्य्योंको जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यकविद्यासे औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घरमें रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें । शिल्पविद्याके जाने विना घरका बनवाना, वस्त्र आभूषण आदिका बनाना बनवाना, गणितविद्याके विना सबका हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्याके विना ईश्वर और धर्मको न जानके अधर्मसे कभी नहीं बच सके । इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानोंको ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्यासे शरीर और आत्माके पूर्ण बलको बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु श्वशुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी इष्ट मित्र और सन्तानादिसे यथायोग्य धर्मसे बर्त्तें । यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय अन्य सब कोश व्यय करनेसे घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग लेते हैं और विद्याकोशका चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता इस कोशकी रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा

और प्रजा भी हैं ॥

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

मनु० [७ । १५२]

राजाको योग्य है कि सब कन्या और लड़कोंको उक्त समयसे उक्त समय तक ब्रह्मचर्यमें रखके, विद्वान् कराना । जो कोई इस आज्ञाको न माने तो उसके माता पिताको दण्ड देना अर्थात् राजाकी आज्ञासे आठ वर्षके पश्चात् लड़का वा लड़की किसीके घरमें न रहने पावें किन्तु आचार्य्यकुलमें रहें जबतक समावर्त्तनका समय न आवे तबतक विवाह न होने पावें ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यन्न-गोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ मनु० ४ । २३३ ॥

संसारमें जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानोंसे वेदविद्याका दान अतिश्रेष्ठ है । इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धनसे विद्याकी वृद्धिमें किया करें । जिस देशमें यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्मका प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है । यह ब्रह्मचर्याश्रमकी शिक्षा संक्षेपसे लिखी गई है इसके आगे चौथे समुल्लासमें समावर्त्तन और गृहाश्रमकी शिक्षा लिखी जायगी ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः ।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

मनु० [३ । २]

जब यथावत् ब्रह्मचर्य्य [में] आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्मसे चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक वेदको साङ्गोपाङ्ग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रममें प्रवेश करे ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः । स्त्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ मनु० ३ । ३ ॥

जो स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्यका धर्म है उससे युक्त पिता जनक वा अध्यापकसे ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भागका ग्रहण, मालाका धारण करनेवाला अपने पलङ्गमें बैठे हुए आचार्य्यको प्रथम गोदानसे सत्कार करे वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थीको भी कन्याका पिता गोदानसे सत्कार करे ॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

मनु० [३ । ४]

गुरुकी आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुलसे अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्यासे विवाह करे ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

मनु० [३ । ५]

जो कन्या माताके कुलकी छः पीढ़ियोंमें न हो और पिताके गोत्रकी न हो उस कन्यासे विवाह करना उचित है। इसका यह प्रयोजन है कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥ शतपथ० ॥

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थमें प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्षमें नहीं। जैसे किसीने मिश्रीके गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसीमें लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तुकी प्रशंसा सुनकर मिलनेकी उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माताके कुलमें निकट सम्बन्धकी न हो उसी कन्यासे वरका विवाह होना चाहिये। निकट और दूर विवाह करनेमें गुण ये हैं:—(१)—एक जो बालक बाल्यावस्थासे निकट रहते हैं परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते एक दूसरेके गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्थाके विपरीत आचरण जानते और जो नङ्गे भी एक दूसरेको देखते हैं उनका परस्पर विवाह होनेसे प्रेम कभी नहीं हो सकता, (२) दूसरा—जैसे पानीमें पानी मिलानेसे विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुलमें विवाह होनेमें धातुओंमें अदल बदल नहीं होनेसे उन्नति नहीं होती, (३) तीसरा—जैसे दूधमें मिश्री या शुण्ठ्यादि ओषधियोंके योग होनेसे उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृकुलसे पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषोंका विवाह होना उत्तम है, (४) चौथा—जैसे एक देशमें रोगी हो वह दूसरे देशमें वायु और खान पानके बदलनेसे रोगरहित होता है वैसे ही दूर देशस्थोंके विवाह होनेमें उत्तमता है, (५) पांचवें—निकट सम्बन्ध करनेमें एक दूसरेके निकट होनेमें सुख दुःखका भान और विरोध होना भी सम्भव है,

दूरदेशस्थोंमें नहीं और दूरस्थोंके विवाहमें दूर २ प्रेमकी डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाहमें नहीं, (६) छठे—दूर २ देशके वर्त्तमान और पदार्थोंकी प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होनेमें सहजतासे हो सकती है, निकट विवाह होनेमें नहीं। इसलिये:—

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति॥ नि० ३। ४॥

कन्याका नाम दुहिता इस कारणसे है कि इसका विवाह दूर देशमें होने से हितकारी होता है निकट रहनेमें नहीं, (७) सातवें—कन्याके पितृकुलमें दारिद्र्य होनेका भी सम्भव है क्योंकि जब २ कन्या पितृकुलमें आवेगी तब तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा, (८) आठवां—कोई निकट होने से एक दूसरेको अपने २ पितृकुलके सहायका घमंड और जब कुछ भी दोनोंमें वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिताके कुलमें चली जायगी एक दूसरेकी निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है इत्यादि कारणोंसे पिताके एक गोत्र माताकी छः पीढ़ी और समीप देशमें विवाह करना अच्छा नहीं॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥

मनु० [३। ६]

चाहें कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदिसे समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाहसम्बन्धमें निम्नलिखित दश कुलोंका त्याग करदे:—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥

मनु० [३। ७]

जो कुल सत्क्रियासे हीन, सत्पुरुषोंसे रहित, वेदाध्ययनसे विमुख,

शरीर पर बड़े २ लोम अथवा ववासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त हों, उन कुलोंकी कन्या वा वरके साथ विवाह होना न चाहिये क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवालेके कुलमें भी प्रविष्ट होजाते हैं इसलिये उत्तम कुलके लड़के और लड़कियोंका आपसमें विवाह होना चाहिये ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिङ्गलाम् ॥

मनु० [३ । ८]

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुषसे लम्बी, चौड़ी, अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और भूरे नेत्रवाली ॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ मनु० ३ । ९ ॥

न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई, चित्तरी आदि नक्षत्र नामवाली, तुलसिआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली गङ्गा यमुना आदि नदी नामवाली, चांडाली आदि अन्त्य नामवाली, विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली, कोकिला, मैना आदि पक्षी नामवाली, नागी, भुजंगा आदि सर्प नामवाली, माधोदासी मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाली, भीमकुवरी, चंडिका, काली आदि भीषण नामवाली कन्याके साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थोंके भी हैं ।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥

मनु० [३ । १०]

जिसके सरल सूधे अङ्ग हों विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर

अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो हंस और हथिनीके तुल्य जिसकी चाल हो, सूक्ष्म लोम केश और दांतयुक्त और जिसके सब अङ्ग कोमल हों वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।

प्रश्न—विवाहका समय और प्रकार कौनसा अच्छा है।

उत्तर—सोलहवें वर्षसे लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्षसे लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुषका विवाह समय उत्तम हैं। इसमें जो सोलह और पच्चीसमें विवाह करे तो निकृष्ट, अठारह बीसकी स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्षके पुरुषका मध्यम, चौबीस वर्षकी स्त्री और अड़तालीस वर्षके पुरुषका विवाह होना उत्तम है। जिस देशमें इसी प्रकार विवाहकी विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देशमें ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण-रहित बाल्यावस्था और अयोग्योंका विवाह होता है वह देश दुःखमें डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्याके ग्रहणपूर्वक विवाहके सुधार ही से सब बातोंका सुधार और बिगड़नेसे बिगाड़ हो जाता है।

प्रश्न—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रौहिणीम्।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोधमें लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्याकी आठवें वर्ष विवाहमें गौरी, नववें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होती है॥१॥

जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्याको माता पिता और बड़ा भाई ये तीनों देखके नरकमें गिरते हैं॥२॥

उत्तर—

ब्रह्मोवाच ।

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी ।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ।१।
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।२।

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराणका वचन है ।

अर्थ—जितने समयमें परमाणु एक पलटा खावे उतने समयको क्षण कहते हैं जब कन्या जन्मे तब एक क्षणमें गौरी, दूसरेमें रोहिणी, तीसरेमें कन्या और चौथेमें रजस्वला हो जाती है ॥ १ ॥

उस रजस्वलाको देखके उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरकको जाते हैं ॥ २ ॥

प्रश्न—ये श्लोक प्रमाण नहीं ।

उत्तर—क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्माजीके श्लोक प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते ।

प्रश्न—वाह २ पराशर और काशीनाथका भी प्रमाण नहीं करते ।

उत्तर—वाह जी वाह क्या तुम ब्रह्माजीका प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथसे ब्रह्माजी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्माजीके श्लोकोंको नहीं मानते तो हम भी पराशर काशीनाथके श्लोकोंको नहीं मानते ।

प्रश्न—तुम्हारे श्लोक असंभव होनेसे प्रमाण नहीं क्योंकि सहस्रों क्षण जन्म समय ही मे बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है और उस समय विवाह करनेका कुछ फल भी नहीं दीखता ।

उत्तर—जो हमारे श्लोक असंभव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि आठ, नौ और दशवें वर्षमें भी विवाह करना निष्फल है, क्योंकि सोलहवें वर्षके पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होनेसे

का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और र भी बलयुक्त होनेसे सन्तान उत्तम होते हैं * जैसे आठवें वर्षकी न्यामें सन्तानोत्पत्तिका होना असंभव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है। यदि गोरी कन्या न हो किन्तु काली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। और गौरी महादेवकी स्त्री, रोहिणी वासुदेवकी स्त्री थी उसको तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हो जब कन्यामात्रमें गौरी आदिकी भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और धर्मयुक्त हो सकता है! इसलिये तुम्हारे और

---

* उचित समयसे न्यून आयुवाले स्त्री पुरुषको गर्भाधानमें मुनिवर धन्वन्तरिजी सुश्रुतमें निषेध करते हैं:—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ १ ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुत शारीरस्थाने अ० १०। श्लोक ४७। ४८ ॥

अर्थ—सोलह वर्षसे न्यून वयवाली स्त्रीमें पच्चीस वर्षसे न्यून आयुवाला पुरुष जो गर्भको स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशयमें रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो, इस कारणसे अतिबाल्यावस्थावाली स्त्रीमें गर्भ स्थापन न करे ॥ २ ॥

ऐसे २ शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रमको देखने और बुद्धिसे विचारनेसे यही सिद्ध होता है कि १६ वर्षसे न्यून स्त्री और २५ वर्षसे न्यून आयुवाला पुरुष कभी गर्भाधान करनेके योग्य नहीं होता, इन नियमोंसे विपरीत जो करते हैं वे दुःखभागी होते हैं ॥ स० दा० ॥

हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "ब्रह्मोवाच" करके श्लोक बना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदिके नामसे बना लिये हैं । इसलिये इन सबका प्रमाण छोड़के वेदोंके प्रमाणसे सब काम किया करो । देखो मनुमें—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम् ॥

मनु० [६ । ६०]

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिकी खोज करके अपने तुल्य पतिको प्राप्त होवे । जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षोंमें ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं ॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

मनु० ६ । ८९ ॥

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाववालोंका विवाह कभी न होना चाहिये । इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समयसे प्रथम वा असदृशोंका विवाह होना योग्य है ।

प्रश्न—विवाह करना माता पिताके आधीन होना चाहिये वा लड़का लड़कीके आधीन रहे ?

उत्तर—लड़का लड़कीके आधीन विवाह होना उत्तम है । जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नताके विना न होना चाहिये क्योंकि एक दूसरेकी प्रसन्नतासे विवाह होनेमें विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं । अप्रसन्नताके विवाहमें नित्य क्लेश ही रहता है विवाहमें मुख्य प्रयोजन वर और कन्याका है माता पिताका नहीं क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता

रहे तो उन्हींको सुख और विरोधमें उन्हींको दुःख होता और—(मनु०)

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

मनु० [३। ६०]

जिस कुलमें स्त्रीसे पुरुष और पुरुषसे स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुलमें आनन्द, लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है और जहां विरोध, कलह होता है वहां दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती है। इसलिये जैसी स्वयंवरकी रीति आर्य्यावर्त्तमें परम्परासे चली आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहैं तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीरका परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये जबतक इनका मेल नहीं होता तबतक विवाहमें कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्थामें विवाह करनेसे सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥१॥ ऋ० मं० ३ सू० ८ मं० ४॥

आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः। नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥२॥ ऋ० ३। ५५। १६॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः। मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥३॥ ऋ० १। १७९। १॥

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओरसे यज्ञोपवीत ब्रह्मचर्य सेवनसे उत्तम शिक्षा और विद्यासे युक्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया

ब्रह्मचर्ययुक्त (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याग्रहण कर गृहाश्रममें (आगात्) आता है (स, उ) वही दूसरे विद्याजन्ममें (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी (भवति) होता है (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञानसे (देवयन्तः) विद्यावृद्धिकी कामनायुक्त (धीरासः) धैर्य्ययुक्त (कवयः) विद्वान् लोग (तम्) उसी पुरुषको (उन्नयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्य्यधारण विद्या उत्तम शिक्षाका ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्थामें विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर विद्वानोंमें प्रतिष्ठाको प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसीने दुही नहीं उन (धेनवः) गौओंके समान (अशिश्वीः) बाल्यावस्थासे रहित (शबर्दुघाः) सब प्रकारके उत्तम व्यवहारोंको पूर्ण करनेहारी (शशयाः) कुमारावस्थाको उल्लंघन करनेहारी (नव्यानव्याः) नवीन २ शिक्षा और अवस्थासे पूर्ण (भवन्तीः) वर्त्तमान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचर्य सुनियमोंसे पूर्ण विद्वानोंके (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) प्रज्ञा शास्त्र शिक्षायुक्त प्रज्ञामें रमणके भावार्थको प्राप्त होती हुई तरुण पतियोंको प्राप्त होके (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें । कभी भूलके भी बाल्यावस्थामें पुरुषका मनसे भी ध्यान न करें क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोकके सुखका साधन है । बाल्यावस्थामें विवाहसे जितना पुरुषका नाश उससे अधिक स्त्रीका नाश होता है ॥ २ ॥

जैसे (नु) शीघ्र (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (वृषणः) वीर्य सींचनेमें समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवावस्थास्थ हृदयोंको प्रिय स्त्रियोंको (जगम्युः) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयुको आनन्दसे भोगते और पुत्र पौत्रादिसे संयुक्त रहते हैं वैसे स्त्री पुरुष सदा वर्त्तें जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद् ऋतुओं और (जरयन्तीः) वृद्धावस्थाको प्राप्त कराने वाली (उषसः)

प्रातःकालकी वेलाओंको (दोषा) रात्री और (वस्तोः) दिन (तनूनाम्) शरीरोंकी (श्रियम्) शोभाको (जरिमा) अतिशय बृद्धपन बल और शोभाको दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) अच्छे प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्यसे विद्या शिक्षा शरीर और आत्माके बल और युवावस्थाको प्राप्त हो ही के विवाह करूं इससे विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होनेसे सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥३॥

जबतक इसी प्रकार सब ऋषि मुनि राजा महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्यसे विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देशकी सदा उन्नति होती थी। जबसे यह ब्रह्मचर्यसे विद्याका न पढ़ना, बाल्यावस्थामें पराधीन अर्थात् माता पिताके आधीन विवाह होने लगा तबसे क्रमशः आर्य्यावर्त्त देशकी हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट कामको छोड़के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकारसे स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रमसे करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म स्वभावके अनुसार होनी चाहिये।

प्रश्न—क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

उत्तर—हां बहुतसे होगये, होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उपनिषद्में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण होगये थे, अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मणके योग्य और मूर्ख शूद्रके योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

प्रश्न—भला जो रज वीर्यसे शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्णके योग्य कैसे हो सकता है ?

उत्तर—रज वीर्यके योगसे ब्राह्मण-शरीर नहीं होता किन्तुः—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु० [२ । २८]

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेपसे कहते हैं। (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने, नानाविध होमके अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदोंको शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण-सहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदिके करने, (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्मसे सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादियज्ञ, विद्वानोंका संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचारमें वर्त्तनेसे (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मणका (क्रियते) किया जाता है। क्या इस श्लोकको तुम नहीं मानते ? मानते हैं, फिर क्यों रज वीर्यके योगसे वर्णव्यवस्था मानते हो ? मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुतसे लोग परम्परासे ऐसा ही मानते हैं।

प्रश्न—क्या तुम परम्पराका भी खण्डन करोगे ?

उत्तर—नहीं परन्तु तुम्हारी उलटी समझको नहीं मानके खण्डन भी करते हैं।

प्रश्न—हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इसमें क्या प्रमाण ?

उत्तर—यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियोंके वर्तमानको सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टिके आरम्भसे आज पर्यन्तकी परम्परा मानते हैं देखो जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखनेमें आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रममें पड़े हो देखो मनु महाराजने क्या कहा है:—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

मनु० [४ । १७८]

जिस मार्गसे इसके पिता पितामह चले हों उसी मार्गमें सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हींके मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों तो उनके मार्गमें कभी न चलें। क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषोंके मार्गमें चलनेसे दुःख कभी नहीं होता इसको तुम मानते हो वा नहीं ? हां २ मानते हैं। और देखो जो परमेश्वरकी प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उसके विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब लोगोंको मानना चाहिये वा नहीं ? अवश्य चाहिये। जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसीका पिता दरिद्र हो और उसका पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिताकी दरिद्रावस्थाके अभिमानसे धनको फेंक देवे ! क्या जिसका पिता अन्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आंखोंको फोड़ लेवे ! जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करे ! नहीं २ किन्तु जो जो पुरुषोंके उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मोंका त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है। जो कोई रज वीर्यके योगसे वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण कर्मोंके योगसे न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्णको छोड़ नीच अन्त्यज अथवा कृश्चीन मुसलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मणके कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वेही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्णके गुण, कर्म स्वभाववाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्णमें और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्णमें गिनना अवश्य चाहिये।

प्रश्न—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। उरू

तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेदके ३१ वें अध्यायका ११ वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वरके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगोंसे उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते।

उत्तर—इस मन्त्रका अर्थ जो तुमने किया सो ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्माकी अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्गवाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक वह सर्वशक्तिमान् जगत्का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता, जीवोंके पुण्य पापोंको जानके व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्यु रहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्णव्यापक परमात्माकी सृष्टिमें मुखके सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्य्यम्" शतपथब्राह्मण। बल वीर्यका नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटिके अधोभाग और जानुके उपरिस्थ भागका ऊरू नाम है जो सब पदार्थों और देशोंमें ऊरूके बलसे जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पगके अर्थात् नीचे अङ्गके सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादिमें भी इस मन्त्रका ऐसा ही अर्थ किया है जैसेः—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि।

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुखसे उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गोंमें श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभावसे युक्त होनेसे मनुष्यजाति उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वरके निराकार होनेसे मुखादि अङ्ग ही नहीं है तो मुख

आदिसे उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि बन्ध्या स्त्रीके पुत्रका विवाह होना! और जो मुखादि अङ्गोंसे ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादिकी आकृति अवश्य होती। जैसे मुखका आकार गोलमाल है वैसेही उनके शरीरका भी गोलमाल मुखाकृतके समान होना चाहिये। क्षत्रियोंके शरीर भुजाके सदृश, वैश्योंके ऊरूके तुल्य और शूद्रोंके शरीर पगके समान आकार वाले होने चाहियें ऐसा नहीं होता और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादिसे उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशयसे उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादिसे उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि [संज्ञा का] अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हमने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है जैसाः—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

मनु० [१० । ६५]

जो शूद्रकुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होजाय वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकुलमें उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्रके सदृश हों तो वह शूद्र होजाय। वैसे क्षत्रिय वा वैश्यके कुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्रके समान होनेसे ब्राह्मण और शूद्र भी होजाता है। अर्थात् चारों वर्णोंमें जिस २ वर्णके सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्णमें गिनी जावे।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ १॥

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमा-

पद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥२॥ ये आपस्तम्बके सूत्र हैं।

अर्थ—धर्माचरणसे निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम २ वर्णोंको प्राप्त होता है और वह उसी वर्णमें गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे ॥१॥

वैसे अधर्माचरणसे पूर्व २ अर्थात् उत्तम २ वर्णवाला मनुष्य अपनेसे नीचे वाले वर्णोंको प्राप्त होता है और उसी वर्णमें गिना जावे ॥२॥

जैसे पुरुष जिस जिस वर्णके योग्य होता है वैसे ही स्त्रियोंकी भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होनेसे सब वर्ण अपने २ गुण कर्म स्वभावयुक्त होकर शुद्धताके साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुलमें कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्रके सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्णकी निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

प्रश्न—जो किसीके एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट होजाय तो उसके मा बापकी सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ?

उत्तर—न किसीकी सेवाका भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियोंके बदले स्ववर्णके योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभाकी व्यवस्थासे मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी। यह गुण कर्मोंसे वर्णोंकी व्यवस्था कन्याओंकी सोलहवें वर्ष और पुरुषोंकी पच्चीसवें वर्षकी परीक्षामें नियत करनी चाहिये और इसी क्रमसे अर्थात् ब्राह्मण वर्णका ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्णका क्षत्रिया, वैश्य वर्णका वैश्या, शूद्र वर्णका शूद्राके साथ विवाह होना चाहिये तभी अपने २ वर्णोंके कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। अब इन चारों वर्णोंके कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१॥ मनु० १। ८८॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।२।

121516

भ० गी० [अध्याय १८ । श्लोक ४२]

ब्राह्मणके पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना, ये छः कर्म हैं परन्तु "प्रतिग्रहः प्रत्यवरः" मनु० । अर्थात् (प्रतिग्रह) लेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (शमः) मनसे बुरे कामकी इच्छा भी न करनी और उसको अधर्म्ममें कभी प्रवृत्त न होने देना (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियोंको अन्यायाचरणसे रोक कर धर्म्ममें चलाना (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० [५ । १०६]

जलसे बाहरके अङ्ग, सत्याचारसे मन, विद्या और धर्मानुष्ठानसे जीवात्मा और ज्ञानसे बुद्धि पवित्र होती है। भीतर रागद्वेषादि दोष और बाहरके मलोंको दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्याऽसत्यके विवेकपूर्वक सत्यके ग्रहण और असत्यके त्यागसे निश्चय पवित्र होना है। (शान्ति) अर्थात् निन्दा स्तुति सुख दुःख शीतोष्ण क्षुधा तृषा हानि लाभ मानापमान आदि हर्ष शोक छोड़के धर्म्ममें दृढ़ निश्चय रहना (आर्जव) कोमलता निरभिमान सरलता सरलस्वभाव रखना कुटिलतादि दोष छोड़ देना (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रोंको साङ्गोपाङ्ग पढ़के पढ़ानेका सामर्थ्य विवेक सत्यका निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़को जड़ चेतनको चेतन जानना और मानना (विज्ञान) पृथिवीसे लेके परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थोंको विशेषतासे जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर मुक्ति, पूर्व परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियोंकी सेवाको न

छोड़ना और निन्दा कभी न करना ॥ २ ॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्योंमें अवश्य होने चाहिये ॥ क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ मनु० १ । ८९ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥२॥

भ० गी० [अध्याय १८ । श्लोक ४३]

न्यायसे प्रजाकी रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़के श्रेष्ठोंका सत्कार और दुष्टोंका तिरस्कार करना सब प्रकारसे सबका पालन (दान) विद्या धर्मकी प्रवृत्ति और सुपात्रोंकी सेवामें धनादि पदार्थोंका व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रोंका पढ़ना तथा पढ़वाना और (विषयेषु०) विषयोंमें न फंस कर जितेन्द्रिय रहके सदा शरीर और आत्मासे वलवान् रहना १ (शौर्य्य) सैकड़ों सहस्त्रोंसे भी युद्ध करनेमें अकेला भय न होना (तेजः) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना (धृति) धैर्य्यवान् होना (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रोंमें अति चतुर होना (युद्धे) युद्धमें भी दृढ़ निःशंक रहके उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकारसे लड़नाकि जिससे निश्चित बिजय होवे आप बचे जो भागनेसे वा शत्रुओंको धोखा देनेसे जीत होती हो तो ऐसा ही करना (दान) दानशीलता रखना (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचारके देना, प्रतिज्ञा पूरी करना उसको कभी भङ्ग होने न देना। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्णके कर्म और गुण हैं ॥ २ ॥ वैश्यः—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। [मनु० १।९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओंका पालन वर्द्धन करना (दान) विद्या धर्मकी वृद्धि करने कराने के लिये धनादिका व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञोंका करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रोंका पढ़ना (वणिक्पथ) सब प्रकारके व्यापार करना (कुसीद) एक सैकड़ेमें चार, छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनोंसे अधिक व्याज और मूलसे दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्षमें भी दो रुपयेसे अधिक न लेना और देना (कृषि) खेती करना, ये वैश्यके गुण कर्म हैं॥ शूद्रः—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया। मनुः [१।९१]

शूद्रको योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषोंको छोड़के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा यथावत् करना और उसीसे अपना जीवन [व्यतीत] करना यही एक शूद्रका गुण, कर्म है। ये संक्षेपसे वर्णोंके गुण और कर्म लिखे। जिस २ पुरुषमें जिस २ वर्णके गुण कर्म हों उस २ वर्णका अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखनेसे सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णोंको भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र होजायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा। और नीच वर्णोंको उत्तम वर्णस्थ होनेके लिये उत्साह बढ़ेगा। विद्या और धर्मके प्रचारका अधिकार ब्राह्मणको देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होनेसे उस कामको यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियोंको राज्यके अधिकार देनेसे कभी राज्यकी हानि वा विघ्न नहीं होता। पशुपालनादिका अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस कामको अच्छे प्रकार कर सकते हैं। शूद्रको सेवाका अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित मूर्ख होनेसे विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीरके काम

सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णोंको अपने अपने अधिकारमें प्रवृत्त करना राजा आदिका काम है ॥

विवाहके लक्षण।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ मनु० ३। २१

विवाह आठ प्रकारका होता है एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच। इनमें से विवाहोंकी यह व्यवस्था है कि—वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्यसे पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों उनका परस्पर प्रसन्नतासे विवाह होना "ब्राह्म" कहाता है। विस्तृत यज्ञ करनेमें ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाताको अलङ्कारयुक्त कन्याका देना "दैव"। वरसे कुछ लेकर विवाह होना "आर्ष"। दोनोंका विवाह धर्मकी वृद्धिके अर्थ होना "प्रजापत्य"। वर और कन्याको कुछ देके विवाह होना "आसुर"। अनियम, असमय किसी कारणसे दोनोंकी इच्छापूर्वक वर कन्याका परस्पर संयोग होना "गान्धर्व"। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन झपट वा कपटसे कन्याका ग्रहण करना "राक्षस"। शयन वा मद्यादि पीई हुई पागल कन्यासे बलात्कार संयोग करना "पैशाच"। इन सब विवाहोंमें ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेल न होना चाहिये क्योंकि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका एकान्तवास दूषणकारक है। परन्तु जब कन्या वा वरके विवाहका समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होनेमें शेष रहें तब उन कन्या और कुमारोंका प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको "फोटोग्राफ" कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतारके कन्याओंकी अध्यापिकाओंके पास कुमारोंकी,

कुमारोंके अध्यापकोंके पास कन्याओंकी प्रतिकृति भेज देवें जिस २ का रूप मिल जाय उस २ के इतिहास अर्थात् जो जन्मसे लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्रका पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवाके देखें जब दोनोंके गुण कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समझें उस २ पुरुष और कन्याका प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथमें देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनोंका निश्चय परस्पर विवाह करनेका होजाय तब उन दोनोंका समावर्तन एक ही समयमें होवे। जो वे दोनों अध्यापकोंके सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्याके माता पिताके घरमें विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्याके माता पिता आदि भद्रपुरुषोंके सामने उन दोनोंकी आपसमें बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सोभी सभा में लिखके एक दूसरेके हाथमें देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनोंका दृढ़ प्रेम विवाह करनेमें होजाय तबसे उनके खानपानका उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्टसे दुर्बल होता है वह चन्द्रमाकी कलाके समान बढ़के थोड़े ही दिनोंमें पुष्ट होजाय। पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्धादि द्रव्य और घृतादिका होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियोंका यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन "संस्कारविधि" पुस्तकस्थ विधिके अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नतासे सबके सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाहकी विधिको पूरा करके एकान्तसेवन करें। पुरुष वीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षणकी जो विधि है उसीके अनुसार दोनों करें। जहांतक बने वहांतक ब्रह्मचर्यके वीर्यको व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य वा रजसे जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम

सन्तान होता है। जब वीर्यका गर्भाशयमें गिरनेका समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिकाके सामने नासिका, नेत्रके सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीरको ढीला छोड़े और स्त्री वीर्यप्राप्ति समय अपान वायुको ऊपर खींचे। योनिको ऊपर संकोच कर वीर्य्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थिति करे *। पश्चात् दोनों शुद्ध जलसे स्नान करें। गर्भस्थिति होनेका परिज्ञान विदुषी स्त्रीको उसी समय होजाता है परन्तु इसका निश्चय एक मासके पश्चात् रजस्वला न होने पर सबको हो जाता है। सोंठ, केसर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालममिश्री डाल गर्म कर रक्खा हुआ जो ठण्डा दूध है उसको यथारुचि दोनों पीके अलग अलग अपनी २ शय्यामें शयन करें। यही विधि जब २ गर्भाधान क्रिया करें तब २ करना उचित है जब महीने भरमें रजस्वला न होनेसे गर्भस्थितिका निश्चय होजाय तबसे एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुषका समागम कभी न होना चाहिये। क्योंकि ऐसा होनेसे सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनोंकी आयु घट जाती और अनेक प्रकारके रोग होते हैं परन्तु ऊपरसे भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य्यकी स्थिति और स्त्री गर्भकी रक्षा और भोजन छादन इस प्रकारका करे कि जिससे पुरुषका वीर्य्य स्वप्नमें भी नष्ट न हो और गर्भमें बालकका शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीनेमें जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीनेसे और अतिविशेष आठवें महीनेसे आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थोंके भोजनादिका सेवन न करे किन्तु घी, दूध,

---

* यह बात रहस्यकी है इसलिये इतने ही से समग्र बातें समझ लेना चाहिये विशेष लिखना उचित नहीं ॥

उत्तम चावल, गेहूं, मूंग, उर्द आदि अन्न पान और देश कालका भी सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भमें दो संस्कार एक चौथे महीनेमें पुंसवन और दूसरा आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन विधिके अनुकूल करे। जब सन्तानका जन्म हो तब स्त्री और लड़केके शरीरकी रक्षा बहुत सावधानीसे करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खे उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो उसीसे स्त्री स्नान करे और बालकको भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन बालककी नाभिके जड़में एक कोमल सूतसे बांध चार अंगुल छोड़के ऊपरसे काट डाले। उसको ऐसा बांधेकि जिससे शरीरसे रुधिरका एक विन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थानको शुद्ध करके उसके द्वारके भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादिका होम करे। तत्पश्चात् सन्तानके कानमें पिता "वेदोसीति" अर्थात् तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और सहतको लेके सोनेकी शलाकासे जीभ पर "ओ३म्" अक्षर लिखकर मधु और घृतको उसी शलाकासे चटवावे। पश्चात् उसकी माताको देदेवे। जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे, जो उसकी माताके दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसको दूध पिलावे। पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरेमें कि जहांका वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घीका होम प्रातः और सायंकाल किया करे और उसीमें प्रसूता स्त्री तथा बालकको रक्खे। छः दिन तक माताका दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीरकी पुष्टिके अर्थ अनेक प्रकारके उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तानके दूध पीनेके लिये कोई धायी रक्खे उसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तानको दूध पिलाया करे और पालन भी करे परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्णदृष्टि रक्खे किसी प्रकारका अनुचित व्यवहार उसके पालनमें न हो। स्त्री दूध बन्द करनेके अर्थ स्तनके अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकारका खान पानका व्यवहार भी यथायोग्य

रक्खे। पश्चात् नामकरणादि संस्कार "संस्कारविधि" की रीतिसे यथाकाल करता जाय। जब स्त्री फिर रजस्वला हो तब शुद्ध होनेके पश्चात् उसी प्रकार ऋतुदान देवे ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥

मनु० [३ । ५०]

जो अपनी ही स्त्रीसे प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके सदृश है ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।१।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥

मनु० [३ । ६० । ६२]

जिस कुलमें भार्य्यासे भर्त्ता और पतिसे पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है उसी कुलमें सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां दौर्भाग्य और दारिद्र्य स्थिर होता है ॥१॥ जो स्त्री पतिसे प्रीति और पतिको प्रसन्न नहीं करती तो पतिके अप्रसन्न होनेसे काम उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ जिस स्त्री की प्रसन्नतामें सब कुल प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नतामें सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक होजाता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥१॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥२॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥३॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥४॥

मनु० [३। ५५-५७। ५९]

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कारपूर्वक भूषणादिसे प्रसन्न रक्खें, जिनको बहुत कल्याणकी इच्छा हो वे ऐसे करें ॥ १ ॥ जिस घरमें स्त्रियोंका सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धराके आनन्दसे क्रीड़ा करते हैं और जिस घरमें स्त्रियोंका सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ २ ॥ जिस घर वा कुलमें स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट होजाता है और जिस घर वा कुलमें स्त्री लोग आनन्दसे उत्साह और प्रसन्नतासे भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ इसलिये ऐश्वर्यकी कामना करनेहारे मनुष्योंको योग्य है कि सत्कार और उत्सवके समयोंमें भूषण वस्त्र और भोजनादिसे स्त्रियोंका नित्य प्रति सत्कार करें ॥ ४ ॥ यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि "पूजा" शब्दका अर्थ सत्कार है और दिन रातमें जब २ प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब २ प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते" एक दूसरेसे करें ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥

मनु० [५। १५०]

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नतासे घरके कामोंमें चतुराईयुक्त

सब पदार्थोंके उत्तम संस्कार तथा घरकी शुद्धि रक्खे और व्ययमें अत्यन्त उदार [न] रहै अर्थात् [यथायोग्य खर्च करे और] सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषधिरूप होकर शरीर वा आत्मामें रोगको न आने देवे, जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखके पति आदिको सुना दिया करे घरके नौकर चाकरोंसे यथायोग्य काम लेवे घरके किसी कामको बिगड़ने न देवे ॥

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

मनु॰ [२। २४०]

उत्तर स्त्री, नाना प्रकारके रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकारकी शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब देश तथा सब मनुष्योंसे ग्रहण करे॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ १॥
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥ २॥

मनु॰ [४। १३८। १३९]

सदा प्रिय सत्य दूसरेका हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणेको काणा न बोले, अनृत अर्थात् झूठ दूसरेको प्रसन्न करनेके अर्थ न बोले॥ १॥ सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी बचन बोला करे शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसीके साथ विरोध वा विवाद न करे। जो २ दूसरेका हितकारक हो और बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहे॥ २॥

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

उद्योगपर्व—विदुरनीति० ॥

हे धृतराष्ट्र ! इस संसारमें दूसरेको निरन्तर प्रसन्न करनेके लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुननेमें अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो उसका कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषोंको योग्य है कि मुखके सामने दूसरेका दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्षमें दूसरेके गुण सदा कहना। और दुष्टोंकी यही रीति है कि सम्मुखमें गुण कहना और परोक्षमें दोषोंका प्रकाश करना। जबतक मनुष्य दूसरेसे अपने दोष नहीं कहता तबतक मनुष्य दोषोंसे छूटकर गुणी नहीं हो सकता। कभी किसीकी निन्दा न करे जैसेः—

"गुणेषु दोषारोपणमसूया" अर्थात "दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया" "गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः" जो गुणोंमें दोष दोषोंमें गुण लगाना वह निन्दा और गुणोंमें गुण दोषोंमें दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्याभाषणका नाम निन्दा और सत्यभाषणका नाम स्तुति है ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२॥

मनु० [४ । १९ । २०]

जो शीघ्र बुद्धि धन और हितकी वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावें ब्रह्मचर्याश्रममें पढ़े हों उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें ॥ १ ॥

क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्रोंको यथावत् जानता है वैसे २ उस

विद्याका विज्ञान बढ़ता जाता और उसीमें रुचि बढ़ती रहती है ॥२॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥१॥ मनु० [४।२१]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्प्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥२॥

मनु० [३। ७०]

स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ३ ॥

मनु० [३। ८१]

दो यज्ञ ब्रह्मचर्यमें लिख आये वे अर्थात् एक वेदादि शास्त्रोंका पढ़ना पढ़ाना सन्ध्योपासन, योगाभ्यास, दूसरा देवयज्ञ विद्वानोंका संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्नति करना है ये दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं ॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनस्य दाता ॥ १ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १९। अनु० ७। मं० ३। ४ ॥

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत। उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ॥३॥

ब्राह्मणे [षड्विंशब्राह्मणे प्र० ४। खं० ५]

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।

स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥४॥

मनु० [२ । १०३]

जो सन्ध्या २ कालमें होम होता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ॥ १ ॥

जो अग्निमें प्रातः २ कालमें होम किया जाता है वह २ हुत द्रव्य सायङ्काल पर्यन्त वायुकी शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यकारक होता है ॥ २ ॥

इसीलिये दिन और रात्रिके सन्धिमें अर्थात् सूर्योदय और अस्त समयमें परमेश्वरका ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये ॥३॥

और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकालमें न करे उसको सज्जनलोग सब द्विजोंके कर्मोंसे बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें ॥ ४ ॥

प्रश्न—त्रिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना ?

उत्तर—तीन समयमें सन्धि नहीं होती प्रकाश और अन्धकारकी सन्धि भी सायं प्रातः दो ही वेलामें होती है। जो इसको न मानकर मध्याह्नकालमें तीसरी सन्ध्या माने वह मध्यरात्रिमें भी सन्ध्योपासन क्यों न करे ? जो मध्यरात्रिमें भी करना चाहे तो प्रहर २ घड़ी २ पल २ और क्षण २ की भी सन्धि होती है, उनमें भी सन्ध्योपासन किया करें। जो ऐसा भी करना चाहे तो हो ही नहीं सकता और किसी शास्त्रका मध्याह्नसन्ध्यामें प्रमाण भी नहीं इसलिये दोनों कालोंमें सन्ध्या और अग्निहोत्र करना समुचित है, तीसरे कालमें नहीं। और जो तीन काल होते हैं वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानके भेदसे हैं सन्ध्योपासनके भेदसे नहीं।

तीसरा "पितृयज्ञ" अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान, ऋषि जो पढ़ने पढ़ानेहारे, पितर जो माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियोंकी सेवा करनी। पितृयज्ञके दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा

तर्पण। श्राद्ध अर्थात् "श्रत्" सत्यका नाम है "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रियासे सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धासे कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्मसे तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायँ उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकोंके लिये नहीं॥

अथ देवतर्पम्

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्॥

"विद्वाꣳसो हि देवाः" यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है—जो विद्वान् हैं उन्हींको देव कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदोंके जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून पढ़े हों उनका भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश उनकी विदुषी स्त्री ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना है उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है॥ इति देवतर्पणम्॥

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥

जो ब्रह्माके प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओंको विद्यादान देवें उनके तुल्य

पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन और सत्कार करना ऋषितर्पण है ।। इति ऋषितर्पणम् ।।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् । अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् । बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् । सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् । आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । [सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् ।] यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि । पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि । पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि । [प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि ।] मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि । पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि । [प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि ।] स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि । सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ।।

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हों वे सोमसद । "यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेहारे हों वे अग्निष्वात्त । "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद् । "ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्व-

र्य्यके रक्षक और महौषधि रसका पान करनेसे रोगरहित और अन्यके ऐश्वर्यके रक्षक औषधोंको देके रोगनाशक हों वे सोमपा। "ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज। "य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपा। "शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। "ये दुष्टान्यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम। "यः पाति स पिता" जो सन्तानोंका अन्न और सत्कारसे रक्षक वा जनक हो वह पिता। "पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः" जो पिताका पिता हो वह पितामह और जो पितामहका पिता हो वह प्रपितामह "या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका मान्य करे वह माता। "या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" जो पिताकी माता हो वह पितामही और पितामहकी माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्रके तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न, वस्त्र सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्मसे उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्मसे प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्प्पण कहाता है॥ इति पितृतर्प्पणम्॥

चौथा वैश्वदेव—अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें खट्टा लवणान्न और क्षारको छोड़के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हेसे अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रोंसे आहुति और भाग करे।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।

आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

मनु० [३ ८४]

जो कुछ पाकशालामें भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणोंके अर्थ उसी पाकाग्निमें निम्नलिखित मन्त्रोंसे विधिपूर्वक होम नित्य करे—

होम करनेके मन्त्र ।

ओं अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन प्रत्येक मन्त्रोंसे एक २ वार आहुति प्रज्वलित अग्निमें छोड़े पश्चात् थाली अथवा भूमिमें पत्ता रखके पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रोंसे भाग रक्खे:—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः । ब्रह्मपतये नमः । वास्तुपतये नमः । विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । सर्वात्मभूतये नमः ।

इन भागोंको जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा अग्निमें छोड़ देवे । इसके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमिमें धरे । इसमें प्रमाण—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥

मनु० [३। ९२]

इस प्रकार "श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपग्भ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः" धरकर पश्चात् किसी दुःखी बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते कौवे आदिको देवे। यहां नमः शब्दका अर्थ अन्न अर्थात् कुत्ते, पापी, चांडाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदिको अन्न देना यह मनुस्मृति आदिकी विधि है। हवन करनेका प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायुका शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवोंकी हत्या होती है उसका प्रत्युपकार कर देना॥

अब पांचवीं अतिथिसेवा—अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला पूर्णविद्वान, परमयोगी, संन्यासी गृहस्थके यहां आवे तो उसको प्रथम पाद्य अर्घ और आचमनीय तीन प्रकारका जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बैठा कर खान पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थोंसे सेवा शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्सङ्ग कर उनसे ज्ञान विज्ञान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होवे ऐसे ऐसे उपदेशोंका श्रवण करे और अपना चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

मनु० [४। ३०]

(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहारा

(विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्मका कर्त्ता मिथ्याभाषणादि युक्त जैसे विडाला छिप और स्थिर रहकर ताकता २ झपटसे मूषे आदि प्राणियोंको मार अपना पेट भरता है वैसे जनोंका नाम वैडालवृत्तिक (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं औरोंका कहा मानें नहीं (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकनेवाले जैसे कि आजकलके वेदान्ती बकते हैं हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है इत्यादि गपोड़ा हांकनेवाले (बकवृत्ति) जैसे बक एक पैर उठा ध्यानावस्थितके समान होकर झट मछलीके प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकलके वैरागी और खाकी आदि हठी दुराग्रही वेदविरोधी हैं ऐसोंका सत्कार वाणीमात्रसे भी न करना चाहिये। क्योंकि इनका सत्कार करनेसे ये वृद्धिको पाकर संसारको अधर्मयुक्त करते हैं। आप तो अवनतिके काम करते ही हैं परन्तु साथमें सेवकको भी अविद्यारूपी महासागरमें डुबो देते हैं। इन पांच महायज्ञोंका फल यह है कि ब्रह्मयज्ञके करनेसे विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणोंकी वृद्धि। अग्निहोत्रसे वायु, वृष्टि, जलकी शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसारको सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायुका श्वासस्पर्श खान पानसे आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के धर्म, अर्थ काम और मोक्षका अनुष्ठान पूरा होना इसीलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं। पितृयज्ञसे जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओंकी सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे सत्यासत्यका निर्णय कर सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता पिता और आचार्यने सन्तान और शिष्योंकी की है उसका बदला देना उचित ही है बलिवैश्वदेवका भी फल जो पूर्व कह आये वही है। जबतक उत्तम अतिथि जगत्में नहीं होते तबतक उन्नति भी नहीं होती उनके सब देशोंमें घूमने और सत्योपदेश करनेसे पाखण्डकी वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थोंको सहजसे सत्य विज्ञानकी प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्रमें एक ही धर्म स्थिर

रहता है। विना अतिथियोंके सन्देहनिवृत्ति नहीं होती सन्देहनिवृत्तिके विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चयके विना सुख कहां!

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

मनु० [४। ९२]

रात्रिके चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रातसे उठे आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीरके रोगोंका निदान और परमात्माका ध्यान करे कभी अधर्मका आचरण न करे क्योंकिः—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति॥

मनु० [४। १७२]

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता इसलिये अज्ञानी लोग अधर्मसे नहीं डरते तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे धीरे तुम्हारे सुखके मूलोंको काटता चला जाता है। इस क्रमसे—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥ मनु० ४।१७४॥

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्मकी मर्यादा छोड़ (जैसे तालाबके बंध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करनेवाले वेदोंका खण्डन और विश्वासघातादि कर्मोंसे पराये पदार्थोंको लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्यसे खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है अन्यायसे शत्रुओंको भी जीतता है पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष हो जाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा। शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥ मनु० ४।१७५॥

जो [विद्वान्] वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्यके ग्रहण और असत्यके परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि आर्य अर्थात् धर्ममें चलते हुए के समान धर्ममें शिष्योंको शिक्षा किया करे॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः॥ १॥
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥ २॥

मनु० [४। १७६। १८०]

(ऋत्विक्) यज्ञका करनेहारा (पुरोहित) सदा उत्तम चाल चलनकी शिक्षाकारक (आचार्य) विद्या पढ़ानेहारा (मातुल) मामा (अतिथि) अर्थात् जिसकी कोई आने जानेकी निश्चित तिथि न हो (संश्रित) अपने आश्रित (बाल) बालक (वृद्ध) बुड्ढा (आतुर) पीड़ित (वैद्य) आयुर्वेदका ज्ञाता (ज्ञाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ (सम्बन्धी) श्वशुर आदि (बान्धव) मित्र॥ १॥ (माता) माता (पिता) पिता (यामी) बहिन (भ्राता) भाई (भार्या) स्त्री (दुहिता) पुत्री और सेवक लोगोंसे विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई बखेड़ा कभी न करे॥ २॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः। अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति॥ मनु० [४। १९०]

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि तपरहित दूसरा (अनधीयानः) विना पढ़ा हुआ तीसरा (प्रतिग्रहरुचिः) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरोंसे दान लेनेवाला ये तीनों पत्थरकी नौकासे समुद्रमें तरनेके

समान अपने दुष्ट कर्मोंके साथ ही दुःखसागरमें डूबते हैं वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओंको साथ डुबा लेते हैं:—

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ मनु० ४। १९३

जो धर्मसे प्राप्त हुए धनका उक्त तीनोंको देना है वह दान दाताका नाश इसी जन्म और लेनेवालेका नाश परजन्ममें करता है॥ जो वे ऐसे हों तो क्या हो:—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्। तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ मनु० [४।१९४]

जैसे पत्थरकी नौकामें बैठके जलमें तरनेवाला डूब जाता है वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःखको प्राप्त होते हैं॥

पाखण्डियोंके लक्षण

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥ १॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥ २॥

मनु० [४। १९५। १९६]

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्मके नामसे लोगोंको ठगे (सदालुब्धः) सर्वदा लोभसे युक्त (छाद्मिकः) कपटी (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्यके सामने अपनी बड़ाईके गपोड़े मारा करे (हिंस्रः) प्राणियोंका घातक अन्यसे वैरबुद्धि रखनेवाला (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरोंसे मेल रक्खे उसको वैडालव्रतिक अर्थात् बिडालेके समान धूर्त और नीच समझो॥ १॥ (अधोदृष्टिः) कीर्तिके लिये नीचे दृष्टि रक्खे (नैष्कृतिकः) ईर्ष्यक किसीने उसका

पैसा भर अपराध किया हो तो उसका बदला प्राण तक लेनेको तत्पर रहै (स्वार्थसाधन०) चाहैं कपट अधर्म विश्वासघात क्यों न हो अपना प्रयोजन साधनेमें चतुर (शठः) चाहैं अपनी बात झूठी क्यों न हो परन्तु हठ कभी न छोड़े (मिथ्याविनीतः) झूठ मूठ ऊपरसे शील संतोष और साधुता दिखलावे उसको (वकव्रत) बगुलेके समान नीच समझो ऐसे २ लक्षणों वाले पाखण्डी होते हैं उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें ॥

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १ ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥३॥

मनु० [४ । २३८—२४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥४॥

[महाभारते उद्योगप० प्रजागरप० ॥ अ० ३२]

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ । विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥५॥ मनु० ४। २४१

स्त्री और पुरुषको चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक अर्थात् बांमीको बनाती है वैसे सब भूतोंको पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्मके सुखार्थ धीरे २ धर्मका संचय करे ॥ १ ॥ क्योंकि परलोकमें न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है ॥ २ ॥ देखिये अकेला ही जीव

जन्म और मरणको प्राप्त होता, एक ही धर्मका फल जो सुख और अधर्मका जो दुःखरूप फल उसको भोगता है ॥ ३ ॥ यह भी समझ लो कि कुटुम्बमें एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्मका कर्त्ता ही दोषका भागी होता है ॥ ४ ॥ जब कोई किसीका सम्बन्धी मर जाता है उसको मट्टीके ढेलेकेसमान भूमिमें छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं कोई उसके साथ जाने वाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उसका सङ्गी होता है ॥ ५ ॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १ ॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २ ॥

मनु० [४ । २४२ । २४३]

उस हेतुसे परलोक अर्थात् परजन्ममें सुख और जन्मके सहायार्थ नित्य धर्मका सञ्चय धीरे २ करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहायसे बड़े २ दुस्तर दुःखसागरको जीव तर सकता है ॥१॥ किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता जिसका धर्मके अनुष्ठानसे कर्त्तव्य पाप दूर होगया उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्माको धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है ॥ २ ॥ इसलियेः—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ १ ॥
वाच्यार्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३ ॥

मनु० [४ । २४६ । १५६]

सदा दृढ़कारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर दुष्टाचारी पुरुषोंसे पृथक् रहनेहारा, धर्मात्मा मनको जीत और विद्यादि दानसे सुखको प्राप्त होवे ॥१॥ परन्तु यह भी ध्यानमें रक्खे कि जिस वाणीमें सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उनका मूल और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणीको जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापोंका करनेवाला है ॥ २ ॥

इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्मको छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियतासे पूर्ण आयु और धर्माचारसे उत्तम प्रजा तथा अक्षय धनको प्राप्त होता है तथा जो धर्माचारमें वर्त्तकर दुष्ट लक्षणोंका नाश करता है उसके आचरणको सदा किया करे ॥ क्योंकि—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ मनु० ४।१५७

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसारमें सज्जनोंके मध्यमें निन्दाको प्राप्त दुःखभागी और निरन्तर व्याधियुक्त होकर अल्पायुका भी भोगनेहारा होता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करेः—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ २ ॥

मनु० [४ । १५९ । १६०]

जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्नसे त्याग और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्नके साथ सेवन करे ॥ १ ॥ क्योंकि जो २ पराधीनता है वह २ सब दुःख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सुख यही संक्षेपसे सुख और दुःखका लक्षण जानना चाहिये ॥२॥ परन्तु जो एक दूसरेके आधीन काम है वह २ आधीनतासे ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरुष एक दूसरेके आधीन व्यवहार। अर्थात् स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना पुरुषकी आज्ञानुकूल घरके काम स्त्री और बाहरके काम पुरुषके आधीन रहना दुष्ट व्यसनमें फंसनेसे एक दूसरेको रोकना अर्थात् यही निश्चय जानना। जब विवाह होवे तब स्त्रीके साथ पुरुष और पुरुषके साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुषके साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरेके आधीन होजाता है। स्त्री वा पुरुष प्रसन्नताके विना कोई भी व्यवहार न करें। इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभिचार. वेश्या. परपुरुषगमनादि काम हैं। इनको छोड़के अपने पतिके साथ स्त्री और स्त्रीके साथ पति सदा प्रसन्न रहैं। जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कोंको पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियोंको पढ़ावे नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें। स्त्रीका पूजनीय देव पति और पुरुषकी पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है। जबतक गुरुकुलमें रहें तबतक माता पिताके समान अध्यापकोंको समझें और अध्यापक अपने सन्तानोंके समान शिष्योंको समझें। पढ़ानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहियें—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।

अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥ २ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् । नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ३ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥४॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥५॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥६॥

ये सब महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के श्लोक हैं

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख, दुःख, हानि, लाभ, मानापमान, निन्दा, स्तुतिमें हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिसके मनको उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है ॥ १ ॥ सदा धर्मयुक्त कर्मोंका सेवन, अधर्मयुक्त कामोंका त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचारकी निन्दा न करने-हारा, ईश्वर आदिमें अत्यन्त श्रद्धालु हो यही पण्डितका कर्त्तव्या-कर्त्तव्य कर्म है ॥ २ ॥ जो कठिन विषयको भी शीघ्र जान सके, बहुत कालपर्य्यन्त शास्त्रोंको पढ़े, सुने और विचारे, जो कुछ जाने उसको परोपकारमें प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थके लिये कोई काम न करे, विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरेके अर्थमें सम्मति न दे वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित होना चाहिये ॥ ३ ॥ जो प्राप्तिके अयोग्यकी इच्छा कभी न करे नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्कालमें मोहको न

प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है ॥४॥ जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरोंके करनेमें अतिनिपुण, विचित्र, शास्त्रोंके प्रकरणोंका वक्ता, यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान् ग्रन्थोंके यथार्थ अर्थका शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित कहाता है ॥ ५ ॥ जिसकी प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थके अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धिके अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंकी मर्यादाका छेदन न करे वही पण्डित संज्ञाको प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ जहां ऐसे ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं वहां विद्या धर्म और उत्तमाचारकी वृद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है ।

पढ़नेमें अयोग्य और मूर्खके लक्षणः—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ २ ॥

ये श्लोक भी महा० उद्योग० विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के हैं ।

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना और अतीव घमण्डी दरीद्र होकर बड़े २ मनोरथ करनेहारा विना कर्मसे पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला हो उसीको बुद्धिमान् लोग मूढ़ कहते हैं ॥ १ ॥ जो विना बुलाये सभा व किसीके घरमें प्रविष्ट हो । उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभामें बहुतसा बके, विश्वासके अयोग्य वस्तु वा मनुष्यमें विश्वास करे वही मूढ़ और सब मनुष्योंमें नीच मनुष्य कहाता है ॥ २ ॥ जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ जाता है । अब विद्यार्थियोंके लक्षणः—

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च । स्तब्ध-

ता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ॥ एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥१॥

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ।२।

ये भी विदुरप्रजागर [अध्याय ३९] के श्लोक हैं

अर्थ—(आलस्य) अर्थात् शरीर और बुद्धिमें जड़ता, नशा, मोह किसी वस्तुमें फंसावट, चपलता और इधर उधरकी व्यर्थ कथा करना सुनना, पढ़ते पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी, होना ये सात दोष विद्यार्थियोंमें होते हैं ॥ १ ॥ जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती ॥ सुख भोगनेकी इच्छा करने वालेको विद्या कहां ? और विद्या पढ़नेवालेको सुख कहां ? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्याको और विद्यार्थी विषयसुखको छोड़ दे ॥ २ ॥ ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती और ऐसेको विद्या होती हैः—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम् ।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ॥

जो सदा सत्याचारमें प्रवृत्त जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अधःस्खलित कभी न हो उन्हींका ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं ॥ १ ॥ इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियोंको होना चाहिये। अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्माका पूर्ण बल बढ़ाके समग्र वेदादि शास्त्रोंमें विद्वान हों सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ानेमें और विद्या पढ़ानेमें चेष्टा किया करें। और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़नेहारोंमें प्रेम विचारशील परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना

आजाय इत्यादि ब्राह्मणवर्णोंके काम हैं। क्षत्रियोंका कर्म्म राजधर्ममें कहेंगे। [वैश्योंके कर्म ब्रह्मचर्यादिसे वेदादि विद्या] पढ़ [विवाह करके] देशोंकी भाषा, नाना प्रकारके व्यापारकी रीति, उनके भाव जानना, बेचना, खरीदना, द्वीपद्वीपान्तरमें जाना आना, लाभार्थ काम का आरम्भ करना, पशुपालन और खेतीकी उन्नति चतुराईसे करनी करानी, धनका बढ़ाना, विद्या और धर्मकी उन्नतिमें व्यय करना, सत्य-वादी निष्कपटी होकर सत्यतासे सब व्यवहार करना, सब वस्तुओंकी रक्षा ऐसी करनी जिससे कोई नष्ट न होने पावे। शूद्र सब सेवाओंमें चतुर, पाकविद्यामें निपुण, अतिप्रेमसे द्विजोंकी सेवा और उन्हींसे अपनी उपजीविका करे और द्विज लोग इनके खान, पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादिमें जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें। अथवा मासिक कर देवें। चारों वर्णोंको परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दुःख, हानि, लाभमें ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजाकी उन्नतिमें तन, मन, धनका व्यय करते रहना। स्त्री और पुरुषका वियोग कभी न होना चाहिये क्योंकि—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट्॥

मनु० [९। १३]

मद्य भांग आदि मादक द्रव्योंका पीना, दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग, पतिवियोग, अकेली जहां तहां व्यर्थ पाखण्डी आदिके दर्शनके मिससे फिरती रहना और पराये घरमें जाके शयन करना वा वास। ये छः स्त्रीको दूषित करने वाले दुर्गुण हैं। और ये पुरुषोंके भी हैं पति और स्त्रीका वियोग दो प्रकारका होता है कहीं कार्यार्थ देशान्तरमें जाना और दूसरा मृत्युसे वियोग होना इनमेंसे प्रथमका उपाय यही है कि दूर देशमें यात्रार्थ जावे तो स्त्रीको भी साथ रक्खे इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

प्रश्न—स्त्री और पुरुषोंके बहु विवाह होने योग्य हैं वा नहीं ?

उत्तर—युगपत् न अर्थात् एक समयमें नहीं ।

प्रश्न—क्या समयान्तरमें अनेक विवाह होने चाहियें ?

उत्तर—हां जैसेः—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

मनु० [९ । १७६]

जिस स्त्री वा पुरुषका पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह होना चाहिये किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णोंमें क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुषका पुनर्विवाह न होना चाहिये ।

प्रश्न—पुनर्विवाहमें क्या दोष है ?

उत्तर—पहिला स्त्री पुरुषमें प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुषको स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरेके साथ सम्बन्ध कर ले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति व स्त्री के मरनेके पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पतिके पदार्थोंको उड़ा लेजाना और उनके कुटुम्ब वालोंका उनसे झगड़ा करना (तीसरा) बहुतसे भद्रकुलका नाम वा चिह्न भी न रह कर उसके पदार्थ छिन्न भिन्न होजाना (चौथा) पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषोंके अर्थ द्विजोंमें पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये ।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उसका कुल नष्ट होजायगा और स्त्री पुरुष व्यभिचारादि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे इसलिये पुनर्विवाह होना अच्छा है ।

उत्तर—नहीं २ क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यमें स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुलकी परम्परा रखनेके

लिये किसी अपने स्वजातिका लड़का गोद ले लेंगे उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें।

प्रश्न—पुनर्विवाह और नियोगमें क्या भेद है ?

उत्तर—(पहिला) जैसे विवाह करनेमें कन्या अपने पिताका घर छोड़ पतिके घरको प्राप्त होती है और पितासे विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पतिके घरमें रहती है। (दूसरा) उसी विवाहिता स्त्रीके लड़के उसी विवाहित पतिके दायभागी होते हैं। और विधवा स्त्रीके लड़के वीर्यदाताके न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु वे मृतपतिके पुत्र बजते, उसीका गोत्र रहता और उसीके पदार्थोंके दायभागी होकर उसी घरमें रहते हैं। (तीसरा) विवाहित स्त्री पुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुषका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। (चौथा) विवाहित स्त्री पुरुका सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री पुरुषका कार्यके पश्चात् छूट जाता है। (पांचवां) विवाहित स्त्री पुरुष आपसमें गृहके कार्योंकी सिद्धि करनेमें यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री पुरुष अपने २ घरके काम किया करते हैं।

प्रश्न—विवाह और नियोगके नियम एकसे हैं वा पृथक् २ ?

उत्तर—कुछ थोड़ासा भेद है जितने पूर्व कह आये और यह कि विवाहित स्त्री पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिलके दश सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष दो वा चारसे अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते अर्थात् जैसा कुमार कुमारीहीका विवाह होता है वैसे जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हींका नियोग होता है कुमार कुमारीका नहीं। जैसे विवाहिता स्त्री पुरुष सदा सङ्गमें रहते हैं वैसे नियुक्त स्त्री पुरुषका व्यवहार नहीं किन्तु विना ऋतुदानके समय एकत्र न हों जो स्त्री अपने लिये नियोग करे तो जब दूसरा

गर्भ रहे उसी दिनसे स्त्री पुरुषका सम्बन्ध छूट जाय। और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ रहनेसे सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्य्यन्त उन लड़कोंका पालन करके नियुक्त पुरुषको दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो २ अन्य चार नियुक्त पुरुषोंके लिये सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो २ अन्य २ चार विधवाओंके लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मिलकर दश २ सन्तानोत्पत्तिकी आज्ञा वेदमें है॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

ऋ०॥ म० १०। सू० ८५। मं० ४५॥

हे (मीढ्व, इन्द्र) वीर्य सिंचनेमें समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्ठपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर विवाहित स्त्रीमें दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्रीको मान। हे स्त्री! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पतिको समझ। इस वेदकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश दश सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करनेसे सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्थामें बहुतसे दुःख पाते हैं।

प्रश्न—यह नियोगकी बात व्यभिचारके समान दीखती है।

उत्तर—जैसे विना विवाहितोंका व्यभिचार होता है वैसे विना नियुक्तोंका व्यभिचार कहाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा नियमसे विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता तो नियमपूर्वक नियोग होनेसे व्यभिचार न कहावेगा। जैसे—दूसरेकी कन्याका दूसरेके कुमारके साथ शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह होने पर समागममें

व्यभिचार वा पाप लज्जा नहीं होती वैसेही वेदशास्त्रोक्त नियोगमें व्यभिचार पाप लज्जा न मानना चाहिये।

प्रश्न—है तो ठीक, परन्तु यह वेश्याके सदृश कर्म दीखता है।

उत्तर—नहीं, क्योंकि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है और नियोगमें विवाहके समान नियम हैं जैसे दूसरेको लड़की देने दूसरेके साथ समागम करनेमें विवाहपूर्वक लज्जा नहीं होती वैसेही नियोगमें भी होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष वा स्त्री होते हैं वे विवाह होने पर भी कुकर्मसे बचते हैं?

प्रश्न—हमको नियोगकी बातमें पाप मालूम पड़ता है।

उत्तर—जो नियोगकी बातमें पाप मानते हो तो विवाहमें पाप क्यों नहीं मानते? पाप तो नियोगके रोकनेमें है क्योंकि ईश्वरके सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुषका स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्णविद्वान योगियोंके। क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या और विधवा स्त्री और मृतकस्त्री पुरुषोंके महासन्तापको पाप नहीं गिनते हो क्योंकि जबतक वे युवावस्थामें हैं मनमें सन्तानोत्पत्ति और विषयकी चाहना होनेवालोंको किसी राज्यव्यवहार वा जातिव्यवहारसे रुकावट होनेसे गुप्त २ कुकर्म बुरी चालसे होते रहते हैं इस व्यभिचार और कुकर्मके रोकनेका एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्कालमें नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचारका न्यून होना प्रेमसे उत्तम सन्तान होकर मनुष्योंकी वृद्धि होना सम्भव है और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषोंसे उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियोंसे उत्तम पुरुषोंका व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुलमें कलंक, वंशका उच्छेद, स्त्री पुरुषोंको सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोगसे निवृत्त होते हैं इसलिये नियोग करना चाहिये।

प्रश्न—नियोगमें क्या २ बात होनी चाहिये?

उत्तर—जैसे प्रसिद्धिसे विवाह, वैसे ही प्रसिद्धिसे नियोग, जिस प्रकार विवाहमें भद्र पुरुषोंकी अनुमति और कन्या वरकी प्रसन्नता होती है वैसे नियोगमें भी अर्थात् जब स्त्री पुरुषका नियोग होना हो तब अपने कुटुम्बमें पुरुष स्त्रियोंके सामने [प्रकट करें कि] हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्तिके लिये करते हैं। जब नियोगका नियम पूरा होगा तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें तो पापी और जाति वा राज्यके दण्डनीय हों। महीने २ में एकवार गर्भाधानका काम करेंगे, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त पृथक् रहेंगे।

प्रश्न—नियोग अपने वर्णमें होना चाहिये वा अन्य वर्णोंके साथ भी ?

उत्तर—अपने वर्णमें वा अपनेसे उत्तम वर्णस्थ पुरुषके साथ अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणके साथ, क्षत्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मणके साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मणके साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्णका चाहिये अपनेसे नीचेके वर्णका नहीं। स्त्री और पुरुषकी सृष्टिका यही प्रयोजन है कि धर्मसे अर्थात् वेदोक्त रीतिसे विवाह वा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करना।

प्रश्न— पुरुषको नियोग करनेकी क्या आवश्यकता है क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा ?

उत्तर—हम लिख आये हैं द्विजोंमें स्त्री और पुरुषका एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रोंमें लिखा है, द्वितीयवार नहीं। कुमार और कुमारीका ही विवाह होनेमें न्याय और विधवा स्त्रीके साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्रीके साथ मृतस्त्रीक पुरुषके विवाह होनेमें अन्याय अर्थात् अधर्म है जैसे विधवा स्त्रीके साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुषके साथ विवाह करनेकी इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुषको कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार

पुरुष न करेगा तब पुरुष और स्त्री को नियोग करनेकी आवश्यकता होगी। और यही धर्म है कि जैसेके साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये।

प्रश्न—जैसे विवाहमें वेदादि शास्त्रोंका प्रमाण है वैसे नियोगमें प्रमाण है वा नहीं।

उत्तर—इस विषयमें बहुत प्रमाण हैं देखो और सुनोः—

कुहस्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः। को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥ ऋ०॥ मं० १०। सू० ४०। मं० २॥

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ ऋ०॥ मं० १०। सू० १८। मं० ८॥

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! जैसे (देवरं विधवेव) देवरको विधवा और (योषा मर्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पतिको (सधस्थे) समान स्थान शय्यामें एकत्र होकर सन्तानोत्पत्तिको (आ, कृणुते) सब प्रकारसे उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुह वस्तः) कहां दिनमें वसे थे? (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थोंकी प्राप्ति (करतः) की? और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करते थे? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयनस्थान कहां है? तथा कौन वा किस देशके रहनेवाले हो? इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेशमें स्त्री पुरुष सङ्ग ही में रहें। और विवाहित पतिके समान नियुक्त पतिको ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।

प्रश्न—यदि किसीका छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे ?

उत्तर—देवरके साथ परन्तु देवर शब्दका अर्थ जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं देखो निरुक्तमें—

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते ॥

निरु० अ० ३। ख० १५ ॥

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवाका दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपनेसे उत्तम वर्ण वाला हो जिससे नियोग करे उसीका नाम देवर है ॥

हे (नारी) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पतिकी आशा छोड़के (शेषे) बाकी पुरुषोंमेंसे (अभि, जीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पतिको (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बातका विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुम्ह विधवाके पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पतिके सम्बन्धके लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पतिका होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चययुक्त (अभि, सम्, बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियमका पालन करे ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुवर्चाः। प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ अथर्व० ॥ १४। २। १८ ॥

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवरको दुःख न देनेवाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमाः) अच्छे प्रकार धर्म नियममें चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्व शास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादिसे सहित

(वीरसूः) शूरवीर पुत्रोंको जनने (देवृकामा) देवरकी कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवरको (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्रको (सपर्य) सेवन किया कर।

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥

मनु० [९ । ६९]

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पतिका निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है।

प्रश्न—एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियोंका नाम क्या होता है।

उत्तर—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० ॥ मं० १० । सू० ८५ । मं० ४० ॥

हे स्त्री ! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझको (विविदे) प्राप्त होता है उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होनेसे सोम जो दूसरा नियोगसे (विविदे) प्राप्त होता वह (गन्धर्वः) एक स्त्रीसे संभोग करनेसे गन्धर्व जो (तृतीय-उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्निः) अत्युष्णतायुक्त होनेसे अग्निसंज्ञक और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथेसे लेके ग्यारहवें तक नियोगसे पति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नामसे कहाते हैं। जैसा (इमां त्वमिन्द्र) इस मन्त्रसे ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

प्रश्न—एकादश शब्दसे दश पुत्र और ग्यारहवें पतिको क्यों न गिनें ?

उत्तर—जो ऐसा अर्थ करोगे तो "विधवैव देवरम्" "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" "अदेवृघ्नि" और "गन्धर्वो विविद उत्तरः" इत्यादि वेदप्रमाणोंसे विरुद्धार्थ होगा। क्योंकि तुम्हारे अर्थसे दूसरा भी पति प्राप्त नहीं हो सकता।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥ १॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥ २॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव॥३॥ मनु० ६। ५६।५८।१५६

इत्यादि मनुजीने लिखा है कि (सपिण्ड) अर्थात् पतिकी छः पीढ़ियोंमें पतिका छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपनेसे उत्तम जातिस्थ पुरुषसे विधवा स्त्रीका नियोग होना चाहिये। परन्तु जो वह मृतस्त्रीक पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करती हो तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तानका सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे। जो आपत्काल अर्थात् सन्तानोंके होनेकी इच्छा न होनेमें बड़े भाईकी स्त्रीसे छोटेका और छोटेकी स्त्रीसे बड़े भाईका नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपसमें समागम करें तो पतित होजायें अर्थात् एक नियोगमें दूसरे पुत्रके गर्भ रहनेतक नियोगकी अवधि है इसके पश्चात् समागम न करें। और जो दोनोंके लिये नियोग हुआ हो तो चौथे गर्भ तक अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दश सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भसे अधिक समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं अर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानोंही के अर्थ किये जाते हैं पशुवत् कामक्रीड़ाके लिये नहीं।

प्रश्न—नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पतिके भी ?

उत्तर—जीते भी होता है—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० मं १० सू० १०

जब पति सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्यकी इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पतिकी (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरेसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पतिकी सेवामें तत्पर रहे वैसे स्त्री भी जब रोगादि दोषोंसे ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ हो तब अपने पतिको आज्ञा देवे कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा मुझसे छोड़के किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये। जैसाकि पाण्डु राजाकी स्त्री कुन्ती और माद्री आदिने किया और जैसा व्यासजीने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन अपने भाइयोंकी स्त्रियोंसे नियोग करके अम्बिकामें धृतराष्ट्र और अम्बालिकामें पाण्डु और दासीमें विदुरकी उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बातमें प्रमाण हैं।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ।१।
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥

मनु० ९ । ७६ । ८१ ॥

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्मके अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्तिके लिये गया हो तो छः और धनादि कामनाके लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देखके पश्चात् नियोग करके सन्तानोपत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति

छूट जावे ॥ १ ॥

वैसे ही पुरुषके लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाहसे आठ वर्ष तक स्त्रीको गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो दशवें, जब २ हो तब २ कन्या ही होवें पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्रीको छोड़के दूसरी स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥

वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्रीको उचित है कि उसको छोड़के दूसरे पुरुषसे नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पतिके दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और युक्तियोंसे स्वयंवर विवाह और नियोगसे अपने २ कुलकी उन्नति करे जैसा "औरस" अर्थात् विवाहित पतिसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके पदार्थोंका स्वामी होता है वैसे ही "क्षेत्रज" अर्थात् नियोगसे उत्पन्न हुए पुत्र भी मृतपिताके दायभागी होते हैं। अब इस पर स्त्री और पुरुषको ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रजको अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थको परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषके सङ्गमें खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिकाके विना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण बीज और मूर्खका ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य-शरीररूप वृक्षके बीजको कुक्षेत्रमें खोता है वह महामूर्ख कहाता है क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता और "आत्मा वै जायते पुत्रः" यह ब्राह्मण ग्रन्थोंका वचन है ॥

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥

निरु० ३। ४ ॥

हे पुत्र तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्यसे और हृदयसे उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है मुझसे पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष

तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयोंके शरीर उत्पन्न होते हैं उसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्रमें बोन वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्रमें बुवाना महापापका काम है।

प्रश्न—विवाह क्यों करना? क्योंकि इससे स्त्री पुरुषको बन्धनमें पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहें जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें।

उत्तर—यह पशु पक्षियोंका व्यवहार है मनुष्योंका नहीं। जो मनुष्योंमें विवाहका नियम न रहे तो सब गृहाश्रमके अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट हो जायं। कोई किसीकी सेवा भी न करे और महा व्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र २ मर जायें। कोई किसीसे भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्थामें कोई किसीकी सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर कुलोंके कुल नष्ट होजायें। कोई किसीके पदार्थोंका स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसीका किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त सत्व रहै इत्यादि दोषोंके निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है।

प्रश्न—जब एक विवाह होगा एक पुरुषको एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा तब स्त्री गर्भवती स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनोंकी युवावस्था हो रहा न जाय, तो फिर क्या करें?

उत्तर—इसका प्रत्युत्तर नियोग विषयमें दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके समयमें पुरुषसे वा दीर्घरोगी पुरुषकी स्त्रीसे न रहा जाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें। जहां तक हो वहां तक अप्राप्त वस्तुकी इच्छा, प्राप्तका रक्षण और रक्षितकी वृद्धि, बढ़ेहुए धनका व्यय देशोपकार करनेमें किया करें। सब प्रकारके अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे अपने २ वर्णाश्रमके व्यवहारोंको अत्युत्साह

पूर्वक प्रयत्नसे तन, मन, धनसे सर्वदा परमार्थ किया करें। अपने माता पिता, शाशु, श्वशुरकी अत्यन्त शुश्रूषा करें। मित्र और अड़ोसी, पड़ोसी, राजा, विद्वान, वैद्य और सत्पुरुषोंसे प्रीति रखके और जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे उपेक्षा अर्थात् द्रोह छोड़कर उनके सुधारनेका यत्न किया करें। जहांतक बने वहांतक प्रेमसे अपने सन्तानोंके विद्वान और सुशिक्षा करने करानेमें धनादि पदार्थोंका व्यय करके उनको पूर्ण विद्वान् सुशिक्षायुक्त करदें और धर्मयुक्त व्यवहार करके मोक्षका भी साधन किया करें कि जिसकी प्राप्तिसे परमानन्द भोगें और ऐसे २ श्लोकोंको न माने जैसेः—

पतितोपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी ॥१॥
अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ २ ॥
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३ ॥

ये कपोलकल्पित पाराशरीके श्लोक हैं। जो दुष्ट कर्मकारी द्विजको श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्रको नीच मानें तो इससे परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा? क्या दूध देनेवाली वा न देनेवाली गाय गोपालोंको पालनीय होती हैं वैसे कुम्हार आदिको गदही पालनीय नहीं होती? और यह दृष्टान्त भी विषम है क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति, गाय और गदही भिन्न जाति हैं कथञ्चित् पशु जातिसे दृष्टान्तका एक देश दार्ष्टान्तमें मिल भी जावे तो भी इसका आशय अयुक्त होनेसे यह श्लोक विद्वानोंके माननीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अश्वालम्भ अर्थात घोड़ेको मारके अथवा [गवालम्भ]

गायको मारके होम करना ही वेदविहित नहीं है। तो उसका कलियुगमें निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं? जो कलियुगमें इस नीच कर्मका निषेध माना जाय तो त्रेता आदिमें विधि आजाय। तो इनमें ऐसे दुष्ट काम .. श्रेष्ठ युगमें होना सर्वथा असंभव है। और संन्यासकी वेदादि शास्त्रोंमें विधि है। उसका निषेध करना निर्मूल है। जब मांसका निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। जब देवरसे पुत्रोत्पत्ति करना वेदोंमें लिखा है तो यह श्लोककर्त्ता क्यों भूंसता है? ॥ २ ॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश देशान्तरको चला गया हो घरमें स्त्री नियोग कर लेवे उसी समय विवाहित पति आजाय तो वह किसकी स्त्री हो? कोई कहे कि विवाहित पतिकी, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरीमें तो नहीं लिखी। क्या स्त्री के पांच ही आपत्काल हैं जो रोगी पड़ा हो वा लड़ाई हो गई हो इत्यादि आपत् काल पांचसे भी अधिक हैं इसलिये ऐसे ऐसे श्लोकोंको कभी न मानना चाहिये ॥ ३ ॥

प्रश्न—क्योंजी तुम पराशर मुनिके वचनको भी नहीं मानते?

उत्तर—चाहें किसीका वचन हो परन्तु वेदविरुद्ध होनेसे नहीं मानते और यह तो पराशरका वचन भी नहीं है क्योंकि जैसे "ब्रह्मोवाच, वशिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, देव्युवाच" इत्यादि श्रेष्ठोंका नाम लिखके ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्यके नामसे इन ग्रन्थोंको सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका भी हो। इसलिये अनर्थ गाथायुक्त ग्रन्थ बनाते हैं। कुछ २ प्रक्षिप्त श्लोकोंको छोड़के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है अन्य स्मृति नहीं ऐसे ही अन्य जालग्रन्थोंकी व्यवस्था समझलो।

प्रश्न—गृहाश्रम सबसे छोटा वा बड़ा है?

उत्तर—अपने २ कर्त्तव्यकर्मोंमें सब बड़े हैं परन्तुः—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥१॥

मनु० [६ । ९०]

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥२॥
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥३॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥४॥

मनु० [३ । ७७-७९]

जैसे नदी और बड़े २ नद तबतक भ्रमते ही रहते हैं जबतक समुद्रको प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रयसे सब आश्रम स्थिर रहते हैं विना इस आश्रमके किसी आश्रमका कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमोंको दान और अन्नादि दे के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है अर्थात् सब व्यवहारोंमें धुरन्धर कहाता है इसलिये जो मोक्ष और संसारके सुखकी इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रमका धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषोंसे धारण करने अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करे। इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसारमें है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता हो सन्तानोत्पत्तिके न होने से ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रमकी निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा, करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रममें सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकारके व्यवहारोंके ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रमके सुखका मुख्य कारण ब्रह्मचर्य्य

और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है। यह संक्षेपसे समावर्तन, विवाह और गृहाश्रमके विषयमें शिक्षा लिख दी। इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यासके विषयमें लिखा जायगा॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः॥४॥

अथ पञ्चमसमुल्लासारम्भः

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्यामः ।

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ शत० कां० १४ ॥

मनुष्योंको उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रमको समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रमसे आश्रमका विधान है ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥५॥

मनु० [६ । १—५]

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्य्यपूर्वक गृहाश्रमका कर्त्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रममें ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियोंको जीतके वनमें बसे ॥१॥ परन्तु जब गृहस्थ [के] शिरके श्वेत केश और त्वचा ढीली हो जाय और लड़केका लड़का भी हो गया हो तब वनमें जाके बसे ॥ २ ॥ सब ग्रामके आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको छोड़ पुत्रोंके पास स्त्रीको रख वा अपने साथ लेके वनमें निवास करे ॥ ३ ॥ साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्रको ले के ग्रामसे निकल दृढेन्द्रिय होकर अरण्यमें जाके बसे ॥ ४ ॥ नाना प्रकारके सामा आदि अन्न, सुन्दर २ शाक, मूल, फल, फूल कंदादिसे पूर्वोक्त पंच महायज्ञोंको करे और इसीसे अतिथिसेवा और आप भी निर्वाह करे ॥ ५ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १ ॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २ ॥

मनु० [६ । ८ । २६]

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ानेमें नि [त्य] युक्त, जितात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियोंका दमनशील, विद्यादिका दान देनेहारा और सब पर दयालु, किसीसे कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्त्तमान करे ॥ १ ॥ शरीरके सुखके लिये अति प्रयत्न न करे किन्तु ब्रह्मचारी [रहे अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे, भूमिमें सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थोंमें ममता न करे, वृक्षके मूलमें बसे ॥ २ ॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति

यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ मु० २ । ११ ॥

जो शान्त विद्वान् लोग वनमें तप धर्म्मानुष्ठान और सत्यकी श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगलमें बसते हैं वे जहां नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि लाभरहित परमात्मा है, वहां निर्मल होकर प्राणद्वारसे उस परमात्माको प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं ॥ १ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥

यजुर्वेद ॥ अध्याय २० । मं० २४ ॥

वानप्रस्थको उचित है कि—मैं अग्निमें होम कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धाको प्राप्त होऊं—ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो। नाना प्रकारकी तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचारसे ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करें। पश्चात् जब संन्यासग्रहणकी इच्छा हो तब स्त्रीको पुत्रोंके पास भेज देवे फिर संन्यास ग्रहण करे। इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः ॥

अथ संन्यासविधिः।

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥

मनु० [६ । ३३]

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्षसे पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड़के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।

प्रश्न—गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है वा नहीं ?

उत्तर—होता है और नहीं भी होता।

प्रश्न—यह दो प्रकारकी बात क्यों कहते हो ?

उत्तर—दो प्रकारकी नहीं क्योंकि जो बाल्यावस्थामें विरक्त होकर विषयोंमें फँसे वह महापापी और जो न फँसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है ॥

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥ ये ब्राह्मणग्रन्थके वचन हैं ॥

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वनसे संन्यास ग्रहण करलेवे पहिले संन्यासका पक्षक्रम कहा और इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रमहीसे संन्यास ग्रहण करे। और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय विषयभोगकी कामनासे रहित परोपकार करनेकी इच्छासे युक्त पुरुष हो ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे और वेदोंमें भी (यतयः ब्राह्मणस्य, विजानतः) इत्यादि पदोंसे संन्यासका विधान है, परन्तुः—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

कठ० । वल्ली २ । मं० ३३ ॥

जो दुराचारसे पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है वह संन्यास लेके भी प्रज्ञानसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता इसलियेः—

यच्छेद्वांमनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।

कठ० । वल्ली ३ । मं० १३ ॥

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मनको अधर्मसे रोकके उनको ज्ञान और आत्मामें लगावे और उस ज्ञानस्वात्माको परमात्मामें लगावे और उस विज्ञानको शान्तस्वरूप आत्मामें स्थिर करे ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

मुण्ड०। खं० २। मं० १२॥

सब लौकिक भोगोंको कर्मसे संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्यको प्राप्त होवे क्योंकि अकृत अर्थात् न किया हुआ परमात्मा कृत अर्थात् केवल कर्मसे प्राप्त नहीं होता इसलिये कुछ अर्पणके अर्थ हाथमें ले के वेदवित् और परमेश्वरको जाननेवाले गुरुके पास विज्ञानके लिये जावे, जाके सब सन्देहोंकी निवृत्ति करे परन्तु सदा इनका संग छोड़ देवे कि जोः—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ १॥ अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥२॥ मुण्ड० खं० २ मं० ८। ९॥

जो अविद्याके भीतर खेल रहे अपनेको धीर और पण्डित मानते हैं वे नीच गतिको जानेहारे मूढ़ जैसे अंधेके पीछे अन्धे दुर्दशाको प्राप्त होते हैं वैसे दुःखोंको पाते हैं॥ १॥

जो बहुधा अविद्यामें रमण करनेवाले बालबुद्धि हम कृतार्थ हैं ऐसा मानते हैं जिसको केवल कर्मकांडी लोग रागसे मोहित होकर नहीं जान और जना सकते वे आतुर होके जन्म मरणरूप दुःखमें गिरे रहते हैं॥ २॥ इसलियेः—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः

शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुण्ड० खं० २ मं० ६ ॥

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रोंके अर्थज्ञान और आचारमें अच्छे प्रकार निश्चित संन्यासयोगसे शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वरमें मुक्तिसुखको प्राप्त हो भोगके पश्चात् जब मुक्तिमें सुखकी अवधि पूरी हो जाती है तब वहांसे छूटकर संसारमें आते हैं मुक्तिके विना दुःखका नाश नहीं होता क्योंकिः—

न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥

छान्दो० [। प्र० ८ । खं० १२]

जो देहधारी है वह सुख दुःखकी प्राप्तिसे पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्तिमें सर्वव्यापक परमेश्वरके साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता इसलियेः—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति ॥

शत० कां० १४ [प्र० ५ । ब्रा० २ । कं० १]

लोकमें प्रतिष्ठा वा लाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्षके साधनोंमें तत्पर रहते हैं ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत् ॥१॥ यजुर्वेदब्राह्मणे ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।२।

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥३॥

मनु० [६ । ३८ । ३९]

प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिन्होंको छोड़ आहवनीयादि पांच अग्नियोंको प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणोंमें आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घरसे निकल कर संन्यासी हो जावे ॥ १ ॥ २ ॥

जो सब भूत प्राणिमात्रको अभयदान देकर घरसे निकलके संन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओंके उपदेश करनेवाले संन्यासीके लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्तिका आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्रश्न—संन्यासियोंका क्या धर्म है ?

उत्तर—धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यका ग्रहण, असत्यका परित्याग, वेदोक्त ईश्वरकी आज्ञाका पालन, परोपकार, सत्यभाषणादि लक्षण सब आश्रमियोंका अर्थात् सब मनुष्यमात्रका एक ही है परन्तु संन्यासीका विशेष धर्म यह है कि:—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१॥
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥२॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ३ ॥

[ः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।

विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ५ ॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥ ६ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ॥ ७ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमन्तपः ॥ ८ ॥
दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।६।
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।१०।
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥११॥
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम् ॥१२॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ।१३।
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।

दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥१४॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥१५॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान्शनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥१६॥

मनु० अ० ६। [४६। ४८। ४६। ५२। ६०। ६१। ६७।
७०-७३। ७५। ८०। ८१। ६१। ६२॥

जब संन्यासी मार्गमें चले तब इधर उधर न देखकर नीचे पृथिवीपर दृष्टि रखके चले। सदा वस्त्रसे छानके जल पिये निरन्तर सत्य ही बोले सर्वदा मनसे विचारके सत्यका ग्रहण कर असत्यको छोड़ देवे॥ १॥

जब कहीं उपदेश वा संवादादिमें कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासीको उचित है कि उस पर आप क्रोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे और एक मुखका, दो नासिकाके, दो आंखके और दो कानके छिद्रोंमें बिखरी हुई वाणीको किसी कारणसे मिथ्या कभी न बोले॥ २॥

अपने आत्मा और परमात्मामें स्थिर अपेक्षारहित मद्य मांसादि वर्जित होकर आत्मा ही के सहायसे सुखार्थी होकर इस संसारमें धर्म और विद्याके बढ़ानेमें उपदेशके लिये सदा विचरता रहे॥ ३॥

केश, नख, डाढ़ी, मूछको छेदन करवावे सुन्दर पात्र दण्ड और कुसुम्भ आदिसे रंगे हुए वस्त्रोंको ग्रहण करके निश्चितात्मा सब भूतोंको पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे॥ ४॥

इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक, रागद्वेषको छोड़, सब प्राणियोंसे निर्वैर वर्त्तकर मोक्षके लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे॥ ५॥

कोई संसारमें उसको दूषित वा भूषित करे तो भी जिस किसी

आश्रममें वर्त्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियोंमें पक्षपात-रहित होकर स्वयं धर्मात्मा और अन्योंको धर्मात्मा करनेमें प्रयत्न किया करे। और यह अपने मनमें निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्मका कारण नहीं हैं, सब मनुष्यादि प्राणियोंके सत्योपदेश और विद्यादानसे उन्नति करना संन्यासीका मुख्य कर्म है ॥ ६ ॥

क्योंकि यद्यपि निर्मली वृक्षका फल पीसके गन्दे जलमें डालनेसे जलका शोधक होता है तदपि विना [उसके] डाले उसके नामकथन वा श्रवणमात्रसे जल शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासीको उचित है कि ओंकारपूर्वक सप्तव्याहृतियोंसे विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे परन्तु तीनसे तो न्यून प्राणायाम कभी न करे यही संन्यासीका परमतप है ॥ ८ ॥

क्योंकि जैसे अग्निमें तपाने और गलानेसे धातुओंके मल नष्ट होजाते हैं वैसे ही प्राणोंके निग्रहसे मन आदि इन्द्रियोंके दोष भस्मीभूत होते हैं ॥ ९ ॥

इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामोंसे आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियोंके दोष, धारणाओंसे पाप, प्रत्याहारसे संगदोष, ध्यानसे अनीश्वरके गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्यादि जीवके दोषोंको भस्मीभूत करें ॥ १० ॥

इसी ध्यानयोगसे जो अयोगी अविद्वानोंको दुःखसे जानने योग्य छोटे बड़े पदार्थोंमें परमात्माकी व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वरकी गतिको देखे ॥ ११ ॥

जब भूतोंसे निर्वैर इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरणसे इस संसारमें मोक्षपदको पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं अन्य कोई नहीं ॥ १२ ॥

जब संन्यासी सब भावोंमें अर्थात् पदार्थोंमें निःस्पृह कांक्षारहित

और सब बाहर भीतरके व्यवहारोंमें भावसे पवित्र होता है तभी इस देहमें और मरण पाके निरन्तर सुखको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

इसलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंको योग्य है कि प्रयत्नसे दश लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्मका सेवन करें ॥ १४ ॥

पहिला लक्षण—(धृति) सदा धैर्य रखना दूसरा—(क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति मानापमान हानिलाभ आदि दुःखोंमें भी सहनशील रहना। तीसरा—(दम) मनको सदा धर्ममें प्रवृत्त कर अधर्मसे रोक देना अर्थात् अधर्म करनेकी इच्छा भी न उठे। चौथा—(अस्तेय) चोरीत्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेशसे पर पदार्थका ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है। पांचवां—(शौच) रागद्वेष पक्षपात छोड़के भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदिसे बाहरकी पवित्रता रखनी। छठा—(इन्द्रियनिग्रह) अधर्माचरणोंसे रोकके इन्द्रियोंको धर्महीमें सदा चलाना। सातवां—(धीः), मादकद्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ दुष्टोंका सङ्ग आलस्य प्रमाद आदिको छोड़के श्रेष्ठ पदार्थोंका सेवन सत्पुरुषोंका सङ्ग योगाभ्याससे बुद्धिको बढ़ाना। आठवां—(विद्या) पृथिवीसे लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना सत्य जैसा आत्मामें वैसा मनमें, जैसा मनमें वैसा वाणीमें, जैसा वाणीमें वैसा कर्ममें वर्त्तना विद्या, इससे विपरीत अविद्या है। नववां—(सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी। तथा दशवां—(अक्रोध) क्रोधादि दोषोंको छोड़के शान्त्यादि गुणोंको ग्रहण करना धर्मका लक्षण है। इस दश लक्षणयुक्त पक्षपातरहित न्यायाचरण धर्मका सेवन चारों आश्रमवाले करें और इसी वेदोक्त धर्महीमें आप चलना और दूसरोंको समझा कर चलाना संन्यासियोंका विशेष धर्म है ॥ १५ ॥

इसी प्रकारसे धीरे २ सब संगदोषोंको छोड़ हर्ष शोकादि सब

द्वन्द्वोंसे विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है संन्यासियोंका मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमोंकी सब प्रकारके व्यवहारोंका सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारोंसे छुड़ा सब संशयोंका छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारोंमें प्रवृत्त कराया करें ॥ १६ ॥

प्रश्न—संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादि का भी ?

उत्तर—ब्राह्मण ही को अधिकार है क्योंकि जो सब वर्णोंमें पूर्ण विद्वान् धार्म्मिक परोपकारप्रिय मनुष्य है उसीका ब्राह्मण नाम है विना पूर्ण विद्याके धर्म, परमेश्वरकी निष्ठा और वैराग्यके संन्यास ग्रहण करनेमें संसारका विशेष उपकार नहीं हो सकता इसीलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मणको संन्यासका अधिकार है अन्यको नहीं यह मनुका प्रमाण भी है:—

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मान् निबोधत ॥

मनु० [६ । ९७]

यह मनुजी महाराज कहते हैं कि हे ऋषियो ! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य्य, [गृहस्थ], वाणप्रस्थ संन्यासाश्रम करना ब्राह्मणका धर्म है यहां वर्तमानमें पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्दका देनेवाला संन्यास धर्म है इसके आगे राजाओंका धर्म मुझसे सुनो । इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहणका अधिकार मुख्य करके ब्राह्मणका है और क्षत्रियादिका ब्रह्मचर्याश्रम है ।

प्रश्न—संन्यासग्रहणकी आवश्यकता क्या है ?

उत्तर—जैसे शरीरमें शिरकी आवश्यकता वैसे ही आश्रमोंमें संन्यासाश्रमकी आवश्यकता है क्योंकि इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमोंको विद्याग्रहण गृहकृत्य और तपश्चर्यादिका सम्बन्ध होनेसे अवकाश बहुत कम मिलता है । पक्षपात

छोड़ कर वर्त्तना दूसरे आश्रमोंको दुष्कर है जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत्का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासीको सत्यविद्यासे पदार्थोंके विज्ञानकी उन्नतिका जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमीको नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य्यसे संन्यासी होकर जगत्को सत्य शिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

प्रश्न—संन्यास ग्रहण करना ईश्वरके अभिप्रायसे विरुद्ध है क्योंकि ईश्वरका अभिप्राय मनुष्योंकी बढ़ती करनेमें है जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे। जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्योंका मूलच्छेदन हो जायगा।

उत्तर—अच्छा, विवाह करके भी बहुतोंके सन्तान नहीं होते अथवा होकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं फिर वह भी ईश्वरके अभिप्रायसे विरुद्ध करने वाला हुआ जो तुम कहो कि "यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्रदोषः" यह किसी कविका वचन है, अर्थ—जो यत्न करनेसे भी कार्य्य सिद्ध न हो तो इसमें क्या दोष ? अर्थात् कोई भी नहीं। तो हम तुमसे पूछते हैं कि गृहाश्रमसे बहुत सन्तान होकर आपसमें विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है, समझके विरोधसे लड़ाई बहुत होती है, जब संन्यासी एक वेदोक्तधर्मके उपदेशसे परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्योंको बचा देगा सहस्रों गृहस्थके समान मनुष्योंकी बढ़ती करेगा और सब मनुष्य संन्यासग्रहण कर ही नहीं सकते क्योंकि सबकी विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी, जो २ संन्यासियोंके उपदेशसे धार्मिक मनुष्य होंगे वे सब जानो संन्यासीके पुत्र तुल्य हैं।

प्रश्न—संन्यासी लोग कहते हैं कि हमको कुछ कर्त्तव्य नहीं अन्न वस्त्र लेकर आनन्दमें रहना, अविद्यारूप संसारसे माथापच्ची क्यों करना ? अपनेको ब्रह्म मानकर सन्तुष्ट रहना, कोई आकर पूछे तो

उसको भी वैसा ही उपदेश करना कि तू भी ब्रह्म है तुझको पाप पुण्य नहीं लगता क्योंकि शीतोष्ण शरीर, क्षुधा तृषा प्राण, और सुख दुःख मनका धर्म है। जगत् मिथ्या और जगत्के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् झूंठे हैं इसलिये इसमें फँसना बुद्धिमानोंका काम नहीं। जो कुछ पाप पुण्य होता है वह देह और इन्द्रियोंका धर्म है आत्माका नहीं, इत्यादि उपदेश करते हैं और आपने कुछ विलक्षण संन्यासका धर्म कहा है अब हम किसकी बात सच्ची और किसकी झूठी मानें ?

उत्तर—क्या उनको अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं ? देखो "वैदिकैश्चैव कर्मभिः" मनुजीने वैदिक कर्म जो धर्मयुक्त सत्य कर्म हैं, संन्यासियोंको भी अवश्य करना लिखा है। क्या भोजन छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे ? जो ये कर्म नहीं छूट सकते तो उत्तम कर्म छोड़नेसे वे पतित और पापभागी नहीं होंगे ? जब गृहस्थोंसे अन्न वस्त्रादि लेते हैं और उनका प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे ? जैसे आंखसे देखना कानसे सुनना न हो तो आंख और कानका होना व्यर्थ है वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रोंका विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत्में व्यर्थ भाररूप हैं। और जो अविद्यारूप संसारसे माथापच्ची क्यों करना आदि लिखते और कहते हैं वैसे उपदेश करनेवाले ही मिथ्यारूप और पापके बढ़ानेहारे पापी हैं। जो कुछ शरीरादिसे कर्म्म किया जाता है वह सब आत्मा ही का और उसके फलका भोगने वाला भी आत्मा है। जो जीवको ब्रह्म बतलाते हैं वे अविद्या निद्रामें सोते हैं। क्योंकि जीव अल्प, अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ है ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभावयुक्त है और जीव कभी बद्ध कभी मुक्त रहता है। ब्रह्मको सर्वव्यापक सर्वज्ञ होनेसे भ्रम वा अविद्या कभी नहीं हो सकती और जीवको कभी विद्या और कभी अविद्या होती है ब्रह्म जन्ममरण दुःखको कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है।

प्रश्न—संन्यासी सर्व कर्म्मविनाशी और अग्नि तथा धातुको स्पर्श नहीं करते यह बात सच्ची है वा नहीं।

उत्तर—नहीं "सम्यक् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी" जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो वह संन्यासी कहाता है इसमें सुकर्मका कर्त्ता और दुष्ट कर्मोंका नाश करनेवाला संन्यासी कहाता है।

प्रश्न—अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं पुनः संन्यासीका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासीको होती है उतनी गृस्थोंको नहीं। हां, जो ब्राह्मण हैं उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषोंको और स्त्री स्त्रियोंको सत्योपदेश और पढ़ाया करें। जितना भ्रमणका अवकाश संन्यासीको मिलता है उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकोंको कभी नहीं मिल सकता। जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी होना है। इसलिये संन्यासका होना उचित है।

प्रश्न—"एकरात्रिं वसेद् ग्रामे" इत्यादि वचनोंसे संन्यासीको एकत्र एकरात्रिमात्र रहना अधिक निवास न करना चाहिये।

उत्तर—यह बात थोड़ेसे अंशमें तो अच्छी है कि एकत्रवास करनेसे जगत्का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तरका भी अभिमान होता है राग द्वेष भी अधिक होता है परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहनेसे होता हो तो रहे जैसे जनक राजाके यहां चार चार महीने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे। और "एकत्र न रहना" यह बात आज कलके पाखण्डी सम्प्रदायियोंने बनाई है। क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर अधिक न बढ़ सकेगा।

प्रश्न—

यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।
चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥

इत्यादि वचनोंका अभिप्राय यह है कि संन्यासियोंको जो सुवर्ण दान दे तो दाता नरकको प्राप्त होवे।

उत्तर—यह बात भी वर्णाश्रमविरोधी सम्प्रदायी और स्वार्थसिन्धुवाले पौराणिकोंकी कल्पी हुई है, क्योंकि संन्यासियोंको धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी, तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे जब मूर्ख और स्वार्थियोंको दान देनेमें अच्छा समझते हैं तो विद्वान और परोपकारी संन्यासियोंको देनेमें कुछ भी दोष नहीं हो सकता देखो मनु०—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्॥

नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियोंको देवे और वह श्लोक भी अनर्थक है क्योंकि संन्यासीको सुवर्ण देनेसे यजमान नरकको जावे तो चांदी, मोती, हीरा आदि देनेसे स्वर्गको जायगा।

प्रश्न—यह पण्डितजी इसका पाठ बोलते भूल गये यह ऐसा है कि "यतिहस्ते धनं दद्यात्" अर्थात् जो संन्यासियोंके हाथमें धन देता है वह नरकमें जाता है।

उत्तर—यह भी वचन अविद्वान्ने कपोलकल्पनासे रचा है। क्योंकि जो हाथमें धन देनेसे दाता नरकको जाय तो पग पर धरने वा गठरी बांधकर देनेसे स्वर्गको जायगा इसलिये ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं। हां, यह बात तो है कि जो संन्यासी योगक्षेमसे अधिक रक्खेगा तो चोरादिसे पीड़ित और मोहित भी हो जायगा परन्तु जो विद्वान् है वह अयुक्त व्यवहार कभी नहीं करेगा, न मोहमें फंसेगा क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रममें अथवा ब्रह्मचर्यमें सब भोग कर वा सब

देख चुका है और जो ब्रह्मचर्यसे होता है वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होनेसे कभी कहीं नहीं फंसता।

प्रश्न—लोग कहते हैं कि श्राद्धमें संन्यासी आवे वा जिमावे तो उसके पितर भाग जायें और नरकमें गिरें।

उत्तर—प्रथम तो मरे हुए पितरोंका आना और किया हुआ श्राद्ध मरे हुए पितरोंको पहुंचाना ही असम्भव वेद और युक्तिविरुद्ध होनेसे मिथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे जब अपने पाप पुण्यके अनुसार ईश्वरकी व्यवस्थासे मरणके पश्चात् जीव जन्म लेते हैं तो उनका आना कैसे हो सकता है? इसलिये यह भी बात पेटार्थी पुराणी और वैरागियोंकी मिथ्या कल्पी हुई हैं। यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे वहां यह मृतकश्राद्ध करना वेदादि शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेसे पाखण्ड दूर भाग जायगा।

प्रश्न—जो ब्रह्मचर्य्यसे संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनतासे होगा और कामका रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहाश्रम वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध होजाय तभी संन्यास लेना अच्छा है।

उत्तर—जो निर्वाह न कर सके इन्द्रियोंको न रोक सके वह ब्रह्मचर्य्यसे संन्यास न लेवे, परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुषने विषयके दोष और वीर्य्यसंरक्षणके गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उनका वीर्य्य विचाराग्निका इन्धनवत् है अर्थात् उसीमें व्यय होजाता है। जैसे वैद्य और औषधोंकी आवश्यकता रोगीके लिये होती है वैसी नीरोगीके लिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसारका उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पंचशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं इसलिये संन्यासीका होना अधिकारियोंको उचित है और जो अनधिकारी संन्यासग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरोंको भी डुबावेगा जैसे "सम्राट" चक्रवर्ती राजा होता है वैसे "परिव्राट्" संन्यासी होता है प्रत्युत राजा अपने देशमें वा

सम्बन्धियोंमें सत्कार पाता है और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

[यह] चाणक्य नीतिशास्त्रका श्लोक है—विद्वान् और राजाकी कभी तुल्यता नहीं हो सकती क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदिके लिये ब्रह्मचर्य, सब प्रकारके उत्तम व्यवहार सिद्ध करनेके अर्थ गृहस्थ विचार ध्यान और विज्ञान बढ़ाने तपश्चर्या, करनेके लिये वानप्रस्थ और वेदादि सत्यशास्त्रोंका प्रचार, धर्म व्यवहारका ग्रहण और दुष्ट व्यवहारके त्याग, सत्योपदेश और सबको निःसंदेह करने आदिके लिये संन्यासाश्रम है। परन्तु जो इस संन्यासके मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते वे पतित और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियोंको उचित है कि सत्योपदेश शङ्कासमाधान, वेदादि सत्यशास्त्रोंका अध्यापन और वेदोक्त धर्मकी वृद्धि प्रयत्नसे करके सब संसारकी उन्नति किया करें।

प्रश्न—जो संन्यासीसे अन्य साधु, वैरागी, गुसाईं, खाखी आदि हैं वे भी संन्यासाश्रममें गिने जायेंगे वा नहीं ?

उत्तर—नहीं क्योंकि उनमें संन्यासका एक भी लक्षण नहीं, वे वेदविरुद्ध मार्गमें प्रवृत्त होकर वेदसे [अधिक] अपने संप्रदायके आचार्य्योंके वचन मानते और अपने ही मतकी प्रशंसा करते मिथ्या प्रपंचमें फंसकर अपने स्वार्थके लिये दूसरोंको अपने २ मतमें फंसाते हैं सुधार करना तो दूर रहा उसके बदलेमें संसारको बहका कर अधोगतिको प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं इसलिये इनको संन्यासाश्रममें नहीं गिन सकते किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं! इसमें कुछ सन्देह नहीं। जो स्वयं धर्ममें चलकर सब संसारको

चलाते हैं जिससे आप और सब संसारको इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्ममें परलोक अर्थात् दूसरे जन्ममें स्वर्ग अर्थात् सुखका भोग करते कराते हैं वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं। यह संक्षेपसे संन्यासाश्रमकी शिक्षा लिखी। अब इसके आगे राजप्रजाधर्म विषय लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥५॥

अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः ।

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥१॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥

मनु० [७ ॥ १ । २]

अब मनुजी महाराज ऋषियोंसे कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके व्यवहार कथनके पश्चात् राजधर्मोंको कहेंगे कि किस प्रकारका राजा होना चाहिये और जैसे इसके होनेका सम्भव तथा जैसे इसको परमसिद्धि प्राप्त होवे उसको सब प्रकार कहते हैं ॥१॥ कि जैसा परम विद्वान ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रियको योग्य है कि इस सब राज्यकी रक्षा न्यायसे यथावत् करे ॥ २ ॥ उसका प्रकार यह है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजाके पुरुष मिलके (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजाके सम्बन्धरूप व्यवहारमें (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि)

बहुत प्रकारके (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियोंको (परिभूषथः) सब ओरसे विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादिसे अलंकृत करें॥

तं सभा च समितिश्च सेना च ॥१॥

अथर्व० कां० १५। अनु० २। व० ६। मं० २॥

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥२॥

अथर्व० कां० १९ अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

(तम्) उस राजधर्मको (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादिकी व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें॥१॥

सभासद् और राजाको योग्य है कि राजा सब सभासदोंको आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभाके योग्य मुख्य सभासद् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभाकी धर्मयुक्त व्यवस्थाका (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभाके योग्य (सभासदः) सभासद् हैं वे भी सभाकी व्यवस्थाका पालन किया करें॥ २॥

इसका अभिप्राय यह है कि एकको स्वतन्त्र राज्यका अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजाके आधीन और प्रजा राजसभाके आधीन रहे यदि ऐसा न करोगे तोः—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥

शत० कां० १३। प्र० २। ब्रा० ३। [कं० ७। ८]

जो प्रजासे स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्याहन्ति) राज्यमें प्रवेश करके प्रजाका नाश किया करें जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः)

प्रजाका नाशक होता है अर्थात (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजाको खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एकको राज्यमें स्वाधीन न करना चाहिये जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशुको मारकर खालेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजाका नाश करता है अर्थात् किसीको अपनेसे अधिक न होने देता श्रीमान्‌को लूट खूट अन्यायसे दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा, इसलिये:—

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह॥ अथर्व कां० ६। १०। ६८। १॥

हे मनुष्यो! जो (इह) इस मनुष्यके समुदायमें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यका कर्त्ता शत्रुओंको (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओंसे पराजित न हो (राजसु) राजाओंमें (अधिराज) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होनेको अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सबका माननीय (भव) होवे उसीको सभापति राजा करे।

इमन्देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय॥

यजु० अ० ६। मं० ४०॥

हे (देवाः) विद्वानो राजप्रजाजनो तुम (इमम्) इस प्रकारके पुरुषको (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्त्ति राज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सबसे बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े २ विद्वानोंसे युक्त राज्य पालने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धनके

पालनेके लिये (असपत्नꣳसुवध्वम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपात-रहित पूर्ण विद्या विनययुक्त सबके मित्र सभापति राजाको सर्वाधीश मानके सब भूगोल शत्रुरहित करे और—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे । युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ ऋ० मं० १ । सू० ३९ । मं० २ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र और शतघ्नी अर्थात् तोप भुशुण्डी अर्थात् बन्दूक धनुष बाण तलवार आदि शस्त्र शत्रुओंके (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे) और रोकनेके लिये (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हरी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उसके लिये पूर्व वस्तु मत हों अर्थात् जबतक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट होजाता है । महाविद्वानोंको विद्या-सभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानोंको धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषोंको राजसभाके सभासद् और जो उन सबमें सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभाका पतिरूप मानके सब प्रकारसे उन्नति करें । तीनों सभाओंकी सम्मतिसे राज-नीतिके उत्तम नियम और नियमोंके आधीन सब लोग वर्तें सबके हितकारक कामोंमें सम्मति करें सर्वहित करनेके लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामोंमें अर्थात् जो २ निजके काम हैं उन २ में स्वतन्त्र रहें। पुनः उस सभापतिके गुण कैसे होने चाहियेः—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।

चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥१॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥२॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥३॥

मनु० [७ । ४ । ६ । ७ [

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत्के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता वायुके समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदयकी बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीशके समान वर्त्तनेवाला, सूर्य्यके समान न्याय धर्म विद्याका प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्यायका निरोधक, अग्निके समान दुष्टोंको भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवालेके सदृश दुष्टोंको अनेक प्रकारसे बांधने वाला, चन्द्रके तुल्य श्रेष्ठ पुरुषोंको आनन्ददाता, धनाध्यक्षके समान कोशोंका पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥ १ ॥

जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनोंको अपने तेजसे तपानेहारा जिसको पृथिवीमें करड़ी दृष्टिसे देखनेको कोई भी समर्थ न हो ॥ २ ॥

और जो अपने प्रभावसे अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम धर्म, प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टोंका बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे वही सभाध्यक्ष सभेश होनेके योग्य होवे ॥ ३ ॥ सच्चा राजा कौन है:—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥२॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥३॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोक प्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥४॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चे साधु पश्यति ॥५॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥६॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥७॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥८॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥९॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥१०॥

मनु० [७॥ १७-१९। २४-२८। ३०। ३१]

जो दंड है वही पुरुष, राजा, वही न्यायका प्रचारकर्त्ता और सबका शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमोंके धर्मका प्रतिभू अर्थात् ज़ामिन है॥ १॥

वही राजाका शासनकर्त्ता सब प्रजाका रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनुष्योंमें जागता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग दंडहीको धर्म कहते हैं ॥२॥

जो ं र अच्छे प्रकार विचारसे धारण किया जाय तो वह सब प्रजाको ।ान्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब आरसे राजाका विनाश कर देता है ॥ ३ ॥

विना दंडके सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न होजायें। दंडके यथावत् न होनेसे सब लोगोंका प्रकोप होजावे ॥ ४ ॥

जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुषके समान पापोंका नाश करनेहारा दंड विचरता है वहां प्रजा मोहको प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दंडका चलानेवाला पक्षपात रहित विद्वान हो तो ॥ ५ ॥

जो उस दंडका चलानेवाला सत्यवादी विचारके करनेहारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और कामकी सिद्धि करनेमें पंडित राजा है उसीको उस दंडका चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६ ॥

जो दंडको अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिको बढ़ाता है और जो विषयमें लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दंडसे ही मारा जाता है ॥ ७ ॥

जब दंड बड़ा तेजोमय है उसको अविद्वान अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दंड धर्मसे रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है ॥ ८ ॥

क्योंकि जो आप्त पुरुषोंके सहाय, विद्या, सुशिक्षासे रहित, विषयोंमें आसक्त मूढ़ है वह न्यायसे दंडको चलानेमें समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषोंका सङ्गी यथावत् नीति शास्त्रके अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषोंके सहायसे युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दंडके चलानेमें समर्थ होता है ॥ १० ॥

इसलिये:—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१॥
दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥२॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥३॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥४॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥५॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥६॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥७॥

मनु० [१२ ॥ १०० । ११०–११५]

सब सेना और सेनापतियोंके ऊपर राज्याधिकार, दंड देनेकी व्यवस्था के सब कार्योंका आधिपत्य और सबके ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश, राज्याधिकार इन चारों अधिकारोंमें संपूर्ण वेद शास्त्रोंमें प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनोंको स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओंमें पूर्ण विद्वान् होने चाहियें ॥ १ ॥

न्यूनसे न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानोंकी सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्थाका उल्लङ्घन

कोई भी न करे ॥ २ ॥

इस सभामें चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदिके वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानोंसे न्यून न होने चाहिये ॥ ३ ॥

और जिस सभामें ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदके जाननेवाले तीन सभासद् हो के व्यवस्था करें उस सभाकी की हुई व्यवस्थाको भी कोई उल्लंघन न करे ॥ ४ ॥

यदि एक अकेला सब वेदोंका जाननेहारा द्विजोंमें उत्तम संन्यासी जिस धर्मकी व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियोंके सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये ॥ ५ ॥

जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचारसे रहित जन्ममात्रसे शूद्रवत् वर्त्तमान है उन सहस्रों मनुष्योंके मिलनेसे भी सभा नहीं कहाती ॥ ६ ॥

जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदोंके न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्मको कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खोंके कहे हुए धर्मके अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकारके पाप लग जाते हैं ॥ ७ ॥

इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा धर्मसभा और राजसभाओंमें मूर्खोंको कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषोंका स्थापन करे और सब लोग ऐसेः—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः ।१।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।२।

दश काम समुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥४॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥५॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥६॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥७॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥८॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥९॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥१०॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥११॥

मनु० [७ ॥ ४३-५३]

राजा और राजसभाके सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदोंकी कर्मोपासना ज्ञान विद्याओंके जानने वालोंसे तीनों विद्या

सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्माके गुण कर्म स्वभावरूपको यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोकसे वार्त्ताओंका आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें ॥ १ ॥

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियोंको जीतने अर्थात् अपने वशमें रखके सदा धर्ममें वर्त्तें और अधर्मसे हटे हटाए रहें इसलिये रात दिन नियत समयमें योगाभ्यास भी करते रहैं क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते विना बाहरकी प्रजाको अपने वशमें स्थापन करनेको समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ २ ॥

दृढ़ोत्साही होकर जो कामसे दश और क्रोधसे आठ दुष्ट व्यसन कि जिनमें फंसा हुआ मनुष्य कठिनतासे निकल सके उनको प्रयत्नसे छोड़ और छुड़ा देवे ॥ ३ ॥

क्योंकि जो राजा कामसे उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनोंमें फंसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्मसे रहित होजाता है और जो क्रोधसे उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनोंमें फंसता है वह शरीरसे भी रहित होजाता है ॥ ४ ॥

कामसे उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखो—मृगया खेलना (अक्ष) अर्थात् चौपड़ खेलना जुआ खेलनादि, दिनमें सोना, कामकथा वा दूसरेकी निन्दा किया करना, स्त्रियोंका अति संग मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदिका सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं ॥ ५ ॥

क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंको गिनाते हैं—"पैशुन्यम्" अर्थात् चुगली करना, विना विचारे बलात्कारसे किसीकी स्त्री से बुरा काम करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या, अर्थात् दूसरेकी बड़ाई वा उन्नति देखकर जला करना, "असूया" दोषोंमें गुण, गुणोंमें दोषारोपण करना, "अर्थदूषण"

अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामोंमें धनादिका व्यय करना, कठोर वचन बोलना और विना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोधसे उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजोंका मूल जानते हैं कि जिससे वे सब दुर्गुण मनुष्यको प्राप्त होते हैं उस लोभको प्रयत्नसे छोड़े ॥ ७ ॥

कामके व्यसनोंमें बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्योंका सेवन, दूसरा पासों आदिसे जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियोंका विशेष सङ्ग, चौथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं ॥ ८ ॥

और क्रोधजोंमें विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादिका अन्यायमें खर्च करना ये तीन क्रोधसे उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं ॥ ९ ॥

जो ये ७ दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषोंमें गिने हैं इनमें से पूर्व २ अर्थात् व्यर्थ व्ययसे कठोर वचन, कठोर वचनसे [अन्याय] अन्यायसे दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है ॥ १० ॥

इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसनमें फंसनेसे मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ गति अर्थात् अधिक २ दुःखको प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसनमें नहीं फंसा वह मर भी जायगा तो भी सुखको प्राप्त होता जायगा इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्योंको उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामोंमें न फंसे और दुष्ट व्यसनोंसे पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावोंमें सदा वर्त्तके अच्छे अच्छे काम किया करें ॥ ११ ॥

राजसभासद् और मंत्री कैसे होने चाहियें:—

मौलान् शास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् ।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥१॥
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥२॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥३॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानाञ्च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥४॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥५॥
निवर्त्ततास्य यावद्भिरितिकर्त्तव्यता नृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ।६।
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥७॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥८॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥९॥

मनु० [७ ॥ ५४—५७ । ६०—६४]

स्वराज्य स्वदेशमें उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन,

अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान" अर्थात् मंत्री करे ॥ १ ॥

क्योंकि विशेष सहायके विना जो सुगम कर्म है वह भी एकके करनेमें कठिन होजाता है जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एकसे कैसे हो सकता है ? इसलिये एकको राजा और एककी बुद्धि पर राज्यके कार्य्यका निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है ॥२॥

इससे सभापतिको उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मोंमें कुशल विद्वान् मन्त्रियोंके साथ सामान्य करके किसीसे (सन्धि) मित्रता किसीसे (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समयको देखके चुपचाप रहना अपने राज्यकी रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदिकी रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हों उस २ में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणोंका विचार नित्यप्रति किया करें ॥ ३ ॥

विचारसे करना कि उन सभासदोंका पृथक् २ अपना २ विचार और अभिप्रायको सुनकर बहुपक्षानुसार कार्योंमें जो कार्य अपना और अन्यका हितकारक हो वह करने लगना ॥ ४ ॥

अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान, निश्चितबुद्धि, पदार्थोंके संग्रह करनेमें अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे ॥ ५ ॥

जितने मनुष्योंसे राज्यकार्य्य सिद्ध होसकें उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषोंको अधिकारी अर्थात् नौकर करे ॥ ६ ॥

इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्योंको बड़े २ कर्मोंमें और भीरू डरनेवालोंको भीतरके कर्मोंमें नियुक्त करे ॥७॥

जो प्रशंसित कुलमें उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टासे भीतर हृदय और भविष्यत्में होनेवाली बातको जाननेहारा सब शास्त्रोंमें विशारद चतुर है, उस दूतको भी रक्खे ॥ ८ ॥

वह ऐसा हो कि राज काममें अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समयकी बातको भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमानका कर्त्ता सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजाका दूत होनेमें प्रशस्त है ॥ ६ ॥

किस २ को क्या २ अधिकार देना योग्य है:—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥१॥
दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥२॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥३॥
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।
नृ-दुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥४॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दश सहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥५॥
तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥६॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥७॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥८॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।

तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वै तानि कानि च ।९।

मनु० [७ ॥ ६५ । ६६ । ६८ । ७० । ७४—७८]

अमात्यको दण्डाधिकार, दण्डमें विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजाके आधीन कोश और राजकार्य्य तथा सभाके आधीन सब कार्य्य और दूतके आधीन किसीसे मेल वा विरोध करना अधिकार देवे ॥ १ ॥

दूत उसको कहते हैं जो फूटमें मेल और मिले हुए दुष्टोंको फोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओंमें फूट पड़े ॥ २ ॥

वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थसे दूसरे विरोधी राजाके राज्यका अभिप्राय जानके वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपनेको पीड़ा न हो ॥ ३ ॥

इसलिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त देशमें (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषोंसे गहन (महीदुर्गम्) मट्टीसे किया हुआ (अब्दुर्गम्) जलसे घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थात् चारों ओर बन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ोंके बीचमें कोट बनाके इसके मध्यमें नगर बनावे ॥ ४ ॥

और नगरके चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौके साथ और सौ दश हजारके साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्गका बनाना उचित है ॥ ५ ॥

वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पि) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकारकी कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदिसे सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥

उसके मध्यमें जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकारसे रक्षित सब ऋतुओंमें सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्य्यका निर्वाह हो वैसा बनवावे ॥ ७ ॥

इतना अर्थात् ब्रह्मचर्यसे विद्या पढ़के यहांतक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य्यरूप गुणयुक्त हृदयको अतिप्रिय बड़े उत्तम कुलमें उत्पन्न सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुलकी कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभावमें हो उस एक ही स्त्रीके साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियोंको अगम्य समझ कर दृष्टिसे भी न देखे ॥ ८ ॥

पुरोहित और ऋत्विजूका स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघरके कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य्यमें तत्पर रहे अर्थात् यही राजाका सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्यमें प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना ॥ ९ ॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु ॥१॥
अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥२॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते ॥३॥
समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्त्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥४॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥५॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥६॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।

नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥७॥
नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्त्तं नातिपरीक्षितम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥८॥
यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः।
भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥९॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥१०॥
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ।११।
राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥१२॥

मनु० [७ ॥ ८०-८२ । ८७ । ८९ । ९१-९७]

वार्षिक कर आप्तपुरुषोंके द्वारा ग्रहण करे और जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुकूल होकर प्रजाके साथ पिताके समान वर्त्तें ॥ १ ॥

उस राज्यकार्यमें विविध प्रकारके अध्यक्षोंको सभा नियत करे इनका यही काम है जितने २ जिस २ काममें राजपुरुष हों वे नियमानुसार वर्त्त कर यथावत् काम करते हैं वा नहीं जो यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड किया करें ॥ २ ॥

सदा जो राजाओंका वेदप्रचाररूप अक्षय कोष है इसके प्रचारके लिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्यसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़कर गुरुकुलसे आवे उनका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका भी

जिनके पढ़ाये हुये विद्वान होवें ॥ ३ ॥

इस बातके करनेसे राज्यमें विद्याकी उन्नति होकर अत्यन्त उन्नति होती है जब कभी प्रजाका पालन करने वाले राजाको कोई अपनेसे छोटा, तुल्य और उत्तम संग्राममें आह्वान करे तो क्षत्रियोंके धर्मका स्मरण करके संग्राममें जानेसे कभी निवृत्त न हो अर्थात् बड़ी चतुराईके साथ उनसे युद्ध करे जिससे अपना ही विजय हो ॥ ४ ॥

जो संग्रामोंमें एक दूसरेको हनन करनेकी इच्छा करते हुए राजा लोग जितना अपना सामर्थ्य हो विना डर पीठ न दिखा युद्ध करते हैं वे सुखको प्राप्त होते हैं इससे विमुख कभी न हो, किन्तु कभी २ शत्रुको जीतनेके लिये उनके सामनेसे छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकारसे शत्रुको जीत सके वैसे काम करें जैसा सिंह क्रोधसे सामने आकर शस्त्राग्निमें शीघ्र भस्म होजाता है वैसे मूर्खतासे नष्ट भ्रष्ट न हो जावें ॥ ५ ॥

युद्ध समयमें न इधर उधर खड़े, न नपुन्सक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिरके बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न "मैं तेरे शरण हूं" ऐसेको ॥ ६ ॥

न सोते हुए, न मूर्छाको प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुधसे रहित न युद्ध करते हुओंको देखने वालों, न शत्रुके साथी ॥ ७ ॥

न आयुधके प्रहारसे पीड़ाको प्राप्त हुए, न दुःखी न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुषको, सत्पुरुषोंके धर्मका स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें किन्तु उनको पकड़ के जो अच्छे हों बन्दीगृहमें रखदे और भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिढ़ावे न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के बालोंको अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियोंको भी पाले। उनको अपनी बहिन और

कन्याके समान समझे, कभी विषयासक्तिकी दृष्टिसे भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिनमें पुनः २ युद्ध करनेकी शङ्का न हो उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने २ घर वा देशको भेज देवे और जिनसे भविष्यत् कालमें विघ्न होना सम्भव हो उनको सदा कारागारमें रक्खे ॥ ८॥

और जो पलायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओंमें मारा जाय वह उस स्वामीके अपराधको प्राप्त होकर दण्डनीय होवे ॥९॥

और जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक और परलोकमें सुख होनेवाला था उसको उसका स्वामी ले लेता है जो भागा हुआ मारा जाय उसको कुछ भी सुख नहीं होता उसका पुण्यफल सब नष्ट हो जाता और उस प्रतिष्ठाको वह प्राप्त हो जिसने धर्मसे यथावत् युद्ध किया हो ॥ १० ॥

इस व्यवस्थाको कभी न तोड़े कि जो २ लड़ाईमें जिस जिस भृत्य वा अध्यक्षने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियाँ तथा अन्य प्रकारके सब द्रव्य और घी, तेल आदिके कुप्पे जीते हों वही उसका ग्रहण करे ॥ ११ ॥

परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थोंमेंसे सोलहवां भाग राजाको देवें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओंको उस धनमेंसे जो सबने मिलके जीता हो, सोलहवां भाग देवें। और जो कोई युद्धमें मर गया हो उसकी स्त्री और सन्तानको उसका भाग देवे उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कोंका यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्यकी वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धिकी इच्छा रखता हो वह इस मर्य्यादाका उल्लंघन कभी न करे ॥ १२ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ।२।
अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन मायया ।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः ॥३॥
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥४॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥५॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।
तानानयेद्वशं सर्वान् समादिभिरुपक्रमैः ॥६॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥७॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।८।
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ।९।
राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥१०॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥११॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥१२॥
ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ।१३।
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥१४॥
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ।१५।
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥१६॥
स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥१७॥
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजा ।१८।
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥१९॥

मनु० [७ ॥ ९९ । १०१ । १०४-१०७ । ११५-११९ । १२०-१२४]

राजा और राजसभा अलब्धकी प्राप्तिकी इच्छा प्राप्तकी प्रयत्नसे रक्षा करे, रक्षितको बढ़ावे और बढ़े हुए धनको वेदविद्या, धर्मका प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथोंके पालनमें लगावे ॥ १ ॥

इस चार प्रकारके पुरुषार्थके प्रयोजनको जाने । आलस्य छोड़कर

इसका भलीभांति नित्य अनुष्ठान करे। दण्डसे अप्राप्तकी प्राप्तिकी इच्छा, नित्य देखनेसे प्राप्तकी रक्षा, रक्षितकी वृद्धि अर्थात् व्याजादिसे बढ़ावे और बढ़े हुए धनको पूर्वोक्त मार्गमें नित्य व्यय करे॥ २॥

कदापि किसीके साथ छलसे न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सबसे वर्त्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके शत्रुके किये हुए छलको जानके निवृत्त करे॥ ३॥

कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलताको न जान सके और स्वयं शत्रुके छिद्रोंको जानता रहे जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको गुप्त रखता है वैसे शत्रुके प्रवेश करनेके छिद्रको गुप्त रक्खे॥ ४॥

जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मच्छके पकड़नेको ताकता है वैसे अर्थसंग्रहका विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बलकी वृद्धि कर शत्रुको जीतनेके लिये सिंहके समान पराक्रम करे, चीताके समान छिपकर शत्रुओंको पकड़े और समीपमें आये बलवान् शत्रुओंसे सस्साके समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छलसे पकड़े॥५॥

इस प्रकार विजय करनेवाले सभापतिके राज्यमें जो परिपन्थी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उनको (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़ तोड़ करके वशमें करे और जो इनसे वशमें न हों तो अतिकठिन दंडसे वशमें करे॥ ६॥

जैसे धान्यका निकालने वाला छिलकोंको अलग कर धान्यकी रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरोंको मारे और राज्यकी रक्षा करे॥ ७॥

जो राजा मोहसे, अविचारसे अपने राज्यको दुर्बल करता है वह राज्य और अपने बन्धु सहित जीवनसे पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है॥ ८॥

जैसे प्राणियोंके प्राण शरीरोंको कृषित करनेसे क्षीण हो जाते हैं वैसे ही प्रजाओंको दुर्बल करनेसे राजाओंके प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित नष्ट होजाते हैं॥ ९॥

इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य्यकी सिद्धिके लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों जो राजा राज्य-पालनमें सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है ॥१०॥

इसलिये दो, तीन, पांच और सौ ग्रामोंके बीचमें एक राज्यस्थान रक्खे जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषोंको रखकर सब राज्यके कार्य्योंको पूर्ण करे॥ ११ ॥

एक २ ग्राममें एक २ प्रधान पुरुषको रक्खे उन्हीं दश ग्रामोंके ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामोंके ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामोंके ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामोंके ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राममें एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामोंमें एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तह-सील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्रसे राजनीतिका प्रकार लिया है ॥ १२ ॥

इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक २ ग्रामोंका पति ग्रामोंमें नित्यप्रति जो जो दोष उत्पन्न हों उन २ को गुप्ततासे दश ग्रामके पतिको विदित करदे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्रामके स्वामीको दश ग्रामोंका वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे ॥१३॥

और बीस ग्रामोंका अधिपति बीस ग्रामोंके वर्त्तमानको शतग्रामा-धिपतिको नित्यप्रति निवेदन करे वैसे सौ २ ग्रामोंके पति आप सहस्रा-धिपति अर्थात् हज़ार ग्रामोंके स्वामीको सौ २ ग्रामोंके वर्त्तमानको प्रतिदिन जनाया करें। और बीस २ ग्रामके पांच अधिपति सौ सौ ग्रामके अध्यक्षको और वे सहस्र २ के दश अधिपति दशसहस्रके अधि-पतिको और लक्षग्रामोंकी राजसभाको प्रतिदिनका वर्त्तमान जनाया करें और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्ति महारा-जसभामें सब भूगोलका वर्त्तमान जनाया करें ॥ १४ ॥

और एक २ दश २ सहस्र ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिन-में एक राजसभामें दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि

राजपुरुषोंके कामोंको सदा घूमकर देखते रहें ॥ १५ ॥

बड़े २ नगरोंमें एक २ विचार करनेवाली सभाका सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक २ घर बनावें उसमें बड़े २ विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्यासे सब प्रकारकी परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें जिन नियमोंसे राजा और प्रजाकी उन्नति हो वैसे २ नियम और विद्या प्रकाशित किया करें ॥ १६ ॥

जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतोंको रक्खे जो राजपुरुष और भिन्न २ जातिके रहें उनसे सब राज और प्रजापुरुषोंके सब दोष और गुण गुप्तरीतिसे जाना करे जिनका अपराध हो उनको दंड और जिनका गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे ॥ १७ ॥

राजा जिनको प्रजाकी रक्षाका अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर डाकुओंको भी नौकर रखके उनको दुष्ट कर्मसे बचानेके लिये राजाके नौकर करके उन्हीं रक्षा करनेवाले विद्वानोंके स्वाधीन करके उनसे इस प्रजाकी रक्षा यथावत् करे ॥ १८ ॥

जो राजपुरुष अन्यायसे वादी प्रतिवादीसे गुप्त धन लेके पक्षपातसे अन्याय करे उसका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देशमें रक्खे कि जहांसे पुनः लौटकर न आसके क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जाय तो उसको देखके अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट कर्म करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहैं, परन्तु जितनेसे उन राजपुरुषोंका योगक्षेम भलीभांति हो और वे भलीभांति धनाढ्य भी हों उतना धन वा भूमि राज्यकी ओरसे मासिक वा वार्षिक अथवा एक वार मिला करे और जो वृद्ध हों उनको भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यानमें रक्खें कि जबतक वे जियें तबतक वह जीविका बनी रहै पश्चात् नहीं, परन्तु इनके सन्तानोंका सत्कार वा नौकरी उनके गुणके अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जबतक समर्थ हों और

उनकी स्त्री जीती हो तो उन सबके निर्वाहार्थ राजकी ओरसे यथा-योग्य धन मिला करे परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मी होजायें तो कुछ भी न मिले ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे ॥ १६ ॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१॥
यथाल्पाऽल्पमदन्त्याऽऽद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ।२।
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥३॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः ॥४॥
एवं सर्वं विधायेदमिति कर्त्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥५॥
विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥६॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥७॥

मनु० [७ ॥ १२८ । १२९ । १३९ । १४० । १४२-१४४]

जैसे राजा और कर्मोंका कर्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फलसे युक्त होवे वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्यमें कर स्थापन करे ॥ १ ॥

जैसे जोंक बछड़ा और भँवरा थोड़े २ भोग्य पदार्थको ग्रहण

करते हैं वैसे राजा प्रजासे थोड़ा २ वार्षिक कर लेवे ॥ २ ॥

अतिलोभसे अपने वा दूसरोंके सुखके मूलको उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे क्योंकि जो व्यवहार और सुखके मुलका छेदन करता है वह अपने [को] और उन को पीड़ा ही देता है ॥ ३ ॥

जो महीपति कार्य्यको देखके तीक्ष्ण और कोमल भी होवे वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहनेसे राजा अतिमाननीय होता है ॥ ४ ॥

इस प्रकार सब राज्यका प्रबन्ध करके सदा इसमें युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजाका पालन निरन्तर करे ॥ ५ ॥

जिस भृत्यसहित देखते हुए राजाके राज्यमेंसे डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजाके पदार्थ और प्राणोंको हरते रहते हैं वह जानो भृत्य अमात्यसहित मृतक है जीता नहीं और महा दुःखका पाने वाला है ॥ ६ ॥

इसलिये राजाओंका प्रजापालन करना ही परमधर्म है और जो मनुस्मृतिके सप्तमाध्यायमें कर लेना लिखा है और जैसा सभा नियत करे उसका भोक्ता राजा धर्मसे युक्त होकर सुख पाता है इससे विपरीत दुःखको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणाँश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥१॥
तत्र स्थिताः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥२॥
गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥३॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।

स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ।४।

मनु० [७ । १४५—१४८]

जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वरका ध्यान अग्निहोत्र धार्मिक विद्वानोंका सत्कार और भोजन करके भीतर सभामें प्रवेश करे ॥ १ ॥

वहां खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों उनको मान्य दे और उनको छोड़कर मुख्य मन्त्रीके साथ राज्यव्यवस्थाका विचार करे ॥२॥

पश्चात् उसके साथ घूमनेको चला जाय पर्वतकी शिखर अथवा एकान्त घर वा जंगल जिसमें एक शलाका भी न हो वैसे एकान्त स्थानमें बैठकर विरुद्ध भावनाको छोड़ मन्त्रीके साथ विचार करे ॥३॥

जिस राजाके गूढ़ विचारको अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारार्थ सदा गुप्त रहे वह धनहीन भी राजा सब पृथिवीके राज्य करनेमें समर्थ होता है इसलिये अपने मनसे एक भी काम न करे कि जबतक सभासदोंकी अनुमति न हो ॥ ४ ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥१॥
संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥२॥
समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तथा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥३॥
स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥४॥
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥

संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥५॥
क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥६॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥७॥
अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानः स शत्रुभिः।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥८॥
यदावच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत् ।९।
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥१०॥
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥११॥
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीन् ॥१२॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥१३॥
यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ।१४।
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योरिबलस्य च।

उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥१५॥
यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशंकः समाचरेत् ॥१६॥

मनु० [७ ॥ १६१-१७६]

सब राजादि राजपुरुषोंको यह बात लक्ष्यमें रखने योग्य है जो (आसन) स्थिरता (यान) शत्रुसे लड़नेके लिये जाना (सन्धी) उनसे मेल करलेना (विग्रह) दुष्ट शत्रुओंसे लड़ाई करना (द्वैध०) दो प्रकारकी सेना करके स्वविनय कर लेना और (संश्रय) निर्बलतामें दूसरे प्रबल राजाका आश्रय लेना ये छः प्रकारके कर्म यथायोग्य कार्य्यको विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये ॥ १ ॥

राजा जो संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो २ प्रकारके होते हैं उनको यथावत् जाने ॥ २ ॥

(सन्धि) शत्रुसे मेल अथवा उससे विपरीतता करे परन्तु वर्त्तमान और भविष्यत्में करनेके काम बराबर करता जाय यह दो प्रकारका मेल कहाता है ॥ ३ ॥

(विग्रह) कार्य्यसिद्धिके लिये उचित समय वा अनुचित समयमें स्वयं किया वा मित्रके अपराध करनेवाले शत्रुके साथ विरोध दो प्रकारसे करना चाहिये ॥ ४ ॥

(यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होनेमें एकाकी वा मित्रके साथ मिलके शत्रुकी ओर जाना यह दो प्रकारका गमन कहाता है ॥५॥

स्वयं किसी प्रकार क्रमसे क्षीण होजाय अर्थात् निर्बल होजाय अथवा मित्रके रोकनेसे अपने स्थानमें बैठ रहना यह दो प्रकारका आसन कहाता है ॥ ६ ॥

कार्य्यसिद्धिके लिये सेनापति और सेनाके दो विभाग करके विजय करना दो प्रकारका द्वैध कहाता है ॥ ७ ॥

एक किसी अर्थकी सिद्धिके लिये किसी बलवान् राजा वा किसी

महात्माका शरण लेना जिससे शत्रुसे पीड़ित न हो दो प्रकारका आश्रय लेना कहाता है ॥ ८ ॥

जब यह जान ले कि इस समय युद्ध करनेसे थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात् करनेसे अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगी तब् शत्रुसे मेल करके उचित समय तक धीरज करे ॥ ९ ॥

जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपनेको भी समझे तभी शत्रुसे विग्रह (युद्ध) कर लेवे ॥ १० ॥

जब अपने बल अर्थात् सेनाको हर्ष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भावसे जाने और शत्रुका बल अपनेसे विपरीत निर्बल हो जावे तब शत्रुकी ओर युद्ध करनेके लिये जावे ॥ ११ ॥

जब सेना बल वाहनसे क्षीण होजाय तब शत्रुओंको धीरे २ प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थानमें बैठा रहे ॥ १२ ॥

जब राजा शत्रुको अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुण वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य सिद्ध करे ॥ १३ ॥

जब आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओंकी चढ़ाई मुझपर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान् राजाका आश्रय शीघ्र ले लेवे ॥१४॥

जो प्रजा और अपनी सेना शत्रुके बलका निग्रह करे अर्थात् रोके उसकी सेवा सब यत्नोंसे गुरुके सदृश नित्य किया करे ॥ १५ ॥

जिसका आश्रय लेवे उस पुरुषके कर्मोंमें दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे ॥ १६ ॥

जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो उसीके जीतनेके लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है ।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥१॥

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥२॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥३॥
यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥४॥

मनु० [७ ॥ १७७–१८०]

नीतिका जाननेवाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन (मध्यस्थ) और शत्रु अधिक न हों ऐसे सब उपायोंसे वर्त्तें ॥१

सब कार्योंका वर्तमानमें कर्त्तव्य और भविष्यत्में जो २ करना चाहिये और जो २ काम कर चुके उन सबके यथार्थतासे गुण दोषोंको विचार करे ॥ २ ॥

पश्चात् दोषोंके निवारण और गुणोंकी स्थिरतामें यत्न करे जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करनेवाले कर्मोंमें गुण दोषोंका ज्ञाता वर्तमानमें तुरन्त निश्चयका कर्त्ता और किये हुए कार्योंमें शेष कर्तव्य को जानता है वह शत्रुओंसे पराजित कभी नहीं होता ॥ ३ ॥

सब प्रकारसे राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनोंके मित्र उदासीन और शत्रुको वशमें करके अन्यथा न करावे ऐसे मोहमें कभी न फँसे यही संक्षेपसे विनय अर्थात् राजनीति कहाती है ॥ ४ ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च ॥१॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥२॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥३॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥४॥
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद् बलम्।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत तदा स्वयम् ॥५॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशंकेत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशाम् ॥६॥
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥७॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥८॥
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥९॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥१०॥
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥११॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥१२॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥१३॥
आदानमप्रियकरं दानश्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥१४॥

मनु० [७ ॥ १८४-१९२ । १९४-१९६ । २०३ । २०४]

जब राजा शत्रुओंके साथ युद्ध करनेको जावे तब अपने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध और यात्राकी सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओरके समाचारोंको देनेवाले पुरुषोंको गुप्त स्थापन करके शत्रुओंकी ओर युद्ध करनेको जावे ॥ १ ॥

तीन प्रकारके मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में तीसरा आकाशमार्गोंको शुद्ध बनाकर भूमि-मार्गमें रथ, अश्व, हाथी, जलमें नौका और आकाशमें विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र और अस्त्र खानपानादि सामग्रीको यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्तको प्रसिद्ध करके शत्रुके नगरके समीप धीरे २ जावे ॥ २ ॥

जो भीतरसे शत्रुसे मिला हो और अपने साथ भी ऊपरसे मित्रता रक्खे गुप्ततासे शत्रुको भेद देवे उसके आने जानेमें उससे बात करनेमें अत्यन्त सावधानी रक्खे क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुषको बड़ा शत्रु समझना चाहिये ॥ ३ ॥

सब राजपुरुषोंको युद्ध करनेकी विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनोंको सिखावे जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ लड़ा जानते हैं जब शिक्षा करे तब (दण्डव्यूह) दण्डके समान सेनाको चलावे (शकट०) जैसा शकट अर्थात् गाड़ीके समान (वराह०) जैसे सुवर एक दूसरेके पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी २ सब मिलकर झुण्ड होजाते हैं वैसे (मकर०) जैसे मगर

पानीमें चलते हैं वैसे सेनाको बनावे (सूचीव्यूह) जैसे सूईका अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षासे सेनाको बनाने, जैसे (नीलकण्ठ) ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेनाको बनाकर लड़ावे ॥ ४ ॥

जिधर भय विदित हो उसी ओर सेनाको फैलावे, सब सेनाके पतियोंको चारों ओर रखके (पद्मव्यूह) अर्थात् पद्माकार चारों ओरसे सेनाओंको रखके मध्यमें आप रहै ॥ ५ ॥

सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञाका देने और सेनाके साथ लड़ने लड़ानेवाले वीरोंको आठों दिशाओंमें रक्खे, जिस ओरसे लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेनाका मुख रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे, नहीं तो पीछे वा पार्श्वसे शत्रुकी घात होनेका सम्भव होता है ॥ ६ ॥

जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भोंके तुल्य युद्धविद्यासे सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करनेमें चतुर भयरहित और जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार न हो उनको चारों ओर सेनाके रक्खे ॥ ७ ॥

जो थोड़ेसे पुरुषोंसे बहुतोंके साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावे और काम पड़े तो उन्हींको झट फैला देवे जब नगर दुर्ग वा शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब (सूचीव्यूह) अथवा (वज्रव्यूह) जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर काट [करता वैसे] युद्ध करते जायं और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकारके व्यूह अर्थात् सेनाको बनाकर लड़ावे जो सामने शतघ्नी (तोप) वा भुशुण्डी (बन्दूक) छूट रही हो तो (सर्पव्यूह) अर्थात् सर्पके समान सोते २ चले जायें जब तोपोंके पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपोंका मुख शत्रुकी ओर फेर उन्हीं तोपोंसे वा बन्दूक आदिसे उन शत्रुओंको अथवा वृद्ध पुरुषोंको तोपोंके मुखके सामने घोड़ों पर सवार करा और मारें बीचमें अच्छे २ सवार रहें एक वार धावा कर

शत्रुकी सेनाको छिन्न भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें ॥ ८ ॥

जो समरभूमिमें युद्ध करना हो तो रथ घोड़े और पदातियोंसे और जो समुद्रमें युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जलमें हाथियों पर, वृक्ष और झाड़ीमें बाण तथा स्थल बालूमें तलवार और ढालसे युद्ध करें करावें ॥ ९ ॥

जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़नेवालोंको उत्साहित और हर्षित करें जब युद्ध बन्द होजाय तब जिससे शौर्य और युद्धमें उत्साह हो वैसे वक्तृत्वोंसे सबके चित्तको खान पान अस्त्र शस्त्र सहाय और औषधादिसे प्रसन्न रक्खे व्यूहके विना लड़ाई न करे न करावे, लड़ती हुई अपनी सेनाकी चेष्टाको देखा करे कि ठीक २ लड़ती है वा कपट रखती है ॥ १० ॥

किसी समय उचित समझे तो शत्रुको चारों ओरसे घेर कर रोक रक्खे और इसके राज्यको पीड़ित कर शत्रुके चारा, अन्न, जल और इन्धनको नष्ट दूषित करदे ॥ ११ ॥

शत्रु [के] तालाव नगरके प्रकोट और खाईको तोड़ फोड़ दे, रात्रिमें उनको (त्रास) भय देवे और जीतनेका उपाय करे ॥ १२ ॥

जीत कर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो उसीके वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुषको राजा करदे और उससे लिखा लेवे कि तुमको हमारी आज्ञाके अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उसके अनुसार चलके न्यायसे प्रजाका पालन करना होगा ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हारजाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषोंके साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थोंके दानसे करे और ऐसा न करे कि जिससे उसका योगक्षेम भी न हो जो उसको बन्दीगृह करे तो भी उसका सत्कार यथायोग्य रक्खे जिससे वह हारनेके शोकसे रहित होकर आनन्दमें रहे ॥ १२ ॥

क्योंकि संसारमें दूसरेका पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना

प्रीतिका कारण है और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजितके मनोवाञ्छित पदार्थोंका देना बहुत उत्तम है और कभी उसको चिड़ावे नहीं न हंसी और [न] ठट्ठा करे, न उसके सामने हमने तुझको पराजित किया है ऐसा भी कहे, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे ॥ १४ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥१॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥२॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥३॥
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता ।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥४॥

मनु० [७ ॥ २०८-२११]

मित्रका लक्षण यह है कि राजा सुवर्ण और भूमिकी प्राप्तिसे वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत्की बातोंको सोचने और कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्रको भी प्राप्त होके बढ़ता है ॥ १ ॥

धर्मको जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकारको सदा माननेवाले प्रसन्न स्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्रको प्राप्त होकर प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

सदा इस बातको दृढ़ रक्खे कि कभी बुद्धिमान, कुलीन, शूर, वीर चतुर, ज्ञाता, किये हुएको जाननेहारे और धैर्य्यवान् पुरुषको शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसेको शत्रु बनावेगा वह दुःख पावेगा ॥३॥

उदासीनका लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुण युक्त अच्छे बुरे मनुष्योंका ज्ञान, शूर-वीरता और करुणा भी स्थूललक्ष्य अर्थात् ऊपर २ की बातोंको निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है ॥ ४ ॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥

मनु० [७ । २१६]

पूर्वोक्त प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियोंसे विचार कर सभामें जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षोंके साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकारकी व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायत् कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि का] स्थान शस्त्र और अस्त्रका कोश तथा वैद्यालय, धनके कोशोंको देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हों उनको निकाल व्यायामशालामें जा व्यायाम करके [मध्याह्न समय] भोजनके लिये "अंतःपुर" अर्थात् पत्नी आदिके निवासस्थानमें प्रवेश करे और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबलपराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकारके अन्न व्यञ्जन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिससे सदा सुखी रहे, इस प्रकार सब राज्यके कार्योंकी उन्नति किया करे ॥ प्रजासे कर लेनेका प्रकार:—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥

मनु० [७ । १३०]

जो व्यापार करनेवाले वा शिल्पीको सुवर्ण और चांदीका जितना लाभ हो उसमेंसे पचासवां भाग, चावल आदि अन्नोंमें छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे और जो धन लेवे तो भी उस प्रकारसे लेवे कि जिससे किसान आदि खाने पीने और धनसे रहित होकर दुःख न पावें ॥ १ ॥

क्योंकि प्रजाके धनाढ्य आरोग्य खान पान आदिसे सम्पन्न रहने पर राजाकी बड़ी उन्नति होती है प्रजाको अपने सन्तानके सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषोंको जाने यह बात ठीक है कि राजाओंके राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक है जो प्रजा न हो तो राजा किसका? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे? दोनों अपने अपने काममें स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काममें परतन्त्र रहें। प्रजाकी साधारण सम्मतिके विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों राजाकी आज्ञाके विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजाका राजकीय निज काम अर्थात् जिसको "पोलिटिकल" कहते हैं संक्षेपसे कह दिया अब जो विशेष देखना चाहे वह चारों वेद मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारतादिमें देखकर निश्चय करे और जो प्रजाका न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृतिके अष्टम और नवमाध्याय आदिकी रीतिसे करना चाहिये, परन्तु यहां भी संक्षेपसे लिखते हैं:—

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्॥१॥
तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥२॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥३॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च॥४॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥५॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥६॥
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यात्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥७॥
सभां वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥८॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥९॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥१०॥
वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥११॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१२॥
पादो धर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥१३॥
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥१४॥

मनु० [८। ३-८। १२—१९]

सभा राजा और राजपुरुष सब लोग देशाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओंसे निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गोंमें विवादयुक्त

कर्मोंका निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो २ नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होनेकी आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बान्धे कि जिससे राजा और प्रजाकी उन्नति हो ॥ १ ॥

अठारह मार्ग ये हैं उनमेंसे १—(ऋणादान) किसीसे ऋण लेने देनेका विवाद। २—(निक्षेप) धरावट अर्थात् किसीने किसीके पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३—(अस्वामिविक्रय) दूसरे के पदार्थको दूसरा बेंच लेवे। ४—(सम्भूय च समुत्थानम्) मिल मिलाके किसी पर अत्याचार करना। ५—(दत्तस्यानपकर्म च) दिये हुए पदार्थका न देना ॥ २ ॥

६—(वेतनस्यैव चादानम्) वेतन अर्थात् किसीकी "नौकरी" में से लेलेना वा कम देना अथवा न देना। ७—(प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञासे विरुद्ध वर्त्तना। ८—(क्रयविक्रयानुशय) अर्थात् लेन देनमें झगड़ा होना। ९—पशुके स्वामी और पालनेवालेका झगड़ा ॥ ३ ॥

१०—सीमाका विवाद। ११—किसीको कठोर दण्ड देना। १२—कठोर वाणीका बोलना। १३—चोरी डाका मारना। १४—किसी कामको बलात्कारसे करना। १५—किसीकी स्त्री वा पुरुषका व्यभिचार होना ॥ ४ ॥

१६—स्त्री और पुरुषके धर्ममें व्यतिक्रम होना। १७—विभाग अर्थात् दायभागमें वाद उठना। १८—द्यूत अर्थात् जड़पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतनको दावमें धरके जुआ खेलना। ये अठारह प्रकारके परस्पर विरुद्ध व्यवहारके स्थान हैं ॥ ५ ॥

इन व्यवहारोंमें बहुतसे विवाद करनेवाले पुरुषोंके न्यायको सनातनधर्मके आश्रय करके किया करे अर्थात् किसीका पक्षपात कभी न करे ॥ ६ ॥

जिस सभामें अधर्मसे घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्मके कलंकको निकालना और अधर्मका छेदन नहीं करते अर्थात् धर्मीको मान अधर्मीको दण्ड नहीं मिलता उस

सभामें जितने सभासद् हैं वे सब घायलके समान समझे जाते हैं ॥७॥

धार्मिक मनुष्यको योग्य है कि सभामें कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले जो कोई सभामें अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्यायके विरुद्ध बोले वह महापापी होता है ॥ ८ ॥

जिस सभामें अधर्मसे धर्म, असत्यसे सत्य सब सभासदोंके देखते हुए मारा जाता है उस सभामें सब मृतकके समान हैं जानो उनमें कोई भी नहीं जीता ॥ ९ ॥

मरा हुआ धर्म मारनेवालेका नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षककी रक्षा करता है इसलिये धर्मका हनन कभी न करना इस डरसे कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले ॥ १० ॥

जो सब ऐश्वर्योंके देने और सुखोंकी वर्षा करनेवाला धर्म है उसका लोप करता है उसीको विद्वान् लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं इसलिये किसी मनुष्यको धर्मका लोप करना उचित नहीं ॥ ११ ॥

इस संसारमें एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्युके पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीरके नाशके साथ ही नाशको प्राप्त होते हैं अर्थात् सबका संग छूट जाता है ॥ १२ ॥

परन्तु धर्मका संग कभी नहीं छूटता जब राजसभामें पक्षपातसे अन्याय किया जाता है वहां अधर्मके चार विभाग होजाते हैं उनमेंसे एक अधर्मके कर्त्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभाके सभापति राजाको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

जिस सभामें निन्दाके योग्यकी निन्दा, स्तुतिके योग्यकी स्तुति, दण्डके योग्यको दण्ड और मान्यके योग्यका मान्य होता है वहां राजा और सब सभासद् पापसे रहित और पवित्र होजाते हैं पापके कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

अब साक्षी कैसे करने चाहियेः—

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥१॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥२॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥३॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षि द्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥४॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां च हीयते ॥५॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ।
अवांनरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥६॥
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥७॥
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन् ॥८॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्यस्मिन् चेष्टितं मिथः ।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥९॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥१०॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥११॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥१२॥
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥१३॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥१४॥

मनु० [८। ६३। ६८। ७२-७५। ७८-८१। ८३। ८४। ९६। ९१]

सब वर्णोमें धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्मको जाननेवाले, लोभ रहित सत्यवादीको न्यायव्यवस्थामें साक्षी करे इससे विपरीतोंको कभी न करे ॥ १ ॥

स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री, द्विजोंके द्विज, शूद्रोंके शूद्र और अन्त्यजोंके अन्त्यज साक्षी हों ॥ २ ॥

जितने बलात्कार काम चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपात रूप अपराध हैं उनमें साक्षीकी परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी समझे क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं ॥ ३ ॥

दोनों ओरके साक्षियोंमेंसे बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियोंमें उत्तम गुणी पुरुषकी साक्षीके अनुकूल और दोनोंके साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि महर्षि और यतियोंकी साक्षीके अनुसार न्याय करे ॥ ४ ॥

दो प्रकारके साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने और दूसरा सुननेसे, जब सभामें पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्डके योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों ॥ ५ ॥

जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषोंकी सभामें साक्षी देखने और सुननेसे विरुद्ध बोले तो वह (अवाङ्नरक) अर्थात् जिह्वाके छेदनसे दुःखरूप नरकको वर्त्तमान समयमें प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुखसे हीन होजाय ॥ ६ ॥

साक्षीके उस वचनको मानना कि जो स्वभाव ही से व्यवहार सम्बन्धी बोले और इससे भिन्न सिखाये हुए जो २ वचन बोले उस २ को न्यायाधीश व्यर्थ समझे ॥ ७ ॥

जब अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के सामने सभाके समीप प्राप्त हुए साक्षियोंको शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा बैरिस्टर इस प्रकारसे पूछें ॥ ८ ॥

हे साक्षी लोगो ! इस कार्यमें इन दोनोंके परस्पर कर्मोंमें जो तुम जानते हो उसको सत्यके साथ बोलो क्योंकि तुम्हारी इस कार्य्यमें साक्षी है ॥ ९ ॥

जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तरमें उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरोंमें जन्मको प्राप्त होके सुख भोगता है इस जन्म वा परजन्ममें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होता है क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदोंमें सत्कार और तिरस्कारका कारण लिखी है । जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है ॥ १० ॥

सत्य बोलनेसे साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलनेसे धर्म बढ़ता है इससे सब वर्णोंमें साक्षियोंको सत्य ही बोलना योग्य है ॥११॥

आत्माका साक्षी आत्मा और आत्माकी गति आत्मा है इसको जानके हे पुरुष ! तू सब मनुष्योंका उत्तम साक्षी अपने आत्माका अपमान मत कर अर्थात् सत्य भाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणीमें है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाषण है ॥ १२ ॥

जिस बोलते हुए पुरुषका विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीरका जानने हारा आत्मा भीतर शङ्काको प्राप्त नहीं होता उससे भिन्न विद्वान् लोग किसीको उत्तम पुरुष नहीं जानते ॥ १३ ॥

हे कल्याणकी इच्छा करनेहारे पुरुष ! जो तू "मैं अकेला हूं" ऐसा अपने आत्मामें जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे परमेश्वर पुण्य पापका देखनेवाला मुनि स्थित है उस परमात्मासे डरकर सदा सत्य बोला कर ॥ १४ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥१॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥२॥
लोभात्सहस्रदण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम् ।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥३॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥४॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥५॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥६॥
अधमदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ।
अस्वर्ग्यश्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥७॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥८॥
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।

तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥६॥

मनु० [८। ११८—१२१। १२५—१२६]

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपनसे साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे ॥ १ ॥

इनमेंसे किसी स्थानमें साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे ॥ २ ॥

जो लोभसे झूठी साक्षी देवे तो उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे, जो मोहसे झूठी साक्षी देवे उससे ३=) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भयसे मिथ्या साक्षी देवे उससे ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे और जो पुरुष मित्रतासे झूठी साक्षी देवे उससे १२॥) (साढ़े बारह रुपये) दण्ड लेवे ॥ ३ ॥

जो पुरुष कामनासे मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोधसे झूठी साक्षी देवे उससे ४६॥।=) (छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, जो पुरुष अज्ञानतासे झूठी साक्षी देवे उससे ६) (छः रुपये) दण्ड लेवे और जो बालकपनसे मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १॥-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे ॥ ४ ॥

दण्डके उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है ॥५॥

परन्तु जो २ दण्ड लिखा है और लिखेंगे जैसे लोभसे साक्षी देनेमें पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निर्धन हो तो उससे कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और पुरुष हो उसका जैसा अपराध हो वैसा ही दंड करे ॥ ६ ॥

क्योंकि इस संसारमें जो अधर्मसे दंड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्तमान और भविष्यत्में और परजन्ममें होने वाली कीर्तिका नाश

करनेहारा है और परजन्ममें भी दुःखदायक होता है इसलिये अधर्म-युक्त दंड किसी पर न करे ॥ ७ ॥

जो राजा दंडनीयोंको न दंड और अदंडनीयोंको दंड देता है अर्थात् दंड देने योग्यको छोड़ देता और जिसको दंड देना न चाहिये उसको दंड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दाको और मरे पीछे बड़े दुःखको प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उसको सदा दंड देवे और अनपराधीको दंड कभी न देवे ॥ ८ ॥

प्रथम वाणीका दण्ड अर्थात् उसकी "निन्दा" दूसरा "धिक्" दण्ड अर्थात् तुझको धिक्कार है तूं ने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा उससे "धन लेना" और चौथा "बध" दंड अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत से मारना वा शिर काट देना ॥ ६ ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥१॥
पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।२।
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ।।३॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥४॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्ठिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्ठिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥५॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥६॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥७॥
साहसे वर्त्तमानन्तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥९॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥१०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥११॥
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥१२॥

मनु० [८ । ३३४—३३८ । ३४४—३४७ । ३५० । ३५१ । ३८६]

और जिस प्रकार जिस २ अङ्गसे मनुष्योंमें विरुद्ध चेष्टा करता है उस २ अङ्गको सब मनुष्योंकी शिक्षाके लिये राजा हरण अर्थात् छेदन करदे ॥ १ ॥

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्ममें स्थित नहीं रहता वह राजाका अदण्ड्य नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसीका पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥ २ ॥

जिस अपराधमें साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराधमें राजाको सहस्र पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्यसे राजाको सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये मन्त्री अर्थात् राजाके दीवान-

को आठसौ गुणा उससे न्यूनको सातसौ गुणा और उससे भी न्यून-को छःसौ गुणा इसी प्रकार उत्तम २ अर्थात् जो एक छोटेसे छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठगुणे दण्डसे कम न होना चाहिये क्योंकि यदि प्रजापुरुषोंसे राजपुरुषोंको अधिक दण्ड न होवे तो राज-पुरुष प्रजापुरुषोंका नाश कर देवें जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्डसे ही वशमें आजाती है इसलिये राजासे लेकर छोटेसे छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषोंको अपराधमें प्रजापुरुषोंसे अधिक दण्ड होना चाहिये ॥ ३ ॥

और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्रको चोरीसे आठ गुणा, वैश्यको सोलह गुणा, क्षत्रियको बीस गुणा ॥ ४ ॥

ब्राह्मणको चौंसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एकसौ अट्ठाईस गुणा दंड होना चाहिये अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराधमें उतनाही अधिक दण्ड होना चाहिये ॥५॥

राज्यके अधिकारी धर्म और ऐश्वर्य्यकी इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाकुओंको दण्ड देनेमें एक क्षण भी देर न करे ॥ ६ ॥

साहसिक पुरुषका लक्षण—

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराधसे दण्ड देने-वालेसे भी साहस बलात्कार काम करनेवाला है वह अतीव पापी दुष्ट है ॥ ७ ॥

जो राजा साहसमें वर्त्तमान पुरुषको न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्रही नाशको प्राप्त होता है और राज्यमें द्वेष उठता है ॥८॥

न मित्रता [और] न पुष्कल धनकी प्राप्तिसे भी राजा सब प्राणियोंको दुःख देनेवाले साहसिक मनुष्यको बंधन छेदन किये विना कभी छोड़े ॥ ९ ॥

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रोंका श्रोता क्यों न हो जो धर्मको

छोड़ अधर्ममें वर्त्तमान दूसरेको विना अपराध मारनेवाले हैं उनको विना विचारे मार डालना अर्थात् मारके पश्चात् विचार करना चाहिये ॥ १० ॥

दुष्ट पुरुषोंके मारनेमें हन्ताको पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधीको क्रोधसे मारना जानो क्रोधसे क्रोधकी लड़ाई है ॥ ११ ॥

जिस राजाके राज्यमें न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचनको बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डघ्न अर्थात् राजाकी आज्ञाका भङ्ग करनेवाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

भर्त्तारं लंघयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥१॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥२॥
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालङ्करो भवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥३॥
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च ॥४॥
एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन् ।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥५॥

मनु० [८ ॥ ३७१-३७२ । ४०६ । ४१९ । ४२०]

जो स्त्री अपनी जाति गुणके घमण्डसे पतिको छोड़ व्यभिचार करे उसको बहुत स्त्री और पुरुषोंके सामने जीती हुई कुत्तोंसे राजा कटवा कर मरवा डाले ॥ १ ॥

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़के परस्त्री वा वेश्यागमन करे

उस पापीको लोहेके पलङ्गको अग्निसे तपाके लाल कर उस पर सुलाके जीतेको बहुत पुरुषोंके सम्मुख भस्म कर देवे ॥ २ ॥

प्रश्न—जो राजा वा रानी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उसको कौन दण्ड देवे ?

उत्तर—सभा अर्थात् उनको तो प्रजापुरुषोंसे भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

प्रश्न—राजादि उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे।

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है जब उसीको दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्डको क्यों मानेंगे ?

और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकतासे दण्ड देना चाहे तो अकेला राजा क्या कर सकता है जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्यायमें डूब कर न्यायधर्मको डुबाके सब प्रजाका नाश कर आप भी नष्ट होजायँ अर्थात् उस श्लोकके अर्थको स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा।

प्रश्न—यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य किसी अङ्गका बनानेहारा वा जिलानेवाला नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड न देना चाहिये।

उत्तर—जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीतिको नहीं समझते क्योंकि एक पुरुषको इस प्रकार दण्ड होनेसे सब लोग बुरे काम करनेसे अलग रहेंगे और बुरे कामको छोड़कर धर्म मार्गमें स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सबके भागमें न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाये तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होनेसे क्रोड़ों गुणा कठिन होता है क्योंकि

जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा २ दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एकको मनभर दण्ड हुआ और दूसरेको पावभर तो पावभर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्यके भागमें आधपाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्डको दुष्ट लोग क्या समझते हैं ? जैसे एकको मन और सहस्र मनुष्योंको पाव २ दण्ड हुआ तो ६। (सवा छः) मन मनुष्य जाति पर दण्ड होनेसे अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है। जो लम्बे मार्गमें समुद्रकी खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदोंमें जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे और महासमुद्रमें निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिससे राजा और बड़े २ नौकाओंके समुद्रमें चलानेवाले दोनों लाभयुक्त हों वैसी व्यवस्था करे परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे वे झूठे हैं और देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तरोंमें नौकासे जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषोंकी सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकारका दुःख न होने देवे ॥ ३ ॥

राजा प्रतिदिन कर्मोंकी समाप्तियोंको, हाथी घोड़े आदि वाहनोंको नियत लाभ और खरच, "आकर" रत्नादिकोंकी खाने और कोष (खज़ाने) को देखा करे ॥ ४ ॥

राजा इस प्रकार सब व्यवहारोंको यथावत् समाप्त करता कराता हुआ सब पापोंको छुड़ाके परमगति मोक्ष सुखको प्राप्त होता है ॥५॥

प्रश्न—संस्कृतविद्यामें पूरी २ राजनीति है वा अधूरी ?

उत्तर—पूरी है क्योंकि जो २ भूगोलमें राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्यासे ली है और जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये:—

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥ मनुः ८।३॥

जो नियम राजा और प्रजाके सुखकारक और धर्मयुक्त समझें

उन २ नियमोंको पूर्ण विद्वानोंकी राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहां तक बन सके वहां तक बाल्यावस्थामें विवाह न करने देवें। युवावस्थामें भी विना प्रसन्नताके विवाह न करना कराना और न करने देना। ब्रह्मचर्यका यथावत् सेवन करना कराना। व्यभिचार और बहुविवाहको बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मामें पूर्ण बल सदा रहे। क्योंकि जो केवल आत्माका बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायं और शरीरका बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैकड़ों विद्वानोंको जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्माका नहीं तो भी राज्य पालनकी उत्तम व्यवस्था विना विद्याके कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्थाके सब आपसमें ही फूट टूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट होजायं। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्माके बलको बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धिका नाशक व्यवहार व्यभिचार और अति विषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियोंको दृढ़ांग और बलयुक्त होना चाहिए। क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राज्यधर्म ही नष्ट होजायगा। और इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरुषोंको अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्यायसे वर्त्तकर सबके सुधारका दृष्टान्त बने।

यह संक्षेपसे राजधर्मका वर्णन यहां किया है विशेष वेद, मनुस्मृतिके सप्तम, अष्टम, नवम अध्यायमें और शुक्रनीति तथा विदुरप्रजागर और महाभारत शान्तिपर्वके राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकोंमें देखकर पूर्ण राजनीतिको धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्त्ती राज्य करें और यह समझें कि "वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम" १८। २९ (यह यजुर्वेदका वचन है) हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किंकर

भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टिमें हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथसे अपने सत्य न्यायकी प्रवृत्ति करावे। अब आगे ईश्वर और वेदविषयमें लिखा जायगा॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः॥६॥

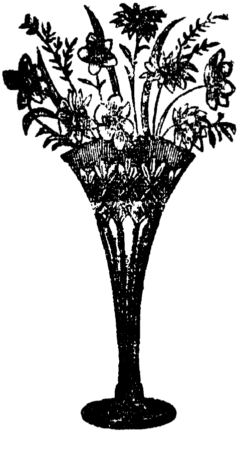

अथ सप्तमसमुल्लासारम्भः

अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः ।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥१॥ ऋ० १ । १६४ । ३९ ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥२॥

यजु० ॥ अ० ४० । मं० १ ॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः । मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥३॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन । सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥४॥ ऋ० १० । ४८ । १, ५ ॥

(ऋचो अक्षरे०) इस मन्त्रका अर्थ ब्रह्मचर्य्याश्रमकी शिक्षामें लिख चुके हैं अर्थात् जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्य्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाशके समान व्यापक सब देवोंका देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जानते न

मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःख-सागरमें डूबे ही रहते हैं इसलिये सर्वदा उसीको जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

प्रश्न—वेदमें ईश्वर अनेक हैं इस बातको तुम मानते हो वा नहीं?

उत्तर—नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदोंमें ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

प्रश्न—वेदोंमें जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर—देवता दिव्य गुणोंसे युक्त होनेके कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो! इसी मन्त्रमें कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है जो देवता शब्दसे ईश्वरका ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवोंका देव होनेसे महादेव इसीलिये कहाता है कि वही सब जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता न्यायाधीश अधिष्ठाता। "त्रयस्त्रिंशत्त्रिशता" इत्यादि वेदोंमें प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथमें की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य, और नक्षत्र सब सृष्टिके निवासस्थान होनेसे [ये] आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, [उदान], समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीरको छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सरके बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सबकी आयुको लेते जाते हैं। बिजुलीका नाम इन्द्र इस हेतुसे है कि परम ऐश्वर्यका हेतु है। यज्ञको प्रजापति कहनेका कारण यह है कि जिससे वायु वृष्टि जल ओषधीकी शुद्धि, विद्वानोंका सत्कार और नाना प्रकारकी शिल्पविद्यासे प्रजाका पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणोंके योगसे देव कहाते हैं। इनका स्वामी और सबसे बड़ा

होनेसे परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथके चौदहवें काण्डमें स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये इन शास्त्रों को देखते तो वेदोंमें अनेक ईश्वर माननेरूप भ्रमजालमें गिरकर क्यों बहकते ॥ १ ॥)

हे मनुष्य! जो कुछ इस संसारमें जगत् है उस सबमें व्याप्त होकर नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है उससे डर कर तू अन्यायसे किसीके धनकी आकांक्षा मत कर उस अन्यायका त्याग और न्यायाचरणरूप धर्मसे अपने आत्मासे आनन्दको भोग ॥ २ ॥

ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान सब जगत्का पति हूं मैं सनातन जगत्कारण और सब धनोंका विजय करनेवाला और दाता हूं मुझ ही को सब जीव जैसे पिताको सन्तान पुकारते हैं वैसे पुकारें मै सबको सुख देने हारे जगत्के लिये नाना प्रकारके भोजनोंका विभाग पालनके लिये करता हूं ॥ ३ ॥

मैं परमैश्वर्य्यवान् सूर्यके सदृश सब जगत्का प्रकाशक हूं कभी पराजयको प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्युको प्राप्त होता हूं मैं ही जगत्रूप धनका निर्माता हूं सब जगत्की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो, हे जीवो! ऐश्वर्य प्राप्तिके यत्न करते हुये तुम लोग विज्ञानादि धनको मुझसे मांगो और तुम लोग मेरी मित्रतासे अलग मत होओ, हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्यको सनातन ज्ञानादि धनको देता हूं मैं ब्रह्म अर्थात् वेदका प्रकाश करनेहारा और मुझको वह वेद यथावत् कहता उससे सबके ज्ञानको मैं बढ़ाता मैं सत्पुरुषका प्रेरक यज्ञ करनेहारेको फलप्रदाता और इस विश्वमें जो कुछ है उस सब कार्य्यको बनाने और धारण करनेवाला हूं इसलिये तुम लोग मुझको छोड़ किसी दूसरेको मेरे स्थानमें मत पूजो, मत मानो और मत जानो ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक

आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० [अ० १३। ४]

यह यजुर्वेदका मंत्र है—हे मनुष्यो! जो सृष्टिके पूर्व सब सूर्य्यादि तेजवाले लोकोंका उत्पत्ति स्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा वह पृथिवीसे लेके सूर्य्यलोक पर्य्यन्त सृष्टिको बनाके धारण कर रहा है। उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो॥१॥

प्रश्न—आप ईश्वर २ कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर—सब प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे।

प्रश्न—ईश्वरमें प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते?

उत्तर—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥ न्याय० [१। ४]

यह गौतम महर्षिकृत न्यायदर्शनका सूत्र है—जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मनका शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य विषयोंके साथ सम्बन्ध होनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मनसे गुणोंका प्रत्यक्ष होता है गुणीका नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियोंसे स्पर्श, रूप, रस और गन्धका ज्ञान होनेसे गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मनसे प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टिमें रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे परमेश्वरका भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियोंको किसी विषयमें लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बातके करनेका जिस क्षणमें आरम्भ करता है उस समय, जीवकी इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है।

उसी क्षणमें आत्माके भीतरसे बुरे काम करनेमें भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामोंके करनेमें अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्माकी ओरसे नहीं किन्तु परमात्माकी ओरसे है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्माका विचार करनेमें तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वरका प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादिसे परमेश्वरके ज्ञान होनेमें क्या सन्देह है? क्योंकि कार्यको देखके कारणका अनुमान होता है।

प्रश्न—ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेषमें रहता है?

उत्तर—व्यापक है क्योंकि जो एकदेशमें रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देशमें कर्त्ताकी क्रियाका असम्भव है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं?

उत्तर—है।

प्रश्न—ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो कर्मोंके अनुसार न अधिक न न्यून सुख दुःख पहुंचाना। और दया उसको कहते हैं जो अपराधीको विना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तर—न्याय और दयाका नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्यायसे प्रयोजन सिद्ध होता है वही दयासे। दण्ड देनेका प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करनेसे बन्द होकर दुःखोंको प्राप्त न हों। वही दया कहाती है जो पराये दुःखोंका छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और न्यायका तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसाही दण्ड देना चाहिये उसीका नाम न्याय है। और जो अपराधीको दण्ड न दिया जाय तो दयाका नाश होजाय। क्योंकि एक अपराधी डांकूको छोड़ देनेसे सहस्रों धर्मात्मा पुरुषोंको दुःख देना है जब एकके छोड़नेमें सहस्रों मनुष्योंको दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है। दया वही है कि

उस डांकूको कारागारमें रखकर पाप करनेसे बचाना डांकू पर और उस डांकूको मार देनेसे अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

प्रश्न—फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए ? क्यों कि उन दोनोंका अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दोंका होना व्यर्थ है इसलिये एक शब्दका रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया और न्यायका एक प्रयोजन नहीं है।

उत्तर—क्या एक अर्थके अनेक नाम और एक नामके अनेक अर्थ नहीं होते ?

प्रश्न—होते हैं।

उत्तर—तो पुनः तुमको शङ्का क्यों हुई ?

प्रश्न—संसारमें सुनते हैं, इसलिये।

उत्तर—संसारमें तो सच्चा झूठा दोनों सुननेमें आता है परन्तु उसको विचारसे निश्चय करना अपना काम है। देखो ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवोंके प्रयोजन सिद्ध होनेके अर्थ जगत्में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौनसी है ? अब न्यायका फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःखकी व्यवस्था अधिक और न्यूनतासे फलको प्रकाशित कर रही है। इन दोनोंका इतना ही भेद है कि जो मनमें सबको सुख होने और दुःख छूटनेकी इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनोंका एक प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुःखोंसे पृथक् कर देना।

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार ?

उत्तर—निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वरमें न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तुमें गुण कर्म्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा

शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदिसे रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवोंका बनानेहारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोगसे उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वरने स्वेच्छासे आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बननेके पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होनेसे सब जगत्को सूक्ष्म कारणोंसे स्थूलाकार बना देता है।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ?

उत्तर—है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्दका अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान शब्दका यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवोंके पुण्य पापकी यथायोग्य व्यवस्था करनेमें किंचित् भी किसीकी सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्यसे ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

प्रश्न—हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उस के ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर—वह क्या चाहता है ? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुमसे पूछते हैं कि परमेश्वर अपनेको मार अनेक ईश्वर बना स्वयं अविद्वान् चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है ? जैसे ये काम ईश्वरके गुण कर्म्म स्वभावसे विरुद्ध हैं, तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्दका अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है।

प्रश्न—परमेश्वर सादि है वा अनादि ?

उत्तर—अनादि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न

हो उसको अनादि कहते हैं इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुल्लासमें कर दिया है देख लीजिये ।

प्रश्न—परमेश्वर क्या चाहता है ?

उत्तर—सबकी भलाई और सबके लिये सुख चाहता है परन्तु स्वतन्त्रताके साथ किसीको विना पाप किये पराधीन नहीं करता ।

प्रश्न—परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ?

उत्तर—करनी चाहिये ।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवालेका पाप छुड़ा देगा ।

उत्तर—नहीं ।

प्रश्न—तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

उत्तर—उनके करनेका फल अन्य ही है ।

प्रश्न—क्या है ?

उत्तर—स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभावसे अपने गुण कर्म स्वभावका सुधारना, प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना, उपासनासे परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना ।

प्रश्न—इनको स्पष्ट करके समझाओ ।

उत्तर—जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

यजु० ॥ अ० ४० । मं० ८ ॥

[ईश्वरकी स्तुति] वह परमात्मा सबमें व्यापक शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराज-

मान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीव स्वरूप सनातन अनादि प्रजाको अपनी सनातन विद्यासे यथावत् अर्थोंका बोध वेदद्वारा कराता है वह सगुण स्तुति अर्थात् जिस २ गुणसे सहित परमेश्वरकी स्तुति करना यह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता जिसमें छिद्र नहीं होता नाड़ी आदिके बन्धनमें नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ राग द्वेषादि गुणोंसे पृथक् मानकर परमेश्वरकी स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वरके गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है॥
प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्नेमेधाविनं कुरु स्वाहा॥१॥ यजुः ३२।१४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥२॥ यजु० १९।९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥ ३॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विद

थेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तंसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥८॥ यजु० ३४। १—६ ॥

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप[की] कृपासे जिस बुद्धिकी उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धिसे युक्त हमको इसी वर्त्तमान समयमें बुद्धिमान् आप कीजिये ॥ १ ॥

आप प्रकाशस्वरूप हैं कृपा कर मुझमें भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं इसलिये मुझमें भी कृपाकटाक्षसे पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं [इसलिये] मुझमें भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं इसलिये मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी

हैं मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियोंका सहन करनेवाले हैं, कृपासे मुझको भी वैसा ही कीजिये ॥२॥

हे दयानिधे! आपकी कृपासे मेरा मन जागतेमें दूर २ जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्तिको प्राप्त होता वा स्वप्नमें दूर २ जानेके समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकोंका प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियोंके अर्थ कल्याणका सङ्कल्प करनेहारा होवे। किसीकी हानि करनेकी इच्छायुक्त कभी न होवे ॥ ३ ॥

हे सर्वान्तर्यामी! जिससे कर्म करनेहारे धर्मयुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादिमें कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजाके भीतर रहनेवाला है वह मेरा मन धर्म करनेकी इच्छायुक्त होकर अधर्मको सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥

जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरेको चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओंमें भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शुद्ध गुणोंकी इच्छा करके दुष्ट गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ५ ॥

हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारोंको जानते जो नाशरहित जीवात्माको परमात्माके साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञको जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशोंसे पृथक् रहे ॥ ६ ॥

हे परम विद्वान् परमेश्वर! आपकी कृपासे मेरे मनमें जैसे रथके मध्य धुरामें आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और जिसमें अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजाका साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्याका अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहे ॥ ७ ॥

हे सर्वनियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सीसे घोड़ोंके समान अथवा घोड़ोंके नियन्ता सारथीके तुल्य मनुष्योंको अत्यन्त इधर उधर हिलाता है, जो हृदयमें प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेग वाला है वह मेरा मन सब इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोकके धर्मपथमें सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये ॥ ८ ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ यजु० ४० । १६ ॥

हे सुखके दाता स्वप्रकाशस्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन्! आप हमको श्रेष्ठ मार्गसे सम्पूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये। इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।

मा नो महान्तमुत मा नोऽर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधी पितरं मोत मातरं मानः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ यजु० १६ । १५ ॥

हे रुद्र! (दुष्टोंको पापके दुःखस्वरूप फलको देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा शरीरोंका हनन करनेके लिये प्रेरित मत कीजिये, ऐसे मार्गसे हमको चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥ शतपथब्रा० [१४।३।१।३०]

हे परमगुरो परमात्मन्! आप हमको असत् मार्गसे पृथक् कर सन्मार्गमें प्राप्त कीजिये। अविद्यान्धकारको छुड़ाके विद्यारूप सूर्यको

प्राप्त कीजिये और मृत्यु रोगसे पृथक्करके मोक्षके आनन्दरूप अमृतको प्राप्त कीजिये। अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुणसे परमेश्वर और अपनेको भी पृथक् मानके परमेश्वरकी प्रार्थना कीजाती है वह विधि निषेधमुख होनेसे सगुण, निर्गुण प्रार्थना। जो मनुष्य जिस बातकी प्रार्थना करता है उसको वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धिकी प्राप्तिके लिये परमेश्वरकी प्रार्थना करे उसके लिये जितना अपनेसे प्रयत्न होसके उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थके उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसका स्वीकार करता है कि, जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायं इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरेके नाशके लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनोंका नाश करदे जो कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक उसकी प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रुका भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खताकी प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, मेरे मकानमें झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वरकी पुरुषार्थ करनेकी आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी नहीं पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥

यजु० ॥ अ० ४० । मं० २ ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्षपर्य्यन्त अर्थात् जबतक जीवे तबतक कर्म करता हुआ जीनेकी इच्छा करे आलसी कभी न हो। देखो सृष्टिके बीचमें जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि

सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्योंको भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुषका सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्मसे पुरुषार्थी पुरुषका सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुषको भृत्य करते हैं और अन्य आलसीको नहीं, देखनेकी इच्छा करने और नेत्रवालेको दिखलाते हैं अन्धेको नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करनेकी प्रार्थनामें सहायक होता है हानिकारक कर्ममें नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्बसे गुड़ मिल ही जाता है। अब तीसरी उपासना

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

यह उपनिषद्का वचन है—जिस पुरुषके समाधियोगसे अविद्यादि मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मामें चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्माके योगका सुख होता है वह वाणीसे कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्दको जीवात्मा अपने अन्तःकरणसे ग्रहण करता है। उपासना शब्दका अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये, अर्थात्—

तत्राऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥

योगसूत्र० [साधनपादे। सू० ३०]

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्रके हैं—जो उपासनाका आरम्भ करना चाहे उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसीसे वैर न रक्खे,

सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्यव्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे । ये पांच प्रकारके यम मिलके उपासना योगका प्रथम अङ्ग है ।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

योग० [साधनपादे । सू० ३२]

राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादिसे बाहर पवित्र रहे, धर्मसे पुरुषार्थ करनेसे लाभमें न प्रसन्नता और हानिमें न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखोंका सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्मका नहीं । सर्वदा सत्य शास्त्रोंको पढ़े पढ़ावे सत्पुरुषोंका सङ्ग करे और "ओ३म्" इस एक परमात्माके नामका अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप किया करे । अपने आत्माको परमेश्वरकी आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे । इन पांच प्रकारके नियमोंको मिलाके उपासनायोगका दूसरा अंग कहाता है । इसके आगे छः अंग योगशास्त्र व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका * में देख लेवें । जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयोंसे इन्द्रियोंको रोक, मनको नाभिप्रदेशमें वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठके मध्य हाड़में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न होजानेसे संयमी होवें । जब इन साधनोंको करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्यसे पूर्ण होजाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है । जो आठ प्रहरमें एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नतिको प्राप्त होजाता है । वहां सर्वज्ञादि गुणोंके साथ परमेश्वरकी उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध,

---

*ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके उपासना विषयमें इनका वर्णन है । स्वा० द०

स्पर्शादि गुणोंसे पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्माके भीतर बाहर व्यापक परमेश्वरमें दृढ़ स्थित होजाना निर्गुणोपासना कहाती है। इसका फल—जैसे शीतसे आतुर पुरुषका अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वरके गुण, कर्म, स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं। इसलिये परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक् होगा। परन्तु आत्माका बल इतना बढ़ेगा वह पर्वतके समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वरकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्माने इस जगत्के सब पदार्थ जीवोंको सुखके लिये दे रक्खे हैं उसका गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।

प्रश्न—जब परमेश्वरके श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियां नहीं हैं फिर वह इन्द्रियोंका काम कैसे कर सकता है?

उत्तर—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ श्वेताश्वेतर उपनिषद्

[अ० ३ मं० १९]

यह उपनिषद्का वचन है। परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होनेसे सबसे अधिक वेगवान, चक्षुका गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत्को जानता है और उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं। उसीको सनातन, सबसे श्रेष्ठ सबमें पूर्ण होनेसे

पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरणसे [होनेवाले] काम अपने सामर्थ्यसे करता है।

प्रश्न—उसको बहुतसे मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं?

उत्तर—

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

[श्वेताश्वेतर उपनिषद्। अ० ६। मं० ८]

यह उपनिषद्का वचन है। परमात्मासे कोई तद्रूप कार्य्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तमशक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सकता। इसलिये वह विभु तथापि चेतन होनेसे उसमें क्रिया भी है।

प्रश्न—जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होती होगी वा अनन्त?

उत्तर—जितने देश कालमें क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश कालमें क्रिया करता है। न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है।

प्रश्न—परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं?

उत्तर—परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे ज्योंका त्यों जाना जाय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकारका हो उसको उसी प्रकार जाननेका नाम ज्ञान है। जब परमेश्वर अनन्त है तो अपनेको अनन्त ही जानना ज्ञान, उससे विरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनन्तको सान्त और सान्तको अनन्त जानना भ्रम कहाता है।

"यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति" जिसका जैसा गुण कर्म स्वभाव हो उस पदार्थको वैसा ही जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है, [इससे] उलटा अज्ञान। इसलिये—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।

योग सू० [समाधिपादे । सू० २४]

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मोंकी वासनासे रहित है वह सब जीवोंसे विशेष ईश्वर कहाता है ।

प्रश्न—

ईश्वरासिद्धेः ॥१॥ [सां० अ० १ सू० ९२]

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥२॥ सां० ५ । १० ॥

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥३॥ सां० ५ । ११ ॥

प्रत्यक्षसे घट सकने ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥

क्योंकि जब उसकी सिद्धिमें प्रत्यक्षही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥ २ ॥

और व्याप्ति सम्बन्ध न होनेसे अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रत्यक्षानुमानके न होनेसे शब्दप्रमाण आदि भी नहीं घट सकते । इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

उत्तर—यहां ईश्वरकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है । और न ईश्वर जगत्‌का उपादान कारण है । और पुरुषसे विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होनेसे परमात्माका नाम पुरुष, और शरीरमें शयन करनेसे जीवका भी नाम पुरुष है, क्योंकि इसी प्रकरणमें कहा है—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥१॥ सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्यम् ॥२॥ श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥३॥

सांख्यसू० अ० ५ । सू० ८ । ९ । १२ ॥

यदि पुरुषको प्रधानशक्तिका योग हो तो पुरुषमें सङ्गापत्ति होजाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्मसे मिलकर कार्यरूपमें सङ्गत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय। इसलिये परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है ॥ १ ॥

जो चेतनसे जगत्की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसारमें भी सर्वैश्वर्यका योग होना चाहिये, सो नहीं है। इसलिये परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है ॥ २ ॥

क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत्का उपादान कारण कहती है ॥ ३ ॥ जैसे—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ॥ श्वेता० अ० ४ मं० ५ ॥

जो जन्मरहित सत्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकारसे बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होनेसे अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होनेसे वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूपमें कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है। इसलिये जो कोई कपिलाचार्य्यको अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य्य नहीं। तथा मीमांसा धर्मका धर्मीसे ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी "आत्मा" शब्दसे अनीश्वरवादी नहीं क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा" जो सर्वत्र व्यापक और सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सब जीवोंका आत्मा है उसको मीमांसा वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं क्योंकि "अज एकपात्" (३४ । ५३) "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" [४० । ८] ये यजुर्वेदके वचन हैं। इत्यादि वचनोंसे [सिद्ध है कि] परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

प्रश्न—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

भ० गी० [अ० ४। श्लो० ७]

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब २ धर्मका लोप होता है तब २ मैं शरीर धारण करता हूं।

उत्तर—यह बात वेदविरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्मकी रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठोंकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकारके लिये सत्पुरुषोंका तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न—जो ऐसा है तो संसारमें चौबीस ईश्वरके अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं?

उत्तर—वेदार्थके न जानने, सम्प्रदायी लोगोंके बहकाने और अपने आप अविद्वान् होनेसे भ्रमजालमें फँसके ऐसी २ अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टोंका नाश कैसे हो सके?

उत्तर—प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ीके समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होनेसे कंस रावणादिके शरीरोंमें भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्माको एक क्षुद्र जीवके मारनेके लिये जन्म मरणयुक्त कहनेवालेको मूर्खपनसे अन्य

कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनोंके उद्धार करनेके लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईश्वरकी आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करनेका सामर्थ्य ईश्वरमें है। क्या ईश्वरके पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत्का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मोंसे कंस रावणादिका वध और गोवर्धनादि पर्वतोंका उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टिमें परमेश्वरके कर्मोंका विचार करे तो "न भूतो न भविष्यति" ईश्वरके सदृश कोई न है, न होगा। और युक्तिसे भी ईश्वरका जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाशको कहे कि गर्भमें आया वा मूठीमें धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्माके होनेसे उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भमें व्यापक नहीं था जो कहींसे आया? और बाहर नहीं था जो भीतरसे निकला? ऐसा ईश्वरके विषयमें कहना और मानना विद्याहीनोंके सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वरका जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये "ईसा" आदि भी ईश्वरके अवतार नहीं ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होनेसे मनुष्य थे।

प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तोंके पाप क्षमा करता है वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजायें। क्योंकि क्षमाकी बात सुन ही के उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाये। जैसे राजा अपराधको क्षमा करदे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक अधिक बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने

अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करनेसे न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त हो जायंगे इसलिये सब कर्मोंका फल यथावत् देना ही ईश्वरका काम है क्षमा करना नहीं।

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ?

उत्तर—अपने कर्त्तव्य कर्मोंमें स्वतन्त्र और ईश्वरकी व्यवस्थामें परतन्त्र है "स्वतन्त्रः कर्त्ता" यह पाणिनीय व्याकरणका सूत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

प्रश्न—स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप पुण्यका फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी और सेना, सेनाध्यक्षकी आज्ञा अथवा प्रेरणासे युद्धमें अनेक पुरुषोंको मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वरकी प्रेरणा और आधीनतासे काम सिद्ध हों तो जीवको पाप वा पुण्य न लगे। उस फलका भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक स्वर्ग अर्थात् दुःख सुखकी प्राप्ति भी परमेश्वरको होवे। जैसे किसी मनुष्यने शस्त्रविशेषसे किसीको मारडाला तो वही मारनेवाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र, नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप पुण्यका भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वरकी व्यवस्थामें पराधीन होकर पापके फल भोगता है। इसलिये कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र और पापके दुःखरूपफल भोगनेमें परतन्त्र होता है।

प्रश्न—जो परमेश्वर जीवको न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता इसलिये परमेश्वरकी प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तर—जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है जैसा ईश्वर और जगत्का उपादान कारण निमित्त है और जीवका शरीर तथा इन्द्रि

ओंके गोलक परमेश्वरके बनाये हुए हैं परन्तु वे सब जीवके आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म वचनसे पाप पुण्य करता है वह भोक्ता है ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगरने पहाड़से लोहा निकाला, उस लोहेको किसी व्यापारीने लिया, उसकी दुकानसे लोहारने ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाहीने तलवार लेली, फिर उससे किसीको मारडाला। अब यहां जैसे वह लोहेको उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनाने-वाले और तलवारको पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता किन्तु जिसने तलवारसे मारा वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादिकी उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर उसके कर्मोंका भोक्ता नहीं होता किन्तु जीवको भुगानेवाला होता है। जो परमेश्वर कर्म करता तो कोई जीव पाप नहीं करता क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होनेसे किसी जीव को पाप करनेमें प्रेरणा नहीं करता। इसलिये जीव अपने काम करनेमें स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामोंके करनेमें स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामोंके करनेमें स्वतन्त्र है।

प्रश्न—जीव और ईश्वरका स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर—दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनोंका पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वरके सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सबको नियममें रखना, जीवोंको पाप पुण्योंके फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीवके सन्तानोत्पत्ति उनका पालन, शिल्पविद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वरके नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं और जीवके—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

न्यायसू॰ अ॰ १ आ॰ १। सू॰ १०]

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

वैशेषिक सू॰ [अ॰ ३। आ॰ २। सू॰ ४]

(इच्छा) पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा (द्वेष) दुःखादिकी अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिकमें (प्राण) प्राणको बाहरसे भीतरको लेना (अपान) प्राणवायुको बाहर निकालना (निमेष) आंखको मीचना (उन्मेष) आंखको खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहङ्कार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियोंका चलाना (अन्तरविकार) भिन्न २ क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादियुक्त होना ये जीवात्माके गुण परमात्मासे भिन्न हैं उन्हींसे आत्माकी प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जबतक आत्मा देहमें होता है तभीतक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब जीव शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीरमें नहीं रहते। जिसके होनेसे जो हों और न होनेसे न हों वे गुण उसीके होते हैं जैसे दीप और सूर्य्यादिके न होनेसे प्रकाशादिका न होना और होनेसे होना है, वैसे ही जीव और परमात्माका विज्ञान गुणद्वारा होता है।

प्रश्न—परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इससे भविष्यत्‌की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीवको ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता, क्योंकि जैसा ईश्वरने अपने ज्ञानसे निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

उत्तर—ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है, क्योंकि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे यह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वरका कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वरका ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत जीवोंके लिये है। हां! जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रतासे जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमानके ज्ञान और फल देनेमें ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किंचित् वर्त-

मान और कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। ईश्वरका अनादि ज्ञान होनेसे जैसा कर्मका ज्ञान है वैसा ही दण्ड देनेका भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इसमें कोई दोष नहीं आता।

प्रश्न—जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न?

उत्तर—परिच्छिन्न, जो विभु होता तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना आना कभी नहीं हो सकता। इसलिये जीवका स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वज्ञ, और सर्वव्यापक स्वरूप है। इसीलिये जीव और परमेश्वरका व्याप व्यापक सम्बन्ध हैं।

प्रश्न—जिस जगहमें एक वस्तु होती है उस जगहमें दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इसलिये जीव और ईश्वरका संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्याप्य व्यापक नहीं।

उत्तर—यह नियम समान आकारवाले पदार्थोंमें घट सकता है, असमानाकृतिमें नहीं। जैसे लोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारणसे लोहेमें विद्युत् अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाशमें दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वरसे स्थूल और परमेश्वर जीवसे सूक्ष्म होनेसे परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वरका है वैसे ही सेव्य सेवक, आधाराधेय, स्वामिभृत्य, राजा प्रजा और पिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध है।

प्रश्न—जो पृथक् २ हैं तो—

प्रज्ञानं ब्रह्म ॥१॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥ तत्त्वमसि ॥३॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥४॥

वेदोंके इन महावाक्योंका अर्थ क्या है?

उत्तर—ये वेदवाक्य ही नहीं हैं, किन्तु ब्राह्मणग्रन्थोंके वचन हैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्यशास्त्रोंमें नहीं लिखा। अर्थ—

(अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं। यहां तात्स्थ्यो·पाधि है। जैसे "मञ्चाः क्रोशन्तिं" मञ्चान पुकारते हैं। मञ्चान जड़ हैं, उनमें पुकारनेका सामर्थ्य नहीं, इसलिये मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहे कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं, पुनः जीवको ब्रह्मस्थ कहनेमें क्या विशेष है ? इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साधर्म्ययुक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीवको ब्रह्मका ज्ञान और मुक्तिमें वह ब्रह्मके साक्षात् सम्बन्धमें रहता है। इसलिये जीवका ब्रह्मके साथ तात्स्थ्य व तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्मका सहकारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसीसे कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं, वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वरमें प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं। जो जीव परमेश्वरके गुण, कर्म, स्वभावके अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्यसे ब्रह्मके साथ एकता कह सकता है।

प्रश्न—अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है।

उत्तर—तुम 'तत्' शब्दसे क्या लेते हो ? "ब्रह्म"। ब्रह्मपदकी अनुवृत्ति कहांसे लाये ?

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

इस पूर्ववाक्यसे। तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद्का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्दका पाठ ही नहीं है ऐसा झूंठ क्यों कहते। किन्तु छान्दोग्यमें तो—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥

[छा० प्र० ६। ख० २। मं० १]

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं।

प्रश्न—तो आप तच्छब्दसे क्या लेते हैं ?

उत्तर—

स य एषोणिमा॥ ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति॥

छा० [प्र० ६ खं० ८ मं० ६। ७]

वह परमात्मा जानने योग्य है। जो वह अत्यन्तसूक्ष्म और इस सब जगत् और जीवका आत्मा है। वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र !

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि॥

उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है। यही अर्थ उपनिषदोंसे अविरुद्ध है। क्योंकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। आत्मनोन्तरोयमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

यह बृहदारण्यकका वचन है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीसे कहते हैं कि हे मैत्रेयि। जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीवमें स्थित और जीवात्मासे भिन्न है जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरेमें व्यापक है, जिस परमेश्वरका जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीरमें जीव रहता है वैसे ही जीवमें परमेश्वर व्यापक है, जीवात्मासे भिन्न रहकर जीवके पाप पुण्योंका साक्षी होकर उनके फल जीवोंको देकर नियममें रखता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है उसको तू जान। क्या कोई इत्यादि वचनोंका अन्यथा अर्थ कर सकता है ? "अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् समाधिदशामें जब योगीको परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब

वह कहता है कि यह जो मेरेमें व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इसलिये जो आजकलके वेदान्ती जीव ब्रह्मकी एकता करते हैं वे वेदान्तशास्त्रको नहीं जानते।

प्रश्न—

अनेन आत्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥ छां० प्र० ६ खं० ३ मं २ ॥

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥ तैत्ति०ब्रा० अ० ६ ॥

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीरको रचकर जगत्में व्यापक और जीवरूप होके शरीरमें प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूपकी व्याख्या करूं। परमेश्वरने उस जगत् और शरीरको बना कर उसमें वही प्रविष्ट हुआ इत्यादि श्रुतियोंका अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे?

उत्तर—जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते! क्योंकि यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके साथ अनुप्रविष्टके समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूप आदि की विद्याको प्रकट करता है। और शरीरमें जीवको प्रवेश करा आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है। जो तुम अनुशब्दका अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते।

प्रश्न—"सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः स इदानीं प्रावृट्समये मथुरायां दृश्यते" अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकालमें काशीमें देखा था उसीको वर्षा समयमें मथुरामें देखता हूं। यहां काशी देश उष्णकालको छोड़कर शरीरमात्रमें लक्ष्य करके देवदत्त लक्षित होता है वैसे इस भागत्यागलक्षणासे ईश्वरका परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीवका यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्रमें लक्ष्य देनेसे एक ही ब्रह्म वस्तु दोनोंमें लक्षित होता है।

इस भागत्यागलक्षणा अर्थात् कुछ ग्रहण करना और कुछ छोड़ देना जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वरका और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीवका छोड़ कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थका ग्रहण करनेसे अद्वैत सिद्ध होता है यहां क्या कह सकोगे ?

उत्तर—प्रथम तुम जीव और ईश्वरको नित्य मानते हो वा अनित्य ?

प्रश्न—इन दोनोंको उपाधिजन्य कल्पित होनेसे अनित्य मानते हैं ?

उत्तर—उस उपाधिको नित्य मानते हो वा अनित्य।

प्रश्न—हमारे मतमें—

जीवेशौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥१॥
कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्य्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥२॥

ये "संक्षेपशारीरिक" और "शारीरिकभाष्य" में कारिका है—हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वरका विशेष भेद, पांचवां अविद्या अज्ञान और छठा अविद्या और चेतनका योग इनको अनादि मानते हैं। परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं, जैसा कि प्रागभाव होता है। जबतक अज्ञान रहता है तबतक ये पांच रहते हैं और इन पांचकी आदि विदित नहीं होती इसलिये अनादि और ज्ञान होनेके पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सान्त अर्थात् नाश वाले कहाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारे दोनों श्लोक अशुद्ध हैं क्योंकि अविद्याके योग के विना जीव और मायाके योगके विना ईश्वर तुम्हारे मतमें सिद्ध नहीं हो सकता। इससे "तच्चितोर्योगः" जो छठा पदार्थ तुमने गिना है वह नहीं रहा क्योंकि वह अविद्या माया जीव ईश्वरमें चरितार्थ

होगया और ब्रह्म तथा माया और विद्याके योगके विना ईश्वर नहीं बनता फिर ईश्वरको अविद्या और ब्रह्मसे पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मतमें सिद्ध हो सकते हैं छः नहीं। तथा आपका प्रथम कार्योपाधि कारणोपाधिसे जीव और ईश्वरका सिद्ध करना तब हो सकता है कि जब अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वव्यापक ब्रह्ममें अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देशमें स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देशमें अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छिन्न होनेसे इधरउधर आता-जाता रहेगा। जहां २ जायगा वहां २ का ब्रह्म अज्ञानी और जिस २ देशको छोड़-ता जायगा उस २ देशका ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा तो किसी देशके ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञानयुक्त न कह सकोगे। और जो अज्ञानकी सीमामें ब्रह्म है वह अज्ञानको जानेगा। बाहर और भीतरके ब्रह्मके टुकड़े हो जायेंगे। जो कहो कि टुकड़ा हो जाओ, ब्रह्मकी क्या हानि तो अखण्ड नहीं। और जो अखंड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञानके अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होनेसे किसी द्रव्यके साथ नित्य सम्बन्धसे रहेगा। यदि ऐसा है तो समवाय सम्बन्ध होनेसे अनित्य कभी नहीं हो सकता। और जैसे शरीरके एक देशमें फोड़ा होनेसे सर्वत्र दुःख फैल जाता है। वैसे ही एक देशमें अज्ञान सुख दुःख क्लेशोंकी उपलब्धि होनेसे सब ब्रह्म दुःखादिके अनुभवसे ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तःकरणकी उपाधिके योगसे ब्रह्मको जीव मानोगे तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है वा परिच्छिन्न ? जो कहो व्यापक और उपाधि परिच्छिन्न है अर्थात् एक देशी और पृथक् २ हैं तो अन्तःकरण चलता फिरता है वा नहीं ?

उत्तर—[वेदान्ती] चलता फिरता है।

प्रश्न—[सिद्धान्ती] अन्तःकरणके साथ ब्रह्म भी चलता फिरता है वा स्थिर रहता है ?

उत्तर—[वेदान्ती] स्थिर रहता है।

प्रश्न—[सिद्धान्ती] जब अन्तःकरण जिस २ देशको छोड़ता है उस २ देशका ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस २ देशको प्राप्त होता है उस उस देशका शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षणमें ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभङ्ग होगा और जैसे अन्यके देखेका अन्य स्मरण नहीं कर सकता वैसे कलकी देखी सुनी हुई वस्तु वा बातका ज्ञान नहीं रह सकता। क्योंकि जिस समय देखा सुना था वह दूसरा देश और दूसरा काल, जिस समय स्मरण करता वह दूसरा देश और काल है। जो कहो कि ब्रह्म एक है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं? जो कहो कि अन्तःकरण भिन्न २ हैं, इससे वह भी भिन्न २ हो जाता होगा, तो वह जड़ है उसमें ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवलं ब्रह्म और न केवल अन्तःकरणको ज्ञान होता है किन्तु अन्तःकरणस्थ चिदाभासको ज्ञान होता है तो भी चेतन ही को अन्तःकरण द्वारा ज्ञान हुआ तो वह नेत्रद्वारा अल्प अल्पज्ञ क्यों है?। इसलिये कारणोपाधि और कार्योपाधिके योगसे ब्रह्म जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु ईश्वर नाम ब्रह्मका है और ब्रह्मसे भिन्न अनादि अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीवका नाम जीव है। जो तुम कहो कि जीव चिदाभासका नाम है तो वह क्षणभङ्ग होनेसे नष्ट हो जायगा तो मोक्षका सुख कौन भोगेगा? इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ न है और न होगा।

प्रश्न—तो "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" (छान्दोग्य०) अद्वैतसिद्धि कैसी होगी? हमारे मतमें तो ब्रह्मसे पृथक् कोई सजातीय, विजातीय और स्वगत अवयवोंके भेद न होनेसे एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैतसिद्धि कैसे हो सकती है?

उत्तर—इस भ्रममें पड़ क्यों डरते हो? विशेष्य विशेषण विद्याका ज्ञान करो कि उसका क्या फल है। जो कहो कि "व्यावर्त्तकं विशेषणं भवतीति" विशेषण भेदकारक होता है तो इतना और भी मानो कि

"प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति" विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक भी होता है। तो समझो कि अद्वैत विशेषण ब्रह्मका है। इसमें व्यावर्त्तक धर्म यह है कि अद्वैत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव और तत्व हैं उनसे ब्रह्मको पृथक् करता है और विशेषणका प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्मके एक होनेकी प्रवृत्ति करता है जैसे "अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः। अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिंहः"। किसीने किसीसे कहा कि इस नगरमें अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेनामें अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्तके सदृश इस नगरमें दूसरा धनाढ्य और इस सेनामें विक्रमसिंहके समान दूसरा शूरवीर नहीं है न्यून तो हैं। और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि प्राणि और वृक्षादि भी हैं उनका निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्मके सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है किन्तु न्यून तो है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्व अनेक हैं। उनसे भिन्न कर ब्रह्मके एकत्वको सिद्ध करने हारा अद्वैत वा अद्वितीय विशेषण है। इससे जीव वा प्रकृतिका और कार्य्यरूप जगत्का अभाव और निषेध नहीं हो सकता, किन्तु ये सब हैं परन्तु ब्रह्मके तुल्य नहीं। इससे न अद्वैतसिद्धि और न द्वैतसिद्धिकी हानि होती है। घबराहटमें मत पड़ो सोचो और समझो।

प्रश्न—ब्रह्मके सत्, चित, आनन्द और जीवके अस्ति, भाति, प्रियरूपसे एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—किञ्चित् साधर्म्य मिलनेसे एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतनेसे एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध, रूक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्निके होनेसे एकता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंखसे देखते, मुखसे खाते और

पगसे चलते हैं तथापि मनुष्यकी आकृति दो पग और कीड़ीकी आकृति अनेक पग आदि भिन्न होनेसे एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वरके अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीवसे और जीवके अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्मसे भिन्न होनेसे जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होनेसे) भिन्न है।

प्रश्न—

अथोदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥

यह बृहदारण्यकका वचन है जो ब्रह्म और जीवमें थोड़ा भी भेद करता है उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि दूसरे ही से भय होता है।

उत्तर—इसका अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वरका निषेध वा किसी एक देश कालमें परिच्छिन्न परमात्माको माने वा उसकी आज्ञा और गुण कर्म स्वभावसे विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्यसे वैर करे उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वरसे मुझसे कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्यसे कहे कि तुझको मैं कुछ नहीं समझता तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय तो उसको उनसे भय होता है। और सब प्रकारका अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं जैसा संसारमें कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं। विरोध न रहनेसे सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।

प्रश्न—ब्रह्म और जीवकी सदा एकता अनेकता रहती है वा कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं वा नहीं ?

उत्तर—अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर देदिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयभावसे एकता होती है। जैसे आकाशसे मूर्त्त द्रव्य जड़त्व

होनेसे और कभी पृथक् न रहनेसे एकता और आकाशसे विभु, सूक्ष्म अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त्तके परिच्छिन्न दृश्यत्व आदि वैधर्म्यसे भेद होता है अर्थात् जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाशसे भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थात् अवकाशके विना मूर्त्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक अर्थात् स्वरूपसे भिन्न होनेसे पृथक्ता है वैसे ब्रह्मके व्यापक होनेसे जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूपसे एक भी नहीं होते जैसे घरके बनानेके पूर्व भिन्न २ देशमें मट्टी लकड़ी और लोहा आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं जब घर बन गया तब भी आकाशमें हैं और जब वह नष्ट होगया अर्थात् उस घरके सब अवयव भिन्न २ देशमें प्राप्त होगये तब भी आकाशमें हैं अर्थात् तीन कालमें आकाशसे भिन्न नहीं होसकते और स्वरूपसे भिन्न होनेसे न कभी एक थे, हैं और होंगे, इसी प्रकार जीव तथा सब संसारके पदार्थ परमेश्वरमें व्याप्त होनेसे परमात्मासे तीनों कालोंमें भिन्न और स्वरूप भिन्न होनेसे एक कभी नहीं होते आजकलके वेदान्तियोंकी दृष्टि काणे पुरुषके समान अन्वयकी ओर पड़के व्यतिरेकभावसे छूट विरुद्ध होगई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें सगुणनिर्गुणता, अन्वय, व्यतिरेक, साधर्म्य वैधर्म्य और विशेषण भाव न हो।

प्रश्न—परमेश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न—भला एक घरमें दो तलवार कभी रह सकती हैं। एक पदार्थमें सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं ?

उत्तर—जैसे जड़के रूपादि गुण हैं और चेतनके ज्ञानादि गुण जड़में नहीं हैं वैसे चेतनमें इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़के गुण नहीं हैं इसलिये "यद्गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्" "गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्" जो गुणोंसे सहित वह सगुण और जो गुणोंसे रहित वह निर्गुण कहाता है अपने २ स्वाभाविक गुणोंसे सहित और

दूसरे विरोधीके गुणोंसे रहित होनेसे सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणोंसे सहित होनेसे सगुण और रूपादि जड़के तथा द्वेषादि जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे निर्गुण कहाता है।

प्रश्न—संसारमें निराकारको निर्गुण और साकारको सगुण कहते हैं अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है।

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानोंकी है। जिनको विद्या नहीं होती वे पशुके समान यथा तथा बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात ज्वरयुक्त मनुष्य अण्डबण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानोंके कहे वा लेखको व्यर्थ समझना चाहिये।

प्रश्न—परमेश्वर रागी है वा विरक्त ?

उत्तर—दोनोंमें नहीं ! क्योंकि राग अपनेसे भिन्न उत्तम पदार्थोंमें होता है, सो परमेश्वरसे कोइ पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं इसलिये उसमें रागका सम्भव नहीं। और जो प्राप्तको छोड़ देवे उसको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होनेसे किसी पदार्थको छोड़ ही नहीं सकता, इसलिये विरक्त भी नहीं।

प्रश्न—ईश्वरमें इच्छा है वा नहीं ?

उत्तर—वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्तिसे सुख विशेष होवे [उसकी होती है] तो ईश्वरमें इच्छा होसके, न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होनेसे सुखकी अभिलाषा भी नहीं है, इसलिये ईश्वरमें इच्छाका तो सम्भव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका दर्शन और सब सृष्टिका करना कहाता है वह ईक्षण है। इत्यादि संक्षिप्त विषयोंसे ही सज्जन लोग बहुत विस्तरण कर लेंगे।

अब संक्षेपसे ईश्वरका विषय लिखकर वेदका विषय लिखते हैं ॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ अथर्व १०।२३।४।२० ॥

जिस परमात्मासे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुये हैं। वह कौनसा देव है इसका। (उत्तर) जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४० । ८ ॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजाके कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओंका उपदेश करता है।

प्रश्न—परमेश्वरको आप निराकार मानते हो वा साकार ?

उत्तर—निराकार मानते हैं।

प्रश्न—जब निराकार है तो वेदविद्याका उपदेश विना मुखके वर्णोच्चारण कैसे होसका होगा ? क्योंकि वर्णोंके उच्चारणमें ताल्वादि स्थान, जिह्वाका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

उत्तर—परमेश्वरके सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होनेसे जीवोंको अपनी व्याप्तिसे वेदविद्याके उपदेश करनेमें कुछ भी मुखादिकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख जिह्वासे वर्णोच्चारण अपनेसे भिन्नके बोध होनेके लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वाके व्यापार करे विना ही मनमें अनेक व्यवहारोंका विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानोंको अंगुलियोंसे मूंदके देखो, सुनो कि विना मुख जिह्वा ताल्वादि स्थानोंके कैसे २ शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवोंको अन्तर्यामीरूपसे उपदेश किया है। किन्तु केवल दूसरोंको

समझानेके लिये उच्चारण करनेकी आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्याका उपदेश जीवस्थ स्वरूपसे जीवात्मामें प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुखसे उच्चारण करके दूसरोंको सुनाता है इसलिये ईश्वरमें यह दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न—किनके आत्मामें कब वेदोंका प्रकाश किया।

उत्तर—

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥

शत० [११ । ४ । २ । ३]

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियोंके आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया।

प्रश्न—

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ श्वेताश्व० अ० ६ मं० १८ ॥

यह उपनिषद्का वचन है। इस वचनसे ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियोंके आत्मामें क्यों कहा ?

उत्तर—ब्रह्माके आत्मामें अग्नि आदिके द्वारा स्थापित कराया, देखो! मनुने क्या लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ मनुः [१।२३]

जिस परमात्माने आदि सृष्टिमें मनुष्योंको उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियोंके द्वारा चारों वेद ब्रह्माको प्राप्त कराये और उस ब्रह्माने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरासे ऋग्यजु, साम और अथर्ववेदका ग्रहण किया।

प्रश्न—उन चारों ही में वेदोंका प्रकाश किया अन्यमें नहीं इससे

ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर—वे ही चार सब जीवोंसे अधिक पवित्रात्मा थे अन्य उनके सदृश नहीं थे इसलिये पवित्र विद्याका प्रकाश उन्हींमें किया।

प्रश्न—किसी देशभाषामें वेदोंका प्रकाश न करके संस्कृतमें क्यों किया ?

उत्तर—जो किसी देशभाषामें प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती होजाता, क्योंकि जिस देशकी भाषामें प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियोंको कठिनता वेदोंके पढ़ने पढ़ानेकी होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देशकी भाषा नहीं। और वेदभाषा अन्य सब भाषाओंका कारण है। उसीमें वेदोंका प्रकाश किया। जैसे ईश्वरकी पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालोंके लिये एकसी और सब शिल्पविद्याका कारण है वैसे परमेश्वरकी विद्याकी भाषा भी एकसी होनी चाहिये कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओंका कारण भी है।

प्रश्न— वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण ?

उत्तर—जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है वैसे जिस पुस्तकमें ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभावके अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत अन्य नहीं और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तोंके और पवित्रात्माके व्यवहारसे विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वरका निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तकमें भ्रान्तिरहित ज्ञानका प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त, जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टिकार्य, कारण और जीवका प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयोंसे अविरुद्ध शुद्धात्माके स्वभावसे विरुद्ध न हो, इस प्रकारके वेद हैं। अन्य बाइबल कुरान इत्यादि पुस्तकें नहीं इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरानके प्रक-

रणमें तेरहवें और चौदहवें समुल्लासमें की जायगी।

प्रश्न—वेदको ईश्वरसे होनेकी आवश्यकता कुछ भी नहीं क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर—कभी नहीं बना सकते, क्योंकि विना कारणके कार्योत्पत्तिका होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टिको देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिलजाय तो विद्वान होजाते हैं और अब भी किसीसे पढ़े विना कोई भी विद्वान नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टिके ऋषियोंको वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्यको न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते जैसे किसीके बालकको जन्मसे एकान्त देश अविद्वानों वा पशुओंके संगमें रख देवे तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायगा। इसका दृष्टान्त जङ्गली भील आदि हैं जबतक आर्यावर्त देशसे शिक्षा नहीं गई थी तबतक मिश्र, यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्योंमें कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और इङ्गलैण्डके कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिकामें जब तक नहीं गये थे तबतक वे भी सहस्रों, लाखों, क्रोड़ों वर्षोंसे मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे, पुनः सुशिक्षाके पानेसे विद्वान् होगये हैं वैसे ही परमात्मासे सृष्टिकी आदिमें विद्या शिक्षाकी प्राप्तिसे उत्तरोत्तर कालमें विद्वान् होते आये।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् ॥

योगसू० [समाधिपादे सू० २६]

जैसे वर्तमान समयमें हम लोग अध्यापकोंसे पढ़ ही के विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियोंका गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलयमें ज्ञानरहित होजाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्तसे नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता है।

प्रश्न—वेद संस्कृतभाषामें प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृतभाषाको नहीं जानते थे फिर वेदोंका अर्थ उन्होंने कैसे जाना ?

उत्तर—परमेश्वरने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थकी जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थित हुए तब २ परमात्माने अभीष्ट मन्त्रोंके अर्थ जनाये । जब बहुतोंके आत्माओंमें वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वह अर्थ और ऋषि मुनियोंके इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये । उसका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होनेसे ब्राह्मण नाम हुआ । और—

ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः)...मन्त्रान्सम्प्रादुः ॥

निरु० [१ । २०]

जिस २ मन्त्रार्थका दर्शन जिस २ ऋषिको हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्रका अर्थ किसीने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरोंको पढ़ाया भी, इसीलिये अद्यावधि उस २ मन्त्रके साथ ऋषिका नाम स्मरणार्थ लिखा आता है । जो कोई ऋषियोंको मन्त्रकर्त्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें । वे तो मन्त्रोंके अर्थ प्रकाशक हैं ।

प्रश्न—वेद किन ग्रन्थोंका नाम है ?

उत्तर—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओंका, अन्यका नहीं ।

प्रश्न—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञा सूत्रादिका अर्थ क्या करोगे ?

उत्तर—देखो संहिता पुस्तकके आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें वेद शब्द सनातनसे लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तकके आरम्भ

वा अध्यायकी समाप्तिमें नहीं लिखा। और निरुक्तमें—

इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम् ॥

[नि० अ० ५। खं० ३। ४]

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥ अष्टा० ४-२-६६॥

यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। वहां अनेकशः प्रमाणोंसे विरुद्ध होनेसे यह कात्यायनका वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है। क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें। क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकोंमें बहुतसे ऋषि महर्षि और राजादिके इतिहास लिखे हैं। और इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता। वह ग्रन्थ भी उसके जन्मके पश्चात् होता है। वेदोंमें किसीका इतिहास नहीं, किन्तु जिस २ शब्दसे विद्याका बोध होवे उस २ शब्दका प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्यकी संज्ञा वा विशेष कथाका प्रसंग वेदोंमें नहीं।

प्रश्न—वेदोंकी कितनी शाखा है ?

उत्तर—ग्यारहसौ सत्ताईस।

प्रश्न—शाखा क्या कहाती हैं ?

उत्तर—व्याख्यानको शाखा कहते हैं।

प्रश्न—संसारमें विद्वान् वेदके अवयवभूत विभागोंको शाखा मानते हैं।

उत्तर—तनिकसा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता परमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। जैसे चारों वेदोंको परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओंको उस २ ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओंमें मन्त्रोंकी प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं, जैसे तैत्ति-

रीय शाखामें "इषेत्वोर्जे त्वेति" इत्यादि प्रतीकें धरके व्याख्यान किया है। और वेदसंहिताओंमें किसीकी प्रतीक नहीं धरी। इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि मुनिकृत है परमेश्वरकृत नहीं। जो इस विषयकी विशेष व्याख्या देखना चाहें वे "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लेवें जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्माने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदोंको प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजालसे छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्यको प्राप्त होकर अत्यानन्दमें रहें और विद्या तथा सुखोंकी वृद्धि करते जायें।

प्रश्न—वेद नित्य हैं वा अनित्य ?

उत्तर—नित्य हैं क्योंकि परमेश्वरके नित्य होनेसे उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्यके अनित्य होते हैं।

प्रश्न—क्या यह पुस्तक भी नित्य है।

उत्तर—नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्र और स्याहीका बना है वह नित्य कैसे हो सकता है ? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं ?

प्रश्न—ईश्वरने उन ऋषियोंको ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञानसे उन लोगोंने वेद बना लिये होंगे ?

उत्तर—ज्ञान ज्ञेयके विना नहीं होता गायत्र्यादि छन्द षड्जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वरके ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दोंके निर्माण करनेमें सर्वज्ञके विना किसीका सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार सर्व ज्ञानयुक्त शास्त्र बना सकें, हां ! वेदको पढ़नेके पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियोंने विद्याओंके प्रकाशके लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदोंका प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हींके अनुसार सब लोगोंको चलना चाहिये और जो कोई किसीसे पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही

उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदोंमें कहा है हम उसको मानते हैं।

अब इसके आगे सृष्टिके विषयमें लिखेंगे। यह संक्षेपसे ईश्वर और वेद विषयमें व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये सप्तमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥७॥

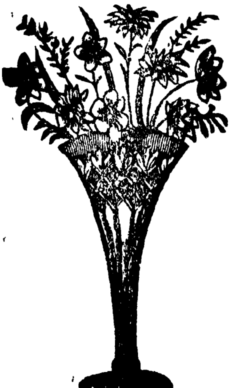

अथ अष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥१॥

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥२॥ ऋ० १० । १२६ । ७, ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ ऋ० १० । १२१ । १ ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥४॥ यजुः ३१।२॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ॥५॥ तैत्तियो० [भृगुवल्ली। अनु० १]

हे (अङ्ग) मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है,

जो धारण और प्रलय करता है, जो इस जगत्का स्वामी जिस व्यापकमें यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयको प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरेको सृष्टिकर्त्ता मत मान ॥ १ ॥

यह सब जगत् सृष्टिके पहिले अन्धकारसे आवृत, रात्रिरूपमें जाननेके अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वरके सन्मुख एकदेशी आच्छादित था पश्चात् परमेश्वरने अपने सामर्थ्यसे कारणरूपसे कार्यरूप कर दिया ॥ २ ॥

हे मनुष्यो ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोंका आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत्की उत्पत्तिके पूर्व विद्यमान था और जिसमें पृथिवीसे लेके सूर्यपर्यन्त जगत्को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देवकी प्रेमसे भक्ति किया करें ॥ ३ ॥

हे मनुष्यो ! जो सबमें पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीवका स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीवसे अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत्को बनानेवाला है ॥ ४ ॥

जिस परमात्माकी रचनासे ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिसमें प्रलयको प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है उसके जाननेकी इच्छा करो ॥ ५ ॥

जन्माद्यस्य यतः ॥ शारीरिक सू० १ । १ । २ ॥

जिससे इस जगत्का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है।

प्रश्न—यह जगत् परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ है वा अन्यसे ?

उत्तर—निमित्त कारण परमात्मासे उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

प्रश्न—क्या प्रकृति परमेश्वरने उत्पन्न नहीं की ?

उत्तर—नहीं वह अनादि है ।

प्रश्न—आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

उत्तर—ईश्वर, जीव और जगत्का कारण ये तीन अनादि हैं ।

प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभि चाकशीति ॥१॥ ऋ० मं० १ । १६४ । २० ॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥ यजु० ४० । ८ ॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादिगुणोंसे सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भावसे संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनोंके गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्ममेंसे एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसारमें पापपुण्यरूप फलोंको (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मोंके फलोंको (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान होरहा है। जीवसे ईश्वर, ईश्वरसे जीव और दोनोंसे प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनों अनादि हैं ॥ १ ॥

(शाश्वती) अर्थात अनादि सनातन जीव रूप प्रजाके लिये वेद द्वारा परमात्माने सब विद्याओंका बोध किया है ॥ २ ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ श्वेता० ४ । ५ ॥

यह उपनिषद्का वचन है। प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्मलेते अर्थात् ये तीन सब जगतके कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृतिका भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भोग करता है। ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषयमें कह आये। अब प्रकृतिका लक्षण लिखते हैं।

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ सांख्य० [अ० १। सू० ६१]

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहङ्कार, उससे पांच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमेंसे प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म-भूत प्रकृतिका कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतोंका कारण है। पुरुष न किसीकी प्रकृति उपादानकारण और न किसीका कार्य है।

प्रश्न—

सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ॥१॥ [छा० ६। २] असद्वा इदमग्र आसीत् ॥२॥ [तैत्ति० ब्रह्मा०वल्ली अनु० ७] आत्मैवेदमग्र आसीत् ॥३॥ [बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १] ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ॥४॥

[शत० ११। १। ११। १]

ये उपनिषदोंके वचन हैं। हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टिके पूर्व सत् ।१। असत् ।२। आत्मा ।३। और ब्रह्मस्वरूप था ।४। पश्चात्:—

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति। सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति ॥ तैत्ति० ब्र०वल्ली। अनु० ६ ॥

वही परमात्मा अपनी इच्छासे बहुरूप हो गया है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

यह भी उपनिषद्का वचन है—जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उसमें दूसरे नाना प्रकारके पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप हैं।

उत्तर—क्यों इन वचनोंका अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदोंमें—

[एवमेव खलु] सोम्यान्नेन शुंगेनापो मूलमन्विच्छद्भिस्सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥

छान्दोग्य उप० प्र० ६। खं० ८। मं० ४ ॥

हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्यसे जलरूप मूलकारणको तू जान। कार्य्यरूप जलसे तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्यसे सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत्का मूल घर और स्थितिका स्थान है। यह सब जगत् सृष्टिके पूर्व असत्के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृतिमें लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था। और जो (सर्वं खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि "कहींकी ईंट कहींका रोड़ा भानमतीने कुंडवा जोड़ा" ऐसी लीलाका है क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥

छान्दो० प्र० ३। खं० १४। मं० १॥ और

नेह नानास्ति किंचन ॥ [कठो० २। ४। ११]

जैसे शरीरके अङ्ग जबतक शरीरके साथ रहते हैं तबतक कामके और अलग होनेसे निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरणसे अलग करने वा किसी अन्यके साथ जोड़नेसे अनर्थक हो जाते हैं। सुनो, इसका अर्थ यह है। हे जीव! तू ब्रह्मकी उपासना कर, जिस ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है, जिसके बनाने और धारणसे यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्मसे सहचरित है, उसको छोड़ दूसरेकी उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मरूपमें नाना वस्तुओंका मेल नहीं है, किन्तु ये सब पृथक् २ स्वरूपमें परमेश्वरके आधारमें स्थित हैं।

प्रश्न—जगत्के कारण कितने होते हैं ?

उत्तर—तीन, एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनानेसे कुछ बने न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं दूसरेको प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनानेमें साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकारके हैं। एक सब सृष्टिको कारणसे बनाने धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा—परमेश्वरकी सृष्टिमेंसे पदार्थोंको लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनानेवाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसारके बनानेकी सामग्री कहते हैं। वह जड़ होनेसे आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है, किन्तु दूसरेके बनानेसे बनती और बिगाड़नेसे बिगड़ती है।

कहीं २ जड़के निमित्तसे जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वरके रचित बीज पृथिवीमें गिरने और जल पानेसे वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़के संयोगसे बिगड़ भी जाते हैं, परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीवके आधीन है। जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनोंसे अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकारके साधन और दिशा काल और आकाश साधारण कारण जैसे घड़ेको बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणोंके विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती हैं।

प्रश्न—नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥ मुण्ड० १।१।७ ॥

यह उपनिषद्का वचन है। जैसे मकरी बाहरसे कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उसमें खेलती है वैसे ब्रह्म अपनेमेंसे जगत्को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार होजाऊं। सङ्कल्पमात्रसे सब जगत्रूप बन गया। क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥

गौड़पादीय का० श्लोक ३१ ॥

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है, जो प्रथम न हो अन्तमें न रहे वह वर्त्तमानमें भी नहीं है, किन्तु सृष्टिकी आदिमें जगत् न था ब्रह्म था। प्रलयके अन्तमें संसार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा तो वर्तमानमें सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं ?

उत्तर—जो तुम्हारे कहनेके अनुसार जगत्का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे। और उपादान कारणके गुण, कर्म, स्वभाव कार्यमें भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः॥ वै० २।१।२४॥

उपादान कारणके सदृश कार्यमें गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप जगत्कार्यरूपसे असत् जड़ और आनन्दरहित, ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है, जो ब्रह्मसे पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादिमें कार्यके जड़ादि गुण ब्रह्ममें भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये। और जो मकरीका दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मतका साधक नहीं, किन्तु बाधक है, क्योंकि वह जड़रूप शरीर तन्तुका उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यह भी परमात्माकी अद्भुत रचनाका प्रभाव है। क्योंकि अन्य जन्तुके शरीरसे जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्मने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारणसे स्थूल जगत्को बनाकर बाहर स्थूलरूप कर आप उसीमें व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है। और जो परमात्माने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगतको बनाकर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत उत्पन्न होता है तभी जीवोंके विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवणमें परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थोंसे सह वर्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्तजीवोंको छोड़के उसको कोई नहीं जानता। और जो यह कारिका है वह भ्रममूलक है क्योंकि सृष्टिकी आदि अर्थात् प्रलयमें जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टिके अन्त अर्थात् प्रलयके आरम्भसे जबतक दूसरी बार सृष्टि न होगी तबतक भी जगत्का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है, क्योंकि—

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ॥ ऋ० १०।१२९।३ ॥

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १।५ ॥

यह सब जगत् सृष्टिके पहिले प्रलयमें अन्धकारसे आवृत आच्छादित था और प्रलयारम्भके पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसीके जानने, न तर्कमें लाने और न प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त इन्द्रियोंसे जानने योग्य था, न होगा, किन्तु वर्तमानमें जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त जाननेके योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है। पुनः उस कारिकाकारने वर्तमानमें भी जगत्का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणोंसे जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—जगत्के बनानेमें परमेश्वरका क्या प्रयोजन है?

उत्तर—नहीं बनानेमें क्या प्रयोजन है।

प्रश्न—जो न बनाता तो आनन्दमें बना रहता और जीवोंको भी सुख दुःख प्राप्त न होता।

उत्तर—यह आलसी और दरिद्र लोगोंकी बातें हैं पुरुषार्थीकी नहीं। और जीवोंको प्रलयमें क्या सुख वा दुःख है? जो सृष्टिके सुख दुःखकी तुलना की जाय तो सुख कई गुणा अधिक होता और बहुतसे पवित्रात्मा जीव मुक्तिके साधन कर मोक्षके आनन्दको भी प्राप्त होते हैं। प्रलयमें निकम्मे जैसे सुषुप्तिमें पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं और प्रलयके पूर्व सृष्टिमें जीवोंके लिये पाप पुण्य कर्मोंका फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते? जो तुमसे कोई पूछे कि आंखके होनेमें क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे, देखना। तो जो ईश्वरमें जगत्की रचना करनेका विज्ञान, बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन, विना जगत्की उत्पत्ति करनेके? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्माके न्याय, धारण, दया, आदि गुण

भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत्को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्रका स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वरका स्वाभाविक गुण जगतकी उत्पत्ति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

प्रश्न—बीज पहले है वा वृक्ष?

उत्तर—बीज, क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारणका नाम बीज होनेसे कार्यके प्रथम ही होता है।

प्रश्न—जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव-को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता?

उत्तर—सर्वशक्तिमान शब्दका अर्थ पूर्व लिख आये हैं। परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बातको भी कर सके? जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारणके विना कार्यको कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वरकी उत्पत्ति और स्वयं मृत्युको प्राप्त जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र, और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ोंको विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। और ईश्वरके नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्त्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान्का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा विना किसीके सहायके अपने सब काय पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनोंके जगत्को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह

ईश्वर नहीं क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल वस्तुओंमें परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। उसमें जीवके विना ईश्वरके गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृतिको अपने वशमें नहीं ला सकते हैं वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थोंसे स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रियगोलक हस्तपादादि अवयवोंसे रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं, उनसे सब काम करता है जो जीव और प्रकृतिसे कभी न हो सकते। जब वह प्रकृतिसे भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यादिके मा बाप साकार हैं उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न लड़केके समान है क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत्का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वरसे स्थूल और अन्य कार्य्यसे सूक्ष्म आकार रखते हैं।

प्रश्न— क्या कारणके विना परमेश्वर कार्यको नहीं कर सकता?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्त्तमान नहीं है उसका भाव वर्त्तमान होना सर्वथा असम्भव है जैसा कोई गपोड़ा हांक दे कि मैंने बन्ध्याके पुत्र और पुत्रीका विवाह देखा, वह नरशृङ्गका धनुष और दोनों खपुष्पकी माला पहिरे हुए थे, मृगतृष्णिकाके जलमें स्नान करते और गन्धर्वनगरमें रहते थे, वहां बद्दलके विना वर्षा, पृथिवीके विना सब अन्नोंकी उत्पत्ति आदि होती थी, वैसा ही कार-

णके विना कार्य्यका होना असम्भव है जैसे कोई कहे कि "मम माता-पितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च" अर्थात् मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं, मेरे मुखमें जीभ नहीं है परन्तु बोलता हूं, बिलमें सर्प न था निकल आया, मैं कहीं न था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं, ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगोंकी है।

प्रश्न—जो कारणके विना कार्य्य नहीं होता तो कारणका कारण कौन है?

उत्तर—जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसीके नहीं होते और जो किसीका कारण और किसीका कार्य्य होता है वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदिका कारण और जल आदिका कार्य्य होता है परन्तु जो आदि कारण प्रकृति है वह अनादि है।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्॥ सांख्य० १। ६७॥

मूलका मूल अर्थात् कारणका कारण नहीं होता। इससे अकारण सब कार्य्योंका कारण होता है क्योंकि किसी कार्य्यके आरम्भ समयके पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं जैसे कपड़े बनानेके पूर्व तन्तुवाय, रुईका सूत और नलिका आदि पूर्व वर्त्तमान होनेसे वस्त्र बनता है वैसे जगत्की उत्पत्तिके पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवोंके अनादि होनेसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है। यदि इनमेंसे एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

अत्र नास्तिका आहुः—शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥१॥ सां० १। ४४॥ अभावात्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्॥ २॥ ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्॥३॥ अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्॥४॥

सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ५ ॥ सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥६॥ सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात् ॥७॥ सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥८॥ न्याय० अ० ४। आ० १ ॥

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि शून्य ही एक पदार्थ है। सृष्टिके पूर्व शून्य था अन्तमें शून्य होगा क्योंकि जो भाव है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा।

उत्तर—शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और विन्दुको भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ। इस शून्यमें सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक विन्दुसे रेखा, रेखाओंसे वर्तुलाकार होनेसे भूमि पर्वतादि ईश्वरकी रचनासे बनते हैं और शून्यका जाननेवाला शून्य नहीं होता ॥ १ ॥

दूसरा नास्तिक—अभावसे भावकी उत्पत्ति हैं, जैसे बीजका मर्दन किये विना अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता और बीजको तोड़ कर देखें तो अङ्कुरका अभाव है। जब प्रथम अङ्कुर नहीं दीखता था तो अभावसे उत्पत्ति हुई।

उत्तर—जो बीजका उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीजमें था जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता ॥ २ ॥

तीसरा नास्तिक—कहता है कि कर्मोंका फल पुरुषके कर्म करनेसे नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल देखनेमें आते हैं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मोंका फल प्राप्त होना ईश्वरके आधीन है। जिस कर्मका फल ईश्वर देना चाहे देता है, जिस कर्मका फल देना नहीं चाहता नहीं देता। इस बातसे कर्मफल ईश्वराधीन है।

उत्तर—जो कर्मका फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसाही फल ईश्वर देता है। इससे ईश्वर स्वतन्त्र पुरुषको कर्मका फल नहीं दे

सकता किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसे ही फल ईश्वर देता है ॥३

चौथा नास्तिक—कहता है कि विना निमित्तके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। जैसा बबूल आदि वृक्षोंके कांटे तीक्ष्ण अणिवाल देखनेमें आते हैं। इससे विदित होता है कि जब २ सृष्टिका आरम्भ होता है तब २ शरीरादि पदार्थ विना निमित्तके होते हैं।

उत्तर—जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है वही उसका निमित्त है विना कंटकी वृक्षके कांटे उत्पन्न क्यों नहीं होते ? ॥ ४ ॥

पांचवां नास्तिक—कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं ॥

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥६

यह किसी ग्रन्थका श्लोक है—नवीन वेदान्ति लोग पांचवें नास्तिककी कोटीमें हैं क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों ग्रन्थोंका यह सिद्धान्त है, 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं।'

उत्तर—जो सबकी नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं होसकता।

प्रश्न—सबकी नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठोंको नष्ट कर आप भी नष्ट होजाता है।

उत्तर—जो यथावत् उपलब्ध होता है उसका वर्त्तमानमें अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारणको अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता जो वेदान्ति लोग ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्मके सत्य होनेसे उसका कार्य्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो स्वप्न रज्जु सर्प्पादिवत् कल्पित कहैं तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि कल्पना गुण है। गुणसे द्रव्य नहीं और गुण द्रव्यसे पृथक् नहीं रह सकता। जब कल्पनाका कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो। जैसे स्वप्न विना देखे सुने कभी नहीं आता, जो जागृत अर्थात् वर्तमान समयमें सत्य पदार्थ है उनके

साक्षात् सम्बन्धसे प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासनारूप ज्ञान आत्मामें स्थित होता है, स्वप्नमें उन्हींको प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुषुप्ति होनेसे बाह्य पदार्थोंके ज्ञानके अभावमें भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलयमें भी कारण द्रव्य वर्तमान रहता है जो संस्कारके विना स्वप्न होवे तो जन्मान्धको भी रूपका स्वप्न होवे। इसलिये वहां उनका ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्तमान हैं।

प्रश्न—जैसे जागृतके पदार्थ स्वप्न और दोनोंके सुषुप्तिमें अनित्य होजाते हैं वैसे जागृतके पदार्थोंको भी स्वप्नके तुल्य मानना चाहिये।

उत्तर—ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषुप्तिमें बाह्य पदार्थोंका अज्ञानमात्र होता है अभाव नहीं जैसे किसीके पीछेकी ओर बहुतसे पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता वैसे ही स्वप्न और सुषुप्तिकी बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म जीव और जगत्का कारण अनादि नित्य है वही सत्य है ॥५॥

छठा नास्तिक—कहता है कि पांच भूतोंके नित्य होनेसे सब जगत् नित्य है।

उत्तर—यह बात सत्य नहीं क्योंकि जिन पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण देखनेमें आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घटपटादि पदार्थोंको उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं इससे कार्यको नित्य नहीं मान सकते ॥ ६ ॥

सातवां नास्तिक—कहता है कि सब पृथक् २ हैं कोई एक पदार्थ नहीं है जिस २ पदार्थको हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता।

उत्तर—अवयवोंमें अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक् २ पदार्थ समूहोंमें एक २ हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूपसे पृथक् २ हैं और पृथक् २ पदार्थोंमें एक पदार्थ भी है ॥ ७ ॥

आठवां नास्तिक—कहता है कि सब पदार्थोंमें इतरेतर अभावकी सिद्धि होनेसे सब अभावरूप हैं जैसे "अनश्वो गौः। अगौरश्वः" गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं, इसलिये सबको अभावरूप मानना चाहिये।

उत्तर—सब पदार्थोंमें इतरेतराभावका योग हो परन्तु "गवि गौरश्वेऽश्वोभावरूपो वर्तत एव" गायमें गाय घोड़ेमें घोड़ेका भाव ही है अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थोंका भाव न हो तो इतरेतराभाव भी किसमें कहा जावे॥ ८॥

नववां नास्तिक—कहता है कि स्वभावसे जगत्की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़नेसे कृमि उत्पन्न होते हैं। और बीज पृथिवी जलके मिलनेसे घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र वायुके योगसे तरङ्ग और तरङ्गोंसे समुद्रफेन, हल्दी चूना और नींबूके रस मिलानेसे रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वोंके स्वभाव गुणोंसे उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।

उत्तर—जो स्वभावसे जगत्की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वभावसे मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्योंमें मानोगे तो उत्पत्ति और विनाशकी व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो निमित्तके होनेसे उत्पत्ति और नाश मानोगे तो निमित्त उत्पन्न और विनष्ट होने वाले द्रव्योंसे पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो समय ही में उत्पत्ति और विनाशका होना सम्भव नहीं। जो स्वभावसे उत्पन्न होता हो तो इस भूगोलके निकटमें दूसरा भूगोल चन्द्र सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते? और जिस २ के योगसे जो २ उत्पन्न होता है वह २ ईश्वरके उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न, जलादिके संयोगसे घास, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे हल्दी चूना और नींबूका रस दूर २ देशसे आकर आप नहीं

मिलते। किसीके मिलानेसे मिलते हैं। उसमें भी यथायोग्य मिलानेसे रोरी होती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करनेसे रोरी नहीं होती वैसे ही प्रकृति, परमाणुओंका ज्ञान और युक्तिसे परमेश्वरके मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्य्यसिद्धिके लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादिसे सृष्टि नहीं होती किन्तु परमेश्वरकी रचनासे होती है ॥ ९ ॥

प्रश्न—इस जगत्‌का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि कालसे यह जैसाका वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होगा।

उत्तर—विना कर्त्ताके कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थोंमें संयोग विशेषसे रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं हो सकते और जो संयोगसे बनता है वह संयोगके पूर्व नहीं होता और वियोगके अन्तमें नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिनसे कठिन पाषाण हीरा और पोलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक्‌ २ मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग २ भी अवश्य होते हैं ॥ १० ॥

प्रश्न—अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्याससे अणिमादि ऐश्वर्य्यको प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है।

उत्तर—जो अनादि ईश्वर जगत्‌का स्रष्टा न हो तो साधनोंसे सिद्ध होने वाले जीवोंका आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रियोंके गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो सिद्ध कहांसे होता? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वरकी जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीवका परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और

सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता। देखो कोई भी योगी आजतक ईश्वरकृत सृष्टिक्रमको बदलनेहारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वरने नेत्रसे देखने और कानोंसे सुननेका निबन्ध किया है इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—कल्प कल्पान्तरमें ईश्वर सृष्टि विलक्षण २ बनाता है अथवा एक सी ?

उत्तर—जैसी कि अब है वैसी पहिले थी और आगे होगी भेद नहीं करता—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ० १०।१९०।३॥

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्पमें सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदिको बनाता हुआ वैसे ही [उसने] अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा। इसलिए परमेश्वरके काम विना भूल चूकके होनेसे सदा एकसे ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षयको प्राप्त होता है उसीके काममें भूल चूक होती है, ईश्वरके काममें नहीं।

प्रश्न—सृष्टि विषयमें वेदादि शास्त्रोंका अविरोध है वा विरोध ?

उत्तर—अविरोध है।

प्रश्न—जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ [तैत्ति० ब्रह्मानन्दव० अनु० १]

यह तैत्तिरीय उपनिषद्‌का वचन है। उस परमेश्वर और प्रकृतिसे आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करनेसे अवकाश उत्पन्नसा होता है, वास्तवमें आकाशकी उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाशके प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें, आकाशके पश्चात् वायु, वायुके पश्चात् अग्नि, अग्निके पश्चात् जल, जलके पश्चात् पृथिवी, पृथिवीसे ओषधि, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे वीर्य्य, वीर्य्यसे पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। यहां आकाशादि क्रमसे, और छान्दोग्यमें अग्न्यादि ऐतरेयमें जलादि क्रमसे सृष्टि हुई, वेदोंमें कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदिसे, मीमांसामें कर्म, वैशेषिकमें काल, न्यायमें परमाणु, योगमें पुरुषार्थ, सांख्यमें प्रकृति और वेदान्तमें ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें ?

उत्तर—इसमें सब सच्चे कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है, क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत्‌का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायुका प्रलय नहीं होता और अग्न्यादिका होता है अग्न्यादि क्रमसे, और जब विद्युत् अग्निका भी नाश नहीं होता तब जल क्रमसे सृष्टि होती है अर्थात् जिस २ प्रलयमें जहां २ तक प्रलय होता है वहां २ से सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथमसमुल्लासमें लिख भी आये हैं वे सब नाम परमेश्वरके हैं। परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य्यमें एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रोंमें अविरोध देखो इस प्रकार है। मीमांसामें "ऐसा कोई भी कार्य्य जगत्‌में नहीं होता कि जिसके बनानेमें कर्मचेष्टा न की जाय" वैशेषिकमें "समय न लगे बिना बने ही नहीं" न्यायमें "उपादान कारण न होनेसे कुछ भी नहीं बन सकता" योगमें "विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता" सांख्यमें "तत्वोंका मेल न होनेसे नहीं बन सकता" और

वेदान्तमें "बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके" इसलिये सृष्टि छः कारणोंसे बनती है। उन छः कारणोंकी व्याख्या एक २ की एक २ शास्त्रमें है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं। जैसे छः पुरुष मिलके एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरें वैसा ही सृष्टिरूप कार्य्यकी व्याख्या छः शास्त्रकारोंने मिल कर पूरी की है। जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टिको किसीने हाथीका एक २ देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमेंसे एकने कहा खम्भे, दूसरेने कहा सूप, तीसरेने कहा मूसल, चौथेने कहा झाड़ू, पांचवेंने कहा चौतरा और छठेने कहा काला२ चार खंभोंके ऊपर कुछ भैंसासा आकार वाला है। इसीप्रकार आजकलके अनार्ष, नवीन ग्रन्थोंके पढ़ने और प्राकृत भाषा वालोंने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्रबुद्धि-कल्पित संस्कृत और भाषाओंके ग्रन्थ पढ़कर एक दूसरेकी निन्दामें तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानोंके वा अन्यके मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धेके पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आज कलके अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषोंकी लीला संसारका नाश करनेवाली है।

प्रश्न—जब कारणके विना कार्य्य नहीं होता तो कारणका कारण क्यों नहीं?

उत्तर—अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धिको काममें क्यों नहीं लाते? देखो संसारमें दो ही पदार्थ होते हैं, एक कारण दूसरा कार्य्य। जो कारण है वह कार्य्य नहीं और जिस समय कार्य्य है वह कारण नहीं। जबतक मनुष्य सृष्टिको यथावत् नहीं समझता तबतक उसको यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषा-

द्वयस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते ।

अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् और तमोगुणोंकी एकावस्थारूप प्रकृतिसे उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक् २ तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हींका प्रथम ही जो संयोगका आरम्भ है संयोग विशेषोंसे अवस्थान्तर दूसरी अवस्थाको सूक्ष्म स्थूल २ बनते बनाते विचित्ररूप बनी है इसीसे यह संसर्ग होनेसे सृष्टि कहाती है। भला जो प्रथम संयोगमें मिलने और मिलानेवाला पदार्थ है, जो संयोगका आदि और वियोगका अन्त अर्थात् जिसका विभाग नहीं हो सकता, उसको कारण और जो संयोगके पीछे बनता और वियोगके पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य्य कहाता है। जो उस कारणका कारण, कार्य्यका कार्य्य, कर्त्ताका कर्त्ता साधनका साधन और साध्यका साध्य कहाता है, वह देखता अन्धा, सुनता बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आंखकी आंख, दीपकका दीपक और सूर्यका सूर्य कभी हो सकता है? जो जिससे उत्पन्न होता है वह कारण, और जो उत्पन्न होता है वह कार्य्य, और जो कारणको कार्य्यरूप बनानेहारा है वह कर्त्ता कहाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

भगवद्गीता [अ० २। १६]

कभी असत्का भाव वर्त्तमान और सत्का अभाव अवर्त्तमान नहीं होता इन दोनोंका निर्णय तत्त्वदर्शी लोगोंने जाना है, अन्य पक्षपाती आग्रही मलीनात्मा अविद्वान् लोग इस बातको सहजमें कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जो मनुष्य विद्वान, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजालमें पड़ा रहता है। धन्य! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओंके सिद्धान्तोंको जानते हैं और जाननेके लिये परिश्रम करते हैं, जानकर औरोंको निष्कपटतासे जनाते हैं। इससे जो कोई कारणके विना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता। जब सृष्टिका

समय आता है तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थोंको इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्थामें जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारणसे कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत्तत्त्व और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहङ्कार और अहङ्कारसे भिन्न २ पांच सूक्ष्मभूत श्रोत्र त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञान इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, ये पांच कर्म इन्द्रिय हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्राओंसे अनेक स्थूलावस्थाओंको प्राप्त होते हुये क्रमसे पांच स्थूलभूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं उनसे नाना प्रकारकी ओषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे शरीर होता है। परन्तु आदि-सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषोंके शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवोंका संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है। देखो! शरीरमें किस प्रकारकी ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ोंका जोड़, नाड़ियोंका बन्धन, मांसका लेपन, चमड़ीका ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कलाका स्थापन, जीवका संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आंखकी अतीव सूक्ष्म शिराका तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियोंके मार्गोंका प्रकाशन, जीवके जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाके भोगनेके लिये स्थान विशेषोंका निर्माण, सब धातुका विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टिको विना परमेश्वरके कौन कर सकता है? इसके विना नाना प्रकारके रत्न धातुसे जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदिके बीजोंमें अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपोंसे युक्त, पत्र, पुष्प, फल, मूलनिर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रमण, नियमोंमें रखना आदि परमेश्वरके विना कोई भी नहीं कर सकता जब कोई किसी पदार्थको

देखता है तो दो प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर बनानेवालेका ज्ञान है। जैसा किसी पुरुषने सुन्दर आभूषण जंगलमें पाया, देखा तो विदित हुआ कि वह सुवर्णका है और किसी बुद्धिमान् कारीगरने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टिमें विविध रचना बनानेवाले परमेश्वरको सिद्ध करती है।

प्रश्न—मनुष्यकी सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदिकी ?

उत्तर—पृथिवी आदिकी, क्योंकि पृथिव्यादिके विना मनुष्यकी स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न—सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ?

उत्तर—अनेक क्योंकि जिन जीवोंके कर्म ईश्वरीय सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जन्म सृष्टिकी आदिमें ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाणसे यही निश्चय है कि आदिमें अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टिमें देखनेसे भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बापके सन्तान हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टिमें मनुष्य आदिकी बाल्या, युवा, वा वृद्धावस्थामें सृष्टि हुई थी अथवा तीनोंमें ?

उत्तर—युवावस्थामें क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालनके लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्थामें बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्थामें सृष्टि की है।

प्रश्न—कभी सृष्टिका प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, जैसे दिनके पूर्व रात और रातके पूर्व दिन तथा दिनके पीछे रात और रातके पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टिके पूर्व प्रलय और प्रलयके पूर्व सृष्टि तथा सृष्टिके पीछे प्रलय और प्रलयके आगे सृष्टि अनादि कालसे चक्र चला आता है।

इसकी आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रातका आरम्भ और अन्त देखनेमें आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलयका आदि अन्त होता रहता है क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत्का कारण तीन स्वरूपसे अनादि है जैसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और वर्त्तमान प्रवाहसे अनादि हैं, जैसे नदीका प्रवाह वैसा ही दीखता है कभी सूख जाता कभी नहीं दीखता फिर बरसातमें दीखना और उष्णकालमें नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारोंको प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि है जैसे कभी ईश्वरके गुण, कर्म स्वभावका आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मोंका भी आरम्भ और अन्त नहीं।

प्रश्न—ईश्वरने किन्हीं जीवोंको मनुष्य जन्म, किन्हींको सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हींको हरिण, गाय आदि पशु, किन्हींको वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मामें पक्षपात आता है।

उत्तर—पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवोंके पूर्व सृष्टिमें किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करनेसे जो कर्मके विना जन्म देता तो पक्षपात आता।

प्रश्न—मनुष्यकी आदि सृष्टि किस स्थलमें हुई?

उत्तर—त्रिविष्टप अर्थात् जिसको "तिब्बत" कहते हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टिमें एक जाति थी वा अनेक।

उत्तर—एक मनुष्य जाति थी पश्चात् "विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः" [१। ५१। ८ यह ऋग्वेदका वचन है। श्रेष्ठोंका नाम आर्य्य, विद्वान्, देव और दुष्टोंके दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होनेसे आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए। "उत शूद्रे उतार्ये" अथर्ववेद वचन। आर्य्योंमें पूर्वोक्त प्रकारसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानोंका नाम आर्य और मूर्खोंका नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

प्रश्न – फिर वे यहां कैसे आये ?

उत्तर—जब आर्य और दस्युओंमें अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खण्डको जानकर यहीं आकर बसे इसीसे देशका नाम "आर्यावर्त्त" हुआ।

प्रश्न—आर्य्यावर्त्तकी अवधि कहांतक है ?

उत्तर—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥१॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥२॥

मनु० (२ । २२ । १७)

उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिममें समुद्र ॥ १ ॥

तथा सरस्वती पश्चिममें अटक नदी, पूर्वमें दृषद्वती जो नैपालके पूर्व भाग पहाड़से निकलके बंगालके आसामके पूर्व और ब्रह्माके पश्चिम ओर होकर दक्षिणके समुद्रमें मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तरके पहाड़ोंसे निकलके दक्षिणके समुद्रकी खाड़ीमें अटक मिली है हिमालयकी मध्य रेखासे दक्षिण और पहाड़ोंके भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचलके भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त देव अर्थात् विद्वानोंने बसाया और आर्यजनोंके निवास करनेसे आर्यावर्त कहाया है।

प्रश्न—प्रथम इस देशका नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे ?

उत्तर—इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्योंके पूर्व इस देशमें बसते थे। क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टिकी

आदिमें कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सीधे इसी देशमें आकर बसे थे।

प्रश्न—कोई कहते हैं कि यह लोग ईरानसे आये इसीसे इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपनेको देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ उसका नाम देवासुर संग्राम कथाओंमें ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा झूठ है, क्योंकि—

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्॥ ऋ० मं० १। सू० ५१। मं० ८॥

उत शूद्रे उतार्ये॥ [अथ० कां० १९। व० ६२]

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषोंका और इससे विपरीत जनोंका नाम दस्यु अर्थात डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजोंका नाम आर्य और शूद्रका नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ो है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियोंके कपोलकल्पितको बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर संग्राममें आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि हिमालय पहाड़में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरोंका जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्योंकी रक्षा और असुरोंके पराजय करनेको सहायक हुए थे। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्तके बाहर चारों ओर जो हिमालयके पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देशमें मनुष्य रहते हैं उन्हींका नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब २ हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़नेको चढ़ाई करते थे तब २ यहांके राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशोंमें आर्य्योंके सहायक होते थे। और जो श्रीरामचन्द्रजीसे दक्षिणमें युद्ध हुआ है उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है, किन्तु उसको रामरावण अथवा आर्य और राक्षसोंका संग्राम कहते

है। किसी संस्कृत ग्रन्थमें वा इतिहासमें नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरानसे आये और यहांके जंगलियोंको लड़कर, जय पाके निकाल इस देशके राजा हुए, पुनः विदेशियोंके लेख माननीय कैसे हो सकता है? और:—

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

मनु० १० । ४५ ॥

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ [मनु० २ । २३]

जो आर्य्यावर्त्त देशसे भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्तसे भिन्न पूर्व देशसे लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशोंमें रहनेवालोंका नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैर्ऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओंमें आर्य्यावर्त्त देशसे भिन्नमें रहनेवाले मनुष्योंका नाम राक्षस था। अब भी देख लो हवशी लोगोंका स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसोंका वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है। और आर्य्यावर्त्त-की सूध पर नीचे रहनेवालोंका नाम नाग और उस देशका नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्योंके पाद अर्थात् पगके तले है। और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नामवाले पुरुषके वंशके राजा होते थे उसीकी उलोपी राजकन्यासे अर्जुनका विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकुसे लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोलमें आर्योंका राज्य और वेदोंका थोड़ा २ प्रचार आर्य्यावर्त्तसे भिन्न देशोंमें भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्माका पुत्र विराट्, विराट्का मनु, मनुके मरीच्यादि दश इनके स्वयंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्त्तके प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त्त बसाया है। अब अभाग्योदयसे और आर्य्योंके आलस्य, प्रमाद, परस्परके विरोधसे अन्य देशोंके राज्य करनेकी तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्य्यावर्त्तमें भी आर्योंका

अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियोंको अनेक प्रकारके दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तरके आग्रह रहित अपने और परायेका पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता माताके समान कृपा, न्याय और दयाके साथ विदेशियोंका राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा, अलग व्यवहारका विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर-का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसीका मान्य करना भद्रपुरुषोंका काम है।

प्रश्न—जगत्की उत्पत्तिमें कितना समय व्यतीत हुआ ?

उत्तर—एक अर्ब, छानवें क्रोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत्की उत्पत्ति और वेदोंके प्रकाश होनेमें हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका* में लिखा है, देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टिके बनाने और बननेमें हैं। और यह भी है कि सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणुओं, साठ परमाणुओंके मिले हुएका नाम अणु, दो अणुका एक द्व्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुकका अग्नि, चार द्व्यणुकका जल, पांच द्व्यणुककी पृथिवी अर्थात् तीन द्व्यणुकका त्रसरेणु और उसका दूना होनेसे पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रमसे मिलकर भूगोलादि परमात्माने बनाये हैं।

प्रश्न—इसका धारण कौन करता है ? कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फणवाले सर्पके शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि बैल-

---

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके वेदोत्पत्ति विषयको देखो।

के सींग पर, तीसरा कहता है किसी पर नहीं, चौथा कहता है कि वायुके आधार, पांचवां कहता है सूर्यके आकर्षणसे खैंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होनेसे नीचे २ आकाशमें चली जाती है। इत्यादिमें किस बातको सत्य मानें?

उत्तर—जो शेष सर्प्प और बैलके सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है उसको पूछना चाहिये कि सर्प्प और बैलके मा बापके जन्म समय किस पर थी। सर्प्प और बैल आदि किस पर हैं? बैलवाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे परन्तु सर्प्पवाले कहेंगे कि सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जलपर, जल अग्निपर, अग्नि वायु पर और वायु आकाशमें ठहरा है। उनसे पूछना चाहिये कि [ये] सब किस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किसका बच्चा है? कहेंगे कश्यप कद्रू और बैल गायका। कश्यप मरीची, मरीची मनु, मनु विराट् और विराट् ब्रह्माका पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टिका था। जब शेषका जन्म न हुआ था उसके पहिले पांच पीढ़ी हो चुकी हैं तब किसने धारण की थी? अर्थात् कश्यपके जन्म समयमें पृथिवी किस पर थी तो "तेरी चुप मेरी भी चुप" और लड़ने लग जायेंगे। इसका सच्चा अभिप्राय यह है कि जो "बाक़ी" रहता है उसको शेष कहते हैं। सो किसी कविने "शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्" ऐसा कहा कि शेषके आधार पृथिवी है। दूसरेने उसके अभिप्रायको न समझ कर सर्प्पकी मिथ्या कल्पना करली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलयसे बाक़ी अर्थात् पृथक् रहता है इसीसे उसको "शेष" कहते हैं और उसीके आधार पृथिवी है—

सत्येनोत्तभिता भूमिः॥ ऋ० १०। ८५। १॥

यह ऋग्वेदका वचन है। (सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वरने भूमि, आदित्य और सब लोकोंका धारण किया है।

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्* ॥

यह भी ऋग्वेदका वचन है—इसी (उक्षा) शब्दको देखकर किसीने बैलका ग्रहण किया होगा क्योंकि उक्षा बैलका भी नाम है। परन्तु उस मूढ़को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोलके धारण करनेका सामर्थ्य बैलमें कहांसे आवेगा? इसलिये उक्षा वर्षाद्वारा भूगोलके सेचन करनेसे सूर्य्यका नाम है। उसने अपने आकर्षणसे पृथिवीको धारण किया है। परन्तु सूर्य्यादिका धारण करने वाला विना परमेश्वरके दूसरा कोई भी नहीं है।

प्रश्न—इतने २ बड़े भूगोलोंको परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

उत्तर—जैसे अनन्त आकाशके सामने बड़े २ भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्रके आगे जलके छोटे कणके तुल्य भी नहीं हैं वैसे अनन्त परमेश्वरके सामने असंख्यात लोक एक परमाणुके तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् "विभुः प्रजासु" [३२। ८] यह यजुर्वेदका वचन है, वह परमात्मा सब प्रजाओंमें व्यापक होकर सबको धारण कर रहा है। जो वह ईसाई मुसलमान पुराणियोंके कथनानुसार विभु न होता तो इस सब सृष्टिका धारण कभी न कर सकता। क्योंकि विना प्राप्तिके किसीको कोई धारण नहीं कर सकता। कोई कहे कि ये सब लोक परस्पर आकर्षणसे धारित होंगे पुनः परमेश्वरके धारण करनेकी क्या अपेक्षा है। उनको यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त? जो अनन्त कहैं तो आकारवाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहैं तो उनके पर भाग सीमा अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा

---

* ऋग्वेदमें "उक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्त्ति" ॥ १० । ३१ । ८ ॥ यह वचन है। अथर्ववेदमें—"अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्याम्" ॥ ४ । ११ । १ । है ॥

लोक नहीं है वहां किसके आकर्षणसे धारण होगा जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदायका नाम वन रखते हैं तो समष्टि कहाता है और एक २ वृक्षादिको भिन्न २ गणना करें तो व्यष्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलोंको समष्टि गिनकर जगत् कहें तो सब जगत्का धारण और आकर्षणका कर्त्ता विना परमेश्वरके दूसरा कोई भी नहीं इसलिये जो सब जगत्को रचता है वही—

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् ॥ [यजु० १३।४]

यह यजुर्वेदका वचन है। जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकलोकान्तर पदार्थ तथा सूर्य्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थोंका रचन धारण परमात्मा करता है, जो सबमें व्यापक हो रहा है वही सब जगत्का कर्त्ता और धारण करनेवाला है।

प्रश्न—पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ?

उत्तर—घूमते हैं।

प्रश्न—कितने ही लोक कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय ?

उत्तर—ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेदमें लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजु० अ० ३। मं० ६ ॥

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ यजु० अ० ३३। मं० ४३ ॥

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादिका कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय,

रमणीयस्वरूपके साथ वर्त्तमान, सब प्राणि अप्राणियोंमें अमृतरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृतका प्रवेश करा और सब मूर्तिमान द्रव्योंको दिखलाता हुआ सब लोकोंके साथ आकर्षण गुणसे सह वर्त्तमान, अपनी परिधिमें घूमता रहता है किन्तु किसी लोकके चारों ओर नहीं घूमता वैसे ही एक २ ब्रह्माण्डमें एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाश्यहैं, जैसे—

दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ अथ० १४ । १ । १ ॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्यसे प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्यके प्रकाश हीसे प्रकाशित होते हैं परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्यके सामने आता है उतनेमें दिन और जितना पृष्ठमें अर्थात् आड़में होता जाता है उतनेमें रात। अर्थात् उदय, अस्त संध्या मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरोंमें सदा वर्त्तमान रहते है। अर्थात् जब आर्य्यावर्त्तमें सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् "अमेरिका" में अस्त होता है और जब अर्य्यावर्त्तमें अस्त होता है पाताल देशमें उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्तमें मध्य दिन वा मध्य रात्रि है उसी समय पाताल देशमें मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्षके दिन और रात होते अर्थात् सूर्यका नाम (ब्रध्नः) पृथिवीसे लाखगुणा बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राईके सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राईके घूमनेमें बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवीके घूमनेसे यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्यके घूमनेसे नहीं और जो सूर्यको स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थानसे दूसरी राशि अर्थात् स्थानको प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाशमें नियत

स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे २ चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जंबूद्वीपमें बतलाते हैं वे तो गहरी भांगके नशेमें निमग्न हैं क्यों? जो नीचे २ चली जाती तो चारों ओर वायुके चक्र न बननेसे पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्नस्थलोंमें रहनेवालोंको वायुका स्पर्श न होता, नीचेवालोंको अधिक होता और एकसी वायुकी गति होती, दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्षका होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमिके पास एक चन्द्र और अनेक भूमियोंके मध्यमें एक सूर्य रहता है।

प्रश्न—सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं?

उत्तर—ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥

शत० १४ [६।७।४]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हींमें सब पदार्थ और प्रजा वसती है और ये ही सबको वसाते हैं। जिसलिये वासके निवास करनेके घर हैं इसलिये इनका नाम वसु है। जब पृथिवीके समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वरका यह छोटासा लोक मनुष्यादि सृष्टिसे भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वरका कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकोंमें मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

प्रश्न—जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है वैसे ही अन्य लोकोंमें भी होगी वा विपरीत ?

उत्तर—कुछ २ आकृतमें भेद होनेका सम्भव है। जैसे इस देशमें चीन, हवस और आर्य्यावर्त्त, युरोपमें अवयव और रङ्ग रूप और आकृतिका भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्तरोंमें भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जातिकी जैसी सृष्टि इस देशमें है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकोंमें भी है। जिस २ शरीरके प्रदेशमें नेत्रादि अंग हैं उसी २ प्रदेशमें लोकान्तरमें भी उसी जातिके अवयव भी वैसे ही होते हैं क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ० १०।१९०।३॥

(धाता) परमात्माने जिस प्रकारके सूर्य्य चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्व कल्पमें रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टिमें रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरोंमें भी बनाये गये हैं। भेद किंचिन्मात्र नहीं होता।

प्रश्न—जिन वेदोंका इस लोकमें प्रकाश है उन्हींका उन लोकोंमें भी प्रकाश है वा नहीं ?

उत्तर—उन्हींका है। जैसे एक राजाकी राज्यव्यवस्था नीति सब देशोंमें समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वरकी वेदोक्त नीति अपने २ सृष्टिरूप सब राज्यमें एकसी है।

प्रश्न—जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वरके बनाये नहीं हैं तो ईश्वरका अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

उत्तर—जैसे राजा और प्रजा सम कालमें होते हैं और राजाके आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वरके आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टिका बनाने, जीवोंके कर्मफलोंके

देने, सबका यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो? इसलिये जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र परन्तु कर्मोंके फल भोगनेमें ईश्वरकी व्यवस्थासे परतन्त्र है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि संहार और पालन सब विश्वका करता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषयमें लिखा जायगा, यह आठवां समुल्लास पूरा हुआ॥ ८॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयवि-
षयेऽष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ८॥

अथ नवमसमुल्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ यजुः ४०।१४॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्याके स्वरूपको साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासनासे मृत्युको तरके विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है। अविद्याका लक्षण—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ [पातं० द० साधनपादे सू० ५]

यह योगसूत्रका वचन है—जो अनित्य संसार और देहादिमें नित्य, अर्थात् जो कार्य्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदासे है और योग बलसे यही देवोंका शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्याका प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादिके और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्रमें पवित्र बुद्धि दूसरा, अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःखमें सुखबुद्धि आदि तीसरा, अनात्मामें आत्मबुद्धि करना अविद्याका चौथा भाग है। यह चार प्रकारका विपरीत ज्ञान अविद्या कहाती है। इससे विपरीत अर्थात् अनित्यमें अनित्य और नित्यमें नित्य, अपवित्रमें अपवित्र, और पवित्रमें पवित्र, दुःखमें दुःख, सुखमें सुख, अनात्मामें अनात्मा, और आत्मामें आत्माका ज्ञान होना विद्या है। अर्थात् "वेत्ति यथावत्तत्त्वप-

दार्थस्वरूपं यया सा विद्या यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या” जिससे पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े अन्यमें अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है। अर्थात् कर्म और उपासना अविद्या इसलिये है कि यह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष है ज्ञानविशेष नहीं। इसीसे मंत्रमें कहा है कि विना शुद्ध कर्म और परमेश्वरकी उपासनाके मृत्यु दुःखसे पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म पाषाणमूर्त्यादिकी उपासना और मिथ्याज्ञानसे बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म उपासना और ज्ञानसे रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्मको छोड़ देना ही मुक्तिका साधन है।

प्रश्न—मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती ?

उत्तर—जो बद्ध है।

प्रश्न—बद्ध कौन है ?

उत्तर—जो अधर्म अज्ञानमें फँसा हुआ जीव है।

प्रश्न—बन्ध और मोक्ष स्वभावसे होता है वा निमित्तसे ?

उत्तर—निमित्तसे, क्योंकि जो स्वभावसे होता तो बन्ध और मुक्तिकी निवृत्ति कभी नहीं होती।

प्रश्न—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

[गौडपादीयकारिका। प्र० २। कां० ३२]

यह श्लोक माण्डूक्योपनिषद् पर है—जीव ब्रह्म होनेसे वस्तुतः जीवका निरोध अर्थात् न कभी आवरणमें आया न जन्म लेता न बन्ध है और न साधक अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है, न छूटनेकी

इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है क्योंकि जब परमार्थसे बन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या ?

उत्तर—यह नवीन वेदान्तियोंका कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होनेसे आवरणमें आता, शरीरके साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मोंके फल भोगरूप बन्धनमें फँसना, उसके छुड़ानेका साधन करता, दुःखसे छूटनेकी इच्छा करता और दुःखोंसे छूटकर परमानन्द परमेश्वरको प्राप्त होकर मुक्तिको भी भोगता है ?

प्रश्न—ये सब धर्म देह और अन्तःकरणके हैं जीवके नहीं। क्योंकि जीव तो पाप पुण्यसे रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादिके धर्म्म हैं, आत्मा निर्लेप है।

उत्तर—देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणि उसको स्पर्श करता है उसीको शीत उष्णका भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं न उनको भूख न पिपासा, किन्तु प्राण वाले जीवको क्षुधा, तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मनसे हर्ष शोक दुःख सुखका भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे अच्छे बुरे शब्दादि विषयोंका ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारसे सङ्कल्प विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमानका करनेवाला दण्ड और मान्यका भागी होता है। जैसे तलवारसे मारनेवाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनोंसे अच्छे बुरे कर्मोंका कर्त्ता जीव सुख दुःखका भोक्ता है जीव कर्मोंका साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोगता है। कर्मोंका साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करनेवाला जीव है वही कर्मोंमें लिप्त होता है, वह ईश्वरसाक्षी नहीं।

प्रश्न—जीव ब्रह्मका प्रतिबिम्ब है जैसे दर्पणके टूटने फूटनेसे बिम्बकी कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरणमें ब्रह्मका प्रति-

बिम्ब जीव तबतक है कि जबतक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब अन्तःकरण नष्ट होगया तब जीव मुक्त है।

उत्तर—यह बालकपनकी बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साकारका साकारमें होता है जैसे मुख और दर्पण आकारवाले हैं और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होनेसे उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

प्रश्न—देखो गम्भीर स्वच्छ जलमें निराकार और व्यापक आकाशका आभास पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरणमें परमात्माका आभास है इसलिये इसको चिदाभास कहते हैं।

उत्तर—यह बालबुद्धिका मिथ्या प्रलाप है। क्योंकि आकाश दृश्य नहीं तो उसको आंखसे कोई भी क्योंकर देख सकता है।

प्रश्न—यह जो ऊपरको नीला और धूंधलापन दीखता है वह आकाश नीला दीखता है वा नहीं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो वह क्या है?

उत्तर—अलग २ पृथिवी जल और अग्निके त्रसरेणु दीखते हैं। उसमें जो नीलता दीखती है, वह अधिक जल जो कि वर्षता है सो वही नील, जो धूंधलापन दीखता है वह पृथिवीसे धूली उड़कर वायुमें घूमती है वह दीखती, और उसीका प्रतिबिम्ब जल वा दर्पणमें दीखता है, आकाशका कभी नहीं।

प्रश्न—जैसे घटाकाश, मेघाकाश और महदाकाशके भेद व्यवहारमें होते हैं वैसे ही ब्रह्मके ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधिके भेदसे ईश्वर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महाकाश ही कहाता है।

उत्तर—यह भी बात अविद्वानोंकी है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न भिन्न नहीं होता। व्यवहारमें भी "घड़ा लाओ" इत्यादि व्यवहार होते हैं कोई नहीं कहता कि घड़ेका आकाश लाओ। इसलिये

यह बात ठीक नहीं।

प्रश्न—जैसे समुद्रके बीचमें मच्छी कीड़े और आकाशके बीचमें पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्ममें सब अन्तःकरण घूमते हैं वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्माकी सत्तासे जैसा कि अग्निसे लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं जैसे वे चलते फिरते और आकाश तथा ब्रह्म निश्चल है, वैसे जीवको ब्रह्म माननेमें कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म अन्तःकरणोंमें प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उसमें होते हैं वा नहीं? जो कहो कि आवरण होनेसे सर्वज्ञता नहीं होती तो कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित? जो कहो कि अखण्डित है तो बीचमें कोई भी पड़दा नहीं डाल सकता। जब पड़दा नहीं तो सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूपको भूलकर अन्तःकरणके साथ चलता सा है, स्वरूपसे नहीं, जब स्वयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना २ पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे २ जहां २ सरकता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना२ छूटता जायगा वहां२ का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टिके ब्रह्मको अन्तःकरण बिगाड़ा करेंगे और बन्ध मुक्ति भी क्षण क्षणमें हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता तो किसी जीवको पूर्व देखे सुनेका स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्मने देखा वह नहीं रहा इसलिये ब्रह्म जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता, सदा पृथक् २ हैं।

प्रश्न—यह सब अध्यारोपमात्र है। अर्थात् अन्य वस्तुमें अन्य वस्तुका स्थापन करना अध्यारोप कहाता है वैसे ही ब्रह्म वस्तुमें सब जगत् और इसके व्यवहारका अध्यारोप करनेसे जिज्ञासुको बोध कराना होता है, वास्तवमें सब ब्रह्म ही है।

प्रश्न—अध्यारोपका करनेवाला कौन है?*

---

* [यहांसे प्रश्नकर्त्ता सिद्धान्ती और उत्तरदाता वेदान्ती है]

उत्तर—जीव।

प्रश्न—जीव किसको कहते हो?

उत्तर—अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनको।

प्रश्न—अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन दूसरा है वा वही ब्रह्म?

उत्तर—वही ब्रह्म है।

प्रश्न—तो क्या ब्रह्म हीने अपनेमें जगत्‌की झूठी कल्पना करली?

उत्तर—हो, ब्रह्मकी इससे क्या हानि।

प्रश्न—जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह झूठा नहीं होता?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो मन, वाणीसे कल्पित वा कथित हैं वह सब झूठा है।

प्रश्न—फिर मन वाणीसे झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलनेवाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं?

उत्तर—हो, हमको इष्टापत्ति है!

वाह रे झूठे वेदान्तियो! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्माको मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गतिका कारण नहीं है? किस उपनिषद्, सूत्र वा वेदमें लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी है? क्योंकि जैसे किसी चोरने कोतवालको दण्ड दिया अर्थात् "उलटि चोर कोतवालको दण्डे" इस कहानी के सदृश तुम्हारी बात हुई। यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवालको दण्ड देवे। वैसे ही तुम मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्ममें व्यर्थ लगाते हो! जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी, होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही होजाय क्योंकि वह एकरस है, सत्यस्वरूप सत्यमानी सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्मके नहीं जिसको तुम विद्या कहते हो वह अविद्या है और तुम्हारा अध्यारोप भी मिथ्या है क्योंकि आप ब्रह्म न होकर अपनेको ब्रह्म और ब्रह्मको जीव मानना यह मिथ्या ज्ञान नहीं तो क्या

है ? जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न, अज्ञान और बन्धमें कभी नहीं गिरता, क्योंकि अज्ञान परिच्छिन्न एक देशी अल्प अल्पज्ञ जीव होता है, सर्वज्ञ सर्वव्यापी ब्रह्म नहीं।

अब मुक्ति बन्धका वर्णन करते हैं।

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर—"मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिसमें छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न—किससे छूट जाना ?

उत्तर—जिससे छूटनेकी इच्छा सब जीव करते हैं।

प्रश्न—किससे छूटनेकी इच्छा करते हैं ?

उत्तर—जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न—किससे छूटना चाहते हैं ?

उत्तर—दुःखसे।

प्रश्न—छूट कर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं ?

उत्तर—सुखको प्राप्त होते और ब्रह्ममें रहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति और बन्ध किन २ बातोंसे होता है ?

उत्तर—परमेश्वरकी आज्ञा पालने, अधर्म्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनोंसे अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या पक्षपातरहित न्याय धर्मकी वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकारसे परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने पढ़ाने और धर्मसे पुरुषार्थ कर ज्ञानकी उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनोंको करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे इत्यादि साधनोंसे मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि कामसे बन्ध होता है।

प्रश्न—मुक्तिमें जीवका लय होता है वा विद्यमान रहता है ?

उत्तर—विद्यमान रहता है।

प्रश्न—कहां रहता है ?

उत्तर—ब्रह्ममें।

प्रश्न—ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है ?

उत्तर—जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

प्रश्न—मुक्त जीवका स्थूल शरीर होता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं रहता।

प्रश्न—फिर वह सुख और आनन्दभोग कैसे करता है ?

उत्तर—उसके सत्य सङ्कल्पादि स्वभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिकसङ्ग नहीं रहता, जैसेः—

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति ॥

॥ शतपथ कां० १४ ॥

मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखनेके संकल्पसे चक्षु, स्वादके अर्थ रसना, गन्धके लिये घ्राण, संकल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करनेके लिये बुद्धि, स्मरण करनेके लिये चित्त और अहंकारके अर्थ अहङ्काररूप अपनी स्वशक्तिसे जीवात्मा मुक्तिमें हो जाता है और सङ्कल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीरके आधार रहकर इन्द्रियोंके गोलकके द्वारा जीव स्वकार्य्य करता है वैसे अपनी शक्तिसे

मुक्तिमें सब आनन्द भोग लेता है।

प्रश्न—उसकी शक्ति के प्रकारकी और कितनी है?

उत्तर—मुख्य एक प्रकारकी शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन २४ (चौबीस) प्रकारके सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्तिमें भी आनन्दकी प्राप्ति भोग करता है। जो मुक्तिमें जीवका लय होता तो मुक्तिका सुख कौन भोगता? और जो जीवके नाश ही को मुक्ति समझते हैं वे महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीवकी यह है कि दुःखोंसे छूट कर आनन्दस्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वरमें जीवका आनन्दमें रहना। देखो वेदान्त शारीरिक-सूत्रोंमें—

अभावं बादरिराह ह्येवम्॥ [वेदान्त० ४।४।१०]

जो बादरि व्यासजीका पिता है वह मुक्तिमें जीवका और उसके साथ मनका भाव मानता है अर्थात् जीव और मनका लय पराशरजी नहीं मानते वैसे ही—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्॥ [वेदा० ४।४।११]

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुषका मनके समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियों और प्राण आदिको भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः॥

[वेदान्तद० ४।४।१२]

व्यास मुनि मुक्तिमें भाव और अभाव इन दोनोंको मानते हैं अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्तिमें बना रहता है, अपवित्रता, पापाचरण, दुःख अज्ञानादिका अभाव मानते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च

न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥

[कठो० अ० २ । व० ६ । मं० १०]

यह उपनिषद्का वचन है । जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीवके साथ रहती है और बुद्धिका निश्चय स्थिर होता है उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं ।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥ [छान्दो० ८ । ७ । १]

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाँ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाँश्च लोकानाप्नोति सर्वाँश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥

[छान्दो० प्र० ८ । खं० १२ । मं० ५ । ६]

मघवन्मर्त्यं वा इदँ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥

[छान्दो० प्र० ८ । खं० १२ । मं० १]

जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा,

पिपासासे रहित, सत्यकाम सत्यसंकल्प है उसकी खोज और उसीकी जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। जिस परमात्माके सम्बन्धसे मुक्त जीव सब लोकों और सब कामोंको प्राप्त होता है, जो परमात्माको जानके मोक्षके साधन और अपनेको शुद्ध करना जानता है सो यह मुक्तिको प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मनसे कामोंको देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता हैं। जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मामें स्थिर होके मोक्ष सुखको भोगते हैं और इसी परमात्माका जो कि सबका अन्तर्यामी आत्मा है उसकी उपासना मुक्तिको प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं। उससे उनको सर्व लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो २ संकल्प करते हैं वह २ लोक और वह २ काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कल्पमय शरीरसे आकाशमें परमेश्वरमें विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःखसे रहित नहीं हो सकते। जैसे इन्द्रसे प्रजापतिने कहा है कि हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष ! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिंहके मुखमें बकरी होवे वैसे यह शरीर मृत्युके मुखके बीच है सो शरीर इस मरण और शरीररहित जीवात्माका निवासस्थान है। इसलिये यह जीव सुख और दुःखसे सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीवकी सांसारिक प्रसन्नताकी निवृत्ति होतीही है और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्ममें रहता है। उसको सांसारिक सुखदुःखका स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है।

प्रश्न—जीव मुक्तिको प्राप्त होकर पुनः जन्म मरणरूप दुःखमें कभी आते हैं वा नहीं ? क्योंकि—

न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते इति ॥

उपनिषद्वचनम् [छां० प्र० ८। खं० १५]

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥

शारीरिक सूत्र [४। ४। ३३]

यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ भगवद्गीता ॥

इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेदमें इस बातका निषेध किया है।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥ ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १, २ ॥

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ ३ ॥

सांख्यसूत्र १। १५९ ॥

प्रश्न—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाशरहित पदार्थोंके मध्यमें वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्तिका सुख भुगाकर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता तथा पिताका दर्शन कराता है ॥ १ ॥

उत्तर—हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्माका नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्तिमें आनन्द भुगा कर पृथिवीमें पुनः माता पिताके सम्बन्धमें जन्म देकर माता पिताका दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्तिकी व्यवस्था करता सबका स्वामी है ॥ २ ॥

जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्तिका कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती ॥ ३ ॥

प्रश्न—

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥ न्याय० [१ । १ । २]

जो दुःखका अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि जब मिथ्या ज्ञान अविद्या, लोभादि दोष, विषय दुष्ट व्यसनोंमें प्रवृत्ति, जन्म और दुःखका उत्तर २ के छूटनेसे पूर्व २ के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है।

उत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे। जैसे "अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते" बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्यको है। इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख वा दुःख है। इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्दका अर्थ जानना चाहिये।

प्रश्न—जो मुक्तिसे भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्तिमें रहता है?

उत्तर—

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥ [मुण्डक ३ खं० २ मं० ६]

यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है। वे मुक्त जीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनन्दको तबतक भोगके पुनः महाकल्पके पश्चात् मुक्ति सुखको छोड़के संसारमें आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षोंकी एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियोंका एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रोंका एक महीना, ऐसे बारह महीनोंका एक वर्ष, ऐसे शत वर्षोंका परान्तकाल होता है। इसको गणितकी रीतिसे यथावत् समझ लीजिए। इतना समय मुक्तिमें सुख भोगनेका है।

प्रश्न—सब संसार और ग्रन्थकारोंका यही मत है कि जिससे पुनः जन्म मरणमें कभी न आवें।

उत्तर—यह बात कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीवका सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्दको भोगनेका असीम सामर्थ्य कर्म और साधन जीवोंमें नहीं इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्तिमेंसे कोई भी लौटकर जीव इस संसारमें न आवे तो संसारका उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष होजाने चाहियें।

प्रश्न—जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसारमें रख देता है इसलिये निश्शेष नहीं होते।

उत्तर—जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य होजायें क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश अवश्य होता है फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट होजायें मुक्ति अनित्य होगई और मुक्तिके स्थानमें बहुतसा भीड़ भड़का हो जायेगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होनेसे बढ़तीका पारावार न रहेगा और दुःखके अनुभवके विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे कटु न हो तो मधुर क्या जो मधुर न हो तो कटु क्या कहावे ? क्योंकि एक स्वादके एक रसके विरुद्ध दोनोंकी परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंके भोगनेवालेको होता है। और जो ईश्वर अन्तवाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय, जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है। जैसे एक मन भर उठानेवालेके शिर पर दश मन धरनेसे भार धरनेवालेकी निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्यवाले जीव पर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं। और जो परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है तो जिस कारणसे उत्पन्न होते हैं वह चुक

जायगा, क्योंकि चाहे कितना बड़ा धनकोश हो परन्तु जिसमें व्यय है और आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्तिमें जाना वहांसे पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़ेसे कारागारसे जन्म कारागार दण्डवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है? जब वहांसे आना ही न हो तो जन्म कारागारसे इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है।

प्रश्न—जैसे परमेश्वर नित्यमुक्त पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

उत्तर—परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाववाला है इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धनमें नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाववाला रहता है परमेश्वरके सदृश कभी नहीं होता।

प्रश्न—जब ऐसी, तो मुक्ति भी जन्म मरणके सदृश है इसलिये श्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर—मुक्ति जन्म मरणके सदृश नहीं क्योंकि जबतक ३६००० (छत्तीस सहस्र) वार उत्पत्ति और प्रलयका जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवोंको मुक्तिके आनन्दमें रहना दुःखका न होना क्या छोटी बात है? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगनेवाली है पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदिके लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्तिके लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवनका उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्तिसे लौटकर जन्ममें आना है तथापि इसका उपाय करना अत्यावश्यक है?

प्रश्न—मुक्तिके क्या साधन हैं?

उत्तर—कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं परन्तु विशेष उपाय ये हैं। जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि

पाप कर्मोंका फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फलको देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे जो कोई दुःखको छुड़ाना और सुखको प्राप्त होना चाहे वह अधर्मको छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःखका पापाचरण और सुखका धर्माचरण मूलकारण है। सत्पुरुषोंके संगसे विवेक अर्थात् सत्याऽसत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याऽकर्त्तव्यका निश्चय अवश्य करें पृथक् २ जानें और शरीर अर्थात् जीव पंच कोशोंका विवेचन करें। एक "अन्नमय" जो त्वचासे लेकर अस्थिपर्यन्तका समुदाय पृथिवीमय है, दूसरा "प्राणमय" जिसमें "प्राण" अर्थात् जो बाहरसे भीतर आता "अपान" जो भीतरसे बाहर जाता "समान" जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीरमें रस पहुंचाता "उदान" जिससे कंठस्थ अन्न पान खैंचा जाता और बल पराक्रम होता है "व्यान" जिससे सब शरीरमें चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा "मनोमय" जिसमें मनके साथ अहङ्कार, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियां हैं। चौथा "विज्ञानमय" जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान इन्द्रियां जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवां "आनन्दमयकोश" जिसमें प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द अधिकानन्द, और आधार कारणरूप प्रकृति है। ये पांच कोश कहाते हैं इन्हींसे जीव सब प्रकारके कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारोंको करता है तीन अवस्था, एक "जागृत" दूसरी "स्वप्न" और तीसरी "सुषुप्ति" अवस्था कहाती है। तीन शरीर हैं, एक "स्थूल" जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्वोंका समुदाय "सूक्ष्मशरीर" कहाता है यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादिमें भी जीवके साथ रहता है। इसके दो भेद हैं एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्मभूतोंके अंशोंसे बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीवके स्वाभाविक गुणरूप हैं यह दूसरा और भौतिक शरीर मुक्तिमें भी रहता है। इसीसे जीव मुक्तिमें सुखको भोगता है। तीसरा

कारण जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़निद्रा होती है वह प्रकृतिरूप होनेसे सर्वत्र विभु और सब जीवोंके लिये एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधिसे परमात्माके आनन्दस्वरूपमें मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीरका पराक्रम मुक्तिमें भी यथावत् सहायक रहता है इन सब कोश अवस्थाओंसे जीव पृथक् है क्योंकि यह सबको विदित है कि अवस्थाओंसे जीव पृथक् है क्योंकि जब मृत्यु होता है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया, यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्ता भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है क्योंकि विना जीवके जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इनको सुख दुःखका भोग व पाप पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इनके सम्बन्धसे जीव पाप पुण्योंका कर्ता और सुख दुःखोंका भोक्ता है। जब इन्द्रियां अर्थोंमें मन इन्द्रियों और आत्मा मनके साथ संयुक्त होकर प्राणोंको प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मोंमें लगाता है तभी वह बहिर्मुख होजाता है उसी समय भीतरसे आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मोंमें भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्माकी शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षाके अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखोंको प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है। दूसरा साधन "वैराग्य" अर्थात् जो विवेकसे सत्यासत्यको जाना हो उसमेंसे सत्याचरणका ग्रहण और असत्याचरणका त्याग करना विवेक है। जो पृथिवीसे लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थोंके गुण, कर्म स्वभावसे जानकर उसकी आज्ञा पालन और उपासनामें तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना सृष्टिसे उपकार लेना विवेक कहाता है। तत्पश्चात् तीसरा साधन "षट्क सम्पत्ति" अर्थात् छः प्रकारके कर्म करना एक "शम" जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरणको अधर्माचरणसे हटाकर धर्माचरणमें सदा प्रवृत्त रखना, दूसरा "दम" जिससे श्रोत्रादि

इन्द्रियों और शरीरको व्यभिचारादि बुरे कर्मोंसे हटाकर जितेन्द्रिय-त्वादि शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त रखना, तीसरा "उपरति" जिससे दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषोंसे सदा दूर रहना, चौथा "तितिक्षा" चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोकको छोड़ मुक्तिसाधनोंमें सदा लगे रहना, पाँचवां "श्रद्धा" जो वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोधसे पूर्ण आप्त विद्वान सत्योपदेष्टा महाशयोंके वचनों पर विश्वास करना, छठा "समाधान" चित्त की एकाग्रता ये छः मिल-कर एक "साधन" तीसरा कहाता है। चौथा "मुमुक्षुत्व" अर्थात जैसे क्षुधा तृषातुरको सिवाय अन्न जलके दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे विना मुक्तिके साधन और मुक्तिके दूसरेमें प्रीति न होना। ये चार साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनोंके पश्चात ये कर्म करने होते हैं। इनमेंसे जो इन चार साधनोंसे युक्त पुरुष होता है वही मोक्षका अधिकारी होता है। दूसरा "सम्बन्ध" ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि शास्त्र प्रतिपादकको यथावत् समझ कर अन्वित करना, तीसरा "विषयी" सब शास्त्रोंका प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषय वाले पुरुषका नाम विषयी है, चौथा, "प्रयो-जन" सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दको प्राप्त होकर मुक्तिसुख-का होना ये चार अनुबन्ध कहाते हैं। "तदनन्तर श्रवणचतुष्टय" एक "श्रवण" जब कोई विद्वान उपदेश करे तब शान्त ध्यान देकर सुनना विशेष ब्रह्मविद्याके सुननेमें अत्यन्त ध्यान देना चाहिये कि यह सब विद्याओंमें सूक्ष्म विद्या है, सुनकर दूसरा "मनन" एकान्त देशमें बैठके सुने हुएका विचार करना जिस बातमें शङ्का हो पुनः पूछना और सुनने समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना, तीसरा "निदिध्यासन" जब सुनने और मनन करनेसे निस्सन्देह होजाय तब समाधिस्थ होकर उस बातको देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं ध्यान योगसे देखना, चौथा "साक्षात्कार" अर्थात् जैसा पदार्थका स्वरूप

गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना श्रवणचतुष्टय कहाता है। सदा तमोगुण अर्थात क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषोंसे अलग होके सत्य अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणोंको धारण करे (मैत्री) सुखी जनोंमें मित्रता, (करुणा) दुखी जनों पर दया, (मुदिता) पुण्यात्माओंसे हर्षित होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओंमें न प्रीति और न वैर करना। नित्यप्रति न्यूनसे न्यून दो घन्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिससे भीतरके मन आदि पदार्थ साक्षात् हों। देखो! अपने चेतनस्वरूप हैं इसीसे ज्ञानस्वरूप और मनके साक्षी हैं क्योंकि जब मन शान्त, चंचल, आनन्दित वा विषादयुक्त होता है उसको यथावत् देखते हैं वैसे ही इन्द्रियां प्राण आदिका ज्ञाता पूर्वदृष्टका स्मरणकर्ता और एक कालमें अनेक पदर्थोंके वेत्ता धारणाकर्षणकर्त्ता और सबसे पृथक् हैं जो पृथक् न होते तो स्वतन्त्र कर्त्ता इनके प्रेरक अधिष्ठाता कभी नहीं हो सकते।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

योगशास्त्रे पादे २। सू० ३॥

इनमेंसे अविद्याका स्वरूप कह आये पृथक् वर्त्तमान बुद्धिको आत्मासे भिन्न न समझना अस्मिता, सुखमें प्रीति राग दुःखमें अप्रीति द्वेष और सब प्राणिमात्रको यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरीरस्थ रहूं मरूं नहीं मृत्युदुःखसे त्रास अभिनिवेश कहाता है इन पांच क्लेशोंको योगाभ्यास विज्ञानसे छुड़ाके ब्रह्मको प्राप्त होके मुक्तिके परमानन्दको भोगना चाहिये।

प्रश्न—जैसी मुक्ति आप मानते हैं वैसी अन्य कोई नहीं मानता, देखो जैनी लोग मोक्षशिला, शिवपुरमें जाके चुप चाप बैठे रहना, ईसाई चौथा आसमान जिसमें विवाह लड़ाई बाजे गाजे वस्त्रादि धारणसे आनन्द भोगना, वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान, वाममार्गी श्रीपुर,

शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ और गोकुलिये गोसाईं गोलोक आदिमें जाके उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदिको प्राप्त होकर आनन्द में रहनेको मुक्ति मानते हैं। पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास, (सानुज्य) छोटे भाईके सदृश ईश्वरके साथ रहना, (सारूप्य) जैसी उपासनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना, (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके समीप रहना, (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना ये चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं। वेदान्ति लोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समझते हैं।

उत्तर—जैनी (१२) बारहवें, ईसाई (१३) तेरहवें और (१४) चौदहवें समुल्लासमें मुसलमानोंकी मुक्ति आदि विषय विशेष कर लिखेंगे जो वाममार्गी श्रीपुरमें जाकर लक्ष्मीके सदृश्य स्त्रियां मद्य मांसादि खाना पीना रङ्ग राग भोग करना मानते हैं वह यहांसे कुछ विशेष नहीं। वैसे ही महादेव और विष्णुके सदृश आकृतिवाले पार्वती और लक्ष्मीके सदृश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना यहांके धनाढ्य राजाओंसे अधिक इतना ही लीखते हैं कि वहां रोग न होंगे और युवावस्था सदा रहेगी यह उनकी बात मिथ्या है क्योंकि जहां भोग वहां रोग और जहां रोग वहां वृद्धावस्था अवश्य होती है। और पौराणिकोंसे पूछना चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकारकी मुक्ति है वैसी तो कृमि कीट पतंग पश्वादिकोंकी भी स्वतःसिद्ध प्राप्त है, क्योंकि ये जितने लोक हैं वे सब ईश्वरके हैं इन्हींमें सब जीव रहते हैं इसलिये "सालोक्य" मुक्ति अनायास प्राप्त है "सामीप्य" ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होनेसे सब उसके समीप हैं इसलिये "सामीप्य" मुक्ति स्वतःसिद्ध है "सानुज्य" जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है इससे "सानुज्य" मुक्ति भी विना प्रयत्नके सिद्ध है और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इससे "सायुज्य" मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है। और जो अन्य साधारण नास्तिक लोग मरनेसे तत्वोंमें तत्व मिलकर परम मुक्ति मानते हैं वह

तो कुत्ते गदहे आदिको भी प्राप्त है। ये मुक्तियां नहीं हैं किन्तु एक पकारका बन्धन है क्योंकि ये लोग शिवपुर, मोक्षशिला, चौथे आसमान, सातवें आसमान श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोकको एक देशमें स्थान विशेष मानते हैं जो वे उन स्थानोंसे पृथक् हों तो मुक्ति छूट जाय इसीलिये जैसे १२ (बारह) पत्थरके भीतर दृष्टबन्ध होते हैं उसके समान बन्धनमें होंगे, मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरे कहीं अटके नहीं। न भय, न शङ्का, न दुःख होता है जो जन्म है वह उत्पत्ति और मरना प्रलय कहा है समय पर जन्म लेते हैं।

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर—अनेक।

प्रश्न—जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्युकी बातोंका स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मनसे ज्ञान करता है वह भी एक समयमें दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्वजन्मकी बात तो दूर रहने दीजिये इसी देहमें जब गर्भमें जीव था शरीर बना पश्चात् जन्मा पांचवें वर्षसे पूर्व तक जो २ बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जागृत वा स्वप्नमें बहुतसा व्यवहार प्रत्यक्षमें करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहारका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्षके पूर्व तेरहवें वर्षके पांचवें महीनेके नववें दिन दश बजे पर पहिली मिनटमें तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकारका था? और मनमें क्या विचार था? जब इसी शरीरमें ऐसा है तो पूर्व जन्मकी बातोंके स्मरणमें शङ्का करना केवल लड़कपनकी बात है और जो स्मरण नहीं होता है इसीसे जीव सुखी है नहीं तो सब जन्मोंके दुःखोंको देख २ दुःखित होकर मरजाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्मके वर्त्तमानको जानना चाहे तो भी नहीं जान

सकता क्योंकि जीवका ज्ञान और स्वरूप अल्प है यह बात ईश्वरके जानने योग्य है जीवके नहीं।

प्रश्न—जब जीवको पूर्वका ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है तो जीवका सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था उसीका यह फल है तभी वह पापकर्मोंसे बच सके?

उत्तर—तुम ज्ञान के प्रकारका मानते हो।

प्रश्न—प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे आठ प्रकारका।

उत्तर—तो जब तुम जन्मसे लेकर समय २ में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मुर्खता आदि सुख दुःख संसारमें देख कर पूर्वजन्मका ज्ञान क्यों नहीं करते। जैसे एक अवैद्य और एक वैद्यको कोई रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अविद्वान् नहीं जान सकता उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरेने नहीं परन्तु ज्वरादि रोगके होनेसे अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझसे कोई कुपथ्य होगया है जिससे मुझे यह रोग हुआ है वैसे ही जगतमें विचित्र सुख दुःख आदिकी घटती बढ़ती देखके पूर्वजन्मका अनुमान क्यों नहीं जानते? और जो पूर्वजन्मको न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है क्योंकि विना पापके दारिद्र्यादि दुःख और विना पूर्वसञ्चित पुण्यके राज्य धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसको क्यों दी? और पूर्व जन्मके पाप पुण्यके अनुसार दुःख सुखके देनेसे परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्न—एक जन्म होनेसे भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय जैसे माली अपने उपवनमें छोटे और बड़े वृक्ष लगाता किसीको काटता उखाड़ता और किसीकी रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रक्खे उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करनेवाला नहीं जो उसको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसीसे डरे।

उत्तर—परमात्मा जिसलिये न्याय चाहता करता अन्याय कभी नहीं करता इसलिये वह पूजनिय और बड़ा है जो न्यायविरुद्ध करे वह ईश्वर ही नहीं जैसे माली युक्तिके विना मार्ग वा अस्थानमें वृक्ष लगाने, न काटने योग्यको काटने, अयोग्यको बढ़ाने, योग्यको न बढ़ानेसे दूषित होता है इसी प्रकार विना कारणके करनेसे ईश्वरको दोष लगे परमेश्वरके ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभावसे पवित्र और न्यायकारी है जो उन्मत्त समान काम करे तो जगत्के श्रेष्ठ न्यायाधीशसे भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत्में विना योग्यताके उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देनेवाले निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता इसीसे किसीसे नहीं डरता।

प्रश्न—परमात्माने प्रथम ही से जिसके लिये जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है।

उत्तर—उसका विचार जीवोंके कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं जो अन्यथा हो तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे।

प्रश्न—बड़े छोटोंको एकसा ही सुख दुःख है बड़ोंको बड़ी चिन्ता और छोटोंको छोटी—जैसे किसी साहूकारका विवाद राजघरमें लाख रुपयेका हो तो वह अपने घरसे पालकीमें बैठकर कचहरीमें उष्णकालमें जाता हो बाज़ारमें होके उसको जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो पुण्य पापका फल, एक पालकीमें आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहिरे ऊपर नीचेसे तप्यमान होते हुए पालकी उठाकर ले जाते हैं परन्तु बुद्धिमान लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे २ कचहरी निकट आती जाती है वैसे २ साहूकारको बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारोंको आनन्द होता जाता है जब कचहरीमें पहुंचते हैं तब सेठजी इधर उधर जानेका विचार करते हैं कि प्राड्विवाक् (वकील) के पास जाऊं वा सरिश्तेदारके पास, आज हारूंगा वा जीतूंगा न जाने क्या होगा और कहार लोग तमाखू पीते परस्पर

बातें करते हुए प्रसन्न होकर आनन्दमें सो जाते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ सुख और हार जाय तो सेठजी दुःखसागरमें डूब जायं और वे कहार जैसेके वैसे रहते हैं इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल विछोनेमें सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर पत्थर और मिट्टी ऊंचे नीचे स्थल पर सोता है उसको झट ही निद्रा आती है ऐसे ही सर्वत्र समझो।

उत्तर—यह समझ अज्ञानियोंकी है। क्या किसी साहूकारसे कहें कि तू कहार बनजा और कहारसे कहें कि तू साहूकार बनजा तो साहूकार कभी कहार बनना नहीं और कहार साहूकार बनना चाहते हैं। जो सुख दुःख बराबर होता तो अपनी २ अवस्था छोड़ नीच और ऊंच बनना दोनों न चाहते। देखो एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजाकी राणीके गर्भमें आता और दूसरा महादरिद्र घसिया-रीके गर्भमें आता है। एकको गर्भसे लेकर सर्वथा सुख और दूसरेको सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर सुगन्धि-युक्त जलादिसे स्नान युक्तिसे नाड़ीछेदन दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखनेके लिये नौकर चाकर खिलौना सवारी उत्तम स्थानोंमें लाड़से आनन्द होता है दूसरेका जन्म जङ्गलमें होना स्नानके लिये जल भी नहीं मिलना जब दूध पीना चाहता तब दूधके बदलेमें घूंसा थपेड़ा आदिसे पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वरसे रोता है। कोई नहीं पूछता, इत्यादि जीवोंको विना पुण्य पापके सुख दुःख होनेसे परमेश्वर पर दोष आता है। दूसरा जैसे विना किये कर्मोंके सुख दुःख मिलते हैं तो आगे नरक स्वर्ग भी न होना चाहिये क्योंकि जैसे परमेश्वरने इस समय विना कर्मोंके सुख दुःख दिया है वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको स्वर्गमें और जिसको चाहे नरकमें भेज देगा पुनः सब जीव अधर्मयुक्त हो जावेंगे धर्म क्यों करें ? क्योंकि धर्मका फल मिलनेमें सन्देह है। परमेश्वरके

हाथ है जैसी उसकी प्रसन्नता होगी वैसा करेगा तो पापकर्मोंमें भय न होकर संसारमें पापकी वृद्धि और धर्मका क्षय हो जायगा। इसलिये पूर्व जन्मके पुण्य पापके अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्मके कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

प्रश्न—मनुष्य और अन्य पश्वादिके शरीरमें जीव एकसा है वा भिन्न भिन्न जातिके ?

उत्तर—जीव एकसे हैं परन्तु पाप पुण्यके योग्यसे मलिन और पवित्र होते हैं।

प्रश्न मनुष्यका जीव पश्वादिमें और पश्वादिका मनुष्यके शरीरमें और स्त्रीका पुरुषके और पुरुषका स्त्रीके शरीरमें जाता आता है वा नहीं ?

उत्तर—हां जाता आता है क्योंकि जब पाप बढ़जाता पुण्य न्यून होता है तब मनुष्यका जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानोंका शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्यजन्म होता है। इसमें भी पुण्य पापके उत्तम मध्यम निकृष्ट होनेसे मनुष्यादिमें भी उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं और जब अधिक पापका फल पश्वादि शरीरमें भोग लिया है पुनः पाप पुण्यके तुल्य रहनेसे मनुष्य शरीरमें आता और पुण्यके फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्यके शरीरमें आता है जब शरीरसे निकलता है उसीका नाम "मृत्यु" और शरीरके साथ संयोग होनेका नाम "जन्म" है जब शरीर छोड़ता तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायुमें रहता क्योंकि "यमेन वायुना" वेदमें लिखा है कि यम नाम वायुका है गरुड़पुराणका कल्पित यम नहीं। इसका विशेष खण्डन मण्डन ग्यारहवें समुल्लासमें लिखेंगे, पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीवके पाप पुण्यानुसार जन्म देता है वह वायु, अन्न, जल, अथवा शरीरके छिद्रद्वारा दूसरेके शरीरमें ईश्वरकी प्रेरणासे प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर

क्रमशः वीर्यमें जा, गर्भमें स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है जो स्त्रीके शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुषके शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुषके शरीरमें प्रवेश करता है और नपुंसक गर्भकी स्थिति समय स्त्री पुरुषके शरीरमें सम्बन्ध करके रजवीर्यके बराबर होनेसे होता है। इसी प्रकार नाना प्रकारके जन्म मरणमें तबतक जीव पड़ा रहता है कि जबतक उत्तम कर्मोपासना ज्ञानको करके मुक्तिको नहीं पाता, क्योंकि उत्तम कर्मादि करनेसे मनुष्योंमें उत्तम जन्म और मुक्तिमें महाकल्पपर्यन्त जन्म मरण दुःखोंसे रहित होकर आनन्दमें रहता है।

प्रश्न—मुक्ति एक जन्ममें होती है वा अनेक जन्मोंमें?

उत्तर—अनेक जन्मोंमें क्योंकि—

भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे॥

मुण्डक [२। खं० २। मं० ८]

जब इस जीवके हृदयकी अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्टकर्म क्षयको प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्माके भीतर और बाहर व्याप रहा है उसमें निवास करता है।

प्रश्न—मुक्तिमें परमेश्वरमें जीव मिल जाता है वा पृथक् रहता है?

उत्तर—पृथक् रहता है, क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्तिका सुख कौन भोगे और मुक्तिके जितने साधन हैं वे सब निष्फल होजावें, वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीवका प्रलय जानना चाहिये। जब जीव परमेश्वरकी आज्ञापालन उत्तम कर्म सत्सङ्ग योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्तिको पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्र-

मणा विपश्चितेति॥ तैत्ति० [आनन्दवल्ली अनु०१]

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मामें स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्माको जानता है वह उस व्यापकरूप ब्रह्ममें स्थित होके उस "विपश्चित्" अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्मके साथ सब कामों को प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनन्दकी कामना करता है उस २ कामोंको प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है।

प्रश्न—जैसे शरीरके विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता वैसे मुक्तिमें विना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा?

उत्तर—इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो—जैसे सांसारिक सुख शरीरके आधारसे भोगता है वैसे परमेश्वरके आधार मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञानसे सब सृष्टिको देखता, अन्य मुक्तोंके साथ मिलता, सृष्टिविद्याको क्रमसे देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरोंमें अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सबमें घूमता है वह सब पदार्थोंको, जो कि उसके ज्ञानके आगे हैं, देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है। यही सुखविशेष स्वर्ग और विषयतृष्णामें फँसकर दुःखविशेष भोग करना नरक कहाता है। "स्वः" सुखका नाम है "स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः" "अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति" जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वरकी प्राप्तिसे आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। सब जीव स्वभावसे सुखप्राप्तिकी इच्छा और दुःखका वियोग होना चाहते हैं। परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुखका मिलना और दुःखका छूटना न होगा, क्योंकि जिसका कारण अर्थात् मूल होता है वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे—

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥९॥
आरम्भरुचिताऽधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुण लक्षणम् ॥१०॥
लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥११॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥१२॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥१३॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥१४॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥१५॥

मनु० अ० १२। श्लो० ८। ९। २५-३३। ३५-३८॥

अर्थात् मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को जानकर उत्तम स्वभावका ग्रहण मध्य और निकृष्टका त्याग करे और यह भी निश्चय जाने कि यह जीव मनसे जिस शुभ वा अशुभ कर्मको करता है उसको मन, वाणीसे कियेको वाणी और शरीरसे किये को शरीर अर्थात् सुख दुःखको भोगता है॥ १॥

जो नर शरीरसे चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठोंको मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उसको वृक्षादि स्थावरका जन्म, वाणीसे किये पाप कर्मों-

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति
तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति ॥

जैसे मूल कटजानेसे वृक्ष नष्ट होता है वैसे पापको छोड़नेसे दुःख नष्ट होता है। देखो मनुस्मृतिमें पाप और पुण्यकी बहुत प्रकारकी गति—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥१॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥२॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥३॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतः।
एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥४॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥५॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥६॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥७॥
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥८॥

से पक्षी और मृगादि तथा मनसे किये दुष्ट कर्मोंसे चांडाल आदिका शरीर मिलता है ॥ २ ॥

जो गुण इन जीवोंके देहमें अधिकतासे वर्त्तता है वह गुण उस जीवको अपने सदृश कर देता है ॥ ३ ॥

जब आत्मामें ज्ञान हो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे तब तम और जब राग द्वेषमें आत्मा लगे तब रजोगुण जानना चाहिये, ये तीन प्रकृतिके गुण सब संसारस्थमें व्याप्त होकर रहते हैं ॥ ४ ॥

उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मामें प्रसन्नता मन प्रशान्तके सदृश शुद्धभानयुक्त वर्त्ते तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान है ॥ ५ ॥

जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त प्रसन्नतारहित विषयमें इधर उधर गमन आगमनमें लगे तब समझना कि रजोगुण प्रधान सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान है ॥ ६ ॥

जब मोह अर्थात् सांसारिक पदार्थोंमें फँसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मनमें कुछ विवेक न रहे विषयोंमें आसक्त तर्क वितर्क रहित जाननेके योग्य न हो तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझमें तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान है ॥ ७ ॥

अब जो इन तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है उसको पूर्णभावसे कहते हैं ॥ ८ ॥

जो वेदोंका अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञानकी वृद्धि, पवित्रताकी इच्छा, इन्द्रियोंका निग्रह, धर्म क्रिया और आत्माका चिन्तन होता है वही सत्त्वगुणका लक्षण है ॥ ९ ॥

जब रजोगुणका उदय सत्त्व और तमोगुणका अन्तर्भाव होता है तब आरम्भमें रुचिता धैर्य्यत्याग असत् कर्मोंका ग्रहण निरन्तर विषयोंकी सेवामें प्रीति होती है तभी समझना कि रजोगुण प्रधानतासे मुझमें वर्त रहा है ॥ १० ॥

जब तमोगुणका उदय और दोनोंका अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापोंका मूल बढ़ना, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्यका नाश, क्रूरताका होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वरमें श्रद्धाका न रहना, भिन्न २ अन्तःकरणकी वृत्ति और एकाग्रताका अभाव और किन्हीं व्यसनोंमें फँसना होवे तब तमोगुणका लक्षण विद्वान्को जानने योग्य है ॥ ११ ॥

तथा जब अपना आत्मा जिस कर्मको करके करता हुआ और करनेकी इच्छासे लज्जा, शङ्का और भयको प्राप्त होवे तब जानो कि मुझमें प्रवृद्ध तमोगुण है ॥ १२ ॥

जिस कर्मसे इस लोकमें जीवात्मा पुष्कल प्रसिद्धि चाहता, दरिद्रता होनेमें भी चारण भाट आदिको दान देना नहीं छोड़ता तब समझना कि मुझमें रजोगुण प्रबल है ॥ १३ ॥

और जब मनुष्यका आत्मा सबसे जाननेको चाहे गुण ग्रहण करता जाय अच्छे कामोंमें लज्जा न करे और जिस कर्मसे आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात् धर्माचरण ही में रुचि रहे तब समझना कि मुझमें सत्त्वगुण प्रबल है ॥ १४ ॥

तमोगुणका लक्षण काम, रजोगुणका अर्थसंग्रहकी इच्छा और सत्त्वगुणका लक्षण धर्म सेवा करना है परन्तु तमोगुणसे रजोगुण और रजोगुणसे सत्त्वगुण श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

अब जिस २ गुणसे जिस २ गतिको जीव प्राप्त होता है उस २ को आगे लिखते हैं—

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥१॥
स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥२॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥३॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४॥
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥५॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥६॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥७॥
तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥८॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥९॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥१०॥
इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥११॥

[मनु० अ० १२। श्लो० ४०। ४२—५०। ५२]

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गतिको प्राप्त

होते हैं ॥ १ ॥

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट मत्स्य, सर्प्प, कच्छप, पशु और मृगके जन्मको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ निन्दित कर्म करनेहारे, सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकरके जन्मको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्योंकी प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुखके लिये अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस जो हिंसक, पिशाच अनाचारी अर्थात् मद्यादिके आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं वह उत्तम तमोगुणके कर्मका फल है ॥ ४ ॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे झल्ला अर्थात् तलवार आदिसे मारने वा कुदार आदिसे खोदनेहारे, मल्ल अर्थात् नौका आदिके चलाने वाले, नट जो बांस आदि पर कला कूदना चढ़ना उतरना आदि करते हैं, शस्त्र-धारी भृत्य और मद्य पीनेमें आसक्त हों ऐसे जन्म नीच रजोगुणका फल है ॥ ५ ॥

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओंके पुरोहित, वादविवाद करनेवाले, दूत, प्राड्विवाक (वकील वारिष्टर), युद्धविभागके अध्यक्षके जन्म पाते हैं ॥ ६ ॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गानेवाले), गुह्यक (वादित्र बजानेहारे), यक्ष (धनाढ्य) विद्वानोंके सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूपवाली स्त्री उनका जन्म पाते हैं ॥ ७ ॥

जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमानके चलानेवाले ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुणके कर्मका फल जानो ॥ ८ ॥

जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्त्ता, वेदार्थवित्, विद्वान वेद विद्युत् आदि और काल विद्याके ज्ञाता, रक्षक

ज्ञानी और (साध्य) कार्यसिद्धिके लिये सेवन करने योग्य अव्यापक का जन्म पाते हैं॥ ६॥

जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम कर्म्म करते हैं वे ब्रह्मा सब वेदोंका वेत्ता विश्वसृज सब सृष्टिक्रम विद्याको जानकर विविध विमानादि यानोंको बनानेहारे धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्तके जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धिको प्राप्त होते है॥ १०॥

जो इन्द्रियके वश होकर विषयी धर्मको छोड़कर अधर्म करनेहारे अविद्वान हैं वे मनुष्योंमे नीच जन्म बुरे २ दुःखरूप जन्मको पाते हैं॥ ११॥

इस प्रकार सत्त्व रज और तमोगुण युक्त वेगसे जिस २ प्रकारका कर्म जीव करता है उस २ को उसी २ प्रकार फल प्राप्त होता है जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणोंके स्वभावोंमें न फँस कर महायोगी होके मुक्तिका साधन करें क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१॥ [पा० १ । २]

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥२॥ [पा० १ । ३]

ये योगशास्त्र पातञ्जलके सूत्र हैं—मनुष्य रजोगुण तमोगुण युक्त कर्मोंसे मनको रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मोंसे भी मनको रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभागमें चित्तको ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओरसे मनकी वृत्तिको रोकना॥ १॥

जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सबके द्रष्टा ईश्वरके स्वरूपमें जीवात्माकी स्थिति होती है॥ २॥

इत्यादि साधन मुक्तिके लिये करे और—

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥

यह सांख्य [१ । १] का सूत्र है। जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीरसम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियोंसे दुःखित होना,

आधिदैविक जो अतिवृष्टि अतिताप अतिशीत मन इन्द्रियोंकी चञ्चलतासे होता है इस त्रिविध दुःखको छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है। इसके आगे आचार अनाचार और भक्ष्याऽभक्ष्यका विषय लिखेंगे ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये
नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ९ ॥

अथ दशमसमुल्लासारम्भः

अथाचारानाचारभक्ष्याभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कामोंका आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषोंका संग और सद्विद्याके ग्रहणमें रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहाता है उसको लिखते हैं—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥१॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥२॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥३॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥४॥
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥५॥
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥६॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।

इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥७॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥८॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥९॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१०॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥११॥
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥१२॥

मनु० अ० २। [श्लो० १-४। ६। ८। ९। ११-१३ । २६। ६५]

मनुष्योंको सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें जिसको हृदय अर्थात् आत्मा सत्य कर्तव्य जानें वही धर्म माननीय और करणीय है ॥ १ ॥

क्योंकि इस संसारमें अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है वेदार्थज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा होजाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम, नियमरूपी धर्म आदि संकल्प ही से बनते हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि जो २ हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं जो इच्छा न हो तो आंखका खोलना और

मोचना भी नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

इसलिये सम्पूर्ण वेद मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषोंका आचार और जिस २ कर्ममें अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिनमें न हो उन कर्मोंका सेवन करना उचित है देखो ! जब कोई मिथ्याभाषण चोरी आदिकी इच्छा करता है तभी उसके आत्मामें भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं ॥ ५ ॥

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषोंका आचार, अपने आत्माके अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाणसे स्वात्मानुकूल धर्ममें प्रवेश करे ॥ ६ ॥

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेदसे अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्मका अनुष्ठान करता है वह इस लोकमें कीर्त्ति और मरके सर्वोत्तम सुखको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्रको कहते हैं इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्यका निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थोंका अपमान करे उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य करदें क्योंकि जो वेदकी निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है ॥ ८ ॥

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषोंका आचार और अपने आत्माके ज्ञानसे अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्मके लक्षण अर्थात् इन्हींसे धर्म लक्षित होता है ॥ ९ ॥

परन्तु जो द्रव्योंके लोभ और काम अर्थात् विषयसेवामें फँसा हुआ नहीं होता उसीको धर्मका ज्ञान होता है जो धर्मको जाननेकी इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है ॥ १० ॥

इसीसे सब मनुष्योंको उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानोंका निषेकादि संस्कार करें जो इस जन्म वा परजन्ममें पवित्र करनेवाला है ॥ ११ ॥

' ब्राह्मणके सोलहवें, क्षत्रियके बाईसवें और वैश्यके चौबीसवें वर्षमें

केशान्त कर्म और क्षौरमुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधिके पश्चात् केवल शिखाको रखके अन्य डाढ़ी मूंछ और शिरके बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढ़ी मूंछ रखनेसे भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालोंमें रह जाता है ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥१॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥२॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥३॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित् ॥४॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥५॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥६॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रू[illegible] चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्[illegible] आचरेत् ॥७॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥८॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥९॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥१०॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः ॥१२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१३॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुराः श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१४॥

मनु० अ० २। [श्लो० ८८। ९३। ९४। ९७। १००। ९८। ११०। १३६। १५३-१५७। १५९]

मनुष्यका यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्तको हरण करनेवाले विषयोंमें प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकनेमें प्रयत्न करे जैसे घोड़ेको सारथी रोक कर शुद्ध मार्गमें चलाता है इस प्रकार इनको अपने वशमें करके अधर्ममार्गसे हटाके धर्ममार्गमें सदा चलाया करे ॥ १ ॥

क्योंकि इन्द्रियोंको विषयासक्ति और अधर्ममें चलानेसे मनुष्य

निश्चित दोषको प्राप्त होता है और जब इनको जीतकर धर्ममें चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

यह निश्चय है कि जैसे अग्निमें इन्धन और घी डालनेसे बढ़ता जाता है वैसे ही कामोंके उपभोगसे काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है इसलिये मनुष्यको विषयासक्त कभी न होना चाहिये ॥ ३ ॥

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको विप्रदुष्ट कहते हैं उसके करनेसे न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ न नियम और न धर्माचरण सिद्धिको प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जनको सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

इसलिये पांच कर्म [इन्द्रिय], पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मनको अपने वशमें करके युक्ताहार विहार योगसे शरीरकी रक्षा करता हुआ सब अर्थोंको सिद्ध करे ॥ ५ ॥

जितेन्द्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुनके हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्शसे दुःख सुन्दर रूप देखके प्रसन्न और दुष्टरूप देख अप्रसन्न उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्धमें रुचि और दुर्गन्धमें अरुचि नहीं करता ॥ ६ ॥

कभी विना पूछे वा अन्यायसे पूछने वालेको कि जो कपटसे पूछता हो उसको उत्तर न देवे उनके सामने बुद्धिमान् जड़के समान रहे, हां, जो निष्कपट और जिज्ञासु हों उनको विना पूछे भी उपदेश करे ॥ ७ ॥

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्यके स्थान हैं परन्तु धनसे उत्तम बन्धु, बन्धुसे अधिक अवस्था, अवस्थासे श्रेष्ठ कर्म और कर्मसे पवित्र विद्यावाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं ॥ ८ ॥

क्योंकि चाहे सौ वर्षका हो परन्तु जो विद्या विज्ञानरहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञानका दाता है उस बालकको भी वृद्ध

मानना चाहिये क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान अज्ञानीको बालक और ज्ञानीको पिता कहते हैं ॥ ९ ॥

अधिक वर्षोंके बीतने, श्वेत बालके होने, अधिक धनसे और बड़े कुटुम्बके होनेसे वृद्ध नहीं होता किन्तु ऋषि महात्माओंका यही निश्चय है कि जो हमारे बीचमें विद्या विज्ञानमें अधिक है वही वृद्ध पुरुष कहाता है ॥ १० ॥

ब्राह्मण ज्ञानसे, क्षत्रिय बलसे, वैश्य धनधान्यसे और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयुसे वृद्ध होता है ॥ ११ ॥

शिरके बाल श्वेत होनेसे बूढ़ा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसीको विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं ॥ १२ ॥

और जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ठका हाथी चमड़ेका मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत्में नाममात्र मनुष्य कहाता है ॥ १३ ॥

इसलिये विद्या पढ़ विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरतासे सब प्राणियोंके कल्याणका उपदेश करे और उपदेशमें वाणी मधुर और कोमल बोले जो सत्योपदेशसे धर्मकी वृद्धि और अधर्मका नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥ १४ ॥

नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान, सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इनके शुद्ध होनेमें चित्तकी शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है शौच उतना करना योग्य है कि जितनेसे मल दुर्गन्ध दूर हो जाये ॥

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥

मनु० [१ । १०८]

जो सत्यभाषणादि कर्मोंका आचरण करना है वही वेद और स्मृतिमें कहा हुआ आचार है ॥

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥ [यजुः १६।१५]

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

[अथर्व० कां० ११ । व० १५]

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव॥ [तैत्तिरीया० प्र० ७ अनु० ११]

माता, पिता, आचार्य्य और अतिथिकी सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस २ कर्मसे जगत्का उपकार हो वह २ करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य कर्म है कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्योंका सङ्ग न करे आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा सङ्ग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।

प्रश्न—आर्यावर्त्त देशवासियोंका आर्यावर्त्त देशसे भिन्न २ देशोंमें जानेसे आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

उत्तर—यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतरकी पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यवर्त्तमें रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा जो ऐसा ही होता तो—

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्॥
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान्॥

[महाभारत० अ० ३२७]

ये श्लोक भारत शान्तिपर्व मोक्षधर्ममें व्यास शुक संवादमें हैं—अर्थात् एक समय व्यासजी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं उसमें निवास करते थे। शुकाचार्य्यने पितासे एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है

वा अधिक? व्यासजीने जानकर उस बातका प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बातका उपदेश कर चुके थे। दूसरेकी साक्षीके लिये अपने पुत्र शुकसे कहा कि हे पुत्र! तू मिथिलापुरीमें जाकर यही प्रश्न जनक राजासे कर वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिताका वचन सुनकर शुकाचार्य्य पातालसे मिथिलापुरीकी ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात् हिमालयसे ईशान उत्तर और वायव्य [कोण] में जो देश बसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दरको उस देशके मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानरके समान भूरे नेत्रवाले होते हैं जिन देशोंका नाम इस समय "यूरोप" है उन्हींको संस्कृतमें "हरिवर्ष" कहते थे उन देशोंको देखते हुए और जिनको हूण "यहूदी" भी कहते हैं उन देशोंको देखकर चीनमें आये चीनसे हिमालय और हिमालयसे मिथिलापुरीको आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पातालमें अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठके पातालमें जाके महाराजा युधिष्ठिरके यज्ञमें उद्दालक ऋषिको ले आये थे। धृतराष्ट्रका विवाह गांधार जिसको "कंधार" कहते हैं वहां की राजपुत्रीसे हुआ। माद्री पाण्डुकी स्त्री "ईरान" के राजाकी कन्या थी। और अर्जुनका विवाह पातालमें जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहांके राजाकी लड़की उलोपीके साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीपद्वीपान्तरमें न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं? मनुस्मृतिमें जो समुद्रमें जानेवाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्तसे द्वीपान्तरमें जानेके कारण है और जब महाराजा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोलके राजाओंको बुलानेको निमन्त्रण देनेके लिये भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव चारों दिशाओंमें गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार राजकार्य्य और भ्रमणके लिये सब भूगोलमें घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होनेकी शंका है वह केवल मूर्खोंके बहकाने और अज्ञान बढ़नेसे है। जो मनुष्य देशदेशान्तर और

द्वीपद्वीपान्तरमें जाने आनेमें शंका नहीं करते वे देशदेशान्तरके अनेकविध मनुष्योंके समागम रीति भांति देखने अपना राज्य और व्यवहार बढ़ानेसे निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहारका ग्रहण बुरी बातोंके छोड़नेमें तत्पर होके बड़े ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदिके समागमसे आचार-भ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तरके उत्तम पुरुषोंके साथ समागममें छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खताकी बात नहीं तो क्या है?, हां इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादिसे दूषित होते हैं इसलिये उनके सङ्ग करनेसे आर्य्योंको भी यह कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुणग्रहण करनेमें कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इनके मद्यपानादि दोषोंको छोड़ गुणोंको ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं जब इनके स्पर्श और देखनेसे भी मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसीसे उनसे युद्ध कभी नहीं, कर सकते क्योंकि युद्धमें उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगोंको राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषोंको छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनतादिका धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझलें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्यके साथ है जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जानेमें कुछ भी दोष नहीं लग सकता, दोष तो पापके काम करनेमें लगते हैं। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्मका निश्चय और पाखण्डमतका खण्डन करना अवश्य सीखलें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके। क्या विना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरमें राज्य वा व्यापार किये स्वदेशकी उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेशमें व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःखके दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको

विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तरमें जानेकी आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जालमें न फँसनेसे हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट होजावेगी इसीलिये भोजन छादनमें बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देशमें न जासकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांसका ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें क्या सब बुद्धिमानोंने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषोंमें युद्धसमयमें भी चौका लगाकर रसोई बनाके खाना अवश्य पराजयका हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगोंका युद्धमें एक हाथसे रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथसे शत्रुओंको घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़तासे इन लोगोंने चौका लगाते २ विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्य्यावर्त्त देश भरमें चौका लगाके सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां! जहां भोजन करें उस स्थानको धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूरा कर्कट दूर करनेमें प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयोंके समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

प्रश्न—सखरी निखरी क्या है?

उत्तर—सखरी जो जल आदिमें अन्न पकाये जाते और जो घी दूधमें पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तोंका चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खानेमें स्वाद और उदरमें चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है नहीं तो जो अग्नि वा कालसे पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चने आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

प्रश्न—द्विज अपने हाथसे रसोई बनाके खावें वा शूद्रके हाथकी

बनाई खावें ?

उत्तर—शूद्रके हाथकी बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापारके काममें तत्पर रहें और शूद्रके पात्र तथा उसके घरका पका हुआ अन्न आपत्कालके विना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः ॥

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र । प्रपाठक २ । पटल २ । खण्ड २ । सूत्र ४]

यह आपस्तम्बका सूत्र है। आर्योंके घरमें शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदिसे पवित्र रहें आर्योंके घरमें जब रसोई बनावें तब मुख बांधके बनावें क्योंकि उनके मुखसे उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्नमें न पड़े। आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें आर्योंको खिलाके आप खावें।

प्रश्न—शूद्रके छुए हुए पके अन्नके खानेमें जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथका बनाया कैसे खा सकते हैं ?

उत्तर—यह बात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भरके हाथका बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र, चमार, भङ्गी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतोंमेंसे ईखको काटते छीलते पीलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं विना धोये हाथोंसे छूते, उठाते, धरते आधा सांठा चूस रस पीके आधा उसीमें डाल देते हैं और रस पकाते समय उस रसमें रोटी भी पकाकर खाते हैं जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिसके तलेमें विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है उन्हीं जूतोंसे उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घरके उच्छिष्ट पात्रोंका जल डालते उसीमें घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथोंसे उठाते और पसीना

भी आटामें टपकता जाता है इत्यादि और फल मूल कंदमें भी ऐसी ही लीला होती है जब इन पदार्थोंको खाया तो जानों सबके हाथका खालिया।

प्रश्न—फल, मूल, कंद, और रस इत्यादि अदृष्टमें दोष नहीं मानते?

उत्तर—वाहजी वाह! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते गुड़ शक्कर मीठी लगती दूध घी पुष्टि करता है इसीलिये यह मतलबसिन्धु क्या नहीं रचा है अच्छा जो अदृष्टमें दोष नहीं तो भङ्गी वा मुसलमान अपने हाथोंसे दूसरे स्थानमें बनाकर तुमको आके देवे तो खालोगे वा नहीं? जो कहो कि नहीं तो अदृष्टमें भी दोष है। हां, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियोंके हाथके खानेमें आर्योंको भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपसमें आर्योंका एक भोजन होनेमें कोई भी दोष नहीं दीखता। जबतक एक मत एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तबतक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होनेसे सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तबतक बढ़तीके बदले हानि होती है। विदेशियोंके आर्यावर्त्तमें राज्य होनेके कारण आपसकी फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य्यका सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्थामें अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्याका अप्रचार आदि कुकर्म हैं जब आपसमें भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारतकी बातें जो पांच सहस्र वर्षके पहले हुई थीं उनको भी भूल गये देखो! महाभारत युद्धमें सब लोग लड़ाईमें सवारियोंपर खाते पीते थे आपसकी फूटसे कौरव पांडव और यादवोंका सत्यानाश होगया सो तो होगया परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्योंको सब सुखोंसे छुड़ाकर दुःखसागरमें डुबा

मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीचके दुष्टमार्गमें आर्य लोग अबतक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्योंमेंसे नष्ट हो जाय। भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकारका होता है एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्रमें—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।

मनु० [५। ५]

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंको भी मलीन विष्ठा मूत्रादिके संसर्गसे उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमांसं च॥ मनु० [२। १७७]

जैसे अनेक प्रकारके मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते॥

[शार्ङ्गधर अ० ४। श्लो० २१]

जो बुद्धिका नाश करनेवाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादिसे दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांसके परमाणुओं हीसे पूरित है उनके हाथका न खावें जिसमें उपकारी प्राणियोंकी हिंसा अर्थात् जैसे एक गायके शरीरसे दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होनेसे एक पीढ़ीमें चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्योंको सुख पहुंचता है वैसे पशुओंको न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गायसे बीस सेर और किसीसे दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गायसे दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए अब प्रत्येक गायके जन्म भरके दूधसे २४९६० (चौवीस सहस्र नौसौ साठ) मनुष्य एकवारमें तृप्त हो सकते हैं उसके छः बछियां छः बछड़े होते हैं उनमेंसे दो मरजायं तो भी दश रहे उनमेंसे पांच बछड़ियोंके

जन्मभरके दूधको मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं अब रहे पांच बैल वे जन्मभरमें ५००० (पांच सहस्र) मन अन्न न्यूनसे न्यून उत्पन्न कर सकते हैं उस अन्नमेंसे प्रत्येक मनुष्य तीनपाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्योंकी तृप्ति होती है दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठसो) मनुष्य तृप्त होते हैं दोनों संख्या मिलाके एक गायकी एक पीढ़ीमें ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छःसौ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी दरपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्योंका पालन होता है इससे भिन्न [बैल] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मोंसे मनुष्योंके बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूधमें अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी हैं परन्तु गायके दूध घीसे जितने बुद्धिवृद्धिसे लाभ होते हैं उतने भैंसके दूधसे नहीं इससे मुख्योपकारक आर्योंने गायको गिना है । और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा । बकरीके दूधसे २५९२० (पच्चीस सहस्र नौसौ बीस) आदमियोंका पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदिसे भी बड़े उपकार होते हैं *। इन पशुओंको मारनेवालोंको सब मनुष्योंकी हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्य्योंका राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोलदेशोंमें बड़े आनन्दमें मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओंकी बहुताई होनेसे अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे जबसे विदेशी मांसाहारी इस देशमें आके गौ आदि पशुओंके मारनेवाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तबसे क्रमशः आर्य्योंके दुःखकी बढ़ती होती जाती है क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥ [वृद्धचा० १०।१३]

* इसकी विशेष व्याख्या "गोकरुणानिधि" में की है ।

जब वृक्षका मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहांसे हों ?

प्रश्न—जो सभी अहिंसक होजायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओंको मार खायं तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ?

उत्तर—यह राजपुरुषोंका काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राणसे भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंकदें ?

उत्तर—चाहें फेंकदें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियोंको खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसारकी कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदिसे पदार्थोंको प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मोंसे प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थोंसे स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबलपराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि गोधूम फल मूल कन्द दूध घी मिष्टादि पदार्थोंका सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है जितने पदार्थ अपनी प्रकृतिसे विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिये विहित हैं उन २ पदार्थोंका ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

प्रश्न—एक साथ खानेमें कुछ दोष है वा नहीं ?

उत्तर—दोष है, क्योंकि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खानेसे अच्छे मनुष्यका भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरेके साथ खानेमें भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं इसीलिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।

न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥

मनु० [२ । ५६]

न किसीको अपना जूंठा पदार्थ दे और न किसीके भोजनके बीच आप खावे न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना कहीं इधर उधर जाय ।

प्रश्न – "गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्यका क्या अर्थ होगा ?

उत्तर—इसका यह अर्थ है कि गुरुके भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरुको प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्यको भोजन करना चाहिये ।

प्रश्न—जो उच्छिष्टमात्रका निषेध है तो मक्खियोंका उच्छिष्ट सहत, बछड़ेका उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खानेके पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उनको भी न खाना चाहिये ।

उत्तर—सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुतसी ओषधियोंका सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी माके बाहिरका दूध पीता है भीतरके दूधको नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़ेके पिये पश्चात् जलसे उसकी माके स्तन धोकर शुद्ध पात्रमें दोहना चाहिये । और अपना उच्छिष्ट अपनेको विकारकारक नहीं होता देखो ! स्वभावसे यह बात सिद्ध है कि किसीका उच्छिष्ट कोई भी न खावे जैसे अपने मुख, नाक, कान, आंख, उपस्थ और गुह्येन्द्रियोंके मलमूत्रादिके स्पर्शमें घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरेके मल मूत्रके स्पर्शमें होती है । इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रमसे विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्यमात्रको उचित है कि किसीका उच्छिष्ट अर्थात् जूंठा न खाय ।

प्रश्न—भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ?

उत्तर—नहीं क्योंकि उनके भी शरीरोंका स्वभाव भिन्न २ हैं ।

प्रश्न—कहोजी मनुष्यमात्रके हाथकी कीहुई रसोईके खानेमें क्या

दोष है? क्योंकि ब्राह्मणसे लेके चांडाल पर्यन्तके शरीर हाड़ मांस चमड़ेके हैं और जैसा रुधिर ब्राह्मणके शरीरमें है वैसाही चांडाल आदिके, पुनः मनुष्यमात्रके हाथकी पकी हुई रसोईके खानेमें क्या दोष है?

उत्तर—दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोष रहित रज वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं, क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्धके परमाणुओंसे भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदिका न खाना। भला जब कोई तुमसे पूछेगा कि जैसा चमड़ेका शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधूका है वैसा ही अपनी स्त्रीका भी है तो क्या माता आदि स्त्रियोंके साथ भी स्वस्त्रीके समान वर्तोगे? तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुखसे खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जासकता है तो क्या मलादि भी खाओगे? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है?

प्रश्न—जो गायके गोबरसे चौका लगाते हो तो अपने गोबरसे क्यों नहीं लगाते? और गोबरके चौकेमें जानेसे चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता?

उत्तर—गायके गोबरसे वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्यके मलसे, [गोमय] चिकना होनेसे शीघ्र नहीं उखड़ता न कपड़ा बिगड़ता न मलीन होता है जैसा मिट्टीसे मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबरसे नहीं होता। मिट्टी और गोबरसे जिस स्थानका लेपन करते हैं वह देखनेमें अतिसुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करनेसे घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी आदि बहुतसे जीव मलिन स्थानके रहनेसे आते हैं। जो उसमें झाड़ू लेपनादिसे शुद्धि प्रतिदिन न कीजावे तो जानो पाखानेके समान वह

स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़से सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जलसे धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इससे पूर्वोक्त दोषोंकी निवृत्ति होजाती है। जैसे मियांजीके रसोईके स्थानमें कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूठी रकेबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े रहते हैं और मक्खियोंका तो क्या कहना! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत होनेका भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध स्थानके समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इनसे पूछे कि यदि गोबरसे चौका लगानेमें तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हेमें कण्डे जलाने, उसकी आगसे तमाखू पीने, घरकी भीति पर लेपन करने आदिसे मियांजीका भी चौका भ्रष्ट होजाता होगा इसमें क्या सन्देह।

प्रश्न—चौकेमें बैठके भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठके?

उत्तर—जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकोंमें तो घोड़े आदि यानों पर बैठके वा खड़े २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

प्रश्न—क्या अपने ही हाथका खाना और दूसरेके हाथका नहीं?

उत्तर—जो आर्योंमें शुद्ध रीतिसे बनावे तो बराबर सब आर्योंके साथ खानेमें कुछ भी हानि नहीं क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने और चौका देने वर्त्तन भांड़ मांजने आदि बखेड़ेमें पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणोंकी वृद्धि कभी नहीं होसके, देखो! महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भूगोलके राजा ऋषि महर्षि आये थे एक ही पाकशालासे भोजन किया करते थे जबसे ईसाई मुसलमान आदिके मतमतान्तर चले आपसमें वैर विरोध हुआ उन्होंने मद्यपान गोमांसादिका खाना पीना स्वीकार किया उसी समयसे भोजनादिमें बखेड़ा होगया। देखो! क़ाबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशोंके राजाओंकी कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदिके साथ

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे शकुनि आदि कौरव पांडवोंके साथ खाते पीते थे कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सर्व भूगोलमें वेदोक्त एक मत था उसीमें सबकी निष्ठा थी और एक दूसरेका सुख दुःख हानि लाभ आपसमें अपने समान समझते थे तभी भूगोलमें सुख था। अब तो बहुतसे मत वाले होनेसे बहुतसा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका निवारण करना बुद्धिमानोंका काम है। परमात्मा सबके मनमें सत्यमतका ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलयको प्राप्त हों इसमें सब विद्वान लोग विचार कर विरोधभाव छोड़के आनन्दको बढ़ावें।

यह थोड़ासा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य विषयमें लिखा। इस ग्रन्थका पूर्वार्द्ध इसी दशवें समुल्लासके साथ पूरा होगया। इन समुल्लासोंमें विशेष खण्डन मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जबतक मनुष्य सत्यासत्यके विचारमें कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते तबतक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनोंके अभिप्रायको नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम सबको सत्य शिक्षाका उपदेश करके अब उत्तरार्द्ध अर्थात् जिसमें चार समुल्लास हैं उसमें विशेष खण्डन मण्डन लिखेंगे। इन चारोंमेंसे प्रथम समुल्लासमें आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरेमें जैनियोंके, तीसरेमें ईसाइयों और चौथेमें मुसलमानोंके मतमतान्तरोंके खण्डन मण्डनके विषयमें लिखेंगे और पश्चात् चौदहवें समुल्लासके अन्तमें स्वमत भी दिखलाया जायगा। जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहें वे इन चारों समुल्लासोंमें देखें परन्तु सामान्य करके कहीं २ दश समुल्लासोंमें भी कुछ थोड़ासा खण्डन मण्डन किया है। इन चौदह समुल्लासोंको पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टिसे जो देखेगा उसके आत्मामें सत्य अर्थका प्रकाश होकर आनन्द होगा और जो हठ दुराग्रह और ईर्ष्यासे देखे सुनेगा उसको इस ग्रन्थका अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इसको यथावत् न विचारेगा वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। विद्वानोंका यही काम है कि

सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण असत्यका त्याग करके परम आनन्दित होते हैं वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ काम और मोक्षरूप फलोंको प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं ॥ १० ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित आचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्य
विषये दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १० ॥

॥ समाप्तोयम्पूर्वार्द्धः ॥

उत्तरार्द्धः

अनुभूमिका

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षोंके पूर्व वेदमतसे भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्यासे अविरुद्ध हैं। वेदोंकी अप्रवृति होनेका कारण महाभारत युद्ध हुआ इनकी अप्रवृत्तिसे अविद्याऽन्धकारके भूगोलमें विस्तृत होनेसे मनुष्योंकी बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मनमें जैसा आया वैसा मत चलाया। उन सब मतोंमें चार मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतोंके मूल हैं वे क्रमसे एकके पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है। अब इन चारोंकी शाखा एक सहस्रसे कम नहीं है। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सबको परस्पर सत्यासत्यके विचार करनेमें अधिक परिश्रम न हो इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो २ इसमें सत्य मतका मण्डन और असत्यका खण्डन लिखा है वह सबको जानना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतोंके मूल ग्रन्थ देखनेसे बोध हुआ है उसको सबके आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है क्योंकि विज्ञान गुप्त हुयेका पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इसको देखनेसे सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी २ समझके अनुसार सत्य मतका ग्रहण करना और असत्य मतको छोड़ना सहज होगा। इनमेंसे जो पुराणादि ग्रन्थोंसे शाखा शाखान्तर रूप मत आर्य्यावर्त्त देशमें चले हैं उनका संक्षेपसे गुण दोष इस ११ वें समुल्लासमें दिखाया जाता है। इस मेरे कर्मसे यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य्य किसीकी हानि वा विरोध करनेमें नहीं किन्तु सत्यासत्यका निर्णय

करने करानेका है। इसी प्रकार सब मनुष्योंको न्यायदृष्टिसे वर्तना अति उचित है। मनुष्यजन्मका होना सत्यासत्यके निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने करानेके लिये। इसी मत-मतान्तरके विवादसे जगत्‌में जो २ अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जबतक इस मनुष्य जातिमें परस्पर मिथ्या मतमतान्तरका विरुद्ध वाद न छूटेगा तबतक अन्योऽन्यको आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानोंके विरोध ही ने सबको विरोध जालमें फँसा रक्खा है यदि ये लोग अपने प्रयोजनमें न फँसकर सबके प्रयोजनको सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत होजायें। इसके होनेकी युक्ति इस ग्रन्थकी पूर्तिमें लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मतमें प्रवृत्त होनेका उत्साह सब मनुष्योंके आत्माओंमें प्रकाशित करे।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु॥

उत्तरार्द्धः

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्य लोगोंके कि जो आर्य्यावर्त्त देशमें बसनेवाले हैं उनके मतका खण्डन तथा मण्डनका विधान करेंगे। यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोलमें दूसरा कोई देश नहीं है इसीलिये इस भूमिका नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नोंको उत्पन्न करती है इसीलिये सृष्टिकी आदिमें आर्य्य लोग इसी देशमें आकर बसे। इसीलिये हम सृष्टिविषयमें कह आये हैं कि आर्य्य नाम उत्तम पुरुषोंका है और आर्य्योंसे भिन्न मनुष्योंका नाम दस्यु है। जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देशकी प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूतेके साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य होजाते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु० [२। २०]

सृष्टिसे लेके पांच सहस्र वर्षोंसे पूर्व समय पर्यन्त आर्य्योंका सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोलमें सर्वोपरि एकमात्र राज्य था अन्य देशमें माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे क्योंकि कौरव पांड-

पर्यन्त यहांके राज्य और राजशासनमें सब भूगोलके सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह मनुस्मृति जो सृष्टिकी आदिमें हुई है उसका प्रमाण हैं। इसी आर्य्यावर्त्त देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानोंसे भूगोलके मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने २ योग्य विद्या चरित्रोंकी शिक्षा और विद्याभ्यास करें और महाराजा युधिष्ठिरजीके राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहांके राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो! चीनका भगदत्त अमेरिकाका बब्रुवाहन, यूरोप देशका विडालाक्ष अर्थात् मार्जारके सदृश आंखवाले, यवन जिसको यूनान कह आये और ईरानका राज्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धमें आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहांके आधीन था जब रामचन्द्रके समयमें विरुद्ध होगया तो उसको रामचन्द्रने दण्ड देकर राज्यसे नष्ट कर उसके भाई विभीषणको राज्य दिया था। स्वायंभव राजासे लेकर पांडवपर्यन्त आर्य्योंका चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपसके विरोधसे लड़कर नष्ट होगये क्योंकि इस परमात्माकी सृष्टिमें अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगोंका राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुतसा धन असंख्य प्रयोजनसे अधिक होता है तब आलस्य पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देशमें विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य, मांस सेवन, बाल्यावस्थामें विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं और जब युद्धविभागमें युद्धविद्याकौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करनेवाला भूगोलमें दूसरा न हो तब उन लोगोंमें पक्षपात अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष होजाते हैं तब आपसमें विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलोंमेंसे कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करनेमें समर्थ होवे, जैसे मुसलमानोंकी बादशाहीके सामने

शिवाजी, गोविन्दसिंहजीने खड़े होकर मुसलमानोंके राज्यको छिन्न भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशविन्दुहरिश्चन्द्राऽम्बरीषननक्तुसर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः। अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः॥ मैत्र्युपनि० प्र० १ खं० ४॥

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सृष्टिसे लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुलमें ही हुए थे। अब इनके सन्तानोंका अभाग्योदय होनेसे राजभ्रष्ट होकर विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, बद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम सब भूमिमें प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओंके नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भवादि चक्रवर्ती राजाओंके नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थोंमें लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियोंका काम है।

प्रश्न—जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं? और तोप तथा बन्दूक तो उस समयमें थीं वा नहीं?

उत्तर—यह बात सच्ची है ये शस्त्र भी थे क्योंकि पदार्थविद्यासे इन सब बातोंका सम्भव है।

प्रश्न—क्या ये देवताओंके मन्त्रोंसे सिद्ध होते थे?

उत्तर—नहीं, ये सब बातें जिनसे अस्त्र शस्त्रोंको सिद्ध करते थे वे "मन्त्र" अर्थात् विचारसे सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्रसे अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्रके

जप करनेवालेके हृदय और जिह्वाको भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रुको और मर रहे आप। इसलिये मन्त्र नाम है विचारका, जैसे "राजमन्त्री" अर्थात् राजकर्मोंका विचार करनेवाला कहाता है वैसा मन्त्र अर्थात् विचारसे सब सृष्टिके पदार्थोंका प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करनेसे अनेक प्रकारके पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई एक लोहेका बाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्निके लगानेसे वायुमें धुआं फैलने और सूर्यकी किरण वा वायुके स्पर्श होनेसे अग्नि जल उठे इसीका नाम आग्नेयास्त्र है। जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर वारुणास्त्र छोड़ दे अर्थात् जैसे शत्रुने शत्रुकी सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़ कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेनाकी रक्षार्थ सेनापति वरुणास्त्रसे आग्नेयास्त्रका निवारण करे। वह ऐसे द्रव्योंके योगसे होता है जिसका धुआं वायुके स्पर्श होते ही बद्दल होके झट वर्षने लग जावे अग्निको बुझा देवे। ऐसे ही नागफांस अर्थात् जो शत्रु पर छोड़नेसे उसके अङ्गोंको जकड़के बांध लेता है। वैसे ही एक मोहनास्त्र अर्थात् जिसमें नशेकी चीज़ डालनेसे जिसके धुएंके लगनेसे सब शत्रुकी सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित् होजाय। इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे। और एक तारसे वा शीशे अथवा किसी और पदार्थसे विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओंका नाश करते थे उसको भी आग्नेयास्त्र तथा पाशुपतास्त्र कहते हैं। "तोप" और "बन्दूक" ये नाम अन्य देशभाषाके हैं। संस्कृत और आर्य्यावर्त्तीय भाषाके नहीं किन्तु जिसको विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषामें उनका नाम "शतघ्नी" और जिसको बन्दूक कहते हैं उसको संस्कृत और आर्य्यभाषामें "भुशुण्डी" कहते हैं। जो संस्कृत विद्याको नहीं पढ़े वे भ्रममें पड़कर कुछका कुछ लिखते और कुछका कुछ बकते हैं। उसका बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते। और जितनी विद्या भूगोलमें फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देशसे मिश्रवालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोपदेशमें,

उनसे अमेरिका आदि देशोंमें फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्याका आर्य्यावर्त्त देशमें है उतना किसी अन्य देशमें नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देशमें संस्कृत विद्याका बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यह बात कहनेमात्र है क्योंकि "यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते" अर्थात् जिस देशमें कोई वृक्ष नहीं होता उस देशमें एरंड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं, वैसे ही यूरोप देशमें संस्कृत विद्याका प्रचार न होनेसे जर्मन लोग और मोक्षमूलर साहबने थोड़ासा पढ़ा वही उस देशके लिये अधिक है। परन्तु आर्य्यावर्त्त देशकी ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासीके एक "प्रिंसपल" के पत्रसे जाना कि जर्मनी देशमें संस्कृत चिट्ठीका अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं! और मोक्षमूलर साहबके संस्कृत साहित्य और थोड़ासी वेदकी व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहबने इधर उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगोंकी की हुई टीका देख कर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है जैसा कि "युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि" ॥ [ऋ० १ । ६ । १] इस मन्त्रका अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणाचार्य्यने सूर्य्य अर्थ किया है सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है। सो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्रका यथार्थ अर्थ किया है। इतनेसे जान लीजिये कि जर्मनी देश और मोक्षमूलर साहबमें संस्कृत विद्याका कितना पाण्डित्य है। यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोलमें फैले हैं वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचलित हुए हैं। देखो! कि एक "जैकालयट" * साहब पैरस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी "बायबिल इन इण्डिया" में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयोंका भण्डार आर्य्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देशसे फैले हैं। और परमात्माकी

* मूलमें गोलुस्टकर था।

प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्य्यावर्त्त देशकी पूर्व कालमें थी वैसी ही हमारे देशकी कीजिये, लिखते हैं उस ग्रन्थमें देखलो। तथा 'दाराशिकोह' बादशाहने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृतमें है वैसी किसी भाषामें नहीं। वे ऐसा उपनिषदोंके भाषान्तरमें लिखते हैं कि मैंने अर्वी आदि बहुतसी भाषा पढ़ी परन्तु मेरे मनका सन्देह छूटकर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह होकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ है। देखो काशीके "मानमन्दिर" में शिशुमारचक्रको कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही हैं तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अबतक भी खगोलका बहुतसा वृत्तान्त विदित होता है जो "सवाई जयपुराधीश" उसकी संभाल और फूटे टूटेको बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु ऐसे शिरोमणि देशको महाभारतके युद्धने ऐसा धक्का दिया कि अबतक भी यह अपनी पूर्व दशामें नहीं आया। क्योंकि जब भाईको भाई मारने लगे तो नाश होनेमें क्या सन्देह ?

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः [वृद्धचाणक्य १६।१७]

यह किसी कविका वचन है। जब नाश होनेका समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा मानें और उल्टा समझावें उसको सूधी मानें। जब बड़े २ विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्धमें बहुतसे मारे गये और बहुतसे मरगये तब विद्या और वेदोक्त धर्मका प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपसमें करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देशको दबाकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देशमें खण्ड बण्ड राज्य होगया। पुनः द्वीपद्वीपान्तरके राज्यकी व्यवस्था कौन करे! जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके अविद्वान् होनेमें तो कथा ही क्या कहनी ? जो परम्परासे वेदादि शास्त्रोंका अर्थसहित पढ़नेका प्रचार था वह भी

छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदिको न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गये तब छल, कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला। ब्राह्मणोंने विचारा कि अपनी जीविकाका प्रबन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदिको उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुमको स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरकमें पड़ोगे। जो २ पूर्ण विद्या वाले धार्मिकोंका नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि मुनियोंके शास्त्रमें लिखा था उनको अपने मूर्ख, विषयी कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानोंके लक्षण इन मूर्खोंमें कब घट सकते हैं? परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत विद्यासे अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो २ गप्प मारी सो २ विचारोंने सब मान ली तब इन नाममात्र ब्राह्मणोंकी बनपड़ी। सबको अपने वचनजालमें बांधकर वशीभूत करलिया और कहने लगे कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणोंके मुखमेंसे वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान्‌के मुखसे निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण आंखके अन्धे और गांठके पूरे अर्थात् भीतर विद्याकी आंख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है ऐसे २ चेले मिले, फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नामवालों को विषयानन्दका उपवन मिल गया। यह भी उन लोगोंने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथ्वीमें उत्तम पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणोंके लिये हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभावसे ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उसको नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्तका भी दान यजमानोंसे लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहांतक किया कि "हम भूदेव हैं" हमारी सेवाके विना देवलोक किसीको नहीं मिल सकता। इनसे पूछना चाहिये कि तुम किस लोकमें पधारोगे?

तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगनेके हैं कृमि, कीट, पतङ्गादि बनोगे तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं—हम "शाप" देंगे तो तुम्हारा नाश होजायगा क्योंकि लिखा है "ब्रह्मद्रोही विनश्यति" कि जो ब्राह्मणोंसे द्रोह करता है उसका नाश होजाता है। हां यह बात तो सच्ची है कि जो पूर्ण वेद और परमात्माको जाननेवाले, धर्मात्मा, सब जगत्के उपकारक पुरुषोंसे कोई द्वेष करेगा वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है।

प्रश्न—तो हम कौन हैं ?

उत्तर—तुम पोप हो।

प्रश्न—पोप किसको कहते हैं ?

उत्तर—इसकी सूचना रूमन् भाषामें तो बड़ा और पिताका नाम पोप है परन्तु अब छल कपटसे दूसरेको ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवालेको पोप कहते हैं।

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधुके चेले हैं।

उत्तर—यह सत्य है परन्तु सुनो भाई! मा बाप ब्राह्मण ब्राह्मणी होनेसे और किसी साधुके शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण कर्म स्वभावसे होते हैं जो कि परोपकारी हो। सुना है कि जैसे रूमके "पोप" अपने चेलोंको कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे, विना हमारी सेवा और आज्ञाके कोई भी स्वर्गमें नहीं जा सकता, जो तुम स्वर्गमें जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वर्गमें तुमको मिलेगी, ऐसा सुनकर जब कोई आंखके अन्धे और गांठके पूरे स्वर्गमें जानेकी इच्छा करके "पोपजी" को यथेष्ट रुपया देता था तब वह "पोपजी" ईसा और मरियमकी मूर्त्तिके सामने खड़ा होकर इस प्रकारकी हुंडी लिखकर

देता था, "हे खुदावन्द ईसामसीह! अमुक मनुष्यने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्गमें आनेके लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्गमें आवे तब तू अपने पिताके स्वर्गके राज्यमें पच्चीस सहस्र रुपयोंमें बाग़बगीचा और मकानात, पच्चीस सहस्रमें सवारी शिकारी और नौकर, चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयोंमें खाना पीना कपड़ा लत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इसके इष्ट मित्र भाई बन्धु आदिके जियाफ़तके वास्ते दिला देना।" फिर उस हुंडीके नीचे पोपजी अपनी सही करके हुंडी उसके हाथमें देकर कह देते थे कि "जब तू मरे तब हुंडी को क़बरमें अपने सिराने धर लेनेके लिये अपने कुटुम्बको कह रखना फिर तुझे लेजानेके लिये फ़रिश्ते आवेंगे तब तुझे और तेरी हुंडीको स्वर्गमें लेजाकर लिखे प्रमाणे सब चीजें तुझको दिला देंगे।" अब देखिये, जानों स्वर्गका ठेका पोपजीने लेलिया हो! जबतक यूरोप देशमें मूर्खता थी तभीतक वहां पोपजीकी लीला चलती थी परन्तु अब विद्याके होनेसे पोपजीकी झूठी लीला बहुत नहीं चलती, किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई। वैसे ही आर्य्यावर्त्त देशमें जानो पोपजीने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो। अर्थात् राजा और प्रजाको विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषोंका सङ्ग न होने देना, रात दिन बहकानेके सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है। परन्तु यह बात ध्यानमें रखना कि जो २ छलकपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं वे ही पोप कहाते हैं। जो कोई उनमें भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं। अब उन्हीं छली कपटी स्वार्थी लोगों, मनुष्योंको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवालों ही का ग्रहण "पोप" शब्दसे करना और ब्राह्मण तथा साधु नामसे उत्तम पुरुषोंका स्वीकार करना योग्य है। देखो! जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता तो वेदादि सत्यशास्त्रोंके पुस्तक स्वरसहितका पठनपाठन जैन, मुसलमान, ईसाई आदिके जालसे बचकर आर्योंको वेदादि सत्यशास्त्रोंमें प्रीतियुक्त वर्णाश्रमोंमें रखना ऐसा कौन कर सकता? सिवाय ब्राह्मण साधु-

ओंके ! "विषादप्यमृतं ग्राह्यम्" । (मनु०) विषसे भी अमृतके ग्रहण करनेके समान पोपलीलासे बहकानेमेंसे भी आर्योंका जैन आदि मतोंसे बच रहना जानो विषमें अमृतके समान गुण समझना चाहिये । जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़कर अभिमानमें आके सब लोगोंने परस्पर सम्मति करके राजा आदिसे कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं, देखो ! "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" "साधुर्न हन्तव्यः" ऐसे २ वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और साधुओंके विषयमें थे सो पोपोंने अपने पर घटा लिये और भी झूठे २ वचन युक्त ग्रन्थ रचकर उनमें ऋषि मुनियोंके नाम धरके उन्हींके नामसे सुनाते रहे । उन प्रतिष्ठित ऋषि महर्षियोंके नामसे अपने परसे दण्डकी व्यवस्था उठवा दी । पुनः यथेष्टाचार करने लगे अर्थात् ऐसे कड़े नियम चलाये कि उन पोपोंकी आज्ञाके विना, सोना, उठना, बैठना, जाना, खाना, पीना आदि भी नहीं कर सकते थे । राजाओंको ऐसा निश्चय कराया कि पोप संज्ञक कहने मात्रके ब्राह्मण साधु चाहें सो करें उनको कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मनमें दण्ड देनेकी इच्छा न करनी चाहिये जब ऐसी मूर्खता हुई तब जैसी पोपोंकी इच्छा हुई वैसा करने कराने लगे । अर्थात् इस बिगाड़के मूल महाभारत युद्धसे पूर्व एक सहस्र वर्षसे प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि उस समयमें ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेषके अङ्कुर उगे थे, वे बढ़ते २ वृद्ध होगये । जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त्तमें अविद्या फैलकर परस्परमें लड़ने झगड़ने लगे क्योंकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः । इतरथान्धपरम्परा ॥

सांख्यसू० [अ० ३ । ७९ । ८१]

अर्थात् जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं । और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है । फिर भी जब सत्पुरुष

उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाशकी परम्परा चलती है। पुनः वे पोप लोग अपनी और अपने चरणोंकी पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसीमें तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इनके वशमें होगये तब प्रमाद और विषयासक्तिमें निमग्न होकर गड़रियेके समान झूठे गुरु और चेले फँसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले। पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्यका सेवन गुप्त २ करने लगे। पश्चात् उन्हींमेंसे एक वाममार्ग खड़ा किया। "शिव उवाच" "पार्वत्युवाच" "भैरव उवाच" इत्यादि नाम लिखकर तन्त्र नाम धरा। उनमें ऐसी २ विचित्र लीलाकी बातें लिखीं कि—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥१॥

[कालीतन्त्रादि में]

प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥२॥

[कुलार्णव तन्त्र]

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥३॥

[महानिर्माण तन्त्र]

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु ॥४॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥५॥

[ज्ञानसंकलनी तन्त्र]

अर्थात् देखो इन गवर्गण्ड पोपोंकी लीला कि जो वेदविरुद्ध महा

अधर्मके काम हैं उन्हींको श्रेष्ठ वाममार्गियोंने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा, पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण, योनि, पात्राधार, मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वतीके समान मानकर—

अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः।

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊटपटाङ्ग वचनको पढ़के समागम करनेमें वाममार्गी दोष नहीं मानते। अर्थात् जिन नीच स्त्रियोंको छूना नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रोंमें रजस्वला आदि स्त्रियोंके स्पर्शका निषेध है उनको वाममार्गियोंने अतिपवित्र माना है। सुनो इनका श्लोक अण्डबण्ड—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ [रुद्रयामल तन्त्र]

इत्यादि, रजस्वलाके साथ समागम करनेसे जानो पुष्करका स्नान चाण्डालीसे समागममें काशीकी यात्रा, चमारीसे समागम करनेसे मानो प्रयागस्नान, धोबीकी स्त्रीके साथ समागम करनेमें मथुरा यात्रा और कंजरीके साथ लीला करनेसे मानो अयोध्या तीर्थ कर आये। मद्यका नाम धरा "तीर्थ" मांसका नाम "शुद्धि" और "पुष्प", मच्छीका नाम "तृतीया" "जलतुम्बिका" मुद्राका नाम "चतुर्थी" और मैथुनका नाम "पंचमी" इसलिये ऐसे २ नाम धरे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके। अपने कौल, आर्द्रवीर शाम्भव और गण आदि नाम रक्खे हैं। और जो वाममार्ग मतमें नहीं हैं उनका "कंटक", "विमुख", "शुष्कपशु" आदि नाम धरे हैं। और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उसमें ब्राह्मणसे लेकर चांडालपर्यन्तका नाम द्विज होजाता है और जब भैरवीचक्रसे अलग हों तब सब अपने २ वर्णस्थ होजायें। भैर-

वीचक्रमें वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक विन्दु त्रिकोण चतुष्कोण वर्तुलाकार बनाकर उसपर मद्यका घड़ा रखके उसकी पूजा करते हैं। फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं। "ब्रह्मशापं विमोचय" हे मद्य! तू ब्रह्मा आदिके शापसे रहित हो। एक गुप्त स्थानमें कि जहां सिवाय वाममार्गीके दूसरेको नहीं आने देते वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहां एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुषको नङ्गा कर पूजती हैं पुनः कोई किसीकी स्त्री कोई अपनी वा दूसरेकी कन्या कोई किसीकी वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्रमें मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थालीमें धर रखते हैं। उस मद्यके प्यालेको जो कि उनका आचार्य्य होता है वह हाथमें लेकर बोलता है कि "भैरवोऽहम्" "शिवोऽहम्" "मैं भैरव वा शिव हूं" कहकर पीजाता है। फिर उसी जूठे पात्रसे सब पीते हैं। और जब किसीकी स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुषको नङ्गा कर हाथमें तलवार देके उसका नाम देवी और पुरुषका नाम महादेव धरते हैं, उनके उपस्थ इन्द्रियकी पूजा करते हैं तब उस देवी वा शिवको मद्यका प्याला पिलाकर उसी जूठे पात्रसे सब लोग एक २ प्याला पीते। फिर उसी प्रकार क्रमसे पी पीके उन्मत्त होकर चाहैं कोई किसीकी बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ, कुकर्म करते हैं। कभी २ बहुत नशा चढ़नेसे जूते, लात, मुक्कामुक्का, केशाकेशी, आपसमें लड़ते हैं। किसी २ को वहीं वमन होता है। उनमें जो पहुंचा हुआ अघोरी अर्थात् सबमें सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चीज़को भी खा लेता है अर्थात् इनके सबसे बड़े सिद्धकी ये बातें हैं कि—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु। विराजते कौलवचक्रवर्त्ती॥

जो दीक्षित अर्थात् कलारके घरमें जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे,

रंडियोंके घरमें जाके उनसे कुकर्म करके सोवे, जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज, निःशङ्क होकर करे, वही वाममार्गियोंमें सर्वोपरिमुख्य चक्रवर्त्ती राजाके समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा और जो अच्छे काम करे और बुरे कामोंसे डरे वही छोटा क्योंकि

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः॥

[ज्ञानसंकलनी तन्त्र। श्लोक ४३]

ऐसा तन्त्रमें कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा देशलज्जा आदि पाशोंमें बंधा है वह जीव, और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे वही सदा शिव है॥

उड्डीस तन्त्र आदिमें एक प्रयोग लिखा है कि एक घरमें चारों ओर आलय हों। उनमें मद्यके बोतल भरके धर देवे। इस आलयसे एक बोतल पीके दूसरे आलय पर जावे। उसमेंसे पी तीसरे और तीसरेमेंसे पीके चौथे आलयमें जावे। खड़ा २ तबतक मद्य पीवे कि जबतक लकड़ीके समान पृथिवीमें न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके गिरके उठे तो उसका पुनर्जन्म न हो, अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे २ मनुष्योंका पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच योनिमें पड़कर बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा। वामियोंके तन्त्र ग्रन्थोंमें यह नियम है कि एक माताको छोड़के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो सबके साथ संगम करना चाहिये। इन वाममार्गियोंमें दश महाविद्या प्रसिद्ध हैं उनमेंसे एक मातङ्गी विद्यावाला कहता है कि "मातरमपि न त्यजेत्" अर्थात् माताको भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री पुरुषके समागम समयमें मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त होजायें। ऐसे पागल महामूर्ख मनुष्य भी संसारमें बहुत न्यून होंगे!!! जो मनुष्य झूठ चलाना चाहता है वह सत्यकी निन्दा अवश्य ही करता

है। देखो! वाममार्गी क्या कहते हैं? वेद शास्त्र, और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओंके समान हैं और जो यह शांभवी वाममार्गकी मुद्रा है वह गुप्तकुलकी स्त्रीके तुल्य है॥ ५॥

इसीलिये इन लोगोंने केवल वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगोंका मत बहुत चला। तब धूर्तता करके वेदोंके नामसे भी वाममार्गकी थोड़ी २ लीला चलाई अर्थात्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

मनु० [अ० ५। ५६]

सौत्रामणि यज्ञमें मद्य पीवे इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञमें सोमरस अर्थात् सोमवल्लीका रस पिये। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञमें मांस खानेमें दोष नहीं ऐसी पामरपनकी बातें वाममार्गियोंने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझ और तेरे कुटुम्बको मारके होम कर डालें तो क्या चिन्ता है? मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदिमें दोष नहीं है, यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि विना प्राणियोंके पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता, और विना अपराधके पीड़ा देना धर्मका काम नहीं। मद्यपानका तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि अबतक वाममार्गियोंके विना किसी ग्रन्थमें नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाहके मैथुनमें भी दोष है, इसको निर्दोष कहनेवाला सदोष है। ऐसे २ वचन भी ऋषियोंके ग्रन्थमें डालके कितने ही ऋषि मुनियोंके नामसे ग्रन्थ बनाकर गोमेध, अश्वमेध नामके यज्ञ भी कराने लगे थे। अर्थात् इन पशुओंको मारके होम करनेसे यजमान और पशुको स्वर्गकी प्राप्ति होती है, ऐसी प्रसिद्धि की। निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थोंमें

अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्द हैं उनका ठीक २ अर्थ नहीं जाना है क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते ?

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दोंका अर्थ क्या है ?

उत्तर—इनका अर्थ तो यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः [शत० १३ । १ । ६ । ३]

अन्नँ हि गौः ॥ [शत० ४ । ३ । १ । २५]

अग्निर्वा अश्वः । आज्यं मेधः ॥ शतपथब्राह्मणे ॥

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मारके होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियोंके ग्रन्थोंमें ऐसा अनर्थ लिखा है किन्तु यह भी बात वाममार्गियोंने चलाई। और जहां २ लेख हैं वहां २ भी वाममार्गियोंने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय धर्मसे प्रजाका पालन करे, विद्यादिका देनेहारा यजमान और अग्निमें घी आदिका होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मरजाय तब उसके शरीरका विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

प्रश्न—यज्ञकर्ता कहते हैं कि यज्ञ करनेसे यजमान और पशु स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशुको जिन्दा करते थे, यह बात सच्ची है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, जो स्वर्गको जाते हो तो ऐसी बात कहनेवालेको मार के होम कर स्वर्गमें पहुंचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादिको मार होमकर स्वर्गमें क्यों नहीं पहुंचाते ? वा वेदीमेंसे पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं ?

प्रश्न—जब यज्ञ करते हैं तब वेदोंके मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदोंमें न होता तो कहांसे पढ़ते ?

उत्तर—मन्त्र किसीको कहीं पढ़नेसे नहीं रोकता, क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशुको मारके होम

करना। जैसे "अग्नये स्वाहा" इत्यादि मन्त्रोंका अर्थ अग्निमें हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थोंके होम करनेसे वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत्को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सत्य अर्थोंको वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं वे केवल अपने स्वार्थ करनेके दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते। जब इन पोपोंका ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरेका तर्पण श्राद्धादि करनेको देख कर एक महाभयङ्कर वेदादि शास्त्रोंका निन्दक बौद्ध वा जैनमत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देशमें गोरखपुरका राजा था। उससे पोपोंने यज्ञ कराया। उसकी प्रिय रानीका समागम घोड़ेके साथ करानेसे उसके मरजाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्रको राज्य दे, साधु हो पोपोंकी पोल निकालने लगा। इसीकी शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था। उन्होंने इस प्रकारके श्लोक बनाये हैं—

पशुश्चेन्निहितः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥

जो पशु मारकर अग्निमें होम करनेसे पशु स्वर्गको जाता है, तो यजमान अपने पिता आदिको मारके स्वर्गमें क्यों नहीं भेजते॥१॥

जो मरे हुए मनुष्योंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध और तर्पण होता है तो विदेशमें जानेवाले मनुष्यको मार्गका खर्च खाने पीनेके लिये बांधना व्यर्थ है। क्योंकि जब मृतकको श्राद्ध, तर्पणसे अन्न जल पहुंचता है तो जीते हुए परदेशमें रहने वाले वा मार्गमें चलनेहारोंको घरमें रसोई बनी हुईका पत्तल परोस, लोटा भरके उसके नाम पर रखनेसे क्यों नहीं पहुंचता? जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे

हुएको दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुएके पास किसी प्रकार नहीं पहुंच सकता। उनके ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशोंको मानने लगे और उनका मत बढ़ने लगा। जब बहुतसे राजा भूमिपति उनके मतमें हुए तब पोपजी भी उनकी ओर झुके क्योंकि इनको जिधर गपफा अच्छा मिले वहीं चले जायें। झट जैन बनने चले। जैनमें भी और प्रकार की पोपलीला बहुत है सो १२ वें समुल्लासमें लिखेंगे। बहुतोंने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितने कहीं जो पर्वत, काशी, कन्नोज, पश्चिम, दक्षिण देशवाले थे उन्होंने जैनोंका मत स्वीकार नहीं किया था वे जैनी वेदका अर्थ न जानकर बाहरकी पोपलीला भ्रान्तिसे वेद पर मानकर वेदोंकी भी निन्दा करने लगे। उसके पठनपाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमोंको भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादिके पाये नष्ट किये आर्यों पर बहुतसी राजसत्ता भी चलाई, दुःख दिया जब उनको भय शङ्का न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओंकी प्रतिष्ठा और वेदमार्गियोंका अपमान और पक्षपातसे दण्ड भी देने लगे। और आप सुख आराम और घमण्डमें आ फूलकर फिरने लगे। ऋषभदेवसे लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरोंकी बड़ी २ मूर्त्तियां बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजाकी जड़ जैनियोंसे प्रचलित हुई। परमेश्वरको मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्तिपूजामें लगे। ऐसा तीनसौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्तमें जैनोंका राज्य रहा। प्रायः वेदार्थ ज्ञानसे शून्य होगये थे। इस बातको अनुमानसे अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।

बाईससौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्यसे व्याकरणादि सब शास्त्रोंको पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मतका छूटना और जैन नास्तिक मतका चलना बड़ी हानिकी बात हुई है इनको किसी प्रकार हटाना चाहिये शङ्कराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे, परन्तु जैन मतके भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस

प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करनेसे ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरीमें आये। वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियोंके ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहां जाकर वेदका उपदेश करने लगे और राजासे मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियोंके भी ग्रन्थोंको पढ़े हो और जैन मतको मानते हो, इसलिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियोंके पण्डितोंके साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये, इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वालेका मत स्वीकार करले, और आप भी जीतने वालेका मत स्वीकार कीजियेगा यद्यपि सुधन्वा जैनमतमें थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़नेसे उनकी बुद्धिमें कुछ विद्याका प्रकाश था। इससे उनके मनमें अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान होता है वह सत्याऽसत्यकी परीक्षा करके सत्यका ग्रहण और असत्यको छोड़ देता है। जबतक सुधन्वा राजाको बड़ा विद्वान उपदेशक नहीं मिला था तबतक सन्देहमें थे कि, इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है। जब शङ्कराचार्य्यकी यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नताके साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्यका निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियोंके पण्डितोंको दूर २ से बुलाकर सभा कराई। उसमें शङ्कराचार्यका वेदमत और जैनियोंका वेदविरुद्ध मत था अर्थात् शङ्कराचार्य्यका पक्ष वेदमतका स्थापन और जैनियोंका खंडन और जैनियोंका पक्ष अपने मतका स्थापन और वेदका खण्डन था शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियोंका मत यह था कि सृष्टिका कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं; यह जगत् और जीव अनादि हैं; इन दोनोंकी उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इससे विरुद्ध शङ्कराचार्य्यका मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत्का कर्त्ता है। यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वरने अपनी मायासे जगत् बनाया, वही धारण और प्रलय, करता है, और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है। बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्तमें

युक्ति और प्रमाणसे जैनियोंका मत खण्डित और शङ्कराचार्य्यका मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियोंके पण्डित और सुधन्वा राजाने उस मतको स्वीकार कर लिया, जैन मतको छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजाने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओंको लिखकर शङ्कराचार्य्यसे शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैनका पराजय समय होनेसे पराजित होते गये पश्चात् शङ्कराचार्य्यके सर्वत्र आर्यावर्त्त देशमें घूमनेका प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओंने कर दिया, और उनकी रक्षाके लिये साथमें नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समयसे सबके यज्ञोपवीत होने लगे और वेदोंका पठनपाठन भी चला। दश वर्षके भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देशमें घूमकर जैनियोंका खण्डन और वेदोंका मण्डन किया परन्तु शङ्कराचार्य्यके समयमें जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्त्तियां जैनियोंकी निकलती हैं वे शङ्कराचार्य्यके समयमें टूटी थीं और जो विना टूटी निकलती हैं वे जैनियोंने भूमिमें गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अबतक कहीं भूमिमेंसे निकलती हैं। शङ्कराचार्य्यके पूर्व शैवमत भी थोड़ासा प्रचलित था उसका भी खण्डन किया। वाममार्गका खण्डन किया। उस समय इस देशमें धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियोंके मंदिर शङ्कराचार्य्य और सुधन्वा राजाने नहीं तुड़वाये थे क्योंकि उनमें वेदादिकी पाठशाला करनेकी इच्छा थी। जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्याप्रचार करनेका विचार करते ही थे। उतनेमें दो जैन ऊपरसे कथनमात्र वेदमत और भीतरसे कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे, शङ्कराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनोंने अवसर पाकर शङ्कराचार्य्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई। पश्चात् शरीरमें फोड़े फुन्सी होकर छः महीनेके भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही होगये और जो विद्याका प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया। जो २ उन्होंने शारीरिक भाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शङ्कराचार्य्यके शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियोंके खण्ड-

नके लिये ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्मकी एकता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे। दक्षिणमें शृङ्गेरी, पूर्वमें भूगोवर्धन, उत्तरमें जोशी और द्वारिकामें सारदामठ बांधकर शङ्कराचार्य्यके शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शङ्कराचार्य्यके पश्चात् उनके शिष्योंकी बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य्यका निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियोंके खण्डनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है। नवीन वेदान्तियोंका मत ऐसा है।

प्रश्न—जगत् स्वप्नवत्, रज्जूमें सर्प, सीपमें चांदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर इन्द्रजालवत् यह संसार झूठा है। एक ब्रह्म ही सच्चा है।

सिद्धान्ती—झूठा तुम किसको कहते हो ?

नवीन—जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे।

सिद्धान्ती—जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है।

नवीन—अध्यारोपसे।

सिद्धान्ती—अध्यारोप किसको कहते हो ?

नवीन—"वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः" "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते" पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तुका आरोपण करना अध्यास अध्यारोप; और उसका निराकरण करना अपवाद कहाता है। इन दोनोंसे प्रपंच रहित ब्रह्ममें प्रपंचरूप जगत् विस्तार करते हैं।

सिद्धान्ती—तुम रज्जूको वस्तु और सर्पको अवस्तु मानकर इस भ्रमजालमें पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्जूमें नहीं तो देशान्तरमें, और उसका संस्कारमात्र हृदयमें है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणुमें पुरुष, सीपमें, चांदी आदिकी व्यवस्था समझ लेना। और स्वप्नमें भी जिनका भान होता

है वे देशान्तरमें हैं और उनके संस्कार आत्मामें भी हैं। इसलिये वह स्वप्न भी वस्तुमें अवस्तुके आरोपणके समान नहीं।

नवीन—जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है, जलकी धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी न हुआ था देखाजाता है, वह सत्य क्योंकर हो सके?

सिद्धान्ती—यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्षको सिद्ध नहीं करता क्योंकि विना देखे सुने संस्कार नहीं होता। संस्कारके विना स्मृति, और स्मृतिके विना साक्षात् अनुभव नहीं होता। जब किसीसे सुना वा देखा कि अमुकका शिर कटा और उसके भाई वा बाप आदिको लड़ाईमें प्रत्यक्ष रोते देखा और फोहारेका जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना उसका संस्कार उसीके आत्मामें होता है। जब यह जाग्रत्के पदार्थसे अलग होके देखता है तब अपने आत्मामें उन्हीं पदार्थोंको, जिनको देखा वा सुना होता, देखता है। जब अपने ही में देखता है तब जानों अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जलकी धाराको देखता है। यह भी वस्तुमें अवस्तुके आरोपणके सदृश नहीं, किन्तु जैसे नक़्शा निकालनेवाले पूर्व दृष्ट श्रुत वा किये हुओंको आत्मामेंसे निकाल कर काग़ज़ पर लिख देते हैं अथवा प्रतिविम्बका उतारनेवाला विम्बको देख आत्मामें आकृतिको धर बराबर लिख देता है। हां! इतना है कि कभी २ स्वप्नमें स्मरणयुक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापकको देखता है और कभी बहुत काल देखने और सुननेमें अतीत ज्ञानको साक्षात्कार करता है। तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसीको देखता, सुनता वा करता हूं जैसा जाग्रत्में स्मरण करता है वैसा स्वप्नमें नियमपूर्वक नहीं होता। देखो! जन्मान्धको रूपका स्वप्न नहीं आता। इसलिए तुम्हारा अध्यास और अध्यारोपका लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग विवर्त्तवाद अर्थात् रज्जूमें सर्पादिके भान होनेका दृष्टान्त, ब्रह्ममें जगत्के भान होनेमें देते हैं, वह भी ठीक नहीं।

नवीन—अधिष्ठानके विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जू न हो तो सर्पका भी भान नहीं हो सकता। जैसे रज्जूमें सर्प तीन कालमें नहीं है परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाशके मेलमें अकस्मात् रज्जूको देखनेसे सर्पका भ्रम होकर भयसे कम्पता है। जब उसको दीप आदिसे देख लेता है उसी समय भ्रम और भय निवृत्त होजाता है। वैसे ब्रह्ममें जो जगत्की मिथ्या प्रतीति हुई है वह ब्रह्मके साक्षात्कार होनेमें उस [जगत] की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्रतीति [होजाती है] जैसा कि सर्पकी निवृत्ति और रज्जूकी प्रतीति होती है।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममें जगत्का भान किसको हुआ ?

नवीन—जीवको।

सिद्धान्ती—जीव कहांसे हुआ ?

नवीन—अज्ञानसे।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहांसे हुआ और कहां रहता है ?

नवीन—अज्ञान अनादि और ब्रह्ममें रहता है।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममें ब्रह्मका अज्ञान हुआ वा किसी अन्यका वह अज्ञान किसको हुआ ?

नवीन—चिदाभासको।

सिद्धान्ती—चिदाभासका स्वरूप क्या है ?

नवीन—ब्रह्म, ब्रह्मको ब्रह्मका अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूपको आप ही भूल जाता है।

सिद्धान्ती—उसके भूलनेमें निमित्त क्या है ?

नवीन—अविद्या।

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञका गुण है वा अल्पज्ञका ?

नवीन—अल्पज्ञका।

सिद्धान्ती—तो तुम्हारे मतमें विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतनके दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहांसे आया ? हां, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्मसे भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने

ब्रह्मको अपने स्वरूपका अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीरमें फोड़ेकी पीड़ा सब शरीरके अवयवोंको निकम्मा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देशमें अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ाके अनुभवयुक्त होजाय।

नवीन—यह सब उपाधिका धर्म है, ब्रह्मका नहीं।

सिद्धान्ती—उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य है वा असत्य ?

नवीन—अनिर्वचनीय है अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

सिद्धान्ती—यह तुम्हारा कहना "वदतो व्याघातः" के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोनेमें पीतल मिला हो उसको सराफके पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल ? तब यही कहोगे कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं।

नवीन—देखो जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाशोपाधि अर्थात् घड़ा, घर और मेघके होनेसे भिन्न २ प्रतीत होते हैं, वास्तवमें महदाकाश ही है, ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि, और अन्तःकरणोंकी उपाधियोंसे ब्रह्म अज्ञानियोंको पृथक् २ प्रतीत हो रहा है; वास्तमें एक ही है। देखो अग्रिम प्रमाणमें क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ [कठ उ० वल्ली ५ । मं० ६]

जैसे अग्नि लम्बे, चौड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृतिवाले पदार्थोंमें व्यापक होकर तदाकार दीखता और उनसे पृथक् है, वैसे सर्वव्यापक परमात्मा अतःकरणोंमें व्यापक होके अन्तःकरणाऽऽकार हो रहा है परन्तु उनसे अलग है।

सिद्धान्ती—यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ है क्योंकि जैसे घट, मठ मेघों और आकाशको भिन्न मानते हो वैसे कारण कार्य्यरूप जगत् और जीवको ब्रह्मसे और ब्रह्मको इनसे भिन्न मान लो ?

नवीन—जैसा अग्नि सबमें प्रविष्ट होकर देखनेमें तदाकार दीखता है, इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीवमें व्यापक होकर आकारवाला अज्ञानियोंको आकारयुक्त दीखता है। वास्तवमें ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे जलके सहस्र कूंडे धरे हों उनमें सूर्य्यके सहस्रों प्रतिबिम्ब दीखते हैं वस्तुनः सूर्य्य एक है। कूंडोंके नष्ट होनेसे जलके चलने व फैलनेसे सूर्य्य न नष्ट होता न चलता और न फैलता, इसी प्रकार अन्तःकरणोंमें ब्रह्मका आभास जिसको चिदाभास कहते हैं पड़ा है। जबतक अन्तःकरण है तभीतक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञानसे नष्ट होता है तब जीव ब्रह्मस्वरूप है। इस चिदाभासको अपने ब्रह्मस्वरूपका अज्ञानकर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी पापी, पुण्यात्मा, जन्म मरण अपनेमें आरोपित करता है तबतक संसारके बन्धनोंसे नहीं छूटता।

सिद्धान्ती—यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है क्योंकि सूर्य्य आकारवाला; जल कूंडे भी साकार है। सूर्य्य जल कूंडेसे भिन्न और सूर्य्यसे जल कूंडे भिन्न हैं। तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते तो उनका प्रतिबिम्ब कभी न होता और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होनेसे ब्रह्मसे कोई पदार्थ वा पदार्थोंसे ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्यव्यापक सम्बन्धसे एक भी नहीं हो सकता। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभावसे देखनेसे व्याप्यव्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हो तो अपनेमें व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो बृहदारण्यकके अन्तर्यामी ब्राह्मणमें स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्मका आभास भी नहीं पड़ सकता, क्योंकि विना आकारके आभासका होना असम्भव है। जो अन्तःकरणोपाधिसे ब्रह्मको जीव मानते हो सो तुम्हारी बात बालकके समान है। अन्तःकरण चलायमान, खण्ड २ और ब्रह्म अचल और अखण्ड

है। यदि तुम ब्रह्म और जीवको पृथक् २ न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहां २ अन्तःकरण चला जायगा वहां २ के ब्रह्मको अज्ञानी और जिस २ देशको छोड़ेगा वहां २ के ब्रह्मको ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं ? जैसे छाता प्रकाशके बीचमें जहां २ जाता है वहां २ के प्रकाशको आवरणयुक्त और जहां २ से हटता है वहां २ के प्रकाशको आवरण रहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्मको क्षण २ में ज्ञानी, अज्ञानी बद्ध और मुक्त करता जायगा। अखंड ब्रह्मके एक देशमें आवरणका प्रभाव सर्वदेशमें होनेसे सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा क्योंकि वह चेतन है। और मथुरामें जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्मने जो वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अन्तःकरणस्थसे काशीमें नहीं हो सकता। क्योंकि "अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्" और के देखेका स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदाभासने मथुरामें देखा वह चिदाभास काशीमें नहीं रहता किन्तु जो मथुरास्थ अन्तःकरण प्रकाशक है [वह] काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता। जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं, तो जीवको सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्मका प्रतिबिंब पृथक् है तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पूर्व, दृष्ट, श्रुतका ज्ञान किसीको नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिये स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होनेसे सब ब्रह्मको अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे २ दृष्टान्तोंसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्मको तुमने अशुद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि दोषयुक्त कर दिया है। अखण्ड को खण्ड २ कर दिया।

नवीन—निराकारका भी आभास होता है जैसा कि दर्पण वा जलादिमें आकाशका आभास पड़ता है वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्मका भी सब अन्तःकरणोंमें आभास पड़ता है।

सिद्धान्ती—जब आकाशमें रूप ही नहीं है तो उसको आंखसे कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्पण और

जलादिमें कैसे दीखेगा? गहरा वा छिदरा साकार वस्तु दीखता है, निराकार नहीं।

नवीन—तो फिर जो यह ऊपर नीलासा दीखता है, वही आदर्शवालेमें भान होता है, वह क्या पदार्थ है?

सिद्धान्ती—वह पृथिवीसे उड़ कर जल, पृथिवी और अग्निके त्रसरेणु हैं। जहांसे वर्षा होती है वहां जल न हो तो वर्षा कहांसे होवे? इसलिये जो दूर २ तम्बूके समान दीखता है, वह जलका चक्र है। जैसे कुहिर दूरसे घनाकार दीखता है और निकटसे छिदरा और डेरेके समान भी दीखता है वैसा आकाशमें जल दिखाता है।

नवीन—क्या हमारे रज्जु, सर्प्प और स्वप्नादिके दृष्टान्त मिथ्या हैं?

सिद्धान्ती—नहीं; तुम्हारी समझ मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किसको होता है?

नवीन—ब्रह्मको।

सिद्धान्ती—ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ?

नवीन—न सर्वज्ञ और न अल्पज्ञ। क्योंकि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधिसहितमें होती है।

सिद्धान्ती—उपाधिसे सहित कौन है?

नवीन—ब्रह्म।

सिद्धान्ती—तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ। तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञका निषेध क्यों किया था? जो कहो कि उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या है तो कल्पक अर्थात् कल्पना करने वाला कौन है?

नवीन—जीव ब्रह्म है वा अन्य?

सिद्धान्ती—अन्य है, क्योंकि जो ब्रह्मस्वरूप है तो जिसने मिथ्या कल्पना की वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता। जिसकी कल्पना मिथ्या है वह सच्चा कब हो सकता?

नवीन—हम सत्य और असत्यको झूठ मानते हैं और वाणीसे

बोलना भी मिथ्या है ।

सिद्धान्ती—जब तुम झूठ कहने और मानने वाले हो तो झूठे क्यों नहीं ?

नवीन—रहो, झूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और हम दोनोंके साक्षी अधिष्ठान हैं ।

सिद्धान्ती—जब तुम सत्य और झूठेके आधार हुए तो साहूकार और चोरके सदृश तुम्हीं हुए । इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे क्योंकि प्रामाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे, झूठ न माने, झूठ न बोले और झूठ कदाचित् न करे । जब तुम अपनी बातको आप ही झूठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्यावादी हो ।

नवीन—अनादि माया जो कि ब्रह्मके आश्रय और ब्रह्म ही का आवरण करती है उसको मानते हो वा नहीं ?

सिद्धान्ती—नहीं मानते, क्योंकि तुम मायाका अर्थ ऐसा करते हो कि जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बातको वह मानेगा जिसके हृदयकी आंख फूट गई हो । क्योंकि जो वस्तु नहीं उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है जैसा बन्ध्याके पुत्रका प्रतिविम्ब कभी नहीं हो सकता । और यह "सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः" इत्यादि छान्दोग्य उपनिषदोंके वचनोंसे विरुद्ध कहते हो ?

नवीन—क्या तुम वशिष्ठ, शंकराचार्य्य आदि और निश्चलदास पर्य्यन्त जो तुमसे अधिक पण्डित हुए हैं उन्होंने लिखा है उसको खण्डन करते हो ? हमको तो वसिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं !

सिद्धान्ती—तुम विद्वान् हो वा अविद्वान् ?

नवीन—हम भी कुछ विद्वान हैं ।

सिद्धान्ती—अच्छा तो वसिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदासके पक्षका हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं । जिसका

पक्ष सिद्ध हो वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियां लेकर हमारी बातको खण्डन क्यों न कर सकते? तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शंकराचार्य आदि ने तो जैनियोंके मतके खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश कालके अनुकूल अपने पक्षको सिद्ध करनेके लिये बहुतसे स्वार्थी विद्वान अपने आत्माके ज्ञानसे विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातोंको अर्थात् जीव ईश्वरकी एकता जगत् मिथ्या आदि व्यवहार सच्चा नहीं मानते थे; तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती। और निश्चलदासका पाण्डित्य देखो ऐसा है "जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्" उन्होंने "वृत्तप्रभाकर" में जीव ब्रह्मकी एकताके लिये अनुमान लिखा है कि चेतन होनेसे जीव ब्रह्मसे अभिन्न है यह बहुत कम समझ पुरुष [की बात] के सदृश बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्रसे एक दूसरेके साथ एकता नहीं होती वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि "पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्" जड़के होनेसे पृथिवी जलसे अभिन्न है। जैसा यह वाक्य सङ्गत कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदासजीका भी लक्षण व्यर्थ है। क्योंकि जो अल्प, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्वादि धर्म्म जीवमें ब्रह्मसे और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्ममें जीवसे विरुद्ध है इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं। जैसे गन्धवत्व कठिनत्व आदि भूमिके धर्म रसवत्व द्रवत्वादि जलके धर्मसे विरुद्ध होनेसे पृथिवी और जल एक नहीं। वैसे जीव और ब्रह्मके वैधर्म्य होनेसे जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे। इतने ही से निश्चलदासादिको समझ लीजिये कि उनमें कितना पाण्डित्य था और जिसने योगवासिष्ठ बनाया है वह कोई आधुनिक वेदान्ती था, न वाल्मीकि, वसिष्ठ और रामचन्द्रका बनाया वा कहा सुना है। क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे वेदसे विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे।

प्रश्न—व्यासजीने जो शारीरिक सूत्र बनाये हैं उनमें भी जीव ब्रह्मकी एकता दीखती है देखो—

सम्पाद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ १ ॥

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ २ ॥

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥३॥

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः ।४।

अत एव चानन्याधिपत्तिः ॥ ५ ॥

[वेदान्तद० अ० ४। पा० ४। सू० १।५—७।६]

अर्थात् जीव अपने स्वरूपको प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि पूर्व ब्रह्मस्वरूप था क्योंकि स्व शब्दसे अपने ब्रह्मस्वरूपका ग्रहण होता है ॥ १ ॥

"अयमात्मा अपहतपाप्मा" इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्ति पर्य्यन्त हेतुओंसे ब्रह्मस्वरूपसे जीव स्थित होता है ऐसा जैमिनि आचार्य्यका मत है ॥ २ ॥

और औडुलोमि आचार्य्य तदात्मकस्वरूप निरूपणादि बृहदारण्यकके हेतुरूपके वचनोंसे चैतन्यमात्र स्वरूपसे जीव मुक्तिमें स्थित रहता है ॥ ३ ॥

व्यासजी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओंसे जीवका ब्रह्मस्वरूप होनेमें अविरोध मानते हैं ॥ ४ ॥

योगी ऐश्वर्यसहित अपने ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होकर अन्य अधिपतिसे रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूपसे मुक्तिमें स्थित रहता है ॥ ५ ॥

उत्तर—इन सूत्रोंका अर्थ इस प्रकारका नहीं किन्तु इनका यथार्थ अर्थ यह है सुनिये ! जबतक जीव अपने स्वकीय शुद्धस्वरूपको प्राप्त सब मलोंसे रहित होकर पवित्र नहीं होता तबतक योगसे ऐश्वर्यको

प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामि ब्रह्मको प्राप्त होके आनन्दमें स्थित नहीं हो सकता ॥ १ ॥

इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्मके साथ मुक्तिके आनन्दको भोग सकता है। ऐसा जैमिनि आचार्यका मत है ॥ २ ॥

जब अविद्यादि दोषोंसे छूट शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूपसे जीव स्थित होता है तभी "तदात्मकत्व" अर्थात् ब्रह्मस्वरूपके साथ सम्बन्धको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

जब ब्रह्मके साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञानको जीते ही जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूपको प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजीका मत है ॥ ४ ॥

जब योगीका सत्य सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वरको प्राप्त होकर मुक्तिसुखको पाता है वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है जैसा संसारमें एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है वैसा मुक्तिमें नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एकसे रहते हैं ॥ ५ ॥

जो ऐसा न हो तो—

नेतरोनुपपत्तेः ॥१॥ [१ । १ । १६]

भेदव्यपदेशाच्च ॥२॥ [१ । १ । १७]

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ।३। [१।१।२२]

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥४॥ [१।१।१९]

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥५॥ [१ । १ । २०]

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥६॥ [१ । १ । २१]

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥७॥ [१।२।११]

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥८॥ [१ । २ । ३]

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥९॥

[१।२।१८]

शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥१०॥

(१।२।२०) व्यासमुनिकृतवेदान्तसूत्राणि ॥

अर्थ—ब्रह्मसे इतर जीव सृष्टिकर्त्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ, सामर्थ्यवाले जीवमें सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इससे जीव ब्रह्म नहीं ॥ १ ॥

"रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" यह उपनिषद्का वचन है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनोंका भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीवका निरूपण नहीं घट सकता। इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं ॥ २ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥

मुण्डकोपनिषदि [मुं० २ । खं० १ । मं० २]

दिव्य, शुद्ध, मूर्तिमत्त्वरहित, सबमें पूर्ण बाहर भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जन्म, मरण शरीरधारणादिरहित, श्वास, प्रश्वास, शरीर और मनके सम्बन्धसे रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्माके विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृतिसे परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्मका भेद प्रतिपादनरूप हेतुओंसे प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्म भिन्न है ॥ ३ ॥

इसी सर्वव्यापक ब्रह्ममें जीवका योग वा जीवमें ब्रह्मका योग प्रतिपादन करनेसे जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि योग भिन्न पदार्थोंका हुआ करता है ॥ ४ ॥

इस ब्रह्मके अन्तर्यामि आदि धर्म कथन किये हैं और जीवके भीतर व्यापक होनेसे व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मसे भिन्न है क्योंकि व्याप्यव्यापक सम्बन्ध भी भेदमें संघटित होता है ॥ ५ ॥

जैसे परमात्मा जीवसे भिन्नस्वरूप है वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथिवी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्यादि दिव्यगुणोंके योगसे देवतावाच्य विद्वानोंसे भी परमात्मा भिन्न है ॥ ६ ॥

"गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदोंके वचनोंसे जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदोंमें बहुत ठिकाने दिखलाया है ॥ ७ ॥

"शरीरे भवः शारीरः" शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मके गुण, कर्म, स्वभाव जीवमें नहीं घटते ॥ ८ ॥

(अधिदेव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवोंमें परमात्मा अन्तर्यामिरूपसे स्थित है क्योंकि उसी परमात्माके व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदोंमें व्याख्यात हैं ॥ ९ ॥

शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे जीवका भेद स्वरूपसे सिद्ध है ॥ १० ॥

इत्यादि शारीरिक सूत्रोंसे भी स्वरूपसे ही ब्रह्म और जीवका भेद सिद्ध है। वैसे ही वेदान्तियोंका उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता क्योंकि "उपक्रम" अर्थात् आरम्भ ब्रह्मसे और उपसंहार अर्थात् प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रलय भी ब्रह्मके धर्म हो जाते हैं और उत्पत्ति विनाशरहित ब्रह्मका प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रोंमें किया है, वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्योंकि निर्विकार, अपरिणामि, शुद्ध, सनातन, निर्भ्रान्तत्वादि विशेषणयुक्त ब्रह्ममें विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदिका संभव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा उपसंहार (प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म कारणात्मक जड़ और जीव बराबर

बने रहते हैं । इसलिये उपक्रम और उपसंहार भी इन वेदान्तियोंकी कल्पना झूठी है । ऐसी अन्य बहुत सी अशुद्ध बातें हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध हैं ॥

इसके पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य्यके अनुयायी लोगोंके उपदेशके संस्कार आर्यावर्त्तमें फैले थे और आपसमें खण्डन मण्डन भी चलता था । शङ्कराचार्य्यके तीनसौ वर्षके पश्चात् उज्जैन नगरीमें विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओंके मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाईको मिटाकर शान्ति स्थापन की । तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्यमें भी कुछ २ विद्वान् हुआ । उसने वैराग्यवान् होकर राज्यको छोड़ दिया । विक्रमादित्यके पांचसौ वर्षके पश्चात् राजा भोज हुआ । उसने थोड़ासा व्याकरण और काव्यालङ्कारादिका इतना प्रचार किया कि जिसके राज्यमें कालिदास बकरी चरानेवाला भी रघुवंश काव्यका कर्त्ता हुआ । राजा भोजके पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर लेजाता था उसको बहुतसा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी । उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानोंने पढ़ना ही छोड़ दिया । यद्यपि शङ्कराचार्य्यके पूर्व वाममार्गियोंके पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था महाराजा विक्रमादित्यसे लेके शैवोंका बल बढ़ता आया । शैवोंमें पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं, जैसी वाममार्गियोंमें दश महाविद्यादिकी शाखा हैं लोगोंने शङ्कराचार्य्यको शिवका अवतार ठहराया । उनके अनुयायी संन्यासी भी शैवमतमें प्रवृत्त होगये और वाममार्गियोंको भी मिलाते रहे । वाममार्गी, देवी जो शिवजीकी पत्नी है उसके उपासक और शैव महादेवके उपासक हुए ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्तु जितने वाममार्गी वेदविरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं ।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम् ॥१॥

रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव। बाह्वोरिन्दोः कलाभिःपृथगिति गदितमेकमेवं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकंठः॥२

इत्यादि बहुत प्रकारके श्लोक [इन लोगोंने] बनाये और कहने लगे कि जिसके कपालमें भस्म और कण्ठमें रुद्राक्ष नहीं है उसको धिक्कार है ।। "तं त्यजेदन्त्यजं यथा" उसको चांडालके तुल्य त्याग करना चाहिये ।। १ ।।

जो कण्ठमें ३२, शिरमें ४०, छः छः कानोंमें, बारह २ करोंमें, सोलह २ भुजाओंमें, १ शिखामें और हृदयमें १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वह साक्षात् महादेवके सदृश है ।। २ ।।

ऐसा ही शाक्त भी मानते हैं पश्चात् इन वाममार्गी और शैवोंने सम्मति करके भग लिंगका स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिंग कहते हैं और उसकी पूजा करने लगे। उन निर्लज्जोंको तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपनका काम हम क्यों करते हैं ? किसी कविने कहा है कि "स्वार्थी दोषं न पश्यति" स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ-सिद्धि करनेमें दुष्ट कामोंको भी श्रेष्ठ मान दोषको नहीं देखते हैं। उसी पाषाणादि मूर्त्ति और भग लिंगकी पूजामें सारे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सिद्धियां मानने लगे। जब राजा भोजके पश्चात् जैनी लोग अपने मन्दिरोंमें मूर्त्तिस्थापन करने और दर्शन, स्पर्शनको आने जाने लगे तब तो इन पोपोंके चेले भी जैनमन्दिरमें जाने आने लगे और उधर पश्चिममें कुछ दूसरोंके मत और यवन लोग भी आर्य्यावर्त्तमें आने जाने लगे। तब पोपोंने यह श्लोक बनाया—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्युका समय भी क्यों न आया हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छभाषा मुखसे न बोलनी और उन्मत्त हस्ती मारनेको क्यों न दौड़ा आता हो और जैनके मन्दिरमें जानेसे प्राण बचता हो तो भी जैनमन्दिरमें प्रवेश न करे किन्तु जैनमन्दिरमें प्रवेश कर बचनेसे हाथीके सामने जाकर मरजाना अच्छा है। ऐसे २ अपने चेलोंको उपदेश करने लगे। जब उनसे कोई प्रमाण पूछता था कि तुम्हारे मतमें किसी माननीय ग्रन्थका भी प्रमाण है ? तो कहते थे कि हां है। जब वे पूछते थे कि दिखलाओ तब मार्कण्डेय पुराणादिके वचन पढ़ते और सुनाते थे जैसा कि दुर्गापाठमें देवीका वर्णन लिखा है। राजा भोजके राज्यमें व्यासजीके नामसे मार्कण्डेय और शिवपुराण किसीने बनाकर खड़ा किया था उसका समाचार राजा भोजको विदित होनेसे उन पण्डितोंको हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नामसे बनावे, ऋषि मुनियोंके नामसे नहीं। यह बात राजा भोजके बनाये संजीवनी नामक इतिहासमें लिखी है कि जो ग्वालियरके राज्य "भिंड" नामक नगरके तिवाड़ी ब्राह्मणोंके घरमें है। जिसको लखुनाके रावसाहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबेजीने अपनी आंखसे देखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यासजीने चार सहस्र चारसौ और उनके शिष्योंने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकोंके प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्यके समयमें बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजीके समयमें पच्चीस और अब मेरी आधी उमरमें तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारतका पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारतका पुस्तक एक ऊंटका बोझा होजायगा। और ऋषि मुनियोंके नामसे पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजालमें पड़के वैदिकधर्मविहिन होके भ्रष्ट हो जायंगे। इससे विदित होता है कि राजा भोजको कुछ २ वेदोंका संस्कार था इनके भोज-

प्रबन्धमें लिखा है कि—

घट्यैकया कोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या। वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम् ॥

राजा भोजके राज्यमें और समीप ऐसे २ शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़ेके आकार एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ीमें ग्यारह कोश और एक घंटेमें साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्षमें भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्यके चलाये कलायन्त्रके बलसे नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमानमें न चढ़ जाते। जब पोपजी अपने चेलोंको जैनियोंसे रोकने लगे तो भी मन्दिरोंमें जानेसे न रुक सके और जैनियोंकी कथामें भी लोग जाने लगे। जैनियोंके पोप इन पुराणियोंके पोपोंके चेलोंको बहकाने लगे। तब पुराणियोंने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी होजायंगे। पश्चात् पोपोंने यही सम्मति की कि जैनियोंके सदृश अपने भी अवतार, मंदिर, मूर्त्ति और कथाके पुस्तक बनावें। इन लोगोंने जैनियोंके चौबीस तीर्थंकरोंके सदृश चौबीस अवतार, मंदिर और मूर्तियां बनाई। और जैसे जैनियोंके आदि और उत्तर पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे। राजा भोजके डेढ़सौ वर्षके पश्चात् वैष्णवमतका आरम्भ हुआ। एक शठकोप नामक कंजरवर्णमें उत्पन्न हुआ था उससे थोड़ासा चला उसके पश्चात् मुनिवाहन भंगी कुलोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य्य यवनकुलोत्पन्न आचार्य्य हुआ। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ उसने अपना मत फैलाया। शैवोंने शिवपुराणादि, शाक्तोंने देवीभागवतादि, वैष्णवोंने विष्णुपुराणादि बनाये। उनमें अपना नाम इसलिये नहीं धरा

कि हमारे नामसे बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा। इसलिये व्यास आदि ऋषि मुनियोंके नाम धरके पुराण बनाये। नाम भी इनका वास्तवमें नवीन रखना चाहिये था परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटेका नाम महाराजाधिराज और आधुनिक पदार्थका नाम सनातन रख दे तो क्या आश्चर्य है? अब इनके आपसके जैसे झगड़े हैं वैसे ही पुराणोंमें भी धरे हैं।

देखो! देवीभागवतमें "श्री" नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुरकी स्वामिनी लिखी है उसीने सब जगत्को बनाया और ब्रह्मा विष्णु महादेवको भी उसीने रचा। जब उस देवीकी इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा। उससे हाथमें एक छाला हुआ। उसमेंसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई उससे देवीने कहा कि तू मुझसे विवाह कर। ब्रह्माने कहा कि तू मेरी माता लगती है। मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। ऐसा सुनकर माताको क्रोध चढ़ा और लड़केको भस्म कर दिया। और फिर हाथ घिसके उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न किया। उसका नाम विष्णु रक्खा। उससे भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना तो उसको भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़केको उत्पन्न किया। उसका नाम महादेव रक्खा और उससे कहा कि तू मुझसे विवाह कर महादेव बोला कि मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। तू दूसरा स्त्रीका शरीर धारण कर। वैसा ही देवीने किया। तब महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राखसी क्या पड़ी है? देवीने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं। इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये भस्म कर दिये। महादेवने कहा कि मैं अकेला क्या करूंगा। इनको जिलादे और दो स्त्री और उत्पन्न कर। तीनोंका विवाह तीनोंसे होगा। ऐसा ही देवीने किया। फिर तीनोंका तीनोंके साथ विवाह हुआ। वाहरे! मातासे विवाह न किया और बहिनसे कर लिया! क्या इसको उचित समझना चाहिये? पश्चात् इन्द्रादिको उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकीके उठानेवाले कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े

शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्व नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वरके अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होनेसे उसीके वाचक हैं। भला क्या ऐसे मूर्खों पर ईश्वरका कोप न होता होगा? अब देखिये चक्रांकित वैष्णवोंकी अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। इति श्रुतेः॥

[रामानुजपटलपद्धतौ]

अर्थात् (तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्मके चिन्होंको अग्निमें तपाके भुजाके मूलमें दाग देकर पश्चात् दुग्धयुक्त पात्रमें बुझाते हैं और कोई उस दूधको पी भी लेते हैं। अब देखिये प्रत्यक्ष ही मनुष्यके मासका भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे २ कर्मोंसे परमेश्वरको प्राप्त होनेकी आशा करते हैं और कहते है कि विना शंख, चक्रादिसे शरीर तपाये जीव परमेश्वरको प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है और जैसे राज्यके चपरास आदि चिन्होंके होनेसे राजपुरुष जान उससे सब लोग डरते हैं वैसे ही विष्णुके शंख चक्रादि आयुधोंके चिन्ह देखकर यमराज और उनके गण डरते है और कहते है कि—

दोहा—बाना बड़ा दयालका, तिलक छाप और माल।
यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल॥

अर्थात् भगवान्का बाना तिलक; छाप और माला धारण करना बड़ा है। जिससे यमराज और राजा भी डरता है (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाटमें चित्र निकालना (नाम) नारायणदास विष्णुदास अर्थात् दासशब्दान्त नाम रखना (माला) कमलगट्टे की रखना और पांचवां (मन्त्र) जैसे—

ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वरके और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणीका नाम है। इसमें बिना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है जैसे—

एक किसी वैरागीके दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरुके पग दाबा करते थे। एकने दाहिने पैर और दूसरेने बायें पगकी सेवा करनी बांट ली थी। एक दिन ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बजार हाटको चला गया और दूसरा अपने सेव्य पगकी सेवा कर रहा था। इतनेमें गुरुजीने करवट फेरा तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाईका सेव्य पग पड़ा। उसने ले दंडा पग पर धर मारा! गुरुने कहा कि अरे दुष्ट! तू ने यह क्या किया? चेला बोला कि मेरे सेव्य पगके ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा? इतनेमें दूसरा चेला, जो कि बजार हाटको गया था, आ पहुंचा। वह भी अपने सेव्य पगकी सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। बोला कि गुरुजी यह मेरे सेव्य पगमें क्या हुआ? गुरुने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला। चुप-चाप दण्डा उठाके बड़े बलसे गुरुके दूसरे पगमें मारा। तो गुरुने उच्चस्वरसे पुकार मचाई। तब दोनों चेले दण्डा लेके पड़े और गुरुके पगोंको पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुनकर आये। कहने लगे कि साधुजी क्या हुआ? उनमेंसे किसी बुद्धिमान पुरुषने साधुको छुड़ाके पश्चात् उन मूर्ख चेलोंको उपदेश किया, कि देखो ये दोनों पग तुम्हारे गुरुके हैं। उन दोनोंकी सेवा करनेसे उसीको सुख पहुंचता और दुःख देनेसे भी उसी एकको दुःख होता है।

जैसे एक गुरुकी सेवामें चेलाओंने लीला की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्माके विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं, इन नामोंका अर्थ जैसा कि प्रथम समुल्लासमें प्रकाश कर आये हैं उस सत्यार्थको न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि संप्रदायी लोग परस्पर एक दूसरेके नामकी निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धिको फैला कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र,

उत्पन्न हो सकता है? क्या परमेश्वरके सृष्टिक्रमको कोई अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्षका बीज परमात्माने रचा है उसीसे वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदिको कण्ठमें धारण करना है वह सब जङ्गली पशुवत् मनुष्यका काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्मके त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातोंका विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म धारणसे यमराजके दूत डरते हैं तो पुलिसके सिपाही भी डरते होंगे। जब रुद्राक्ष भस्म धारण करनेवालोंसे कुत्ता, सिंह, सर्प्प, विच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीशके गण क्यों डरेंगे?

प्रश्न—वाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं परन्तु वैष्णव तो अच्छे हैं?

उत्तर—यह भी वेदविरोधी होनेसे उनसे भी अधिक बुरे हैं।

प्रश्न—"नमस्ते रुद्र मन्यवे"। "वैष्णवमसि"। "वामनाय च"। "गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे"। "भगवती भूयाः"। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"। इत्यादि वेद प्रमाणोंसे शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—इन वचनोंसे शैवादि संप्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि "रुद्र" परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदिका नाम है। जो क्रोधकर्त्ता रुद्र अर्थात् दुष्टोंको रुलानेवाले परमात्माको नमस्कार करना, प्राण और जठराग्निको अन्न देना, (नम इति अन्ननाम, निघं० २। ७), जो मङ्गलकारी सब संसारका अत्यन्त कल्याण करनेवाला है उस परमात्माको नमस्कार करना चाहिये। "शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः"। "विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः" "गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः"। "भगवत्या वाण्या अयं सेवकः भागवतः" । सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः"।

लम्बे चौड़े मनमाने लिखे हैं। कोई उनसे पूछे कि उस देवीका शरीर और उस श्रीपुरका बनानेवाला और देवीके पिता माता कौन थे ? जो कहो कि देवी अनादि है तो जो संयोगजन्य वस्तु है वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो माता पुत्रके विवाह करनेमें डरे तो भाई बहिनके विवाहमें कौनसी अच्छी बात निकलती है ? जैसी इस देवीभागवतमें महादेव, विष्णु और ब्रह्मादिकी क्षुद्रता और देवीकी बड़ाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराणमें देवी आदिकी बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात् ये सब महादेवके दास और महादेव सबका ईश्वर है। जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्षके फलकी गोठली और राख धारण करनेसे मुक्ति मानते हैं तो राखमें लोटनेहारे गदहा आदि पशु और घुंघुची आदिके धारण करनेवाले भील कंजर आदि मुक्तिको जावें और सुअर, कुत्ते, गधा आदि राखमें लोटनेवालोंकी मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्रश्न—कालाग्निरुद्रोपनिषद्में भस्म लगानेका विधान लिखा है। वह क्या झूठा है। और "त्र्यायुषं जमदग्नेः" यजुर्वेदवचन। इत्यादि वेदमन्त्रोंसे भी भस्म धारणका विधान और पुराणोंमें रुद्रकी आंखके अश्रुपातसे जो वृक्ष हुआ उसीका नाम रुद्राक्ष है। इसीलिये उसके धारणमें पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापोंसे छूट स्वर्गको जाय। यमराज और नरकका डर न रहे ?

उत्तर—कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी रखोड़िया मनुष्य अर्थात् राख धारण करनेवालेने बनाई है क्योंकि "यस्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः" इत्यादि वचन [उसमें] अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथसे बनाई रेखा है वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकते हैं ? और जो "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारणके वाची नहीं किन्तु "चक्षुर्वै जमदग्निः" शतपथ। हे परमेश्वर ! मेरे नेत्रकी ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणा अर्थात् तीनसौ वर्षपर्यन्त रहे और मैं भी ऐसे धर्मके काम करूं कि जिससे दृष्टि नाश न हो। भला यह कितनी बड़ी मूर्खताकी बात है कि आंखके अश्रुपातसे भी वृक्ष

ओं नमो नारायणाय ॥१॥

यह इन्होंने साधारण मनुष्योंके लिये मन्त्र बना रक्खा है तथाः—

श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥ श्रीमते नारायणाय नमः॥२॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥३॥

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयोंके लिये बना रक्खे हैं। देखिये यह भी एक दुकान ठहरी! जैसा मुख वैसा तिलक! इन पांच संस्कारोंको चक्रांकित मुक्तिके हेतु मानते हैं। इन मन्त्रोंका अर्थ मैं नारायणको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

और मैं लक्ष्मीयुक्त नारायणके चरणारविन्दके शरणको प्राप्त होता हूं ॥ और श्रीयुक्त नारायणको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ अर्थात् जो सोभायुक्त नारायण है उसको मेरा नमस्कार होवे। जैसे वाममार्गी पांच मकार मानते हैं वैसे चक्रांकित पांच संस्कार मानते हैं और अपने शंखचक्रसे दाग देनेके लिये जो वेदमन्त्रका प्रमाण रक्खा है, उसका इस प्रकारका पाठ और अर्थ है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इ-द्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥ तपोष्पवित्रं विततं दिव-स्पदे ॥२॥ ऋ० मं० ९ सू० ८३ मंत्र १। २॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदोंके पालन करने वाले प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमान् आपने अपनी व्याप्तिसे संसारके सब अवयवोंको व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्रस्वरूप है उसको ब्रह्म-चर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास जितेन्द्रिय, सत्संगादि तप-श्चर्य्यासे रहित जो अपरिपक्क आत्मा अन्तःकरणयुक्त है वह उस तेरे स्वरूपको प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तपसे शुद्ध हैं वे ही इस

तपका आचरण करते हुए उस तेरे शुद्धस्वरूपको अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वरकी सृष्टिमें विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्माको प्राप्त होनेमें योग्य होते हैं ॥ २ ॥

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मन्त्रसे "चक्रांकित" होना सिद्ध क्योंकर करते हैं ? भला कहिये वे विद्वान् थे वा अविद्वान् ? जो कहो कि विद्वान् थे तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्रका क्यों करते ? क्योंकि इस मन्त्रमें "अतप्ततनूः" शब्द है किन्तु "अतप्तभुजैकदेशः" [नहीं] पुनः "अतप्ततनूः" यह नख सिखाग्र-पर्यन्त समुदाय अर्थ है । इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्रांकित लोग स्वीकार करें तो अपने २ शरीरको भाड़में झोंकके सब शरीरको जलावें तो भी इस मन्त्रके अर्थसे विरुद्ध है क्योंकि इस मन्त्रमें सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है ॥

ऋतं तपः सत्यं (तपः श्रुतं तपः शान्तं) तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ॥ तैत्ति० प्र० १० अ० ८॥

इत्यादि तप कहाता है अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना सत्य बोलना, सत्य करना, मनको अधर्ममें न जाने देना, बाह्य इन्द्रियोंको अन्यायाचरणोंमें जानेसे रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मनसे शुभ कर्मोंका आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओंका पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मोंका नाम तप है । धातुको तपाके चमड़ीको जलाना तप नहीं कहाता । देखो, चक्रांकित लोग अपनेको बड़े वैष्णव मानते हैं परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्मकी ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरुष "शठकोप" हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूमने बनाया है उनमें लिखा है—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी ॥

इत्यादि वचन चक्रांकितोंके ग्रन्थोंमें लिखे हैं। शठकोप योगी सूर्पको बना, बेचकर, विचरता था अर्थात् कंजर जातिमें उत्पन्न हुआ था। जब उसने ब्राह्मणोंसे पढ़ना वा सुनना चाहा होगा तब ब्राह्मणोंने तिरस्कार किया होगा। उसने ब्राह्मणोंके विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक चक्रांकित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होंगी। उसका चेला "मुनिवाहन" जो कि चाण्डाल वर्णमें उत्पन्न हुआ था। उसका चेला "यावनाचार्य" जो कि यवनकुलोत्पन्न था जिसका नाम बदलके कोई २ "यामुनाचार्य" भी कहते हैं। उनके पश्चात् "रामानुज" ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर चक्रांकित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषाके ग्रन्थ बनाये थे। रामानुजने कुछ संस्कृत पढ़के संस्कृतमें श्लोकबद्ध ग्रन्थ और शारीरिक सूत्र और उपनिषदोंकी टीका शङ्कराचार्यकी टीकासे विरुद्ध बनाई। और शङ्कराचार्यकी बहुतसी निन्दा की। जैसा शङ्कराचार्यका मत है कि अद्वैत अर्थात् जीव ब्रह्म एक ही हैं दूसरी कोई वस्तु वास्तविक नहीं, जगत् प्रपंच, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है। इससे विरुद्ध रामानुजका जीव ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं यहां शङ्कराचार्यका मत ब्रह्मसे अतिरिक्त जीव और कारण वस्तुका न मानना अच्छा नहीं। और रामानुजका इस अंशमें, जो कि विशिष्टाद्वैत जीव और मायासहित परमेश्वर एक है यह तीनका मानना और अद्वैतका कहना सर्वथा व्यर्थ है और सर्वथा ईश्वरके आधीन परतन्त्र जीवको मानना, कण्ठी, तिलक, माला, मूर्तिपूजनादि पाखण्ड मत चलाने आदि बुरी बातें चक्रांकित आदिमें है। जैसे चक्रांकित आदि वेदविरोधी हैं वैसे शंकराचार्यके मतके नहीं।

प्रश्न—मूर्तिपूजा कहांसे चली ?

उत्तर—जैनियोंसे।

प्रश्न—जैनियोंने कहांसे चलाई ?

उत्तर—अपनी मूर्खतासे।

प्रश्न—जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई

मूर्ति देखके अपने जीवका भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर—जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्त्तिके सदृश जीव भी जड़ होजायगा? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियोंने चलाई है। इसलिए इनका खण्डन १२ वें समुल्लासमें करेंगे।

प्रश्न—शाक्त आदिने मूर्तियोंमें जैनियोंका अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियोंकी मूर्तियोंके सदृश वैष्णवादिकी मूर्तियां नहीं हैं।

उत्तर—हां यह ठीक है। जो जैनियोंके तुल्य बनाते तो जैनमतमें मिल जाते। इसलिये जैनोंकी मूर्त्तियोंसे विरुद्ध बनाई क्योंकि जैनोंसे विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनोंने मूर्तियां नङ्गी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्यके समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्रीके सहित रङ्ग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुतसे शंख घन्टा घरियाल आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीलाके रचनेसे वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपोंके चेले जैनियोंके जालसे बचके इनकी लीलामें आ फँसे और बहुतसे व्यासादि महर्षियोंके नामसे मनमानी असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये। उनका नाम "पुराण" रख कर कथा भी सुनने लगे। और फिर ऐसी २ विचित्र माया रचने लगे कि पाषाणकी मूर्त्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जङ्गलादिमें धर आये वा भूमिमें गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलोंमें प्रसिद्ध किया कि मुझको रात्रिको स्वप्नमें महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी-नारायण और भैरव, हनुमान आदिने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं। हमको वहांसे ला, मन्दिरमें स्थापना कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवांछित फल देवें। जब आंखके अन्धे और गांठके पूरे लोगोंने पोपजीकी लीला सुनी तब तो सच ही मानली। और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहां पर है? तब तो पोपजी बोले कि अमुक पहाड़ वा जङ्गलमें है चलो मेरे साथ दिखला दूं।

तब तो वे अन्धे उस धूर्तके साथ चलके वहां पहुंच कर देखा। आश्चर्य होकर उस पोपके पगमें गिरकर कहा कि आपके ऊपर इस देवताकी बड़ी ही कृपा है अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवताकी स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम लोग भी इस प्रतापी देवताके दर्शन पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एकने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगोंने अपनी जीविकार्थ छल कपटसे मूर्तियां स्थापन कीं।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यानमें नहीं आ सकता, इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्तिके सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वरका स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है?

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्तिके दर्शनमात्रसे परमेश्वरका स्मरण होवे तो परमेश्वरके बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिसमें ईश्वरने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदिसे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं उनको देखकर परमेश्वरका स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो कि मूर्तिके देखनेसे परमेश्वरका स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वरके स्मरण न होनेसे मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करनेमें प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करनेसे सिद्ध होते हैं। अब देखिये! जो पाषाणादि मूर्तियोंको न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्माको सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वज्ञ, सर्वदा परमेश्वरको सबके बुरे भले कर्मोंका द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी

परमात्मासे अपनेको पृथक् न जानके कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मनमें कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्मसे भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामीके न्यायसे विना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा। और नामस्मरणमात्रसे कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी २ कहनेसे मुंह मीठा और नींब २ कहनेसे करूवा नहीं होता किन्तु जीभसे चाखने ही से मीठा वा कडुवापन जाना जाता है।

प्रश्न—क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणोंमें नामस्मरणका बड़ा माहात्म्य लिखा है?

उत्तर—नाम लेनेकी तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी है।

प्रश्न—हमारी कैसी रीति है?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरणकी रीति बतलाइये?

उत्तर—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे "न्यायकारी" ईश्वरका एक नाम है इस नामसे इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नामसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

प्रश्न— हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदिके शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—हां २ झूठी। क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणोंसे परमेश्वरको जन्म मरण और शरीर धारणरहित वेदोंमें कहा है तथा युक्तिसे भी परमेश्वरका अवतार कभी नहीं हो

सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख, दुःख, इत्यादि गुणरहित है वह एक छोटेसे वीर्य्य, गर्भाशय और शरीरमें क्योंकर आसकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। और जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्याके पुत्रका विवाह कर उसके पौत्रके दर्शन करनेकी बात कहना है।

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्तिमें भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थमें भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिकासे बनाये पदार्थोंमें है किन्तु परमेश्वर तो भावमें विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तुमें परमेश्वरकी भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजाको सब राज्यकी सत्तासे छुड़ाके एक छोटीसी झोंपड़ीका स्वामी मानना [देखो! यह] कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वरका भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो वाटिकामेंसे पुष्प पत्र तोड़के क्यों चढ़ाते? चन्दन घिसके क्यों लगाते? धूपको जलाके क्यों देते? घन्टा, घरियाल, झांज, पखा-जोंको लकड़ीसे कूटना पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथोंमें है, क्यों जोड़ते? शिरमें है, क्यों शिर नमाते? अन्न, जलादिमें है, क्यों नैवेद्य धरते? जलमें है, स्नान क्यों कराते? क्योंकि उन सब पदार्थोंमें परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापककी पूजा करते हो वा व्याप्यकी? जो व्यापककी करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो? और जो व्याप्यकी करते हो तो हम

परमेश्वरकी पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादिके पुजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये "भाव" सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भावके आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि, पाषाणमें हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेनमें मोती, जलमें घृत, दुग्ध, दधि आदि और धूलिमें मैदा, शक्कर आदिकी भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःखकी भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुखकी भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्रकी भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरनेकी भावना नहीं करते, क्यों मरजाते हो ? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसेमें वैसी करनेका नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्निमें अग्नि, जलमें जल जानना और जलमें अग्नि, अग्निमें जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसेको वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावनाको भावना और भावनाको अभावना कहते हो।

प्रश्न—अजी जबतक वेदमन्त्रोंसे आवाहन नहीं करते तबतक देवता नहीं आता और आवाहन करनेसे झट आता और विसर्जन करनेसे चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्रको पढ़कर आवाहन करनेसे देवता आ जाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ? और विसर्जन करनेसे चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहांसे आता और कहां जाता है ? सुनो अन्धो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्रबलसे परमेश्वरको बुलाते हो तो उन्हीं मन्त्रोंसे अपने मरे हुए पुत्रके शरीरमें जीवको क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रुके शरीरमें जीवात्माका विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई, भोले भाले लोगो ! ये पोपजी तुमको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदोंमें पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वरके आवाहन विसर्जन करने

का एक अक्षर भी नहीं है।

प्रश्न—**प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा। इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥**

इत्यादि वेदमन्त्र हैं क्यों कहते हो नहीं हैं?

उत्तर—अरे भाई! बुद्धिको थोड़ीसी तो अपने काममें लाओ! ये सब कपोल कल्पित वाममार्गियोंकी वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थोंकी पोपरचित पंक्तियां हैं। वेदवचन नहीं।

प्रश्न—क्या तन्त्र झूठा है?

उत्तर—हां, सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्ति विषयक वेदोंमें एक मन्त्र भी नहीं। वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादि मूर्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाणकी मूर्ति बना, मन्दिरोंमें स्थापन कर, चन्दन अक्षतादिसे पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

प्रश्न—जो वेदोंमें विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्तिके होने हीसे खण्डन हो सकता है।

उत्तर—विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वरके स्थानमें किसी अन्य पदार्थको पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्व विधि नहीं होता? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याᳪं रताः॥१॥ यजुः अ० ४०। मं० ९॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति॥ [२]

यजु०॥ अ० ३२। मं० ३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदꣳ श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

केनोपनि० ॥

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणकी ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागरमें डूबते हैं। और संभूति जो कारणसे उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीरकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें करते हैं, वे उस अन्धकारसे भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥ १ ॥

जो सब जगत्‌में व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है ॥ २ ॥

जो वाणीकी इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती हैं उसीको ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥ १ ॥

जो मनसे "इयत्ता" करके मननमें नहीं आता, जो मनको जानता है, उसीको ब्रह्म तू जान और उसीकी उपासना कर जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मत कर ॥ २ ॥

जो आंखसे नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ॥ ३ ॥

जो श्रोत्रसे नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसीको तू ब्रह्म जान और उसकी उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादिकी उपासना उसके स्थानमें मत कर ॥ ४ ॥

जो प्राणोंसे चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमनको प्राप्त होता है उसी ब्रह्मको तू जान और उसकी उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर ॥ ५ ॥

इत्यादि बहुतसे निषेध हैं निषेध प्राप्त और अप्राप्तका भी होता है। "प्राप्त" का जैसे कोई कहीं बैठा हो उसको वहांसे उठा देना। "अप्राप्त" का जैसे हे पुत्र ! तू चोरी कभी मत करना, कुवेमें मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना। विद्याहीन मत रहना। इत्यादि अप्राप्तका भी निषेध होता है। सो मनुष्योंके ज्ञानमें अप्राप्त, परमेश्वरके ज्ञानमें प्राप्त का निषेध किया है। इसलिये पाषाणादि मूर्त्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है।

प्रश्न—मूर्तिपूजामें पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है ?

उत्तर—कर्म दो ही प्रकारके होते हैं—विहित—जो कर्त्तव्यतासे वेदमें सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्त्तव्यतासे मिथ्याभाषणादि वेदमें निषिद्ध हैं। जैसे विहितका अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है वैसे ही निषिद्ध कर्मका करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदोंसे निषिद्ध मूर्त्तिपूजादि कर्मोंको तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं ?

प्रश्न—देखो ! वेद अनादि हैं। उस समय मूर्तिका क्या काम था ? क्योंकि पहिले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछेसे तंत्र और पुराणोंसे चली है। जब मनुष्योंका ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वरको ध्यानमें नहीं लासके, और मूर्तिका ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियोंके लिये मूर्त्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी २ से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते २ जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्माका ध्यान कर सकेगा जैसे लक्ष्यका मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्यमें तीर, गोली वा गोला आदि मारता २ पश्चात् सूक्ष्ममें भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्त्तिकी पूजा करता २ पुनः सूक्ष्म ब्रह्मको भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियां गुड़ियोंका खेल तबतक करती हैं कि जबतक सच्चे पतिको प्राप्त नहीं होतीं इत्यादि प्रकारसे मूर्त्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर—जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरणमें अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहनेसे भी मूर्त्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो २ ग्रन्थ वेदसे विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १ ॥ [मनु० २ । ११]

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः २
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥३॥

मनु० अ० १२ ॥ [९५ । ९६]

मनुजी कहते हैं कि जो वेदोंकी निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग,

विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥ १ ॥

जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषोंके बनाये संसारको दुःखसागरमें डुबानेवाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोकमें दुःखदायक हैं ॥ २ ॥

जो इन वेदोंसे विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होनेसे शीघ्र नष्ट होजाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्तका मत है कि वेद-विरुद्धको न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों? वेद सत्य अर्थका प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होनेसे झूठे हैं। जो कि वेदसे विरुद्ध पुस्तकें हैं, इनमें कही हुई मूर्त्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्योंका ज्ञान जड़की पूजासे नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट होजाता है। इसलिये ज्ञानियोंकी सेवा सङ्गसे ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादिसे नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजासे परमेश्वरको ध्यानमें कभी ला सकता है? नहीं २ मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर होजाता है। पुनः उस खाईसे निकल नहीं सकता किन्तु उसीमें मर जाता है। हां, छोटे धार्मिक विद्वानोंसे ले कर परम विद्वान् योगियोंके संगसे सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वरकी प्राप्तिकी सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घरमें जानेकी निःश्रेणी होती है किन्तु मूर्त्ति-पूजा करते २ ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत २ से मरगये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजन्मके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिरूप फलोंसे विमुख होकर निरर्थ नष्ट होजायंगे। मूर्त्तिपूजा ब्रह्मकी प्राप्तिमें स्थूल लक्ष्यवत नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता २ ब्रह्मको भी पाता है। और मूर्त्ति गुड़ियोंके खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षाका होना गुड़ियोंके खेलवत् ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्याको प्राप्त

होगा तब सच्चे स्वामी परमात्माको भी प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न—साकारमें मन स्थिर होता और निराकारमें स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्त्तिपूजा रहना चाहिये।

उत्तर—साकारमें मन स्थिर कभी नहीं हो सकता। क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसीके एक २ अवयवमें घूमता और दूसरेमें दौड़ जाता है। और निराकार परमात्माके ग्रहणमें यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होनेसे चञ्चल भी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण कर्म स्वभावका विचार करता २ आनन्दमें मग्न होकर स्थिर होजाता है। और जो साकारमें स्थित होता तो सब जगत्का मन स्थिर होजाता क्योंकि जगत्में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकारमें फँसा रहता है, परन्तु किसीका मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकारमें न लगावें, क्योंकि निरवयव होनेसे उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें क्रोड़ो रुपये मन्दिरोंमें व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री पुरुषोंका मन्दिरोंमें मेला होनेसे व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसीको धर्म अर्थ, काम और मुक्तिका साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाता है।

पांचवां—नाना प्रकारकी विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियोंके पुजारियोंका ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमतमें चलकर आपसमें फूट बढ़ाके देशका नाश करते हैं।

छठा—उसीके भरोसेमें शत्रुका पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धनका सुख उनके शत्रुओंके स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारेके टट्टू और कुम्हारके गदहेके समान शत्रुओंके वशमें होकर अनेक विध

दुःख पाते हैं।

सातवां—जब कोई किसीको कहे कि हम तेरे बैठनेके आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वरके उपासनाके स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालोंका सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे।

आठवां—भ्रान्त होकर मन्दिर २ देशदेशान्तरमें घूमते २ दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थका काम नष्ट करते, चोर आदिसे पीड़ित होते, ठगोंसे ठगाते रहते हैं।

नववां—दुष्ट पूजारीयोंको धन देते हैं वे उस धनको वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ोंमें व्यय करते है जिससे दाताका सुखका मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवां—माता पिता आदि माननीयोंका अपमान कर पाषाणादि मूर्तियोंका मान करके कृतघ्न होजाते हैं।

ग्यारहवां—उन मूर्त्तियोंको कोई तोड़ डालता वा चोर लेजाता है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवां—पूजारी परस्त्रियोंके सङ्ग और पूजारिन परपुरुषोंके सङ्गसे प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुषके प्रेमके आनन्दको हाथसे खो बैठते हैं।

तेरहवां—स्वामी सेवककी आज्ञाका पालन यथावत् न होनेसे परस्पर विरुद्धाभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं।

चौदहवां—जड़का ध्यान करनेवालेका आत्मा भी जड़ बुद्धि होजाता है क्योंकि ध्येयका जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मामें अवश्य आता है।

पन्द्रहवां—परमेश्वरने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जलके दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यताके लिये बनाये हैं, उनको पुजारीजी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पोंकी कितने दिन तक सुगन्धि आकाशमें

चढ़कर वायु जलकी शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धिके समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्यमें ही कर देते हैं। पुष्पादि कीचके साथ मिल सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्माने पत्थर पर चढ़ानेके लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं ?

सोलहवां—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिकाके संयोग होनेसे मोरी वा कुण्डमें आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाशमें चढ़ता है कि जितना मनुष्यके मलका और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसीमें मरते और सड़ते हैं। ऐसे २ अनेक मूर्तिपूजाके करनेमें दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगोंको त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्तिकी पूजाकी है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषोंसे न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे॥

प्रश्न—किसी प्रकारकी मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्य्यावर्त्तमें पञ्चदेव पूजा शब्द प्राचीन परम्परासे चला आता है उसका यही पञ्चायतनपूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य्यकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतनपूजा है वा नहीं ?

उत्तर—किसी प्रकारकी मूर्तिपूजा न करना किन्तु "मूर्तिमान" जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थवाला है परन्तु विद्याहीन मूढ़ोंने उसके उत्तम अर्थको छोड़कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचोंकी मूर्तियां बनाकर पूजते हैं उसका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तिपूजा है, सुनो—

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्॥१॥ यजुः [१६।१५]

आचार्य्यो ब्रह्मचर्य्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥२॥

अथर्व०॥ [कां० ११। व० ५। मं० १७]

अतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥३॥ अथर्व० [१५।१३।६]

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥४॥ ऋग्वेदे ॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥५॥ तैत्तिरीयो० [वल्ली० १। अनु० १]

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याक्षते ॥६॥

शतपथ० ॥ कां० १४। प्रपा० ६। ब्राह्म० ७। कं० १०॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥७॥ तैत्तिरीयो० [१। ११]

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥८॥

मनु० अ० ३। ५५॥

पूज्यो देववत्पतिः ॥९॥ मनुस्मृतौ ॥

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानोंको तन मन धनसे सेवा करके माताको प्रसन्न रखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव। उसकी भी माताके समान सेवा करनी ॥ १ ॥

तीसरा आचार्य जो विद्याका देनेवाला है उसकी तन मन धनसे सेवा करनी ॥ २ ॥

चौथा अतिथि जो विद्वान, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने वाला, जगत्में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेशसे सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ३ ॥

पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुषके लिये पत्नी पूजनीय है ।८।

ये पांच मूर्तिमान देव जिनके सङ्गसे मनुष्यदेहकी उत्पत्ति; पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेशकी प्राप्ति होती है। ये ही परमे-

श्वरको प्राप्ति होनेकी सीढ़ियाँ हैं । इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामी हैं !

प्रश्न—माता पिता आदिकी सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर—पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानोंकी सेवा करने ही में कल्याण है । बड़े अनर्थकी बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवोंको छोड़के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ोंने इसलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादिके सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथमें कुछ न पड़ेगा । इससे पाषाणादिकी मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घन्टानाद टंटं पूंपूं, शंख बजा, कोलाहल कर अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसीको छले वा चिड़ावे कि तू घंटाले और अंगूठा दिखलावे उसके आगेसे सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसे ही लीला इन पुजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्मके शत्रुओंकी है । मूढ़ोंको चटक, मटक, चलक झलक मूर्तियोंको बना ठना, आप वेश्या वा भडुआके तुल्य बन ठनके बिचारे निर्बुद्धि अनाथोंका माल मारके मौज करते हैं । जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियोंको पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामोंमें लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता ।

प्रश्न—जैसे स्त्री आदिकी पाषाणादि मूर्ति देखनेसे कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्तकी मूर्ति देखनेसे वैराग्य और शान्तिकी प्राप्ति क्यों न होगी ?

उत्तर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्तिके जड़त्व धर्म आत्मामें आनेसे विचारशक्ति छूट जाती है । विवेकके विना न वैराग्य और न वैराग्यके विना विज्ञान, विज्ञानके विना शान्ति नहीं होती । और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादिके

देखनेसे होता है क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्तिमात्र देखनेसे प्रीति नहीं होती। प्रीति होनेका कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त्तमें निकम्मे पुजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं। वे मूढ़ होनेसे सब संसार में मूढ़ता उन्होंने फैलाई है। झूठ छल भी बहुतसा फैला है।

प्रश्न—देखो काशीमें "औरंगजेब" बादशाहको "लाटभैरव" आदि ने बड़े २ चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उनपर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े २ भमरे निकल कर सब फौजको व्याकुल कर भगा दिया।

उत्तर—यह पाषाणका चमत्कार नहीं, किन्तु वहां भमरेके छत्ते लग रहे होंगे उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटनेको दौड़ते हैं। और जो दूधकी धाराका चमत्कार होता था वह पुजारीजीकी लीला थी।

प्रश्न—देखो महादेव म्लेच्छको दर्शन न देनेके लिये कूपमें और वेणीमाधव एक ब्राह्मणके घरमें जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है?

उत्तर—भला जिसका कोटपाल कालभैरव, लाटभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड़ आदि गण, उन्होंने मुसलमानोंको लड़ के क्यों न हटाये? जब महादेव और विष्णुकी पुराणोंमें कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयङ्कर दुष्टोंको भस्म कर दिया तो मुसलमानोंको भस्म क्यों न किया? इससे यह सिद्ध होता है कि वे विचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियोंको तोड़ते फोड़ते हुए काशीके पास आये तब पूजारियोंने उस पाषाणके लिङ्गको कूपमें डाल और वेणीमाधवको ब्राह्मणके घरमें छिपा दिया। जब काशीमें कालभैरवके डरके मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशीका नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छोंके दूत क्यों न डराये? और अपने राजाके मन्दिरका क्यों नाश होने दिया? यह सब

पोपमाया है ।

प्रश्न—गयामें श्राद्ध करनेसे पितरोंका पाप छूटकर वहांके श्राद्धके पुण्यप्रभावसे पितर स्वर्गमें जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं क्या यह भी बात झूठी है ?

उत्तर—सर्वथा झूठ, जो वहां पिण्ड देनेका वही प्रभाव है तो जिन पण्डोंको पितरोंके सुखके लिये लाखों रुपये देते हैं उनका व्यय गया-वाले वेश्यागमनादि पापमें करते हैं वह पाप क्यों नहीं छूटता ? और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डांके हाथोंके। यह कभी किसी धूर्तने पृथिवीमें गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा। पश्चात् उसके मुख पर कुश बिछा पिण्ड दिया होगा और उस कपटीने उठा लिया होगा। किसी आंखके अन्धे गांठके पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही वैजनाथको रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

प्रश्न—देखो ! कलकत्तेकी काली और कामाक्षा आदि देवीको लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़के तुल्य एकके पीछे दूसरे चलते है, कूप खाड़में गिरते हैं, हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्खके पीछे दूसरे चलकर मूर्तिपूजा रूप गढ़ेमें फंसकर दुःख पाते हैं।

प्रश्न—भला यह तो जाने दो परन्तु जगन्नाथजीमें प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलनेके समय चन्दनका लकड़ा समुद्रमेंसे स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर २ सात हंडे धरनेसे ऊपर २ के पहिले पहिले पकते हैं। और जो कोई वहां जगन्नाथकी परसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाता है और रथ आपसे आप चलता पापीको दर्शन नहीं होता है। इन्द्रदमनके राज्यमें देवताओंने मन्दिर बनाया है। कलेवर बदलनेके समय एक राजा, एक पण्डा, एक बढ़ई मर जाने आदि चम-त्कारोंको तुम झूठ न कर सकोगे।

उत्तर—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथकी पूजा की थी वह

विरक्त होकर मथुरामें आया था, मुझसे मिला था। मैंने इन बातोंका उत्तर पूछा था 'उसने ये सब बातें झूठ' बतलाईं। किन्तु विचारसे निश्चय यह है कि जब कलेवर बदलनेका समय आता है तब नौकामें चन्दनकी लकड़ी ले समुद्रमें डालते हैं। वह समुद्रकी लहरियोंसे किनारे लग जाती है उसको ले सुतार लोग मूर्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द करके रसोइयेके विना अन्य किसीको न जाने न देखने देते हैं। भूमिपर चारों ओर छः और बीचमें एक चक्राकार चूल्हे बनते हैं। उन हंडोंके नीचे घी, मिट्टी और राख लगा छः चूल्हों पर चावल पका, उनके तले मांजकर, उस बीजके हंडेमें उसी समय चावल डाल छः चूल्होंके मुख लोहेके तवोंसे बन्दकर, दर्शन करनेवालोंको, जो कि धनाढ्य हों, बुलाके दिखलाते हैं। ऊपर२ के हंडोंसे चावल निकाल, पके हुए चावलोंको दिखला, नीचेके कच्चे चावल निकाल दिखाके, उनसे कहते हैं कि कुछ हंडोंके लिये रखदो। आंखके अन्धे गांठके पूरे रुपये अशर्फी धरते और कोई २ मासिक भी बांध देते हैं। शूद्र नीच लोग मन्दिरमें नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग जूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हण्डा लेवे उसके घर पहुंचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तोंको लेके शूद्र और अन्त्यज पर्यन्त एक पंक्तिमें बैठ जूठा एक दूसरेका भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलोंपर दूसरोंको बैठाते जाते हैं। महा अनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहां जाकर, उनका जूठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरीमें भी बहुतसे परसादी नहीं खाते। उनको भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरीमें भी बहुतसे कुष्ठी हैं, नित्यप्रति जूठा खानेसे भी रोग नहीं छूटता। और यह जगन्नाथमें वाममार्गियोंने भैरवीचक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बलदेवकी बहिन लगती है। उसीको दोनों भाइयोंके बीचमें स्त्री और माताके स्थान बैठाई है। जो भैरवी

चक्र न होता तो यह बात कभी न होती। और रथके पहियोंके साथ कला बनाई है। जब उनको सूधी घुमाते हैं घूमती है; तब रथ चलता है। जब मेलेके बीचमें पहुंचता है तभी उसकी कीलको उलटी घुमा देनेसे रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं दान देओ, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावें, अपना धर्म रहे। जब तक भेट आती जाती है तबतक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आचुकती है तब एक व्रजवासी अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़कर आगे खड़ा रहके हाथ जोड़ स्तुति करता है कि "हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथको चलाइये हमारा धर्म रक्खो" इत्यादि बोल साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कीलको सूधा घुमा देते हैं और जय २ शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी खींचते हैं, रथ चलता है। जब बहुतसे लोग दर्शनको जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिनमें भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियोंके आगे पड़दे खैंच कर लगानेके पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वालेने पर्देको खींचा, झट मूर्त्ति आड़में आजाती है। तब सब पण्डे और पुजारी पुकारते हैं, तुम भेट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो। वे विचारे भोले मनुष्य धूर्त्तोंके हाथ लूटे जाते हैं। और झट पर्दा दूसरा खैंच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोलके प्रसन्न होकर धक्के खाके तिरस्कृत हो चले आते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुलके लोग अबतक कलकत्तेमें हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त्त देशके भोजनका बखेड़ा इस रीतिसे छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं? देव मानो तो उन्हीं कारीगरोंको मानो कि जिन शिल्पियोंने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं, छोटोंको दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके उसी समय अर्थात्

कलेवर बदलनेके समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं। मूर्तिका हृदय पोला [रक्खा] है उसमें एक सोनेके सम्पुटमें एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रति दिन धोके चरणामृत बनाते हैं। उसपर रात्रिकी शयन आर्तिमें उन लोगोंने विषका तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धोके उन्हीं तीनोंको पिलाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजनभट्टोंने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथजी अपने शरीर बदलनेके समय तीनों भक्तोंको भी साथ ले गये ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगनेके लिये बहुतसी हुआ करती हैं।

प्रश्न—जो रामेश्वरमें गङ्गोत्तरीके जल चढ़ाने समय लिङ्ग बढ़ जाता है, क्या यह भी बात झूठी है ?

उत्तर—झूठी, क्योंकि उस मन्दिरमें भी दिनमें अन्धेरा रहता है। दीपक रात दिन जला करते हैं। जब जलकी धारा छोड़ते हैं तब उस जलमें बिजुलीके समान दीपकका प्रतिबिम्ब चमकता है और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े। जितनाका उतना रहता है ऐसी लीला कर विचारे निर्बुद्धियोंको ठगते हैं।

प्रश्न—रामेश्वरको रामचन्द्रने स्थापित किया है। जो मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकिजी रामायणमें क्यों लिखते ?

उत्तर—रामचन्द्रके समयमें उस लिङ्ग वा मन्दिरका नाम चिह्न भी न था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजाने मन्दिर बनवा, लिङ्गका नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजीको ले हनुमान आदिके साथ लङ्कासे [चले] आकाशमार्गमें विमान पर बैठ अयोध्याको आते थे तब सीताजीसे कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः। सेतुबन्ध इतिविख्यातम्॥ वा० रा० लं० [सर्ग १२५ श्लो० २०]

हे सीते! तेरे वियोगसे हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी

स्थानमें चातुर्मास्य किया था और परमेश्वरकी उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवोंका देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपासे हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई। और देख यह सेतु हमने बांधकर लङ्कामें आके, उस रावणको मार, तुझको ले आये। इसके सिवाय वहां वाल्मीकिमें अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

प्रश्न—

"रंग है कालियाकन्त को।
जिसने हुक्का पिलाया संतको।"

दक्षिणमें एक कालियाकन्तकी मूर्ति है वह अबतक हुक्का पिया करती है जो मूर्तिपूजा झूठी होती तो यह चमत्कार भी झूठा होजाय।

उत्तर— झूठी २। यह सब पोपलीला है। क्योंकि वह मूर्तिका मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठमें निकालके भित्तीके पार दूसरे मकानमें नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा पेचवान लगा, मुखमें नली जमाके, पड़दे डाल निकल आता होगा तभी पीछेवाला आदमी मुखसे खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़ २ बोलता होगा। दूसरा छिद्र नाक और मुखकेसाथ लगा होगा। जब पीछे फूंके मारदेता होगा तब नाक और मुखके छिद्रोंसे धुआं निकलता होगा उस समय बहुतसे मूढ़ोंको धनादि पदार्थोंसे लूट कर धन रहित करते होंगे।

प्रश्न—देखो! डाकोरजीकी मूर्ति द्वारिकासे भगतके साथ चली आई। एक सवारत्ती सोनेमें कई मनकी मूर्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं?

उत्तर—नहीं वह भक्त मूर्तिको चोरा, ले आया होगा और सवारत्तीके बराबर मूर्त्तिकी तुलना किसी भङ्गड़ आदमीने गप्प मारा होगा।

प्रश्न—देखो! सोमनाथजी पृथिवीसे ऊपर रहता था और बड़ा चमत्मार था। क्या यह भी मिथ्या बात है?

उत्तर—हां मिथ्या है सुनो! नीचे ऊपर चुम्बक पाषाण लगा

रक्खे थे। उसके आकर्षणसे वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब "महमूदग़-जनवी" आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पूजारी भक्तोंकी दुर्दशा होगई और लाखों फौज दश सहस्र फौजसे भाग गई। जो पोप पूजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव! इस म्लेच्छको तूं मार डाल, हमारी रक्षा कर' और वे अपने चेले राजाओंको समझाते थे "कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी, भैरव अथवा वीरभद्रको भेज देंगे। वे सब म्लेच्छोंको मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरवने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे। वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपोंके बहकानेसे विश्वासमें रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपोंने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाईका मूहूर्त्त नहीं है। एकने आठवां चन्द्रमा बतलाया। दूसरेने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावटमें रहे। जब म्लेच्छोंकी फौजने आकर घेर लिया तब दुर्दशासे भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। पूजारियोंने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन क्रोड़ रुपया लेलो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसल्मानोंने कहा कि हम "बुत्परस्त" नहीं किन्तु "बुतशिकन" अर्थात् बुतोंके तोड़ने वाले [मूर्तिभंजक] हैं। जाके झट मन्दिर तोड़ दिया! जब ऊपरकी छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होनेसे मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह क्रोड़के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा, कि कोष बतलाओ। मारके मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट मार कूट कर पोप और उनके चेलोंको "गुलाम" बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खानेको दिये! हाय क्यों पत्थरकी पूजा कर सत्यानाशको प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वरकी भक्ति न की जो म्लेच्छोंके दांत तोड़ डालते! और अपना विजय करते। देखो! जितनी मूर्तियां हैं उनकी शूरवीरों

की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियोंने इन पाषाणोंकी इतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन [शत्रुओं] के शिर पर उड़के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुषकी मूर्तिके सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकोंको यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओंको मारता।

प्रश्न—द्वारिकाजीके रणछोड़जी जिसने "नर्सीमहता" के पास हुंडी भेज दी और उसका ऋण चुका दिया इत्यादि बात भी क्या झूठ है?

उत्तर—किसी साहूकारने रुपये दे दिये होंगे। किसीने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्णने भेजे। जब सम्वत् १६१४ के वर्षमें तोपोंके मारे मन्दिर मूर्तियां अङ्गरेजोंने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थी? प्रत्युत वाघेर लोगोंने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओंको मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खीकी टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्णके सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिसको रक्षक मार खाय उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें?

प्रश्न—ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है सबको खा जाती है। और प्रसाद देवे तो आधा खाजाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहोंने उस पर जलकी नहर छुड़वाई और लोहेके तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला न बुझी और न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रातको सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़को गर्जना कराती है, चन्द्रकूप बोलता और योनियंत्रसे निकलनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, ठूमरा बांधनेसे पूरा महापुरुष कहाता। जबतक हिंगलाज न हो आवे तबतक आधा महापुरुष बजता है इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़से आगी निकली है। उसमें पुजारी लोगोंकी विचित्र लीला है जैसे बघारके घीके चमचेमें

ज्वाला आजाती, अलग करनेसे वा फूंक मारनेसे बुझ जाती और थोड़ासा घीको खाजाती, शेष छोड़ जाती है, उसीके समान वहां भी है जैसी चूल्हेकी ज्वालामें जो डाला जाय सब भस्म हो जाता। जंगल वा घरमें लग जानेसे सबको खाजाती है इससे वहां क्या विशेष है? विना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर उधर नल रचनाके हिंगलाजमें न कोई सवारी होती और जो कुछ होना है वह सब पोप पूजारियोंकी लीलासे दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दल्दलका कुण्ड बना रक्खा है। जिसके नीचेसे बुद्बुदे उठते हैं। उसको सफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनिका यन्त्र पोपजीने धन हरनेके लिये बनवा रक्खा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीलाके हैं। उससे महापुरुष हो तो एक पशु पर ठुमरेका बोझ लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा? महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थसे होता है।

प्रश्न—अमृतसरका तालाब अमृतरूप, एक मुरेठीका फल आधा मीठा और एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसरमें बेड़े तरते अमरनाथमें आपसे आप लिंग बन जाते हिमालयसे कबूतरके जोड़े आके सबको दर्शन देकर चले जाते हैं क्या यह भी मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं, उस तालाबका नाममात्र अमृतसर है। जब कभी जंगल होगा तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियोंके मानने तुल्य कोई क्यों मरता? भित्तीकी कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलमके पैबन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसरमें बेड़ा तरनेमें कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथमें बर्फके पहाड़ बनते हैं तो जल जमके छोटे लिंगका बनना कौन आश्चर्य है? और कबूतरके जोड़े पालित होंगे पहाड़की आड़मेंसे पोपजी छोड़ते होंगे दिखलाकर टका हरते होंगे।

प्रश्न—हरद्वार स्वर्गका द्वार हरकी पैढ़ीमें स्नान करे तो पाप

छूट जाते हैं। और तपोवनमें रहनेसे तपस्वी होता, देवप्रयाग, गंगोत्तरी में गोमुख, उत्तर काशीमें गुप्तकाशी, त्रियुगी नारायणके दर्शन होते हैं। केदार और बदरीनारायणकी पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेवका मुख नैपालमें पशुपति, चूतड़ केदार और तुङ्गनाथमें जानु और पग अमरनाथमें। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करनेसे मुक्ति होजाती है। वहां केदार और बदरीसे स्वर्ग जाना चाहै तो जासकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं?

उत्तर—हरद्वार उत्तर पहाड़ोंमें जानेका एक मार्गका आरम्भ है। हरकी पैढ़ी एक स्नानके लिये कुण्डकी सीढ़ियोंको बनाया है। सच पूछो तो "हाड़पैढ़ी" है क्योंकि देशदेशान्तरके मृतकोंके हाड़ उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता विना भोगे अथवा नहीं कटते। "तपोवन" जब होगा तब होगा। अबतो "भिक्षुकवन" है। तपोवनमें जाने रहनेसे तप नहीं होता, किन्तु तप तो करनेसे होता है क्योंकि वहां बहुतसे दुकानदार झूठ बोलनेवाले भी रहते हैं। "हिमवतः प्रभवति गंगा" पहाड़के ऊपरसे जल गिरता है। गोमुखका आकार पोपलीलासे बनाया होगा और वही पहाड़ पोपका स्वर्ग है। वहां उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियोंके लिये अच्छा है परन्तु दुकान्दारोंके लिये वहां भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराणके गपोड़ोंकी लीला है अर्थात् जहां अलखनन्दा और गंगा मिली है इसलिये वहां देवता वसते हैं ऐसे गपोड़े न मारें तो वहां कौन जाय? और टका कौन देवे? गुप्तकाशी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युगकी धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपोंकी दश बीस पीढ़ीकी होगी जैसी खाखियोंकी धूनी और पार्सियोंकी आगारी सदैव जलती रहती है तप्तकुण्ड भी पहाड़ोंके भीतर ऊष्मा गर्मी होती है उसमें तप कर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्डमें ऊपरका जल वा जहां गर्मी नहीं वहांका आता है। इससे ठण्डा है, केदारका स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहां भी एक जमे हुए पत्थर पर पोप वा

पोपोंके चेलोंने मन्दिर बना रक्खा है। वहां महन्त पुजारी पंडे आंखके अंधे गांठके पूरोंसे माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही बदरीनारायणमें ठग विद्यावाले बहुतसे बैठे हैं। "रावलजी" वहां के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़ अनेक स्त्री रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पंचमुखी मूर्त्तिका नाम धर रक्खा है जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थके लोग धूर्त्त धनहरे होते हैं वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते वहांकी भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र हैं।

प्रश्न—विन्ध्याचलमें विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समयमें तीन रूप बदलती है और उसके बाड़ेमें मक्खी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्थराज वहां शिर मुण्डाये सिद्धि, गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे इच्छासिद्धि होती है, वैसे ही अयोध्या कई बार उड़ कर सब वस्ती सहित स्वर्गमें चली गई। मथुरा सब तीर्थोंसे अधिक, बृन्दावन लीलास्थान और गोवर्द्धन ब्रजयात्रा बड़े भाग्यसे होती है। सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें लाखों मनुष्योंका मेला होता है क्या ये सब बातें मिथ्या हैं?

उत्तर—प्रत्यक्ष तो आंखोंसे तीनों मूर्त्तियां दीखती हैं कि पाषाणकी मूर्त्तियां हैं और तीन कालमें तीन प्रकारके रूप होनेका कारण पूजारी लोगोंके वस्त्र आदि आभूषण पहिरानेकी चतुराई है और मक्खियाँ सहस्रों लाखों होती हैं, मैंने अपनी आंखोंसे देखा है। प्रयागमें कोई नापित श्लोक बनानेहारा अथवा पोपजीको कुछ धन देके मुण्डन करानेका माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयागमें स्नान करके स्वर्ग को जाता तो लौटकर घरमें आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घरको सब आते हुए दीखते हैं अथवा जो कोई वहां डूब मरता और उसका जीव भी आकाशमें वायुके साथ घूमकर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम पोपोंने धरा है। जड़में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भङ्गी चमार, जाजरू सहित तीन बार स्वर्गमें गई। स्वर्गमें तो नहीं गई

वहींकी वहीं है। परन्तु पोपजीकी मुख गपोड़ोंमें अयोध्या स्वर्गको उड़ गई। यह गपोड़ा शब्दरूप उड़ता फिरता है। ऐसे ही नैमिषारण्य आदिकी भी पोपलीला जाननी "मथुरा तीन लोकसे निराली" तो नहीं परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल, और अन्तरिक्षमें किसीको सुख मिलना कठिन है। एक चौबे जो कोई स्नान करने जाय अपना कर लेनेको खड़े रहकर बकते रहते हैं। लाओ यजमान ! भांग, मर्ची और लड्डू खावें, पीवें। यजमानकी जय जय मनावें। दूसरे जलमें कछुवे काट ही खाते हैं जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे आकाशके ऊपर लाल मुखके बन्दर पगड़ी, टोपी, गहने और जूते तक भी न छोड़ें, काट खावें, धक्के दे गिरा मार डालें और ये तीनों पोप और पोपजीके चेलोंके पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन्न कछुवे और बन्दरोंको चना गुड़ आदि और चौबोंकी दक्षिणा और लड्डुओंसे उनके सेवक सेवा किया करते हैं और बृन्दावन जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् लल्ला लल्ली और गुरु चेली आदिकी लीला फैल रही है। वैसे ही दीप-मालिकाका मेला गोवर्द्धन और व्रजयात्रामें भी पोपोंकी बन पड़ती है। कुरुक्षेत्रमें भी वही जीविकाकी लीला समझ लो। इनमें जो कोई धार्मिक परोपकारी पुरुष है इस पोपलीलासे पृथक् हो जाता है।

प्रश्न—यह मूर्त्तिपूजा और तीर्थ सनातनसे चले आते हैं झूठे क्यों कर हो सकते हैं ?

उत्तर—तुम सनातन किसको कहते हो। जो सदासे चला आता है। जो यह सदासे होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषिमुनिकृत पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं ? यह मूर्त्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्षके इधर २ वाममार्गी और जैनियोंसे चली है। प्रथम आर्यावर्त्तमें नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियोंने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके अनुकूल इन लोगोंने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहें

वे पंडोंकी पुरानीसे पुरानी बही और तांबेके पत्र आदि लेख देखें, तो निश्चय होजायगा कि ये सब तीर्थ पांचसो अथवा एक सहस्र वर्षसे इधर ही बने हैं। सहस्र वर्षसे उधरका लेख किसीके पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक हैं।

प्रश्न—जो २ तीर्थ वा नामका माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रोंको धन, राजपाट, अन्धोंको आंख मिल जाती, कोढ़ियोंका कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता। इसलिये पाप वा पुण्य किसीका नहीं छूटता।

प्रश्न—

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥२॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम् ॥३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराणके हैं जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूरसे भी गङ्गा २ कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठको जाता है॥ १॥

"हरि" इन दो अक्षरोंका नामोच्चारण सब पापको हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामोंका माहात्म्य है॥ २॥

और जो मनुष्य प्रातःकालमें शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्त्तिका दर्शन करे तो रात्रिमें किया हुआ, मध्याह्नमें दर्शनसे जन्म भरका, सायंकालमें दर्शन करनेसे सात जन्मोंका पाप छूट जाता है। यह दर्शनका माहात्म्य है॥ ३॥

क्या झूठा होजायगा ?

उत्तर—मिथ्या होनेमें क्या शंका ? क्योंकि गङ्गा २ वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरणसे पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुखी कोई न रहे। और पाप करनेसे कोई भी न डरे। जैसे आजकल पोपलीलामें पाप बढ़कर हो रहे हैं मूढ़ोंको विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापोंकी निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोकका नाश करते हैं। पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।

प्रश्न—तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ?

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रोंका पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानोंका सङ्ग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्यका मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता, पिताकी सेवा, परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखोंसे तारनेवाले होनेसे तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं। वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना येस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखोंसे तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तरानेवाले नहीं किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदिका नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदिको तरते हैं।

समानतीर्थे वासी ॥ अ० ४ पा० ४ । १०८ ॥

नमस्तीर्थ्याय च ॥ यजुः १६ [मं० ४२]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य और एक शास्त्रको साथ २ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणोंमें साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं। नामस्मरण इसको कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः ॥ यजुः ॥ [अ० ३२ मं० ३]

परमेश्वरका नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामोंका करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावसे हैं। जैसे ब्रह्म सबसे बड़ा, परमेश्वर ईश्वरोंका ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान अपने सामर्थ्य ही से सब जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता सहाय किसीका नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत्के पदार्थोंका बनानेहारा, विष्णु सबमें व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवोंका देव, रुद्र प्रलय करनेहारा आदि नामोंके अर्थोंको अपनेमें धारण करे अर्थात् बड़े कामोंसे बड़ा हो, समर्थोंमें समर्थ हो, सामर्थ्योंको बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करें, सब पर दया रक्खे, सब प्रकारके साधनोंको समर्थ करे, शिल्पविद्यासे नाना प्रकारके पदार्थोंको बनावे सब संसारमें अपने आत्माके तुल्य सुख दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानोंमें विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म करनेवालोंको प्रयत्नसे दण्ड और सज्जनोंकी रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वरके नामोंका अर्थ जानकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभावको करते जाना ही परमेश्वरका नामस्मरण है।

प्रश्न—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरुके पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वावनके समान, क्रोधी हो तो नरसिंहके सदृश, मोही हो तो रामके तुल्य और कामी हो तो कृष्णके समान गुरुको जानना। चाहे गुरुजी कैसा ही पाप करें तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरुके दर्शनको जानेमें पग २

में अश्वमेधका फल होता है यह बात ठीक है वा नहीं ?

उत्तर—ठीक नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वरके नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरुका काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षासे न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करनेमें कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणोंमें गुरुत्व नहीं है झूठ मूठ कण्ठी तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियोंसे दूध आदिसे प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्योंके चेले चेलियोंके धन हरके अपना प्रयोजन करते हैं वे—

दो०—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
भवसागरमें डूबते, बैठ पथर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवेंहीगे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगन्द खाने, पाप छुड़ाने आदि लालचसे दोनों कपटमुनि भवसागरके दुःखमें डूबते हैं, जैसे पत्थरकी नौकामें बैठनेवाले समुद्रमें डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलोंके मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे जो रहे वह दुःखसागरमें पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियोंने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओंने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगोंका है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत्का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओंने बनाई है।

प्रश्न—**अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः॥१॥**

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ॥२॥

महाभारत ॥

पुराणान्यखिलानि च ॥३॥ मनु० ॥

इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ॥४॥

छान्दोग्य० । प्र० ७ । खं० १ ॥

दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत ॥५॥

पुराणविद्या वेदः ॥६॥ सूत्र ॥

अठारह पुराणोंके कर्त्ता व्यासजी हैं। व्यासवचनका प्रमाण अवश्य करना चाहिये ॥ १ ॥

इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणोंसे वेदोंका अर्थ पढ़ें पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुकूल हैं ॥ २ ॥

पितृकर्ममें पुराण और खिल अर्थात् हरिवंशकी कथा सुनें ॥३॥

अश्वमेधकी समाप्तिमें दशवें दिन थोड़ीसी पुराणकी कथा सुनें ॥ ४ ॥

पुराण विद्या वेदार्थके जानने ही से वेद हैं ॥ ५ ॥

इतिहास और पुराण पंचम वेद कहाते हैं ॥ ६ ॥

इत्यादि प्रमाणोंसे पुराणोंका प्रमाण और इनके प्रमाणोंसे मूर्तिपूजा और तीर्थोंका भी प्रमाण है क्योंकि पुराणोंमें मूर्तिपूजा और तीर्थोंका विधान है।

उत्तर—जो अठारह पुराणोंके कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिकसूत्र, योगशास्त्रके भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगोंने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं उनमें व्यास-

जीके गुणोंका लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानोंका काम नहीं किन्तु यह काम विरोधी स्वार्थी, अविद्वान पामरोंका है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादिका नाम नहीं किन्तु—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्
गाथानाराशंसीरिति ॥

यह ब्राह्मण और सूत्रोंका वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्यका संवाद। (पुराण) जगदुत्पत्ति आदिका वर्णन। (कल्प) वेद शब्दोंके सामर्थ्यका वर्णन अर्थ निरूपण करना। (गाथा) किसीका दृष्टान्त दार्ष्टान्तरूप कथा प्रसंग कहना। (नाराशंसी) मनुष्योंके प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मोंका कथन करना। इनहीसे वेदार्थका बोध होता है। पितृकर्म अर्थात् ज्ञानियोंकी प्रशंसामें कुछ सुनना, अश्वमेधके अन्तमें भी इन्हींका सुनना लिखा है क्योंकि जो व्यासकृत ग्रन्थ हैं उनका सुनना, सुनाना व्यासजीके जन्मके पश्चात् हो सकता है पूर्व नहीं। जब व्यासजीका जन्म भी नहीं था तब वेदार्थको पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते थे। इसलिये सबसे प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में यह सब घटना हो सकती है। इन नवीन कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत शिवपुराणादि मिथ्या वा दूषित ग्रन्थोंमें नहीं घट सकती। जब व्यासजीने वेद पढ़े और पढ़ाकर वेदार्थ फैलाया इसलिये उसका नाम "वेदव्यास" हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पारकी मध्य रेखाको अर्थात् ऋग्वेदके आरम्भसे लेकर अथर्ववेदके पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्योंको पढ़ाये भी थे। नहीं तो उनका जन्मका नाम "कृष्णद्वैपायन" था। जो कोई यह कहते हैं कि वेदोंको व्यासजीने इकट्ठे किये यह बात झूठी है क्योंकि व्यासजीके

पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, बशिष्ठ और ब्रह्मा आदिने भी चारों वेद पढ़े थे। यह बात क्योंकर घट सके ?

प्रश्न—पुराणोंमें सब बातें झूठी हैं वा कोई सच्ची भी हैं ?

उत्तर—बहुतसी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्यायसे सच्ची भी है। जो सच्ची है वह वेदादि सत्यशास्त्रोंकी और जो झूठी हैं वे इन पोपोंके पुराणरूप घरकी हैं। जैसे शिवपुराणमें शैवों। शिवको परमेश्वर मानके विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्य्यादिको उनके दास ठहराये। वैष्णवोंने विष्णुपुराण आदिमें विष्णुको परमात्मा माना और शिव आदिको विष्णुके दास। देवीभागवतमें देवीको परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदिको उसके किंकर बनाये। गणेशखण्डमें गणेशको ईश्वर शेष सबको दास बनाये। भला यह बात इन सम्प्रदायी पोपोंकी नहीं तो किनकी है ? एक मनुष्यके बनानेमें ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती तो विद्वान्के बनायेमें कभी नहीं आ सकती। इसमें एक बातको सच्ची मानें तो दूसरी झूठी और जो दूसरीको सच्ची मानें तो तीसरी झूठी और जो तीसरीको सच्ची मानें तो अन्य सब झूठी होती हैं। शिवपुराणवाले शिवसे, विष्णुपुराणवालोंने विष्णुसे, देवीपुराणवाले देवीसे, गणेशखण्डवालेने गणेशसे, सूर्य्यपुराणवालेने सूर्य्यसे और वायुपुराणवालेने वायुसे सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय लिखके पुनः एक एकसे एक एक जो जगत्के कारण लिखे उनकी उत्पत्ति एक एकसे लिखी। कोई पूछे कि जो जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेवाला है वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है वह सृष्टिका कारण कभी हो सकता है वा नहीं ? तो केवल चुप रहनेके सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सबके शरीरकी उत्पत्ति भी इसीसे हुई होगी फिर वे आप सृष्टि पदार्थ और परिच्छिन्न होकर संसारकी उत्पत्तिके कर्त्ता क्योंकर होसकते हैं ? और उत्पत्ति भी विलक्षण २ प्रकारसे मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है जैसे—

शिवपुराणमें शिवने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण

जलाशयको उत्पन्न कर उसकी नाभीसे कमल, कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जलकी अञ्जलि उठा देख जलमें पटक दी। उससे एक बुद्‌बुदा उठा और बुद्‌बुदेमेंसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मासे कहा कि हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्माने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेवने विचार किया कि जिनको मैंने सृष्टि करनेके लिये भेजा था वे दोनों आपसमें लड़ झगड़ रहे हैं। तब उन दोनोंके बीचमें से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाशमें चला गया उसको देखके दोनों आश्चर्य हो गये। विचारा कि इसका आदि अन्त लेना चाहिये। जो आदि अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कुर्मका स्वरूप धरके नीचेको चला और ब्रह्मा हंसका शरीर धारण करके ऊपरको उड़ा। दोनों मनोवेगसे चले। दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचेसे ऊपर विष्णु और ऊपरसे नीचे ब्रह्माने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो मुझको पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और एक केतकीका वृक्ष ऊपरसे उतर आया उनसे ब्रह्माने पूछा कि तुम कहांसे आये? उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षोंसे इस लिंगके आधारसे चले आते हैं। ब्रह्माने पूछा कि इस लिंगका थाह है वा नहीं? उन्होंने कहा कि नहीं। ब्रह्माने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिंगके शिर पर दूधकी धारा वर्षाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षाता था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको ठिकान पर ले चलूं। उन्होंने कहा कि हम झूठी साक्षी नहीं देंगे। तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुमको अभी भस्म कर देता हूं! तब दोनोंने डरके कहा कि हम जैसी तुम कहते हो वैसी साक्षी देवेंगे। तब तीनों नीचेकी ओर चले। विष्णु

प्रथम ही आगये थे ब्रह्मा भी पहुंचा। विष्णुसे पूछा कि तू थाह ले आया वा नहीं ? तब विष्णु बोला मुझको इसका थाह नहीं मिला, ब्रह्माने कहा मैं ले आया। विष्णुने कहा कोई साक्षी देओ। तब गाय और वृक्षने साक्षी दी। हम दोनों लिंगके शिर पर थे। तब लिंगमेंसे शब्द निकला और वृक्षको शाप दिया कि जिससे तू झूठ बोला इसलिये तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगतमें कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा। गायको शाप दिया कि जिस मुखसे तू झूठ बोली उसीसे विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुखकी पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूंछकी करेंगे। और ब्रह्माको शाप दिया कि जिससे तू मिथ्या बोला इसलिये तेरी पूजा संसारमें कहीं नहीं होगी। और विष्णुको वर दिया कि जिससे तू सत्य बोला इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी। पुनः दोनोंने लिंगकी स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिंगमेंसे एक जटाजूट मूर्ति निकल आई और कहा कि तुमको मैंने सृष्टि करनेके लिये भेजा था झगरेमें क्यों लगे रहे ? ब्रह्मा और विष्णुने कहा कि हम विना सामग्री सृष्टि कहांसे करें। तब महादेवने अपनी जटामेंसे एक भस्मका गोला निकाल कर दिया कि जाओ इस-मेंसे सब सृष्टि बनाओ इत्यादि। भला कोई इन पुराणोंके बनाने वाले पोपोंसे पूछे, कि जब सृष्टि तत्त्व और पंचमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा विष्णु महादेवके शरीर, जल, कमल, लिंग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्मका गोला क्या तुम्हारे बाबाके घरमेंसे आगिरे ?

वैसे ही भागवतमें विष्णुकी नाभिसे कमल, कमलसे ब्रह्मा और ब्रह्माके दहिने पगके अंगूठेसे स्वायंभुव और बायें अंगूठेसे सतरूपा रानी, ललाटसे रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दश प्रजापति, उनकी तेरह लड़कियोंका विवाह कश्यपसे, उनमेंसे दितिसे दैत्य, दनुसे दानव. अदितिसे आदित्य, विनतासे पक्षी, कद्रूसे सर्प. सरमासे कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियोंसे हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, भैंसा, घास, फूस और बबूर आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये। वाहरे वाह !

भागवतके बनाने वाले ललबुझक्कड़ ! क्या कहना तुमको, ऐसी मिथ्या बातें लिखनेमें तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अन्धा ही बन गया। भला स्त्री पुरुषके रजवीर्यके संयोगसे मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वरकी सृष्टिक्रमके विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊंट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादिका स्त्री के गर्भाशयमें स्थित होनेका अवकाश भी कहां हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मा बापको क्यों न खागये? और मनुष्य-शरीरसे पशु पक्षी वृक्षादिका होना क्योंकर संभव हो सकता है? धिक्कार है पोप और पोपरचित इस महा असम्भव लीलाको जिसने संसारको अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला इन महा झूठ बातोंको वे अंधे पोप और बाहर भीतरकी फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई !!! इन भागवतादि पुराणोंके बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट होगये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापोंसे बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखोंसे बच जाता।

प्रश्न—इन बातोंमें विरोध नहीं आसकता क्योंकि "जिसका विवाह उसीका गीत" जब विष्णुकी स्तुति करने लगे तब विष्णुको परमेश्वर अन्यको दास, जब शिवके गुण गाने लगे तब शिवको परमात्मा अन्यको किंकर बनाया। और परमेश्वरकी मायामें सब बन सकता है। मनुष्यसे पशु आदि और पशु आदिसे मनुष्यादिकी उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है देखो! विना कारण अपनी मायासे सब सृष्टि खड़ी कर दी है! उसमें कौनसी बात अघटित है? जो करना चाहे सो सब कर सकता है।

उत्तर—अरे भोले लोगो! विवाहमें जिसके गीत गाते हैं उसको सबसे बड़ा और दूसरोंको छोटा वा निन्दा अथवा उसको सबका बाप तो नहीं बनाते? कहो पोपजी तुम भाट और खुशामदी चारणोंसे भी बढ़कर गप्पी हो अथवा नहीं? कि जिसके पीछे लगो उसीको सबसे

बड़ा बनाओ और जिससे विरोध करो उसको सबसे नीच ठहराओ। तुमको सत्य और धर्मसे क्या प्रयोजन? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ ही से काम है। माया मनुष्यमें हो सकती है। जो कि छली कपटी है उन्हींको मायावी कहते हैं। परमेश्वरमें छल कपटादि दोष न होनेसे उसको मायावी नहीं कह सकते। जो आदि सृष्टिमें कश्यप और कश्यपकी स्त्रियोंसे पशु, पक्षी, सर्प्प, वृक्षादि हुए होते तो आज-कल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते? सृष्टिक्रम जो पहिले लिख आये वही ठीक है। और अनुमान है कि पोपजी यहींसे धोखा खाकर बके होंगे—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥ [शत० ७।५।१।५]

शतपथमें यह लिखा है कि यह सब सृष्टि कश्यपकी बनाई हुई है ॥

कष्यपः कस्मात् पष्यको भवतीति ॥ निरु० [२।२]

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरका नाम कश्यप इसलिये है कि पश्यक अर्थात् "पश्यतीति पश्यः पश्य एव पश्यकः" जो निर्भ्रम होकर चराचर जगत् सब जीव और इनके कर्म, सकल विद्याओंको यथावत् देखता है और "आद्यन्तविपर्ययश्च" इस महाभाष्यके वचनसे आदिका अक्षर अन्त और अन्तका वर्ण आदिमें आनेसे "पश्यक"से "कश्यप" बन गया है। इसका अर्थ न जानके भांगके लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टिविरुद्ध कथन करनेमें नष्ट किया ॥

जैसे मार्कण्डेयपुराणके दुर्गापाठमें देवोंके शरीरोंसे तेज निकलके एक देवी बनी उसने महिषासुरको मारा। रक्तबीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पड़नेसे उसके सदृश रक्तबीजके उत्पन्न होनेसे सब जगत्में रक्तबीज भरजाना, रुधिरकी नदी बह चलनी आदि गपोड़े बहुतसे लिख रक्खे हैं। जब रक्तबीजसे सब जगत् भरगया था तो देवी और देवीका सिंह और उसकी सेना कहां रही थी? जो कहो कि देवीसे

दूर २ रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीजसे नहीं भरा था ? जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि वनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते ? । यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवाले पोपके घरमें भागकर चले गये होंगे ! ! ! देखिये क्या ही असम्भव कथाका गपोड़ा भङ्गकी लहरोंमें उड़ाया जिनका ठौर न ठिकाना ॥

अब जिसको "श्रीमद्भागवत" कहते हैं उसकी लीला सुनो । ब्रह्माजीको नारायणने चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ॥

[भा० स्कं० २ । अ० ६ । श्लोक ३०]

अब भागवतका मूल ही झूठा है तो उसका वृक्ष क्यों न झूठा होगा ?

अर्थ—हे ब्रह्माजी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म अर्थ काम मोक्षका अङ्ग है उसीको मुझसे ग्रहण कर । जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञानका विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषणसे रहस्य भी पुनरुक्त है । जब मूल श्लोक अनर्थक है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं ? ब्रह्माजीको वर दिया कि—

भवानकल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

भाग० [स्कं० २ । अ० ९ । श्लोक ३६]

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलयमें भी मोहको कभी न प्राप्त होंगे ऐसा लिखके पुनः दशमस्कन्धमें मोहित होके वत्सहरण किया । इन दोनोंमेंसे एक बात सच्ची दूसरी झूठी । ऐसा होकर दोनों बात झूठ । जब वैकुण्ठमें राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकोंको वैकुण्ठके द्वारमें क्रोध क्यों हुआ ? जो क्रोध हुआ तो वह

स्वर्ग ही नहीं। तब जय विजय द्वारपाल थे। स्वामीकी आज्ञा पालनी अवश्य थी। उन्होंने सनकादिकोंको रोका तो क्या अपराध हुआ? इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि तुम पृथिवीमें गिर पड़ो इसके कहनेसे यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार मन्दिर और जल किसके आधार थे? पुनः जय विजयने सनका-दिकोंकी स्तुति की कि महाराज! पुनः हम वैकुण्ठमें कब आवेंगे। उन्होंने उनसे कहा कि जो प्रेमसे नारायणकी भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोधसे भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठको प्राप्त होओगे। इसमें विचारना चाहिये कि जय विजय नारायणके नौकर थे। उनकी रक्षा और सहाय करना नारायणका कर्त्तव्य काम था। जो अपने नौकरोंको विना अपराध दुःख देवें उनको उनका स्वामी दंड न देवे तो उसके नौकरोंकी दुर्दशा सब कोई कर डाले। नाराय-णको उचित था कि जय विजयका सत्कार सनकादिकोंको खूब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर आनेके लिये हठ क्यों किया? और नौक-रोंसे लड़े क्यों? शाप दिया उनके बदले सनकादिकोंको पृथिवीमें डाल देना नारायणका न्याय था। जब इतना अन्धेर नारायणके घरमें है तो उसके सेवक जो कि वैष्णव कहाते हैं उनकी जितनी दुर्दशा हो उतनी थोड़ी है। पुनः वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु उत्पन्न हुए। उनमेंसे हिरण्याक्षको वराहने मारा। उसकी कथा इस प्रकारसे लिखी है कि वह पृथिवीको चटाईके समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णुने वराहका स्वरूप धारण करके उसके शिरके नीचेसे पृथिवीको मुखमें धर लिया वह उठा। दोनोंकी लड़ाई हुई। वराहने हिरण्याक्षको मारडाला। इन पोपोंसे कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाईके समान? तो कुछ न कह सकेंगे, क्योंकि पौराणिक लोग भूगोलविद्याके शत्रु हैं। भला जब लपेट कर शिराने धरली आप किस पर सोया? और वराह किस पर पग धरके दौड़ आये? पृथिवीको तो वराहजीने

मुखमें रखली फिर दोनों किस पर खड़े होके लड़े? वहां तो और कोई ठहरनेकी जगह नहीं थी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजी की छाती पर खड़े होके लड़े होंगे? परन्तु पोपजी किस पर सोया होगा? यह बात इस प्रकारकी है जैसे "गप्पीके घर गप्पी आये बोले गप्पीजी" जब मिथ्यावादियोंके घरमें दूसरे गप्पी लोग आते हैं फिर गप्प मारनेमें क्या कमती। अब रहा हिरण्यकश्यप उसका लड़का जो प्रह्लाद था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ानेको पाठशालामें भेजता था। तब वह अध्यापकोंसे कहता था कि मेरी पट्टीमें राम राम लिख देओ। जब उसके बापने सुना उससे कहा तू हमारे शत्रुका भजन क्यों करता है? छोकड़ेने न माना। तब उसके बापने उसको बांधके पहाड़से गिराया, कूपमें डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहेका खम्भा आगीमें तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़नेसे न जलेगा प्रह्लाद पकड़नेको चला। मनमें शंका हुई जलनेसे बचूंगा वा नहीं? नारायणने उस खंभे पर छोटी २ चीटियोंकी पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ झट खंभेको जा पकड़ा। वह फट गया, उसमेंसे नृसिंह निकला और उसके बापको पकड़ पेट फाड़डाला। पश्चात् प्रह्लादको लाड़से चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा वर मांग। उसने अपने पिताकी सद्गति होनी मांगी। नृसिंहने वर दिया कि तेरे इक्कीस पुरुषे सद्गतिको गये। अब देखो! यह भी दूसरे गपोड़ेका भाई गपोड़ा है। किसी भागवत सुनने वा बांचनेवालेको पकड़के ऊपरसे गिरावे तो कोई न बचावे चकनाचूर होकर मर ही जावे। प्रह्लादको उसका पिता पढ़नेके लिये भेजता था क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खंभेसे कीड़ी चढ़ने लगी और प्रह्लाद स्पर्श करनेसे न जला इस बातको जो सच्ची माने उसको भी खंभेके साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानो वह भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला? प्रथम तीसरे जन्ममें

वैकुण्ठमें आनेका वर सनकादिकका था। क्या उसको तुम्हारा नारायण भूल गया। भागवतकी रीतिसे ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु चौथी पीढ़ीमें होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लादकी हुई भी नहीं पुनः इक्कीस पुरुषे सद्‌गतिको गये कह देना कितना प्रमाद है! और फिर वे ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिशुपाल दन्तवक्र उत्पन्न हुए तो नृसिंहका वर कहां उड़ गया? ऐसी प्रमादकी बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं विद्वान् नहीं।

और अक्रूरजीः—

रथेन वायुवेगेन ॥ [भा० १०। ३६। श्लोक ३८]
जगाम गोकुलं प्रति।[भा० १०। ३८। श्लोक २४]

अक्रूरजी कंसके भेजनेसे वायुके वेगके समान दौड़ने वाले घोड़ोंके रथ पर बैठके सूर्योदयसे चले और चार माल गोकुलमें सूर्यास्त समय पहुंचे अथवा घोड़े भागवत बनाने वालेकी परिक्रमा करते रहे होंगे? वा मार्ग भूलकर भागवत बनाने वालेके घरमें घोड़े हांकने वाले और अक्रूरजी आकर सोगये होंगे?॥

पूतनाका शरीर छः कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है। मथुरा और गोकुलके बीचमें उसको मारकर श्रीकृष्णजीने डाल दिया। ऐसा होता तो मथुरा और गोकुळ दोनों दबकर इस पोपजीका घर भी दब गया होता॥

और अजामेलकी कथा ऊटपटांग लिखी है—उसने नारदके कहनेसे अपने लड़केका नाम "नारायण" रक्खा था। मरते समय अपने पुत्रको पुकारा। बीचमें नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उसके अन्तःकरणके भावको नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्रको पुकारता है मुझको नहीं। जो ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायणके स्मरण करनेवालोंके दुःख छुड़ानेको क्यों नहीं आते। यदि यह बात सच्ची हो तो कैदी लोग नारायण २ करके क्यों नहीं

छूट जाते? ऐसा ही ज्योतिष् शास्त्रसे विरुद्ध सुमेरु पर्वतका परिमाण लिखा है और प्रियव्रत राजाके रथके चक्रकी लीकसे समुद्र हुए उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है। इत्यादि मिथ्या बातोंका गपोड़ा भागवतमें लिखा है जिसका कुछ पारावार नहीं॥

और यह भागवत बोबदेवका बनाया है जिसके भाई जयदेवने गीतगोविन्द बनाया है। देखो! उसने यह श्लोक अपने बनाये "हिमाद्रि" नामक ग्रन्थमें लिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है उस लेखके तीन पत्र हमारे पास थे। उनमेंसे एक पत्र खोगया है। उस पत्रमें श्लोकोंका जो आशय था उस आशयके हमने दो श्लोक बनाके नीचे लिखे हैं जिसको देखना हो वह हिमाद्रि ग्रन्थमें देख लेवे॥

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥१॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम्॥२॥

इसी प्रकारके नष्टपत्रमें श्लोक थे अर्थात् राजाके सचिव हिमाद्रिने बोबदेव पण्डितसे कहा कि मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवतके सम्पूर्ण सुननेका अवकाश नहीं है इसलिये तुम संक्षेपसे श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ जिसको देखके मैं श्रीमद्भागवतकी कथाको संक्षेपसे जान लूं। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेवने बनाया। उसमेंसे उस नष्टपत्रमें १० श्लोक खोगये हैं ग्यारहवें श्लोकसे लिखते हैं, ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेवके बनाये हैं वे—

बोधन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥११॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निर्वृतिः कृतात्।

नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च ॥१२॥
सुप्तघ्नं द्रौण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारिकागमः॥१३॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः॥ १४ ॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥१५॥
इति वैराज्ञो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः।
इति प्रथमः स्कन्धः॥ १ ॥

इत्यादि बारह स्कन्धोंका सूचीपत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डितने बनाकर हिमाद्रि सचिवको दिया। जो विस्तार देखना चाहे वह बोबदेवके बनाये हिमाद्रि ग्रन्थमें देख लेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणोंकी भी लीला समझनी परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरेसे बढ़कर है।

देखो! श्रीकृष्णजीका इतिहास महाभारतमें अत्युत्तम है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषोंके सदृश है। जिसमें कोई अधर्मका आचरण श्रीकृष्णजीने जन्मसे मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवालेने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदिकी चोरी और कुब्जा दासीसे समागम, परस्त्रियोंसे रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजीमें लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुनाके अन्य मत वाले श्रीकृष्णजीकी बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजीके सदृश महात्माओंकी झूठी निन्दा क्योंकर होती? शिवपुराणमें बारह ज्योतिर्लिंग और जिनमें प्रकाशका लेश भी नहीं रात्रिको विना दीप किये लिङ्ग भी अन्धेरेमें नहीं दीखते ये सब लीला

पोपजी की है ।

प्रश्न—जब वेद पढ़नेका सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृतिके पढ़नेकी बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़नेका सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रोंके लिये. क्योंकि इनको वेद पढ़ने सुननेका अधिकार नहीं है ।

उत्तर—यह बात मिथ्या है, क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुननेका अधिकार सबको है देखो गार्गी आदि स्त्रियां और छान्दोग्यमें जानश्रुति शूद्रने भी वेद "रैक्यमुनि" के पास पढ़ा था और यजुर्वेदके २६ वें अध्यायके २ रे मन्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि वेदोंके पढ़ने और सुननेका अधिकार मनुष्यमात्रको है । पुनः जो ऐसे २ मिथ्या ग्रन्थ बना लोगोंको सत्यग्रन्थोंसे विमुख जालमें फँसा अपने प्रयोजनको साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं ?

देखो ग्रहोंका चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है । "आकृष्णेन रजसा० । १ । सूर्यका मन्त्र । "इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वम्०" । २ । चन्द्र० । "अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पति०" । ३ । मङ्गल । "उद्बुध्यस्वाग्ने०" । ४ । बुध । "बृहस्पते अतियदर्यो०" । ५ । बृहस्पति । "शुक्रमन्धसः" । ६ । शुक्र । "शन्नो देवी रभिष्टय० । ७ । शनि । "कया नश्चित्र आभुव०" । ८ । राहु । और "केतुं कृण्वन्न केतवे" । ९ । इसको केतु की कण्डिका कहते हैं ॥

(आकृष्णे०) यह सूर्य और भूमिका आकर्षण ।१। दूसरा राजगुण विधायक ।२। तीसरा अग्नि ।३। और चौथा यजमान ।४। पांचवां विद्वान ।५। छठा वीर्य अन्न ।६। सातवां जल, प्राण और परमेश्वर ।७। आठवां मित्र ।८। नववां ज्ञानग्रहणका विधायक मन्त्र है ।९। ग्रहोंके वाचक नहीं । अर्थ न जाननेसे भ्रमजालमें पड़े हैं ।

प्रश्न—ग्रहोंका फल होता है वा नहीं ?

उत्तर—जैसा पोपलीलाका है वैसा नहीं, किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमाकी किरण द्वारा उष्णता शीतता अथवा ऋतुवत्कालचक्रका सम्बन्ध-

मात्रसे अपनी प्रकृतिके अनुकूल प्रतिकूल सुख दुःखके निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपलीलावाले कहते हैं सुनो "महाराज सेठजी! यजमानो तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं। अढ़ाई वर्षका शनैश्चर पगमें आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुड़ाकर परदेशमें घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहोंका दान, जप, पाठ, पूजा, कराओगे तो दुःखसे बचोगे"। इनसे कहना चाहिये कि सुनो पोपजी! तुम्हारा और ग्रहोंका क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु है?

पोपजी—

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

देखो कैसा प्रमाण है। देवताओंके आधीन सब जगत्, मन्त्रोंके आधीन सब देवता और ये मन्त्र ब्राह्मणोंके आधीन हैं। इसलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं। क्योंकि चाहें उस देवताको मन्त्रके बलसे बुला प्रसन्न कर काम सिद्ध करानेका हमारा ही अधिकार है जो हममें मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारेसे नास्तिक हमको संसारमें रहने ही न देते।

सत्यवादी—जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं वे भी तुम्हारे देवताओंके आधीन होंगे? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसोंमें कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो तो उन मन्त्रोंसे देवताओंको वश कर राजाओंके कोष उठवाकर अपने घरमें भरकर बैठके आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर २ में शनैश्चरादिके तेल आदि छायादान लेनेको मारे २ क्यों फिरते हो? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वशमें करके चाहो जितना धन लिया करो। विचारे गरीबोंको क्यों लूटते हो? तुमको दान देनेसे ग्रह प्रसन्न और न देनेसे अप्रसन्न होते हों तो हमको सूर्यादि ग्रहोंकी प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको आठवां सूर्य चन्द्र और दूसरेको तीसरा हो उन

दोनोंको ज्येष्ठ महीनेमें विना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिसपर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिसपर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिये तथा पौष मासमें दोनोंको नंगेकर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदानमें रक्खें। एकको शीत लगे दूसरेको नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्यदृष्टि वाले होते हैं। और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं। और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता जाता है? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं? जो तुममें मन्त्र-शक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओंको अपने वशमें क्यों नहीं कर लेते हो? नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वरकी आज्ञा वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुमको ग्रहदान न देवे जिसपर ग्रह है वही ग्रहदानको भोगे तो क्या चिन्ता है। जो तुम कहो कि नहीं हम हीको देनेसे वे प्रसन्न होते हैं अन्यको देनेसे नहीं, तो क्या तुमने ग्रहोंका ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया हो तो सूर्यादिको अपने घरमें बुलाके जल मरो। सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसीको दुःख और न सुख देनेकी चेष्टा कर सकते हैं, किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहोंकी मूर्त्तियां हो क्योंकि ग्रह शब्दका अर्थ भी तुममें ही घटित होता है। "ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः" जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रोंके पास नहीं पहुचते तब तक किसीको नवग्रहका स्मरण भी नहीं होता जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्त्तिमान क्रूर रूप धर उनपर जा चढ़ते हो तब विना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रासमें न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दोंसे करते फिरते हो!

पोपजी—देखो! ज्योतिष्का प्रत्यक्ष फल। आकाशमें रहनेवाले सूर्य चन्द्र और राहु केतुका संयोग रूप ग्रहणको पहिले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा ग्रहोंका भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रङ्क, सुखी, दुखी ग्रहोंही से होते हैं।

सत्यवादी—जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्याका है फलितका नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्यको छोड़के झूठी है। जैसे अनुलोम, प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्रके गणितसे स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय. अमुक देश, अमुक अवयवमें सूर्य वा चन्द्र-ग्रहण होगा, जैसे—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः ॥

यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचन है और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादिमें भी है अर्थात् जब सूर्य भूमिके मध्यमें चन्द्रमा आता है तब सूर्य ग्रहण और जब सूर्य और चन्द्रके बीचमें भूमि आती है तब चन्द्र ग्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमाकी छाया भूमि पर और भूमिकी छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होनेसे उसके सन्मुख छाया किसीकी नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीपसे देहादिकी छाया उल्टी जाती है वैसे ही ग्रहणमें समझो। जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रङ्क होते हैं वे अपने कर्मोंसे होते हैं ग्रहोंसे नहीं। बहुतसे ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़कीका विवाह ग्रहोंकी गणित [विद्या] के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष होजाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिए कर्मकी गति सच्ची और ग्रहोंकी गति सुख दुःख भोगमें कारण नहीं। भला ग्रह आकाशमें और पृथिवी भी आकाशमें बहुत दूर पर हैं इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मोंके साथ साक्षात् नहीं। कर्म्म और कर्म्मके फलका कर्त्ता भोक्ता जीव और कर्मोंके फल भोगनेहारा परमात्मा है। जो तुम ग्रहोंका फल मानो तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षणमें एक मनुष्यका जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समयमें भूगोल पर दूसरेका जन्म होता है वा नहीं? जो कहो नहीं तो झूठ और जो कहो होता है तो एक चक्रवर्तीके

सदृश भूगोलमें दूसरा चक्रवर्ती राजा क्यों नहीं होता ? हां इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरनेकी है तो कोई मान भी लेवे।

प्रश्न—क्या गरुड़पुराण भी झूठा है ?

उत्तर—हां असत्य है !

प्रश्न—फिर मरे हुए जीवकी क्या गति होती है ?

उत्तर—जैसे उसके कर्म हैं।

प्रश्न—जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जलके पर्वतके तुल्य शरीरवाले जीवको पकड़कर ले जाते हैं पाप पुण्यके अनुसार नरक स्वर्गमें डालते हैं। उसके लिए दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण गोदानादि वैतरणी नदी तरनेके लिये करते हैं। ये सब बातें झूठ क्योंकर हो सकती हैं।

उत्तर—ये सब बातें पोपलीलाके गपोड़े हैं। जो अन्यत्रके जीव वहां जाते हैं उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोकके जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वतके समान यमगणोंके शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं ? और मरने वाले जीवको लेनेमें छोटे द्वारमें उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गलीमें क्यों नहीं रुक जाते। जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो प्रथम पर्वतवत् शरीरके बड़े २ हाड़ पोपजी विना अपने घरके कहां धरेंगे ? जब जङ्गलमें आगी लगती है तब एक दम पिपीलिकादि जीवोंके शरीर छूटते हैं। उनकों पकड़नेके लिये असंख्य यमके गण आवें तो वहां अन्धकार होजाना चाहिये और जब आपसमें जीवोंको पकड़नेको दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खाजायंगे तो जैसे पहाड़के बड़े २ शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े २ अवयव गरुड़पुराणके बांचने सुननेवालोंके आंगनमें गिर पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे वा घरका द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो वे कैसे निकल

और चल सकेंगे ? श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवोंको तो नहीं पहुंचता किन्तु मृतकोंके प्रतिनिधि पोपजीके घर, उदर और हाथमें पहुंचता है। जो वैतरणीके लिए गोदान लेते हैं वह तो पोपजीके घरमें अथवा कसाई आदिके घरमें पहुंचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किसका पूंछ पकड़ कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया फिर पूंछको कैसे पकड़ेगा ? यहां एक दृष्टान्त इस बातमें उपयुक्त है कि—

एक जाट था। उसके घरमें एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी। दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी २ पोपजीके मुखमें भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाटका बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गायका संकल्प करा लूंगा। कुछ दिनोंमें दैवयोगसे उसके बापका मरण समय आया। जीभ बन्द होगई और खाटसे भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़नेका सयम आ पहुंचा। उस समय जाटके इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजीने पुकारा कि यजमान! अब तू इसके हाथसे गोदान करा। जाट १०) रुपया निकाल पिताके हाथमें रखकर बोला पढ़ो संकल्प। पोपजी बोला वाह २ क्या बाप बारंबार मरता है ? इस समय तो साक्षात् गायको लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौका दान कराना चाहिये।

जाटजी—हमारे पास तो एक ही गाय है उसके विना हमारे लड़केवालोंका निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूंगा। लो २०) रुपयेका सङ्कल्प पढ़ देओ और इन रुपयोंसे दूसरी दुधार गाय ले लेना।

पोपजी—वाहजी वाह! तुम अपने बापसे भी गायको अधिक समझते हो ? क्या अपने बापको वैतरणी नदीमें डुबाकर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुए ? तब तो पोपजीकी ओर सब कुटुम्बी होगये क्योंकि उन सबको पहिले ही पोपजीने बहका रक्खा

था और उस समय भी इशारा कर दिया। सबने मिलकर हठसे उसी गायका दान उसी पोपजीको दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मरगया और पोपजी बच्छासहित गाय और दोहनेकी बटलोईको ले अपने घरमें गो बांध बटलोई धर पुनः जाटके घर आया और मृतकके साथ श्मशानभूमिमें जाकर दाहकर्म्म कराया। वहां भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई पश्चात् दशगात्र सपिंडी कराने आदिमें भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणोंने भी लूटा और भुकड़ोंने भी बहुतसा माल पेटमें भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाटने जिस किसीके घरसे दूध मांग मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजीके घर पहुंचा। देखे तो गाय दुह बटलोई भर, पोपजीकी उठनेकी तैयारी थी। इतने ही में जाटजी पहुंचे। उसको देख पोपजी बोला आइये! यजमान बैठिये!

जाटजी—तुम भी पुरोहितजी इधर आओ।

पोपजी—अच्छा दूध धर लाऊं।

जाटजी—नहीं २ दूधकी बटलोई इधर लाओ। पोपजी बिचारे जा बैठे और बटलोई सामने धरदी।

जाटजी—तुम बड़े भूठे हो।

पोपजी—क्या भूठ किया?

जाटजी—कहो तुमने गाय किसलिये ली थी?

पोपजी—तुम्हारे पिताके वैतरणी नदी तरनेके लिये।

जाटजी अच्छा तो तुमने वैतरणी नदीके किनारे पर गाय क्यों नहीं पहुंचाई? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे मा बापने वैतरणीमें कितने गोते खाये होंगे?

पोपजी—नहीं २ वहां इस दानके पुण्यके प्रभावसे दूसरी गाय बनकर उतार दिया होगा।

जाटजी—वैतरणी नदी यहांसे कितनी दूर और किधरकी ओर है?

पोपजी—अनुमानसे कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है। और दक्षिण नैऋत्य दिशामें वैतरणी नदी है।

जाटजी—इतनी दूरसे तुम्हारी चिट्ठी वा तारका समाचार गया हो उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्यकी गाय बन गई अमुकके पिताको पार उतार दिया दिखलाओ।

पोपजी—हमारे पास गरुड़पुराणके लेखके विना डाक वा तार-वर्की दूसरा कोई नहीं।

जाटजी—इस गरुड़पुराणको हम सच्चा कैसे मानें?

पोपजी—जैसे सब मानते हैं।

जाटजी—यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओंने तुम्हारे जीविकाके लिये बनाया है क्योंकि पिताको बिना अपने पुत्रोंके कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी नदीके किनारे गाय पहुंचा दूंगा और उनको पार उतार पुनः गायको घरमें ले आ दूधको मैं और मेरे लड़केवाले पिया करेंगे, लाओ! दूधकी भरी हुई बटलोई, गाय, बछड़ा लेकर जाटजी अपने घरको चला।

पोपजी—तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

जाटजी—चुप रहो नहीं तो तेरह दिन लों दूधके विना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा। तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुंचे।

जब ऐसे ही जाटजीकेसे पुरुष हों तो पोपलीला संसारमें न चले। जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्रके पिंडोंसे दश अंग सपिण्डी करनेसे शरीरके साथ जीवका मेल होके अंगुष्ठमात्र शरीर बनके पश्चात् यमलोकको जाता है तो मरती समय यमदूतोंका आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाहके पश्चात् आना चाहिये जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री सन्तान और इष्ट मित्रोंके मोहसे क्यों नहीं लौट आता है?

प्रश्न—स्वर्गमें कुछ भी नहीं मिलता जो दान किया जाता है वही वहां मिलता है। इसलिये सब दान करने चाहियें।

उत्तर—उस तुम्हारे स्वर्गसे यही लोक अच्छा जिसमें धर्मशाला हैं, लोग दान देते हैं, इष्ट मित्र और जातिमें खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे २ वस्त्र मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्गमें कुछ भी नहीं मिलता ऐसे निर्दय, कृपण, कंगले स्वर्गमें पोपजी जाकर खराब होवें वहां भले २ मनुष्योंका क्या काम।

प्रश्न—जब तुम्हारे कहनेसे यमलोक और यम नहीं हैं तो मरकर जीव कहां जाता? और इनका न्याय कौन करता है?

उत्तर—तुम्हारे गरुड़पुराणका कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु जो वेदोक्त है कि:—

यमेन, वायुना। सत्यराजन् [य० २० । ४]

इत्यादि वेदवचनोंसे निश्चय है कि "यम" नाम वायुका है। शरीर छोड़ वायुके साथ अन्तरिक्षमें जीव रहते हैं और जो सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा "धर्म्मराज" है वही सबका न्यायकर्त्ता है।

प्रश्न—तुम्हारे कहनेसे गोदानादि दान किसीको न देना और न कुछ दान पुण्य करना ऐसा सिद्ध होता है।

उतर—यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि सुपात्रोंको, परोपकारियोंको परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्रादि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रोंको कभी न देना चाहिये।

प्रश्न—कुपात्र और सुपात्रका लक्षण क्या है?

उत्तर—जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करनेवाले, लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान, कुसंगी, आलसी। जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठतासे मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा करना, शाप और गाली प्रदानादि देना, अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उसका शत्रु बन जाना,

ऊपरसे साधुका वेश बना लोगोंको बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सबको फुसला फुसला कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भङ्गादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुतसा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध और झूठ मार्गमें अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसेही अपने चेलोंको केवल अपनी ही सेवा करनेका उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषोंकी सेवा करनेका नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्तिके विरोधी, जगत्के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्टमित्रोंमें अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रोंके लक्षण हैं। और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्याके पढ़ने पढ़ानेहारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्मकी निरन्तर उन्नति करनेहारा, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुतिमें हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वरके गुण कर्म स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे न्यायकी रीतियुक्त पक्षपातरहित सत्योपदेश और सत्यशास्त्रोंके पढ़ने पढ़ानेहारेके परीक्षक, किसीकी लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नोंके यथार्थ समाधानकर्त्ता, अपने आत्माके तुल्य अन्यका भी सुख दुःख, हानि, लाभ समझने वाले अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृतके समान अपमान और विषके समान मानको समझनेवाले सन्तोषी, जो कोई प्रीतिसे जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्कालमें मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहां से झट लौट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषोंके साथ मित्रता दुःखियों पर करुणा, पुण्यात्माओंसे आनन्द और पापियोंसे "उपेक्षा" अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या द्वेषरहित, गंभीराशय, सत्पुरुष धर्मसे युक्त और सर्वथा दुष्टाचारसे रहित, अपने तन मन

धनको परोपकार करनेमें लगानेवाले, पराये सुखके लिये अपने प्राणोंके भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्कालमें अन्न, जल, वस्त्र और औषध पथ्य स्थानके अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

प्रश्न—दाता कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—तीन प्रकारके—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम दाता उसको कहते हैं जो देश काल और पात्रको जानकर सत्यविद्या धर्मकी उन्नति रूप परोपकारार्थ देवे। मध्यम वह है जो कीर्त्ति वा स्वार्थके लिये दान करे। नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाट आदिको देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि भी कुचेष्टा करे, पात्र कुपात्रका कुछ भी भेद न जाने किन्तु "सब अन्न बारह पसेरी" बेचनेवालोंके समान विवाद लड़ाई, दूसरे धर्मात्माको दुःख देकर सुखी होनेके लिये दिया करे वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओंका सत्कार करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको मध्यम और जो अन्धाधुन्ध परीक्षा रहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है।

प्रश्न—दानके फल यहां होते हैं वा परलोकमें ?

उत्तर—सर्वत्र होते हैं।

प्रश्न—स्वयं होते हैं वा कोई फल देनेवाला है ?

उत्तर—फल देनेवाला ईश्वर है, जैसे कोई चोर डाकू स्वयं बंदीघरमें जाना नहीं चाहता, राजा उसको अवश्य भेजता है। धर्मात्माओंके सुखकी रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदिसे बचाकर उनको सुखमें रखता है वैसा ही परमात्मा सबको पाप पुण्यके दुःख और सुखरूप फलोंको यथावत् भुगाता है।

प्रश्न—जो ये गरुड़पुराणादि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेदकी पुष्टि करनेवाले हैं वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, किन्तु वेदके विरोधी और उलटे चलते हैं। तथा तंत्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एकका मित्र सब संसारका शत्रु हो, वैसा ही पुराण और तंत्रका माननेवाला पुरुष होता है क्योंकि एक दूसरेसे विरोध करानेवाले ये ग्रन्थ हैं। इनका मानना किसी मनुष्यका काम नहीं किन्तु इनको मानना पशुता है। देखो! शिवपुराणमें त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराणमें रवि, चन्द्रखण्डमें सोमग्रह वाले, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतुके वैष्णव एकादशी, वामनकी द्वादशी, नृसिंह वा अनन्तकी चतुर्दशी, चन्द्रमाकी पूर्णमासी, दिक्पालोंकी दशमी, दुर्गाकी नौमी, वसुओंकी अष्टमी मुनियोंकी सप्तमी कार्त्तिक स्वामीकी षष्ठी, नागकी पंचमी, गणेशकी चतुर्थी, गौरीकी तृतीया, अश्विनीकुमारकीद्वितीया, आद्यादेवीकी प्रतिपदा और पितरोंकी अमावास्या पुराणरीतिसे ये दिन उपवास करनेके हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियोंमें अन्नपान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोपजीके चेलोंको चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथिमें भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे। अब "निर्णयसिन्धु" "धर्मसिन्धु" "व्रतार्क" आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगोंके बनाये हैं उन्हींमें एक २ व्रतकी ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशीको शैव, दशमीविद्धा कोई द्वादशीमें एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरनेमें भी वाद विवाद ही करते हैं जिसने एकादशीका व्रत चलाया है उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं वे कहते हैंः—

एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति।

जितने पाप हैं वे सब एकादशीके दिन अन्नमें बसते हैं। इस पोपजीसे पूछना चाहिये कि किसके पाप बसते हैं? तेरे वा तेरे पिता आदिके? जो सबके सब पाप एकादशीमें जा बसें तो एकादशीके

दिन किसीको दुःख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदिसे दुःख होता है दुःख पापका फल है। इससे भूखे मरना पाप है इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है जिसकी कथा बांचके बहुत ठगे जाते हैं। उसमें एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोकमें एक वेश्या थी। उसने कुछ अपराध किया। उसको शाप हुआ। वह पृथिवीपर गिर उसने स्तुति की कि मैं पुनः स्वर्गमें क्योंकर आसकूंगी? उसने कहा जब कभी एकादशीके व्रतका फल तुझे कोई देगा तभी तू स्वर्गमें आजायगी। वह विमान सहित किसी नगरमें गिर पड़ी। वहांके राजाने उससे पूछा कि तू कौन है? तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुझको एकादशीका फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्गको जा सकती हूं। राजाने नगरमें खोज कराया। कोई भी एकादशीका व्रत करनेवाला न मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री पुरुषमें लड़ाई हुई थी। क्रोधसे स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोगसे उस दिन एकादशी थी। उसने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसे राजाके सिपाहियोंसे कहा। तब तो वे उसको राजाके सामने ले आये। उससे राजाने कहा कि तू इस विमानको छू। उसने छूआ। देखो! उसी समय विमान ऊपरको उड़ गया। यह तो विना जाने एकादशीके व्रतका फल है जो जानके करे तो उसके फलका क्या पारावार है!!! वाहरे आंखके अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पानकी बीड़ी, जो कि स्वर्गमें नहीं होती, भेजना चाहते हैं। सब एकादशी वाले अपना फल देदो। जो एक पानबीड़ा ऊपरको चला जायगा तो पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहां भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगोंको इस भूखे मरने-रूप आपत्कालसे बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियोंका नाम पृथक् २ रक्खा है। किसीका "धनदा" किसीका "कामदा" किसीका "पुत्रदा" किसीका "निर्जला"। बहुतसे दारिद्र, बहुतसे कामी और बहुतसे

निर्बसी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षमें कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत करने वालोंको महादुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बंगालेमें सब विधवा स्त्रियोंकी एकादशीके दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाईको लिखते समय कुछ भी मनमें दया न आई नहीं तो निर्जलाका नाम सजला और पौष महीनेकी शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोपको दयासे क्या काम? "कोई जीवो वा मरो पोपजीका पेट पूरा भरो"। भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषोंको तो कभी उपवास न करना चाहिये। परन्तु किसीको करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूखमें नहीं खाते और विना भूखके भोजन करते हैं दोनों रोगसागरमें गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियोंके कहने लिखनेका प्रमाण कोई भी न करे॥

अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तरके चरित्रोंका वर्त्तमान कहते हैं। मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं। ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०१, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ६ शाखा है। इनमेंसे थोड़ी सी शाखा मिलती हैं शेष लोप होगई हैं। उन्हींमें मूर्त्तिपूजा और तीर्थोंका प्रमाण होगा। जो न होता तो पुराणोंमें कहांसे आता? जब कार्य देखकर कारणका अनुमान होता है तब पुराणोंको देखकर मूर्त्तिपूजामें क्या शंका है?

उत्तर—जैसे शाखा जिस वृक्षकी होती हैं उसके सदृश हुआ करती हैं विरुद्ध नहीं। चाहें शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उनमें विरोध नहीं हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं जब इनमें पाषाणादि मूर्त्ति और जल स्थल विशेष तीर्थोंका प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओंमें भी नहीं था। और चार वेद पूर्ण मिलते हैं उनसे

विरुद्ध शाखा कभी नहीं हो सकतीं और जो विरुद्ध हैं उनको शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। जब यह बात है तो पुराण वेदोंकी शाखा नहीं किन्तु सम्प्रदायी लोगोंने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रक्खे हैं। वेदोंको तुम परमेश्वरकृत मानते हो तो "आश्वलायनादि" ऋषि मुनियोंके नामसे प्रसिद्ध ग्रंथोंको वेद क्यों मानते हो? जैसे डाली और पत्तोंके देखनेसे पीपल, बड़ और आम्र आदि वृक्षोंकी पहिचान होती है वैसे ही ऋषि मुनियोंके किये वेदांग, चारों ब्राह्मण, अङ्ग उपांग और उपवेद आदिसे वेदार्थ पहिचाना जाता है। इसीलिये इन ग्रन्थोंको शाखा माना है। जो वेदोंसे विरुद्ध है उसका प्रमाण और अनुकूलका अप्रमाण नहीं हो सकता। जो तुम अदृष्ट शाखाओंमें मूर्त्ति आदिके प्रमाणकी कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्तशाखाओंमें वर्णाश्रम व्यवस्था उलटी अर्थात् अन्त्यज और शूद्रका नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादिका नाम शूद्र अन्त्यजादि, अगमनीयागमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे जो कि हमने दिया अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओंमें जैसा ब्राह्मणादिका नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादिका नाम शूद्रादि लिखा वैसा ही अदृष्ट शाखाओंमें भी मानना चाहिये नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे। भला जैमिनी, व्यास और पतञ्जलिके समय पर्यन्त तो सब शाखा विद्यमान थीं वा नहीं? यदि नहीं थीं तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे और जो कहो कि नहीं थे तो फिर शाखाओंके होनेका क्या प्रमाण है? देखो जैमिनिके मीमांसामें सब कर्मकाण्ड, पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्रमें सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनिने शारीरिक सूत्रोंमें सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है। उनमें पाषाणादि मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थोंका नाम निशान भी नहीं लिखा। लिखें कहां से? जो कहीं वेदोंमें होता तो लिखे विना कभी नहीं छोड़ते इसलिये लुप्त शाखाओंमें भी इन मूर्त्तिपूजादिका प्रमाण नहीं था। ये सब शाखा

वेद नहीं हैं क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदोंकी प्रतीक धरके व्याख्या और संसारी जनोंके इतिहासादि लिखे हैं, इसलिये वेदमें कभी नहीं होसकते। वेदोंमें तो केवल मनुष्योंको विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्यका नाममात्र भी नहीं। इसलिये मूर्त्तिपूजाका सर्वथा खंडन है। देखो! मूर्त्तिपूजासे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण नारायण और शिवादिकी बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्मिणी लक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणियां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्त्तियां मन्दिर आदिमें रखके पूजारी लोग उनके नामसे भीख मांगते हैं अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं कि आओ महाराज! महाराजाजी सेठ साहूकारो! दर्शन कीजिये, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेट चढ़ाइये, महाराज सीताराम, कृष्ण रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण और महादेव पार्वतीजीको तीन दिनसे बालभोग वा राजभोग अर्थात् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है सीता आदिको नथुनी आदि राणीजी वा सेठानीजी बनवा दीजिये, अन्न आदि भेजो तो रामकृष्णादिको भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिरके कोने सब गिर पड़े हैं। ऊपरसे चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा ले गये कुछ ऊंदरों [चूहों] ने काट कूट डाले देखिये! एक दिन ऊंदरोंने ऐसा अनर्थ किया कि इनकी आंख भी निकालके भाग गये। अब हम चांदीकी आंख न बना सके इसलिये कौड़ीकी लगादी है। रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं, सीताराम राधाकृष्ण नाच रहे हैं राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्दमें बैठे हैं! मन्दिरमें सीतारामादि खड़े और पूजारी वा महन्तजी आसन अथवा, गद्दी पर तकिया लगाये बैठे हैं, महागरमीमें भी ताला लगा भीतर बंद कर देते हैं और आप सुन्दर हवामें पलंग बिछाकर सोते हैं। बहुतसे पूजारी अपने नारायणको डब्बीमें बन्दकर ऊपरसे कपड़े आदि बांध गलेमें लटका लेते हैं जैसे कि वानरी अपने

बच्चेको गलेमें लटका लेती हैं वैसे पूजारियोंके गलेमें भी लटकते हैं। जब कोई मूर्त्तिको तोड़ता है तब हाय २ कर छाती पीट बकते हैं कि सीतारामजी राधाकृष्णजी और शिवपार्वतीको दुष्टोंने तोड़ डाला! अब दूसरी मूर्त्ति मंगवा कर जो कि अच्छे शिल्पीने संगमरमरकी बनाई हो स्थापन कर पूजनी चाहिये। नारायणको घीके विना भोग नहीं लगता। बहुत नहीं तो थोड़ासा अवश्य भेज देना। इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीलाके अन्तमें सीताराम वा राधाकृष्णसे भीख मंगवाते हैं। जहां मेला ठेला होता है वहां छोकड़े पर मुकुट धर कन्हैया बना मार्गमें बैठाकर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातोंको आप लोग विचार लीजिये कि कितने बड़े शोककी बात है भला कहो तो सीतारामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है? इससे बड़ी अपने माननीय पुरुषोंकी निन्दा होती है। भला जिस समय ये विद्यमान थे उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वतीको सड़क पर वा किसी मकानमें खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इनका दर्शन करो और कुछ भेट पूजा धरो तो सीतारामादि इन मूर्खोंके कहनेसे ऐसा काम कभी न करते और न करने देते, जो कोई ऐसा उपहास उनका करता है उसको विना दंड दिये कभी छोड़ते? हां, जब उन्होंसे दंड न पाया तो इनके कर्मोंने पूजारियोंको बहुतसी मूर्त्तिविरोधियोंसे प्रसादी दिलादी और अब भी मिलती है और जबतक इस कुकर्मको न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी। इसमें क्या संदेह है कि जो आर्य्यावर्त्तकी प्रतिदिन महाहानि पाषाणादि मूर्त्तिपूजकोंका पराजय इन्हीं कर्मोंसे होता है क्योंकि पापका फल दुःख है इन्हीं पाषाणादि मूर्त्तियोंके विश्वाससे बहुतसी हानि होगई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक २ होती जायगी। इनमेंसे वाममार्गी बड़ेभारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारणको—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः।

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

इत्यादि मंत्रोंका उपदेश कर देते हैं और बंगालेमें विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं जैसा—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं ॥ [शावरतं० बं० प्रकी० प्र० ४४]

इत्यादि और धनाढ्योंका पूर्णाभिषेक करते हैं ऐसे ही दश महाविद्याओंके मंत्रः—

ह्रां ह्रीं ह्रुं बगलामुख्यै फट् स्वाहा ॥[शा. प्रकी. प्र. ४१]

कहीं २।

ह्रुं फट् स्वाहा ॥ [कामरत्न तंत्र बीजमंत्र ४]

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्रसे तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रियासे सब कुछ करते हैं। जब किसीको मारनेका प्रयोग करते हैं तब इधर करानेवालेसे धनलेके आटे वा मिट्टीका पूतला जिसको मारना चाहते हैं उसका बना लेते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठमें छुरे प्रवेश कर देते हैं आंख, हाथ, पगमें कीलें ठोकते हैं। उसके ऊपर भैरव वा दुर्गाकी मूर्त्ति बना हाथमें त्रिशूल दे उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदिका होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेजके उसको विष आदिसे मारनेका उपाय करते हैं। जो अपने पुरश्चरणके बीचमें उसको मारडाला तो अपनेको भैरव देवीकी सिद्धि वाले बतलाते हैं। "भैरवो भूतनाथश्च" इत्यादिका पाठ करते हैं॥

मारय २, उच्चाटय २, विद्वेषय २, छिन्धि २, भिन्धि २, वशीकुरु २, खादय २, भक्षय २, त्रोटय २, नाशय २, मम शत्रून् वशीकुरु २, हुं फट्

स्वाहा ॥ [कामरत्न तंत्र उच्चाटनप्र० मं० ५-७]

इत्यादि मन्त्र जपने, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते पीते, भृकुटीके बीचमें सिन्दूर रेखा देते, कभी २ काली आदिके लिये किसी आदमीको पकड़ मार होम कर कुछ २ उसका मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्रमें जावे मद्य मांस न पीवे न खावे तो उसको मार होम कर देते हैं। उनमेंसे जो अघोरी होता है वह मृतमनुष्यका भी मांस खाता है। अजरी बजरी करनेवाले विष्ठा मूत्र भी खाते पीते हैं।

एक चोलीमार्ग और दूसरे बीजमार्गी भी होते हैं। चोली मार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमिमें एक स्थान बनाते हैं। वहां सबकी स्त्रियां पुरुप, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्रीको नंगी कर उसके गुप्त इन्द्रियकी पूजा सब पुरुष करते हैं और उसका नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुषको नंगा कर उसके गुप्त इन्द्रियकी पूजा सब स्त्रियां करती हैं। जब मद्य पी २ के उन्मत हो जाते हैं तब सब स्त्रियोंके छातीके वस्त्र जिसको चोली कहते हैं एक बड़ी मट्टीकी नांदमें सब वस्त्र मिलाकर रखके एक एक पुरुष उसमें हाथ डालके जिसके हाथमें जिसका वस्त्र आवे वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधू क्यों न हो उस समयके लिये वह उसकी स्त्री होजाती है। आपसमें कुकर्म करने और बहुत नशा चढ़नेसे जूते आदिसे लड़ते भिड़ते हैं। जब प्रातःकाल कुछ अन्धेरे अपने अपने घरको चले जाते हैं तब माता २, कन्या २, बहिन २, और पुत्रवधू २ होजाती हैं। और बीजमार्गी स्त्री पुरुषके समागम कर जलमें वीर्य डाल मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मोंको मुक्तिके साधन मानते हैं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं।

प्रश्न—शैव मत वाले तो अच्छे होते हैं ?

उत्तर—अच्छे कहांसे होते हैं! "जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ" जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादिसे उनका धन हरते हैं वैसे शैव भी "ओं

नमः शिवाय" इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रोंका उपदेश करते, रुद्राक्ष भस्म धारण करते, मट्टीके और पाषाणादिके लिङ्ग बनाकर पूजते हैं और हर हर बं बं और बकरेके शब्दके समान बड़ बड़ बड़ मुखसे शब्द करते हैं। उसका कारण यह कहते हैं कि ताली बजाने और बं बं शब्द बोलनेसे पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है। क्योंकि जब भस्मासुरके आगेसे महादेव भागे थे तब बं बं और ठट्ठेकी तालियां बजी थीं और गाल बजानेसे पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वतीके पिता दक्ष प्रजापतिका शिर काट आगीमें डाल उसके धड़ पर बकरेका शिर लगा दिया था। उसी अनुकरणको बकरेके शब्दके तुल्य गाल बजाना मानते हैं। शिवरात्री प्रदोषका व्रत करते हैं इत्यादिसे मुक्ति मानते हैं इसलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शैव भी। इनमें विशेष कर कनफटे, नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई २ "दोनों घोड़ों पर चढ़ते हैं" अर्थात् वाम और शैव दोनों मतोंको मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं उनका—

अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

यह तन्त्रका श्लोक है। भीतर शाक्त अर्थात् वाममार्गी, बाहर शैव अर्थात् रुद्राक्ष भस्म धारण करते हैं और सभामें वैष्णव कहते हैं कि हम विष्णुके उपासक हैं ऐसे नाना प्रकारके रूप धारण करके वाममार्गी लोग पृथिवीमें विचरते हैं।

प्रश्न—वैष्णव तो अच्छे हैं ?

उत्तर—क्या धूल अच्छे हैं। जैसे वे वैसे ये हैं। देखलो वैष्णवोंकी लीला अपनेको विष्णुका दास मानते हैं। उनमेंसे श्रीवैष्णव जो कि चक्राङ्कित होते हैं वे अपनेको सर्वोपरि मानते हैं सो कुछ भी नहीं हैं!

प्रश्न—क्यों ! सब कुछ नहीं ? सब कुछ हैं देखो ! ललाटमें नारायणके चरणारविन्दके सदृश तिलक और बीचमें पीली रेखा श्री होती है, इसलिये हम श्रीवैष्णव कहाते हैं। एक नारायणको छोड़ दूसरे किसीको नहीं मानते । महादेवके लिङ्गका दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे ललाटमें श्री विराजमान है वह लज्जित होती है। आलमन्दारादि स्तोत्रोंके पाठ करते हैं। नारायणकी मन्त्रपूर्वक पूजा करते हैं। मांस नहीं खाते न मद्य पीते हैं। फिर अच्छे क्यों नहीं ?

उत्तर—इस तिलकको हरिपदाकृति, इस पीली रेखाको श्री मानना व्यर्थ है क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथकी कारीगरी और ललाटका चित्र है। जैसा हाथीका ललाट चित्र विचित्र करते हैं। तुम्हारे ललाटमें विष्णुके पदका चिह्न कहांसे आया ? क्या कोई वैकुण्ठमें जाकर विष्णु के पगका चिह्न ललाटमें कर आया ?

विवेकी—और श्री जड़ है वा चेतन ?

वैष्णव—चेतन है।

विवेकी—तो यह रेखा जड़ होनेसे श्री नहीं है। हम पूछते हैं कि श्री बनाई हुई है वा विना बनाई ? जो विना बनाई है तो यह श्री नहीं क्योंकि इसको तो तुम नित्य अपने हाथसे बनाते हो फिर श्री नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ललाटमें श्री हो तो कितने ही वैष्णवका बुरा मुख अर्थात् शोभा रहित क्यों दीखता है ? ललाटमें श्री और घर २ भीख मांगते और सदावर्त्त लेकर पेट भरते क्यों फिरते हो ? यह बात खोड़ी और निर्लज्जोंकी है कि कपालमें श्री और महादरिद्रोंके काम हों ॥

इनमें एक "परिकाल" नामक वैष्णव भक्त था। वह चोरी डाका मार, छल कपट कर, पराया धन हर वैष्णवोंके पास धर प्रसन्न होता था। एक समय उसको चोरीमें पदार्थ कोई नहीं मिला कि जिसको लूटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायणने समझा हमारा भक्त दुःख पाता है। सेठजीका स्वरूप धर अंगूठी आदि आभूषण पहिन रथमें

सेठके सामने आये। तब तो परिकाल रथके पास आया। सेठसे कहा सब वस्तु शीघ्र उतार दो नहीं तो मार डालूंगा। उतारते २ अंगूठी उतारनेमें देर लगी। परिकालने नारायणकी अंगुली काट अंगूठी ले ली। नारायण बड़े प्रसन्न हो चतुर्भुज शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है क्योंकि सब धन मार लूट चोरी कर वैष्णवोंकी सेवा करता है, इसलिये तू धन्य है। फिर उसने जाकर वैष्णवोंके पास सब गहने धर दिये। एक समय परिकालको कोई साहूकार नौकर कर जहाजमें बिठाके देशान्तरमें लेगया। वहांसे जहाजमें सुपारी भरी। परिकालने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनियेसे कहा यह मेरी आधी सुपारी जहाजमें धरदो और लिखदो कि जहाजमें आधी सुपारी परिकालकी है। बनियेने कहा कि चाहे तुम हज़ार सुपारी लेलेना परिकालने कहा नहीं हम अधर्मी नहीं हैं जो हम झूठ मूठ लें। हमको तो आधी चाहिये। बनियांने, जो विचारा भोला भाला था. लिख दिया। जब अपने देशमें बन्दर पर जहाज आया और सुपारी उतारनेकी तैयारी हुई तब परिकालने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो। बनियां वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा मेरी तो जहाजमें आधी सुपारी है, आधा बांट लूंगा। राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परीकालने बनियेका लेख दिखलाया कि इसने आधी सुपारी देनी लिखी है! बनियां बहुतसा कहता रहा परन्तु उसने न माना आधी सुपारी लेकर वैष्णवोंके अर्पण करदी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अबतक उस डाकू चोर परिकालकी मूर्ति मन्दिरोंमें रखते हैं। यह कथा भक्तमालमें लिखी है। बुद्धिमान देखलें कि वैष्णव, उनके सेवक और नारायण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं ? यद्यपि मतमतान्तरोंमें कोई थोड़ा अच्छा भी होता है तथापि उस मतमें रह कर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता। अब जैसा वैष्णवोंमें फूट टूट भिन्न २ तिलक कण्ठी धारण करते हैं, रामानन्दी बगलमें गोपीचन्दन बीचमें लाल, नीमावत दोनों पतली रेखा बीचमें काला बिन्दु,

माधव काली रेखा और गौड़ बंगाली कटारीके तुल्य और रामप्रसादवाले दोनों चांदला रेखाके बीचमें एक सफेद गोल टीका इत्यादि इनका कथन विलक्षण २ है। रामानन्दी नारायणके हृदयमें लाल रेखाको लक्ष्मीका चिह्न और गोसाईं श्रीकृष्णचन्द्रजीके हृदयमें राधाजी विराजमान हैं इत्यादि कथन करते हैं।

एक कथा भक्तमालमें लिखी है। कोई एक मनुष्य वृक्षके नीचे सोता था। सोता २ ही मरगया। ऊपरसे काकने विष्ठा करदी। वह ललाट पर तिलकाकार होगई थी। वहां यमके दूत उसको लेने आये। इतनेमें विष्णुके दूत भी पहुंच गये। दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामीकी आज्ञा है हम यमलोकमें लेजायंगे। विष्णुके दूतोंने कहा कि हमारे स्वामीकी आज्ञा है वैकुण्ठमें ले जानेकी। देखो इनके ललाटमें वैष्णवका तिलक है। तुम कैसे लेजाओगे। तब तो यमके दूत चुप होकर चले गये। विष्णुके दूत सुखसे उसको वैकुण्ठमें लेगये। नारायणने उसको वैकुण्ठमें रक्खा। देखो जब अकस्मात् तिलक बन जानेका ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथसे तिलक करते हैं वे नरकसे छूट वैकुण्ठमें जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! हम पूछते हैं कि जब छोटेसे तिलकके करनेसे वैकुण्ठमें जावें तो सब मुखके ऊपर लेपन करने वा काला मुख करने वा शरीर पर लेपन करनेसे वैकुण्ठसे भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं। अब इनमें बहुतसे खाखी लकड़ेकी लंगोटी लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्धका वेष करलेते हैं! बगुलेके समान ध्यानावस्थित होते हैं, गांजा, भांग, चरसके दम लगाते, लाल नेत्र रखते; सब से चुटकी २ अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते, गृहस्थोंके लड़कोंको बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्याको पढ़ना हो तो उसको पढ़ने नहीं देते किन्तु कहते हैं कि—

पठितव्यं तदपि मर्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्।

सन्तोंको विद्या पढ़नेसे क्या काम क्योंकि विद्या पढ़नेवाले भी मरजाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना ? साधुओंको चार धाम फिर आना, सन्तोंकी सेवा करनी, रामजीका भजन करना।

जो किसीने मूर्ख अविद्याकी मूर्त्ति न देखी हो तो खाखीजीका दर्शन कर आवें। उनके पास जो कोई जाता है उनको बच्चा बच्ची कहते हैं चाहें वे खाखीजीके बाप माके समान क्यों न हों ? जैसे खाखीजी हैं वैसे ही रूखड़, सूखड़, गोदड़िये और जमातवाले सुतरेसाई और अकाली, कनफटे, जोगी, औघड़ आदि सब एकसे हैं। एक खाखीका चेला "श्रीगणेशाय नमः" घोखता घोखता कुवे पर जल भरनेको गया। वहां पंडित बैठा था उसको "स्रीगनेसाजनमें" घोखते देखकर बोला अरे साधू ! अशुद्ध घोखता है "श्रीगणेशाय नमः" ऐसा घोख। उसने झट लोटा भर गुरुजीके पास जा कहा कि एक बम्मन मेरे घोखनेको असुद्ध कहता है ऐसा सुन कर झट खाखीजी उठा कूप पर गया और पण्डितसे कहा तू मेरे चेलेको बहकाता है ? तूं गुरुकी लण्डी क्या पढ़ा है ? देख तूं एक प्रकारका पाठ जानता है, हम तीन प्रकारका जानते हैं। "स्रीगनेसाजन्नमे" "स्रीगनेसायन्नमें" "श्रीगनेसायनमें"।

पण्डित—सुनो साधूजी ! विद्याकी बात बहुत कठिन है, बिना पढ़े नहीं आती।

खाखी—चल वे, सब विद्वानको हमने रगड़ मारे जो भांगमें घोट एक दम सब उड़ा दिये। सन्तोंका घर बड़ा है। तू बाबूड़ा क्या जाने।

पण्डित—देखो जो तुमने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते ? सब प्रकारका तुमको ज्ञान होता।

खाखी—अबे तू हमारा गुरू बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते।

पण्डित—सुनो कहां से ? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश सुनने समझनेके लिये विद्या चाहिये।

खाखी—जो सब शास्त्र पढ़े सन्तोंको न माने तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा।

पण्डित—हां हम सन्तोंकी सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारेसे दुर्ष्टोंकी नहीं करते क्योंकि सन्त सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषोंको कहते हैं।

खाखी—देखा हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरसके सैकड़ों दम लगाते, तीन २ लोटा भांग पीते, गांजा भांग धतूराकी पत्तीकी भाजी बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशामें गर्क रात दिन बेगम रहते, दुनियांको कुछ नहीं समझते भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते रात भर ऐसी खांसी उठती जो पासमें सोवे उसको नींद कभी न आवे इत्यादि सिद्धियां और साधूपन हममें हैं। फिर तूं हमारी निन्दा क्यों करता है? चेत् बाबूड़े जो हमको दिक करेगा हम तुमको भसम कर डालेंगे।

पण्डित—ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गवर्गण्डोंके हैं साधुओंके नहीं। सुनो "साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः" जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे सदा परोपकारमें प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान सत्योपदेशसे सबका उपकार करे उसको साधु कहते हैं।

खाखी—चल बे तूं साधूके कर्म क्या जाने? सन्तोंका घर बड़ा है। किसी सन्तसे अटकना नहीं, नहीं तो देखा एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।

पण्डित—अच्छा खाखी जाओ अपने आसन पर हमसे बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसीको मारोगे तो पकड़े जाओगे, कैद भोगोगे, बेत खाओगे वा कोई तुमको भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे? यह साधुका लक्षण नहीं।

खाखी—चलबे चेले किस राक्षसका मुख दिखलाया।

पण्डित—तुमने कभी किसी महात्माका संग नहीं किया है नहीं

तो ऐसे जड़ मूर्ख न रहते।

खाखी—हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरेकी गर्ज नहीं।

पण्डित—जिनके भाग्य नष्ट होते हैं उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घरको गये। जब संध्या आर्ती होगई तब उस खाखीको बुड्ढा समझ बहुतसे खाखी "डण्डोत २" कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखीने पूछा अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है?

रामदास—महाराज मैंने "वेस्नुसहसरनाम" पढ़ा है। अबे गोविन्दासिये! तू क्या पढ़ा है?

गोविन्दासिया—मैं "रामसतवराज" पढ़ा हूं अमुक खाखीजीके पाससे। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं?

खाखीजी—हम गीता पढ़े हैं।

रामदास—किसके पास?

खाखीजी—चलबे छोकड़े हम किसीको गुरू नहीं करते। देखा हम "परागराज" में रहते थे। हमको अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोतीवाले पण्डितको देखता था तब गीताके गोटकेमें पूछता था कि इस कलङ्गीवाले अक्खरका क्या नाम है? ऐसे पूछता २ अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी गुरू एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्याके शत्रुओंको अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहां जाय?॥

ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना घंटा घड़ियाल शंख बजाना, धूनी चिता रखनी नहाना, धोना, सब दिशाओंमें व्यर्थ घूमने फिरनेके अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते चाहे कोई पत्थरको भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियोंके आत्माओंको बोध कराना कठिन है क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाख रमाके वैरागी खाखी आदि होजाते हैं। उनको विद्या वा सत्सङ्ग आदिका माहात्म्य नहीं

जान पड़ सकता। इसमेंसे नाथोंका मन्त्र "नमः शिवाय"। खाखि-योंका "नृसिंहाय नमः"। रामावतोंका "श्रीरामचन्द्राय नमः" अथवा "सीतारामाभ्यां नमः"। कृष्णोपासकोंका "श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः" "नमो भगवते वासुदेवाय" और बङ्गालियोंका "गोविन्दाय नमः"। इन मन्त्रोंको कानमें पढ़नेमात्रसे शिष्य कर लेते हैं और ऐसी २ शिक्षा करते हैं कि बच्चे तूंबेका मन्त्र पढ़ले॥

जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूंबा पवितर हुआ॥

भला ऐसेकी योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत्के उप-कार करनेकी कभी हो सकती है? खाखी रात दिन लक्कड़ छाने [जंगली कंडे] जलाया करते हैं। एक महीनेमें कई रुपयेकी लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीनेकी लकड़ीके मूल्यसे कम्बलादि वस्त्र लेलें तो शतांश धनसे आनन्दमें रहें। उनको इतनी बुद्धि कहांसे आवे? और अपना नाम उसी धूनीमें तपने ही से तपस्वी धर रक्खा है। जो इस प्रकार तपस्वी होसकें तो जंगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी होजावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करनेसे तपस्वी होजाय तो सब कोई कर सके। ये ऊपरके त्यागस्वरूप और भीतरके महासंग्रही होते हैं॥

प्रश्न—कबीरपन्थी तो अच्छे हैं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—क्यों अच्छे नहीं? पाषाणादि मूर्त्तिपूजाका खण्डन करते हैं; कबीर साहब फूलोंसे उत्पन्न हुए और अन्तमें भी फूल होगये। ब्रह्मा विष्णु महादेवका जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, ऐसे कि जिस बातको वेद पुराण भी नहीं जान सकता उसको कबीर जानते हैं। सच्चा रस्ता है सो कबीर ही ने दिखलाया है। इनका मन्त्र "सत्यनाम कबीर" आदि है।

उत्तर—पाषाणादिको छोड़ पलङ्ग, गद्दी, तकिये, खड़ाऊं ज्योति अर्थात् दीप आदिका पूजना पाषाणमूर्तिसे न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां थीं जो फूलोंसे उत्पन्न हुआ ? और अन्तमें फूल होगया ? यहां जो यह बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशीमें रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे ; एक समय थोड़ीसी रात्री थी। एक गलीमें चला जाता था तो देखा सड़कके किनारेमें एक टोकरीमें फूलोंके बीचमें उसी रातका जन्मा बालक था। वह उसको उठा लेगया; अपनी स्त्री को दिया; उसने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहेका काम करता था किसी पण्डितके पास संस्कृत पढ़नेके लिये गया उसने उसका अपमान किया। कहा, कि हम जुलाहेको नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितोंके पास फिरा परन्तु किसीने न पढ़ाया। तब ऊट पटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगोंको समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदोंकी निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जालमें फंस गये। जब मरगया तब लोगोंने उसे सिद्ध बना लिया। जो २ उसने जीते जी बनाया था उसको उसके चेले पढ़ते रहे। कानको मूंदके जो शब्द सुना जाता है उसको 'अनहद' शब्द सिद्धान्त ठहराया। मनकी वृत्तिको "सुरति" कहते हैं। उसको उस शब्द सुननेमें लगाना उसीको सन्त और परमेश्वरका ध्यान बतलाते हैं वहां काल नहीं पहुंचता। बर्छीके समान तिलक और चन्दनादि लकड़ेकी कंठी बांधते हैं। भला विचार [के] देखो कि इसमें आत्माकी उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है ? यह केवल लड़कोंके खेलके समान लीला है।

प्रश्न—पंजाब देशमें नानकजीने एक मार्ग चलाया है क्योंकि वह मूर्त्तिका खंडन करते थे मुसलमान होनेसे बचाये वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो उन्होंने यह मंत्र उपदेश किया है इसीसे विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था—

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निवैंर अकाल-मूर्त अजोनि सहभंगुरु प्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच ॥

[जपजी पौड़ी १]

(ओ३म्) जिसका सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैर-रहित अकाल मूर्त्ति जो कालमें और जोनिमें नहीं आता प्रकाशमान है उसीका जप गुरुकी कृपासे कर वह परमात्मा आदिमें सच था जुगोंकी आदिमें सच वर्त्तमानमें सच और होगा भी सच ?

उत्तर—नानकजीका आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां भाषा उस देशकी जोकि ग्रामोंकी है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो "निर्भय" शब्दको "निर्भो" क्यों लिखते ? और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है चाहते थे कि मैं संस्कृतमें भी पग अड़ाऊं परन्तु विना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है ? हां उन ग्रामीणोंके सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था संस्कृती बनाकर संस्कृतके भी पण्डित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मानप्रतिष्ठा और अपनी प्रख्यातिकी इच्छाके विना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठाकी इच्छा अवश्य थी नहीं तो जैसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मानप्रतिष्ठाके लिये कुछ दंभ भी किया होगा ? इसीलिये उनके ग्रन्थमें जहां तहां वेदोंकी निन्दा और स्तुति भी है क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेदका अर्थ पूछता जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती इसलिये पहिले ही अपने शिष्योंके सामने कहीं २ वेदोंके विरुद्ध बोलते थे और कहीं २ वेदके लिये अच्छा भी कहा है क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते जैसे—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि।
सन्त [साध] कि महिमा वेद न जाने॥

[सुखमनी पौड़ी ७। चो० ८[

नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥ सु० पौ० ८ चो० ६

क्या वेद पढ़नेवाले मर गये और नानकजी आदि अपनेको अमर समझते थे? क्या वे नहीं मर गये? वेद तो सब विद्याओंका भंडार है परन्तु जो चारों वेदोंको कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं। जो मूर्खोंका नाम सन्त होता है वे विचारे वेदोंकी महिमा कभी नहीं जान सकते? जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढ़े ही नहीं थे तो दूसरेको पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे? यह सच है कि जिस समय नानकजी पंजाबमें हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्यासे सर्वथा रहित मुसलमानोंसे पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगोंको बचाया। नानकजीके सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुतसे शिष्य नहीं हुए थे क्योंकि अविद्वानोंमें यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं। पश्चात् बहुतसा माहात्म्य करके ईश्वरके समान मान लेते हैं। हां! नानकजी बड़े धनाढ्य और रईस भी नहीं थे. परन्तु उनके चेलोंने "नानकचन्द्रोदय" और "जन्मशाखी" आदिमें बड़े सिद्ध और बड़े २ ऐश्वर्य्यवाले थे, लिखा है। नानकजी ब्रह्मा आदिसे मिले, बड़ी बातचीत की सबने इनका मान्य किया, नानकजीके विवाहमें बहुतसे घोड़े, रथ, हाथी, सोने, चांदी, मोती, पन्ना आदि रत्नोंसे जड़े हुए और अमूल्य रत्नोंका पारावार न था, लिखा है। भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं? इसमें इनके चेलोंका दोष है, नानकजीका नहीं। दूसरा जो उनके पीछे उनके लड़केसे उदासी चले और रामदास आदिसे निर्मले। कितने ही गद्दीवालोंने भाषा बनाकर ग्रन्थमें रक्खी है अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी दशमा हुआ।

उनके पीछे उस ग्रन्थमें किसीकी भाषा नहीं मिलाई गई किन्तु वहां तकके जितने छोटे २ पुस्तक थे उन सबको इकट्ठे करके जिल्द बन्धवा दी। इन लोगोंने भी नानकजीके पीछे बहुतसी भाषा बनाई। कितनों ही ने नाना प्रकारकी पुराणोंकी मिथ्या कथाके तुल्य बना दिये परन्तु ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर बनके उस पर कर्मोपासना छोड़कर इनके शिष्य झुकते आये इसने बहुत बिगाड़ कर दिया, नहीं जो नानकजीने कुछ भक्ति विशेष ईश्वरकी लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था। अब उदासी कहते हैं हम बड़े, निर्मले कहते हैं हम बड़े, अकालिये तथा सूतरहसाई कहते हैं कि सर्वोपरि हम हैं। इनमें गोविन्दसिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानोंने उनके पुरुषाओंको बहुतसा दुःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानोंकी बादशाही प्रज्वलित होरही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुझको देवीने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानोंसे लड़ो तुम्हारा विजय होगा। बहुतसे लोग उनके साथी होगये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियोंने "पञ्चमकार" चक्रांकितोंने "पञ्चसंस्कार" चलाये थे वैसे "पञ्चककार" अर्थात् इनके पञ्चककार युद्धके उपयोगी थे। एक 'केश' अर्थात् जिसके रखनेसे लड़ाईमें लकड़ी और तलवारसे कुछ बचावट हो दूसरा "कंगण" जो शिरके ऊपर पगड़ीमें अकाली लोग रखते हैं और हाथमें "कड़ा" जिससे हाथ और शिर बच सकें। तीसरा "काछ" अर्थात् जानूके ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदनेमें अच्छा होता है बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीरका मर्मस्थान बचा रहे और अटकाव न हो। चौथा "कंगा" कि जिससे केश सुधरते हैं। पांचवां काचू [कृपाण] जिससे शत्रुसे भेट भटका होनेसे लड़ाईमें काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंहजीने अपनी बुद्धिमतासे उस समयके लिये [की] थी अब इस समयमें उनका रखना कुछ उपयोगी नहीं है परन्तु अब जो युद्धके

प्रयोजनके लिये बातें कर्त्तव्य थीं उनको धर्मके साथ मान ली हैं। मूर्त्तिपूजा तो नहीं करते किन्तु उससे विशेष ग्रन्थकी पूजा करते हैं क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? किसी जड़ पदार्थके सामने शिर झुकाना वा उसकी पूजा करना सब मूर्त्तिपूजा है। जैसे मूर्त्तिवालोंने अपनी दुकान, जमाकर जीविका ठाड़ी की है वैसे इन लोगोंने भी करली है। जैसे पूजारी लोग मूर्त्तिका दर्शन कराते, भेट चढ़वाते हैं वैसे नानकपन्थी लोग ग्रन्थकी पूजा करते, कराते भेट भी चढ़वाते हैं अर्थात् मूर्त्तिपूजा वाले जितना वेदका मान्य करते हैं उतना ये लोग ग्रन्थसाहब वाले नहीं करते। हां यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदोंको न सुना न देखा क्या करें? जो सुनने और देखनेमें आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदायवाले वेदमतमें आजाते हैं। परन्तु इन सबने भोजनका बखेड़ा बहुतसा हटा दिया है जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति दुरभिमानको भी हटाकर वेदमतकी उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है।

प्रश्न—दादूपंथीका मार्ग तो अच्छा है?

उत्तर—अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो सदा गोता खाते रहोगे। इनके मतमें दादूजीका जन्म गुजरातमें हुआ था। पुनः जयपुरके पास "आमेर" में रहते थे, तेलीका काम करते थे। ईश्वरकी सृष्टिकी विचित्र लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रोंकी सब बातें छोड़कर "दादूराम २" में ही मुक्ति मानली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे २ ही बखेड़े चला करते हैं। थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरासे चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्मको छोड़के "राम २" पुकारना अच्छा माना है। उसीमें ज्ञान ध्यान मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब "रामनाम" में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खानपान आदि तो गृहस्थोंके घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजाको धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियोंके संगमें

बहुत रहते हैं क्योंकि रामजीको "रामकी" के विना आनन्द ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ासा विशेष रामस्नेहीके मत विषयमें लिखते हैं।

एक रामचरण नामक साधु हुआ है जिसका मत मुख्य कर "शाहपुरा" स्थान मेवाड़से चला है। वे "राम २" कहने ही को परम-मन्त्र और इसीको सिद्धान्त मानते हैं उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तदासजी आदिकी वाणी हैं ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन—

भरम रोग तबही मिट्या, रट्या निरञ्जन राइ।
तब जमका कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ॥

साखी॥ ६॥

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि "राम २" कहनेसे भ्रम जो कि अज्ञान है वा यमराजका पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं? यह केवल मनुष्योंको पापोंमें फंसाना और मनुष्यजन्मको नष्ट कर देना है॥ अब इनका जो मुख्य गुरू हुआ है "रामचरण" उसके वचनः—

महमा नांव प्रतापकी, सुणौ सरवण चित लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ॥
जिन जिन सुमर्या नांव कूं, सो सब उतर्या पार।
रामचरण जो वीसर्या, सो ही जमके द्वार॥

राम विना सब झूठ बतायो॥
राम भजत छूट्या सब क्रम्मा।
चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
राम कहे तिन कूं भै नाहीं।

तीन लोक में कीरति गाहीं ॥
राम रटत जग जोर न लागै ॥
राम नाम लिख पथर तराई।
भगति हेति औतार ही धरही ॥
ऊंच नीच कुल भेद विचारे।
सो तो जनम आपणो हारै ॥
संतां कै कुल दीसै नाहीं।
रांम रांम कह राम सम्हांहीं ॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै।
हरि हरि जनको पार न पावै ॥
रांम संतांका अन्त न आवै।
आप आपकी बुद्धि सम गावै ॥

इनका खण्डन।

प्रथम तो रामचरण आदिके ग्रन्थ देखनेसे विदित होता है कि वह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता? यह केवल इनको भ्रम है कि राम २ कहनेसे कर्म छूट जायं केवल ये अपना और दूसरोंका जन्म खोते हैं। जमका भय तो बड़ा भारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बीछू और मच्छर आदिका भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम २ किया करें कुछ भी नहीं होगा। जैसे "सकर २" कहनेसे मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना राम २ करनेसे कुछ भी नहीं होगा और यदि राम २ करना इनका राम नहीं सुनता तो जन्मभर कहनेसे भी नहीं सुनेगा

और जो सुनता है तो दूसरी वार भी राम २ कहना व्यर्थ है। इन लोगोंने अपना पेट भरने और दूसरोंका भी जन्म नष्ट करनेके लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा रामस्नेही और काम करते हैं रांडसनेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तोंको घेर रही हैं यदि ऐसे २ पाखण्ड न चलते तो आर्य्यावर्त्त देशकी दुर्दशा क्यों होती। ये लोग अपने चेलोंको जूंठ खिलाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पड़के दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्तमें भी स्त्रियों और साधुओंकी लीला होती रहती है। अब दूसरी इनकी शाखा "खेड़ापा" ग्राम मारवाड़ देशसे चली है। उसका इतिहास—एक रामदास नामक जातिका ढेढ़ बड़ा चालाक था। उसके दो स्त्रियां थीं। वह प्रथम बहुत दिन तक औघड़ होकर कुत्तोंके साथ खाता रहा। पीछे वामी कूण्डापन्थी। पीछे "रामदेव" का "कामड़िया" * बना। अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ गाता था। ऐसे घूमता २ "सीथल" † में ढेढ़ोंका "गुरु रामदास" था उससे मिला। उसने उसको "रामदेव" का पन्थ बताके अपना चेला बनाया। उस रामदासने खेड़ापा ग्राममें जगह बनाई और इसका इधर मत चला। उधर शाहपुरेमें रामचरणका। उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुरका बनियां था। उसने "दांतड़ा" ग्राममें एक साधुसे वेश लिया और उसको गुरू किया और शाहपुरेमें जाके टिकी जमाई। भोले मनुष्योंमें पाखण्डकी जड़ शीघ्र जम जाती है, जमगई। इन सबमें ऊपरके रामचरणके बचनोंके प्रमाणसे चेला करके ऊंच नीचका कुछ भेद नहीं। ब्राह्मणसे अन्त्यज पर्यन्त इनमें

---

* राजपूतानेमें "चमार" लोग भगवें वस्त्र रंग कर "रामदेव" आदिके गीत, जिनको वे "शब्द" कहते हैं, चमारों और अन्य जातियोंको सुनाते हैं वे "कामड़िये" कहलाते हैं॥ स० दा०॥

† "सीथल जोधपुरके राज्यमें एक बड़ा ग्राम है" ॥ स० दा० ॥

चेले बनते हैं। अब भी कूंडापन्थीसे ही हैं क्योंकि मिट्टीके कूंडोंमें ही खाते हैं। और साधुओंकी जूंठन खाते हैं! वेदधर्मसे माता पिता संसारके व्यवहारसे बहका कर छुड़ा देते और चेला बना लेते हैं और राम नामको महामन्त्र मानते हैं और इसीको "छुच्छम" * वेद भी कहते हैं। राम २ कहनेसे अनन्त जन्मोंके पाप छूट जाते हैं इसके विना मुक्ति किसीकी नहीं होती। जो श्वास और प्रश्वासके साथ राम २ कहना बतावे उसको सत्यगुरू कहते हैं और सत्यगुरूको परमेश्वरसे भी बड़ा मानते हैं और उसकी मूर्त्तिका ध्यान करते हैं। साधुओंके चरण धोके पीते हैं। जब गुरूसे चेला दूर जावे तो गुरूके नख और डाढ़ीके बाल अपने पास रख लेवे। उसका चरणामृत नित्य लेवे, रामदास और हररामदासके वाणीके पुस्तकको वेदसे अधिक मानते हैं। उनकी परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं। और जो गुरू समीप हो तो गुरूको दण्डवत् प्रणाम कर लेते हैं। स्त्री वा पुरुषको राम २ एकसा ही मन्त्रोपदेश करते हैं और नामस्मरण ही से कल्याण मानते पुनः पढ़नेमें पाप समझते हैं। उनकी साखी—

पंडताई पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप।
राम २ सुमर्यां विना, रइग्यो रीतो आप॥
वेद पुराण पढ़े पढ़ गीता।
रामभजन बिन रह गये रीता॥

ऐसे २ पुस्तक बनाये हैं, स्त्रीको पतिकी सेवा करनेमें पाप और गुरू और साधुकी सेवामें धर्म बतलाते हैं वर्णाश्रमको नहीं मानते। जो ब्राह्मण रामस्नेही न हो तो उसको नीच और चांडाल, रामस्नेही हो तो उसको उत्तम जानते हैं अब ईश्वरका अवतार नहीं मानते और

---

* छुच्छम अर्थात् सूक्ष्म॥ स० दा०॥

रामचरणका वचन जो ऊपर लिख आये कि—

भगति हेति औतार ही धरही ॥

भक्ति और सन्तोंके हित अवतारको भी मानते हैं इत्यादि पाखण्ड प्रपञ्च इनका जितना है सो सब आर्य्यावर्त्त देशका अहित-कारक है इतने ही से बुद्धिमान् बहुतसा समझ लेंगे।

प्रश्न—गोकुलिये गुसाइयोंका मत तो बहुत अच्छा है देखो कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं क्या यह ऐश्वर्यलीलाके विना ऐसा हो सकता है?

उत्तर—यह ऐश्वर्य्य गृहस्थ लोगोंका है गुसाइयोंका कुछ नहीं।

प्रश्न—वाह २ गुसाइयोंके प्रतापसे है क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता?

उत्तर—दूसरे भी इसी प्रकारका छल प्रपञ्च रचें तो ऐश्वर्य्य मिलनेमें क्या सन्देह है? और जो इनसे अधिक धूर्त्तता करते तो अधिक भी ऐश्वर्य्य हो सकता है।

प्रश्न—वाहजी वाह! इसमें क्या धूर्तता है? यह तो सब गोलोक की लीला है।

उत्तर—गोलोककी लीला नहीं किन्तु गुसाइयोंकी लीला है, जो गोलोककी लीला है तो गोलोक भी ऐसा ही होगा। यह मत "तैलङ्ग" देशसे चला है क्योंकि एक तैलङ्गी लक्ष्मणभट्ट नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारणसे माता पिता और स्त्री को छोड़ काशीमें जाके उसने संन्यास ले लिया था और झूठ बोला था कि मेरा विवाह नहीं हुआ। दैवयोगसे उसके माता पिता और स्त्री ने सुना कि काशीमें संन्यासी हो गया है। उसके माता पिता और स्त्री काशीमें पहुंच कर जिसने उसको संन्यास दिया था उससे कहा कि हमारे पुत्रको संन्यासी क्यों किया, देखो! इसकी यह युवती स्त्री है और स्त्री ने कहा कि यदि आप मेरे पतिको मेरे साथ न करें तो मुझको भी संन्यास दे दीजिये। तब तो उसको बुलाके कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है, संन्यास

गृहाश्रम कर, क्योंकि तूने झूठ बोलकर संन्यास लिया। उसने पुनः वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया। देखो! इस मतका मूल ही झूठ कपटसे चला। जब तैलङ्ग देशमें गये उसको जातिमें किसीने न लिया। तब वहां से निकल कर घूमने लगे "चर-णार्गढ़" जो काशीके पास है उसके समीप "चंपारण्य" नामक जङ्ग-लमें चले जाते थे। वहां कोई एक लड़केको जङ्गलमें छोड़ चारों ओर दूर २ आगी जला कर चला गया था। क्योंकि छोड़नेवालेने यह समझा था जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जीव मार डालेगा। लक्ष्मणभट्ट और उसकी स्त्री ने लड़केको लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशीमें जा रहे। जब वह लड़का बड़ा हुआ तब उसके मा बापका शरीर छूट गया। काशीमें बाल्यावस्थासे युवावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर और कहीं जाके एक विष्णुस्वामीके मन्दिरमें चेला होगया। वहांसे कभी कुछ खटपट होनेसे काशीको फिर चला गया और संन्यास ले लिया। फिर कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशीमें रहता था। उसकी लड़की युवती थी। उसने इससे कहा कि तू संन्यास छोड़ मेरी लड़कीसे विवाह करले? वैसा ही हुआ। जिसके बापने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्रीको लेके वहीं चला गया कि जहां प्रथम विष्णुस्वामीके मन्दिरमें चेला हुआ था। विवाह करनेसे उनको वहां से निकाल दिया। फिर व्रजदेशमें कि जहां अविद्याने घर कर रक्खा है जाकर अपना प्रपंच अनेक प्रकारकी छल युक्तियोंसे फैलाने लगा और मिथ्या बातोंकी प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुझको मिले और कहा कि जो गोलोकसे "दैवीजीव" मर्त्य-लोकमें आये हैं उनको ब्रह्मसम्बन्ध आदिसे पवित्र करके गोलोकमें भेजो। इत्यादि मूर्खोंको प्रलोभनकी बातें सुनाके थोड़ेसे लोगोंको अर्थात् ८४ (चोरासी) वैष्णव बनाये और निम्नलिखित मन्त्र बना लिये और उनमें भी भेद रक्खा जैसे—

श्रीकृष्णः शरणं मम । क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॥ [गोपालसहस्रनाम]

ये दोनों साधारण मन्त्र हैं परन्तु अगला मन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण करानेका है—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ॥

इस मन्त्रका उपदेश करके शिष्य शिष्याओंको समर्पण कराते हैं। "क्लीं" कृष्णायेति"—यह "क्लीं" तन्त्र ग्रन्थका है। इससे विदित होता है कि यह वल्लभमत भी वाममार्गियोंका भेद है। इसीसे स्त्रीसंग गुसाईं लोग बहुधा करते हैं। "गोपीवल्लभेति" क्या कृष्ण गोपियों ही को प्रिय थे अन्यको नहीं ? स्त्रियोंको प्रिय वह होता है जो स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोगमें फंसा हो। क्या श्रीकृष्णजी ऐसे थे ? अब "सहस्रपरिवत्सरेति"—सहस्र वर्षोंकी गणना व्यर्थ है क्योंकि वल्लभ और उसके शिष्य कुछ सर्वज्ञ नहीं हैं। क्या कृष्णका वियोग सहस्र वर्षोंसे हुआ और आज लों अर्थात् जब लों वल्लभका मत न था न वल्लभ जन्मा था उसके पूर्व अपने दैवी जीवोंके उद्धार करनेको क्यों न आया ? "ताप" और "क्लेश" ये दोनों पर्यायवाची हैं। इनमेंसे एकका ग्रहण करना उचित था, दो का नहीं। "अनन्त" शब्दका पाठ करना व्यर्थ है क्योंकि जो अनन्त शब्द रक्खो तो "सहस्र" शब्दका पाठ न रखना चाहिये और जो सहस्र शब्दका पाठ रक्खो तो अनन्त शब्दका पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है और जो अनन्तकाल लों "तिरो-

हित" अर्थात् आच्छादित रहे उसकी मुक्तिके लिये वल्लभका होना भी व्यर्थ है क्योंकि अनन्तका अन्त नहीं होता। भला देहेन्द्रिय, प्राणान्तः-करण और उसके धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र, प्राप्तधनका अर्पण कृष्णको क्यों करना? क्योंकि कृष्ण पूर्णकाम होनेसे किसीके देहादिकी इच्छा नहीं कर सकते और देहादिका अर्पण करना भी नहीं हो सकता क्योंकि देहके अर्पणसे नखशिखाग्रपर्यन्त देह कहाता है। उनमें जो कुछ अच्छी बुरी वस्तु है मल मूत्रादिका भी अर्पण कैसे कर सकोगे? और जो पाप पुण्यरूप कर्म होते हैं उसको कृष्णार्पण करनेसे उनके फलभागी भी कृष्ण ही होवें अर्थात् नाम तो कृष्णका लेते हैं और सम-र्पण अपने लिये कराते हैं। जो कुछ देहमें मलमूत्रादि हैं वह भी गोसाईंजीके अर्पण क्यों नहीं होता "क्या मिठा २ गड़प और कड़वा कड़वा थू" और यह भी लिखा कि गोसाईंजीके अर्पण करना अन्य मत वालेके नहीं। यह सब स्वार्थसिंधुपन और पराये धनादि पदार्थ हरने और वेदोक्त धर्मके नाश करनेकी लीला रची है। देखो यह वल्लभका प्रपञ्च—

श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥१॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः ॥२॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥४॥
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।

न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम् ॥५॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥७॥
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गंगात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम् ॥८॥

इत्यादि श्लोक गोसाइयोंके सिद्धान्तरहस्यादि ग्रन्थोंमें लिखे हैं यही गोसाइयोंके मतका मूल तत्त्व है। भला इनसे कोई पूछे कि श्रीकृष्णके देहान्त हुए कुछ कम पांच सहस्र वर्ष बीते वह वल्लभसे श्रावण मासकी आधी रातको कैसे मिल सके ? ॥ १ ॥

जो गोसाईंका चेला होता है और उसको सब पदार्थोंका समर्पण करता है उसके शरीर और जीवके सब दोषोंकी निवृत्ति होजाती है यही वल्लभका प्रपंच मूर्खोंको बहका कर अपने मतमें लानेका है जो गोसाईंके चेले चेलियोंके सब दोष निवृत्त होजावें तो रोग दारिद्र्यादि दुःखोंसे पीड़ित क्यों रहें ? और वे दोष पांच प्रकारके होते हैं ॥२॥

एक—सहज दोष जो कि स्वाभाविक अर्थात् काम क्रोधादिसे उत्पन्न होते हैं। दूसरे—किसी देशकालमें नाना प्रकारके पाप किये जायें। तीसरे—लोकमें जिनको भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जो कि मिथ्याभाषणादि हैं। चौथे—संयोगज जो कि बुरे संगसे अर्थात् चोरी, जारी, माता, भगिनी, कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदिसे संयोग करना। पांचवें—स्पर्शज अस्पर्शनीयोंको स्पर्श करना इन पांच दोषोंको गोसाईं लोगोंके मत वाले कभी न मानें अर्थात् यथेष्टाचार करें ॥ ३ ॥

अन्य कोई प्रकार दोषोंकी नृवृत्तिके लिये नहीं हैं विना गोसाईंजी के मतके। इसलिये विना समर्पण किये पदार्थको गोसाईंजीके चेले न भोगें। इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू और धनादि पदार्थोंको भी समर्पित करते हैं परन्तु समर्पणका नियम यह है कि जब लों गोसाइंजीकी चरणसेवामें समर्पित न होवे तब लों उसका स्वामी स्वस्त्रीको स्पर्श न करे॥ ४॥

इससे गोसाइयोंके चेले समर्पण करके पश्चात् अपने अपने पदार्थका भोग करें क्योंकि स्वामीके भोग करे पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता॥ ५॥

इससे प्रथम सब कामोंमें सब वस्तुओंका समर्पण करें प्रथम गोसाईंजीको भार्यादि समर्पण करके पश्चात् ग्रहण करें वैसे ही हरिको सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके ग्रहण करें॥ ६॥

गोसाईंजीके मतसे भिन्न मार्गके वाक्यमात्रको भी गोसाइयोंके चेला चेली कभी न सुनें न ग्रहण करें यही उनके शिष्योंका व्यवहार प्रसिद्ध है॥ ७॥

वैसे ही सब वस्तुओंका समर्पण करके सबके बीचमें ब्रह्मबुद्धि करे। उसके पश्चात् जैसे गंगामें अन्य जल मिलकर गङ्गारूप होजाते हैं वैसे ही अपने मतमें गुण और दूसरेके मतमें दोष हैं इसलिये अपने मतमें गुणोंका वर्णन किया करें॥ ८॥

अब देखिये गोसाइयोंका मत सब मतोंसे अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है। भला, इन गोसाइयोंको कोई पूछे कि ब्रह्मका एक लक्षण भी तुम नहीं जानते तो शिष्य शिष्याओंको ब्रह्मसम्बन्ध कैसे करा सकोगे? जो कहो कि हम ही ब्रह्म हैं हमारे साथ सम्बन्ध होनेसे ब्रह्मसम्बन्ध हो जाता है। सो तुममें ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव एक भी नहीं हैं पुनः क्या तुम केवल भोग विलासके लिये ब्रह्म बन बैठे हो? भला शिष्य और शिष्याओंको तो तुम अपने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हो परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवधू आदि

असमर्पित रहजानेसे अशुद्ध रहगये वा नहीं ? और तुम असमर्पित वस्तुको अशुद्ध मानते हो पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं ? इसलिये तुमको भी उचित है कि अपनी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवधू आदिको अन्य मत वालोंके साथ समर्पित कराया करो। जो कहो कि नहीं नहीं तो तुम भी अन्य स्त्री पुरुष तथा धनादि पदार्थोंको समर्पित करना कराना छोड़ देओ। भला अब लों जो हुआ सो हुआ परन्तु अब तो अपनी मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयोंको छोड़ो और सुन्दर ईश्वरोक्त वेदविहित सुपथमें आकर अपने मनुष्यरूपी जन्मको सफलकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुष्टय फलोंको प्राप्त होकर आनन्द भोगो। और देखिये ! ये गोसाई लोग अपने सम्प्रदायको "पुष्टि" मार्ग कहते हैं अर्थात् खाने, पीने, पुष्ट होने और सब स्त्रियोंके संग यथेष्ट भोग विलास करनेको पुष्टिमार्ग कहते हैं परन्तु इनसे पूछना चाहिये कि जब बड़े दुःखदायी भगंदरादि रोगग्रस्त होकर ऐसे झींक २ मरते हैं कि जिसको यही जानते होंगे। सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु कुष्ठिमार्ग है। जैसे कुष्ठीके शरीरकी सब धातु पिघल पिघलके निकल जाती हैं और विलाप करता हुआ शरीर छोड़ता है। ऐसी ही लीला इनकी भी देखनेमें आती है। इसलिये नरकमार्ग भी इसीको कहना संघटित हो सकता है क्योंकि दुःखका नाम नरक और सुखका नाम स्वर्ग है। इसी प्रकार मिथ्या जाल रचके विचारे भोले भाले मनुष्योंको जालमें फंसाया और अपने आपको श्रीकृष्ण मान कर सबके स्वामी बनते हैं। यह कहते हैं कि जितने दैवी जीव गोलोकसे यहां आये हैं उनके उद्धार करनेके लिये हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं जब लों हमारा उपदेश न ले तब लों गोलोककी प्राप्ति नहीं होती। वहां एक श्रीकृष्ण पुरुष और सब स्त्रियां हैं। वाह जी वाह ! भला तुम्हारा मत है !! गोसाइयोंके जितने चेले हैं वे सब गोपियां बन जावेंगी। अब विचारिये भला जिस पुरुषके दो स्त्री होती हैं उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है वो, जहां एक पुरुष और क्रोड़ों स्त्री एकके पीछे लगी हैं उसके

दुःखका क्या पारावार है ? जो कहो कि श्रीकृष्णमें बड़ा भारी सामर्थ्य है सबको प्रसन्न करते हैं तो जो उसकी स्त्री जिसको स्वामीनीजी कहते हैं उसमें भी श्रीकृष्णके समान सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उनकी अर्द्धाङ्गी है। जैसे यहां स्त्री पुरुषकी कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुषसे स्त्रीकी अधिक होती है तो गोलोकमें क्यों नहीं ? जो ऐसा है तो अन्य स्त्रियोंके साथ स्वामीनीजीकी अत्यन्त लड़ाई बखेड़ा मचता होगा क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुनः गोलोक स्वर्गके बदले नरकवत् होगया होगा, अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष भगन्दरादि रोगोंसे पीड़ित रहता है वैसा ही गोलोकमें भी होगा। छि ! छि !! छि !!! ऐसे गोलोकसे मर्त्यलोक ही विचारा भला है। देखो जैसे यहां गोसाईंजी अपनेको श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत स्त्रियोंके साथ लीला करनेसे भगन्दर तथा प्रमेहादि रोगोंसे पीड़ित होकर महादुःख भोगते हैं। अब कहिये जिनका स्वरूप गोसाईं पीड़ित होता है तो गोलोकका स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगोंसे पीड़ित क्यों न होगा ? और जो नहीं है तो उनका स्वरूप गोसाईंजी पीड़ित क्यों होते हैं ?

प्रश्न—मर्त्यलोकमें लीलावतार धारण करनेसे रोग दोष होता है गोलोकमें नहीं क्योंकि वहां रोग दोष ही नहीं हैं।

उत्तर—"भोगे रोगभयम्" जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है और श्रीकृष्णके क्रोड़ान्क्रोड़ स्त्रियोंसे सन्तान होते हैं वा नहीं और जो होते हैं तो लड़के २ होते हैं वा लड़की लड़की ? अथवा दोनों ? जो कहो कि लड़कियां ही लड़कीयां होती हैं तो उनका विवाह किनके साथ होता होगा ? क्योंकि वहां विना श्रीकृष्णके दूसरा कोई पुरुष नहीं, जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञाहानि हुई। जो कहो लड़के ही लड़के होते हैं तो भी यही दोष आन पड़ेगा कि उनका विवाह कहां और किनके साथ होता है ? अथवा घरके घरहीमें गटपट कर लेते हैं अथवा अन्य किसीकी लड़कियां वा लड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा "गोलोकमें एक ही श्रीकृष्ण पुरुष" नष्ट हो जायगी और जो कहो कि सन्तान होते ही

नहीं तो श्रीकृष्णमें नपुंसकत्व और स्त्रियोंमें बन्ध्यापन दोष आवेगा। भला यह गोकुल क्या हुआ? जानो दिल्लीके बादशाहकी बीबियोंकी सेना हुई। अब जो गोसाईं लोग शिष्य और शिष्याओंका तन मन तथा धन अपने अर्पण करा लेते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि तन तो विवाह समयमें स्त्री और पतिके समर्पण हो जाता है पुनः मन भी दूसरेके समर्पण नहीं हो सकता, क्योंकि मन ही के साथ तनका भी समर्पण करना बन सकता और जो करें तो व्यभिचारी कहावेंगे। अब रहा धन उसकी भी यही लीला समझो अर्थात् मनके विना कुछ भी अर्पण नहीं हो सकता। इन गोसाइयोंका अभिप्राय यह है कि कमावें तो चेला और आनन्द करें हम। जितने वल्लभ सम्प्रदायी गोसाईं लोग हैं वे अब लों तैलङ्गी जातिमें नहीं हैं और जो कोई इनको भूले भटके लड़की देता है वह भी जातिबाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है क्योंकि ये जातिसे पतित किये गये और विद्याहीन रात दिन प्रमादमें रहते हैं। और देखिये! जब कोई गोसाईंजीकी पधरावनी करता है तब उसके घर पर जा चुपचाप काठकी पुतलीके समान बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता। विचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होवे "मूर्खाणां बलं मौनम्" क्योंकि मूर्खोंका बल मौन है जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय परन्तु स्त्रियोंकी ओर खूब ध्यान लगा-कर ताकता रहता है और जिसकी ओर गोसाईंजी देखें तो जानो बड़े ही भाग्यकी बात है और उसका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहां सब स्त्रियां गोसाईंजीके पग छूती हैं जिसपर गोसाईंजीका मन लगे वा कृपा हो उसकी अंगुली पैरसे दबा देते हैं वह स्त्री और उसके पति आदि अपना धन्यभाग्य समझते हैं और उस स्त्रीसे उसके पति आदि सब कहते हैं कि तू गोसाईंजीकी चरण-सेवामें जा और जहां कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहां दूती और कुटनियोंसे काम सिद्ध करा लेते हैं। सच पूछो तो ऐसे काम करनेवाले उनके मन्दिरोंमें और उनके समीप बहुतसे रहा करते

हैं। अब इनकी दक्षिणाकी लीला अर्थात् इस प्रकार मांगते हैं—लाओ भेट गोसाईंजीकी, बहूजीकी, लालजीकी, बेटीजीकी, मुखियाजीकी, बाहरियाजीकी, गवैयाजीकी, और ठाकुरजीकी। इन सात दुकानोंसे यथेष्ट माल मारते हैं। जब कोई गोसाईंजीका सेवक मरने लगता है तब उसकी छातीमें पग गोसाईंजी धरते हैं और जो कुछ मिलता है उसको गोसाईंजी गड़क कर जाते हैं क्या यह काम महाब्राह्मण और कर्टिया वा मुर्दावलीके समान नहीं है? कोई २ चेला विवाहमें गोसाईंजीको बुलाकर उन्हींसे लड़के लड़कीका पाणिग्रहण कराते हैं और कोई २ सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईंजीके शरीर पर स्त्री लोग केशरका उबटना करके फिर एक बड़े पात्रमें पट्टा रखके गोसाईंजीको स्त्री पुरुष मिलके स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्रीजन स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईंजी पीताम्बर पहिर और खड़ाऊं पर चढ़ बाहर निकल आते हैं और धोती उसीमें पटक देते हैं। फिर उस जलका आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके पान बीड़ी गोसाईंजीको देते हैं। वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं शेष एक चान्दीके कटोरेमें जिसको उनका सेवक मुखके आगे कर देता है उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बटती है जिसको "खास" प्रसादी कहते हैं। अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकारके मनुष्य हैं जो मूढ़ता और अनाचार होगा तो इतना ही होगा। बहुतसे समर्पण लेते हैं। उनमेंसे कितने ही वैष्णवोंके हाथका खाते हैं अन्यका नहीं। कितने ही वैष्णवोंके हाथका भी नहीं खाते लकड़े लों धो लेते हैं परन्तु आटा, गुड़, चीनी, घी आदि धोयेसे उनका स्पर्श बिगड़ जाता है क्या करें विचारे जो इनको धोवें तो पदार्थ ही हाथसे खो बैठें। वे कहते हैं कि हम ठाकुरजीके रङ्ग, राग, भोगमें बहुतसा धन लगा देते हैं परन्तु वे रङ्ग, राग, भोग आप ही करते हैं और सच पूछो तो बड़े २ अनर्थ होते हैं अर्थात् होलीके समय पिचकारियां भर कर स्त्रियोंके अस्पर्शनीय अवयव अर्थात् गुप्त स्थान हैं उन पर मारते हैं

और रसविक्रय ब्राह्मणके लिये निषिद्ध कर्म है उसको भी करते हैं।

प्रश्न—गुसाईंजी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, शाक और मठरी तथा लड्डू आदिको प्रत्यक्ष हाटमें बैठके तो नहीं बेचते किन्तु अपने नौकरों चाकरोंको पत्तलें बांट देते हैं वे लोग बेचते हैं गुसाईंजी नहीं।

उत्तर—जो गोसाईंजी उनको मासिक रुपये देवें तो वे पत्तलें क्यों लेवें। गुसाईंजी अपने नौकरोंके हाथ दाल भात आदि नौकरीके बदलेमें बेच देते हैं। वे ले जाकर हाट बाजारमें बेचते हैं। जो गुसाईंजी स्वयं बाहर बेचते तो नौकर जो ब्राह्मणादि हैं वे तो रसविक्रय दोषसे बच जाते और अकेले गोसाईंजी ही रसविक्रयरूपी पापके भागी होते। प्रथम तो इस पापमें आप डूबे फिर औरोंको भी समेटा और कहीं २ नाथद्वारा आदिमें गुसाईंजी भी बेचते हैं। रसविक्रय करना नीचोंका काम है उत्तमोंका नहीं। ऐसे २ लोगोंने इस आर्य्यावर्त्तकी अधोगति कर दी।

प्रश्न—स्वामीनारायणका मत कैसा है ?

उत्तर—"यादृशी शीतलादेवी तादृशो वाहनः खरः" जैसी गुसाईंजीकी धनहरणादिमें विचित्र लीला है वैसी ही स्वामीनारायणकी भी है। देखिये ! एक 'सहजानन्द' नामक अयोध्याके समीप एक ग्रामका जन्मा हुआ था। वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छभुज आदि देशोंमें फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख और भोला भाला है चाहे जैसे इनको अपने मतमें झुकालें वैसे ही ये लोग झुक सकते हैं। वहां उसने दो चार शिष्य बनाये। उनने आपसमें सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायणका अवतार और बड़ा सिद्ध है और भक्तोंको चतुर्भुज मूर्त्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है। एक वार काठियावाड़में किसी काठी अर्थात् जिसका नाम "दादाखाचर" गढ़ड़ेका भूमिया (जिमीदार) था। उसको शिष्योंने कहा कि तुम चतुर्भुज नारायणका दर्शन करना चहो तो हम सहजानन्दजीसे प्रार्थना करें ? उसने कहा बहुत अच्छी बात है। वह

भोला आदमी था। एक कोठरीमें सहजानन्दने शिर पर मुकुट धारण कर और शंख चक्र अपने हाथमें ऊपरको धारण किया और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रहकर गदा पद्म अपने हाथमें लेकर सहजानन्दकी बगलमेंसे आगेको हाथ निकाल चतुर्भुजके तुल्य बन ठन गये। दादाखाचरसे उनके चेलोंने कहा कि एक वार आंख उठा देखके फिर आंख मींच लेना और झट इधरको चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे अर्थात् चेलोंके मनमें तो यह था कि हमारे कपटकी परीक्षा न कर लेवे! उसको लेगये वह सहजानन्द कलाबत्तू और चिलकते हुए रेशमके कपड़े धारण कर रहा था। अन्धेरी कोठरीमें खड़ा था। उसके चेलोंने एक दम लालटेनसे कोठरीके ओर उजाला किया। दादाखाचरने देखा तो चतुर्भुज मूर्त्ति दीखी फिर झट दीपकको आड़में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले गये और उसी समय बीचमें बातेंकीं कि तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराजके चेले होजाओ। उसने कहा बहुत अच्छी बात। जब लों फिरके दूसरे स्थानमें गये तब लों दूसरे वस्त्र धारण करके सहजानन्द गद्दी पर बैठा मिला। तब चेलोंने कहा कि देखो अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहां विराजमान हैं। वह दादाखाचर इनके जालमें फँस गया। वहींसे उनके मतकी जड़ जमी क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमाली पुनः इधर उधर घूमता रहा, सबको उपदेश करता था, बहुतोंको साधु भी बनाता था। कभी २ किसी साधुकी कण्ठकी नाड़ीको मलकर मूर्छित भी कर देता था और सबसे कहता था कि हमने इनकी समाधि चढ़ादी है। ऐसी २ धूर्त्ततामें काठियावारके भोले भाले लोग उसके पेचमें फँस गये। जब वह मर गया तब उसके चेलोंने बहुतसा पाखण्ड फैलाया। इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीशने उसका नाक कान काट डालनेका दण्ड दिया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह

धूर्त्त नाचने गाने और हँसने लगा। लोगोंने पूछा कि तू क्यों हँसता है? उसने कहा कुछ कहनेकी बात नहीं है! लोगोंने पूछा ऐसी कौनसी बात है? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्यकी बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी। लोगोंने कहा कहो क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्यको धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायणका साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगोंने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता? वह बोला नाककी आड़ हो रही है जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे नहीं तो नहीं। उनमेंसे किसी मूर्खने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायणका दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो नारायणको दिखलाओ। उसने उसकी नाक काट कर कानमें कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा। उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है तब तो वह भी वहां उसीके समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हँसने और कहने लगा कि मुझको भी नारायण दीखता है। वैसे होते २ एक सहस्र मनुष्योंका झुंड होगया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदायका नाम "नारायणदर्शी" रक्खा। किसी मूर्ख राजाने सुना उनको बुलाया। जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत कुछ नाचने, कूदने हँसने लगे। तब राजाने पूछा कि यह क्या बात है? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है।

राजा—हमको क्यों नहीं दीखता?

नारायणदर्शी—जबतक नाक है तबतक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखें। उस राजाने विचारा कि यह बात ठीक है।

राजाने कहा—ज्योतिषीजी मूहूर्त्त देखिये।

ज्योतिषीजीने उत्तर दिया—जो हुक्म, अन्नदाता, दशमीके दिन

प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायणके दर्शन करनेका बड़ा अच्छा मूहूर्त्त है। वाहरे पोपजी! अपनी पोथीमें नाक काटने कटवानेका भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजाकी इच्छा हुई और उन सहस्र नकटोंके सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने कूदने और गाने लगे। यह बात राजाके दीवान आदि कुछ २ बुद्धिवालोंको अच्छी न लगी। राजाके एक चार पीढ़ीका बूढ़ा ९० वर्षका दीवान था। उसको जाकर उसके परपोतेने जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्धने कहा कि वे धूर्त हैं। तू मुझको राजाके पास ले चल, वह लेगया। बैठते समय राजाने बड़े हर्षित होके उन नाककटोंकी बातें सुनाईं। दीवानने कहा सुनिये महाराज! ऐसे शीघ्रता न करनी चाहिये। विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे?

दीवान—झूठ बोलो वा सच विना परीक्षाके सच झूठ कैसे कह सकते हैं?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये?

दीवान—विद्या सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे।

राजा—जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे?

दीवान—विद्वानोंके संगसे ज्ञानकी वृद्धि करके।

राजा—जो विद्वान् न मिले तो?

दीवान—पुरुषार्थीको कोई बात दुर्लभ नहीं है।

राजा—तो आप ही कहिये कैसा किया जाय?

दीवान—मैं बुड्ढा और घरमें बैठा रहता हूं और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊं तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

राजा—बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषीजी दीवानजीके लिये मुहूर्त्त देखो।

ज्योतिषी—जो महाराजकी आज्ञा। यही शुक्ल पंचमी १० बजेका मुहूर्त्त अच्छा है। जब पंचमी आई तब राजाजीके पास आठ बजे बुड्ढे दीवानजीने राजाजीसे कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।

राजा—वहां सेनाका क्या काम है ?

दीवान—आपको राज्यव्यवस्थाकी खबर नहीं है। जैसा मैं कहता हूं वैसा कीजिये ?

राजा—अच्छा जाओ भाई सेनाको तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया। उनको देखकर वे नाचने और गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवानजीको नारायणका दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा, दश बजेका समय जब आया तब एक थाली मनुष्यने नाकके नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चक्कू ले नाक काट थालीमें डाल दी और दीवानजी की नाकसे रुधिरकी धार छूटने लगी। दीवानजीका मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त्तने दीवानजीके कानमें मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हंसकर सबसे कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्ठा होगा, सब लोग हँसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ और दीवानजीने अंगोछा हाथमें ले नाककी आड़में लगा दिया। जब दीवानजीसे राजाने पूछा कहिये नारायण दीखता वा नहीं ? दीवानजी ने राजाके कानमें कहा कि कुछ भी नहीं दीखता वृथा इस धूर्त्तने सहस्रों मनुष्योंको खराब किया। राजाने दीवानसे कहा अब क्या करना चाहिये ? दीवानने कहा इनको पकड़के कठिन दण्ड देना चाहिये जब लों जीवें तब लों बन्दीघरमें रखना चाहिये और इस दुष्टको कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशाके साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कानमें बातें करने लगे

तब उन्होंने डरके भागनेकी तैयारी की परन्तु चारों ओर फौजने घेरा दे रक्खा था न भाग सके। राजाने आज्ञा दी कि सबको पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्टका काला मुख कर गधे पर चढ़ा इसके कण्ठमें फटे जूतोंका हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकड़ोंसे धूल राख इस पर डलवा चौक २ में जूतोंसे पिटवा कुत्तोंसे लुचवा मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटेका सम्प्रदाय बंद हुआ। इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरोंके धन हरनेमें बड़े चतुर हैं। यह सम्प्रदायोंकी लीला है। ये स्वामीनारायण मत वाले धनहरे छल कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खोंके बहकानेके लिये मरते समय कहते कि सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्दजी मुक्तिको लेजानेके लिये आये हैं और नित्य इस मन्दिरमें एक वार आया करते हैं जब मेला होता है तब मन्दिरके भीतर पूजारी रहते हैं। और नीचे दुकान लगा रक्खी है। मंदिरमेंसे दुकानमें जानेका छिद्र रखते हैं। जो किसीने नारियल चढ़ाया वही दुकानमें फेंक दिया अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिनमें सहस्र वार बिकता है ऐसे ही सब पदार्थोंको बेचते हैं। जिस जातिका साधु हो उनसे वैसा ही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उससे नापितका, कुम्हारसे कुम्हारका, शिल्पीसे शिल्पीका, बनियेसे बनियेका और शूद्रसे शूद्रादिका काम लेते हैं। अपने चेलों पर एक कर (टिकस) बांध रक्खा है। लाखों क्रोड़ों रुपये ठगके एकत्र कर लिये हैं और करते जाते हैं। जो गद्दी पर बैठता है वह गृहस्थ विवाह करता है आभूषणादि पहिनता है। जहां कहीं पधरावनी होती है वहां गोकुलियेके समान गुसाईंजी बहूजी आदिके नामसे भेट पूजा लेते हैं। अपनेको "सत्सङ्गी" और दूसरे मत वालोंको "कुसङ्गी" कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक विद्वान पुरुष क्यों न हो परन्तु उसका मान्य और सेवा कभी नहीं करते क्योंकि अन्य मतस्थकी सेवा करनेमें पाप गिनते हैं। प्रसिद्धिमें उनके साधु स्त्रीजनोंका मुख नहीं दे-

खते परन्तु गुप्त न जाने क्या लीला होती होंगी ? इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं २ साधुओंकी परस्त्रीगमनादि लीला प्रसिद्ध होगई है और उनमें जो २ बड़े २ हैं वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुवेमें फेंक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठमें गये। सहजानन्दजी आके लेगये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इनको न लेजाइये क्योंकि इस महात्माके यहां रहनेसे अच्छा है सहजानन्दजीने कहा कि नहीं अब इनकी वैकुण्ठमें बहुत आवश्यकता है इसलिये ले जाते हैं। हमने अपनी आंखसे सहजानन्दजीको और विमानको देखा तथा जो मरनेवाले थे उनको विमानमें बैठा दिया ऊपरको लेगये और पुष्पोंकी वर्षा करते गये। और जब कोई साधु वीमार पड़ता है और उसके बचनेकी आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं कल रातको वैकुण्ठमें जाऊंगा। सुना है कि उस रातमें जो उसके प्राण न छूटें और मूर्छित होगया हो तो भी कुवेमें फेंक देते हैं क्योंकि जो उस रातको न फेंकदें तो झूंठे पड़ें इसलिये ऐसा काम करते होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया गुसाईं मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि "गुसाईंजी लीला विस्तार करगये।" जो इन गुसाईं स्वामीनारायणवालोंका उपदेश करनेका मन्त्र है वह एक ही है। "श्रीकृष्णः शरणं मम" इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् मैं श्रीकृष्णके शरणागत हूं परन्तु इसका अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरणको प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होनेसे ऊटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्याके नियमोंकी खबर नहीं है॥

प्रश्न—माध्व मत तो अच्छा है ?

उत्तर—जैसे अन्य मतावलंबी हैं वैसा ही माध्व भी है क्योंकि ये भी चक्रांकित होते हैं इनमें चक्रांकितोंसे इतना विशेष है कि रामानुजीय एक वार चक्रांकित होते हैं और माध्व वर्ष २ में फिर २ चक्रांकित होते जाते हैं। चक्रांकित कपालमें पीली रेखा और माध्व काली

रेखा लगाते हैं। एक माध्व पंडितसे किसी एक महात्माका शास्त्रार्थ हुआ था।

महात्मा—तुमने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों लगाया ?

शास्त्री—इसके लगानेसे हम वैकुण्ठको जायेंगे और श्रीकृष्णका भी शरीर श्याम रङ्ग था इसलिये हम काला तिलक करते हैं।

महात्मा—जो काली रेखा और चांदला लगानेसे वैकुण्ठमें जाते हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहां जाओगे ? क्या वैकुण्ठके भी पार उतर जाओगे ? और जैसा श्रीकृष्णका सब शरीर काला था वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो। तब श्रीकृष्णका सादृश्य हो सकता है। इसलिये यह भी पूर्वोक्त सदृश है॥

प्रश्न—लिङ्गांकितका मत कैसा है ?

उत्तर—जैसा चक्रांकितका, जैसे चक्रांकित चक्रसे दागे जाते और नारायणके विना किसीको नहीं मानते वैसे लिङ्गाकित लिङ्गाकृतिसे दागेजाते और विना महादेवके अन्य किसीको नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिङ्गांकित पाषाणका एक लिङ्ग सोने अथवा चांदीमें मढ़वाके गलेमें डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसको दिखाके पीते हैं उनका भी मन्त्र शैवके तुल्य रहता है॥

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजके गुणदोष

प्रश्न—ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो अच्छा है वा नहीं ?

उत्तर—कुछ २ बातें अच्छी और बहुतसी बुरी हैं।

प्रश्न—ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सबसे अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—नियम सर्वांशमें अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगोंकी कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है ? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियोंने ईसाई मतमें मिलनेसे थोड़े मनुष्योंको बचाये

और कुछ २ पाषाणादि मूर्तिपूजाको हटाया अन्य जाल ग्रन्थोंके फन्देसे भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगोंमें स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयोंके आचरण बहुतसे लिये हैं। खानपान विवाहादिके नियम भी बदल दिये हैं।

२—अपने देशकी प्रशंसा वा पूर्वजोंकी बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानोंमें ईसाई आदि अंग-रेजोंकी प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियोंका नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंगरेजोंके सृष्टिमें आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्ती लोग सदासे मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३—वेदादिकोंकी प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करनेसे भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाजके उद्देशके पुस्तकमें साधुओंकी संख्यामें "ईसा" "मूसा" "मुहम्मद" "नानक" और "चैतन्य" लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षिका नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगोंने जिनका नाम लिखा है उन्हींके मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्य्यावर्त्तमें उत्पन्न हुए हैं और इसी देशका अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं अपने माता, पिता, पितामहा-दिके मार्गको छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्म-समाजी और प्रार्थनासमाजियोंको एतद्देशस्थ संस्कृत विद्यासे रहित अपनेको विद्वान् प्रकाशित करते हैं। इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिता-भिमानी होकर झटिति एक मत चलानेमें प्रवृत्त होना मनुष्योंका स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?

४—अंगरेज, यवन, अन्त्यजादिसे भी खाने पीनेका भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़-नेसे हम और हमारा देश सुधर जायगा। परन्तु ऐसी बातोंसे सुधार तो कहां, उलटा बिगाड़ होता है।

५ प्रश्न—जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत?

उत्तर—ईश्वर और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

प्रश्न—कौनसे ईश्वरकृत और कौनसे मनुष्यकृत ?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल, जन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओंमें गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षोंमें पीपल, वट, आम्र आदि, पक्षियोंमें हंस, काक, वकादि, जलजन्तुओंमें मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं वैसे मनुष्योंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्योंमें ब्राह्मणादिको सामान्य जातिमें नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जातिमें गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्थामें लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभावसे वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभावसे पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णोंकी परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानोंका काम है। भोजन भेद भी ईश्वरकृत और मनुष्कृत है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णा भैंसा घासादिका आहार करते हैं। यह ईश्वरकृत और देश काल वस्तु भेदसे भोजनभेद मनुष्यकृत है।

प्रश्न—देखो यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट, पतलून पहरते, होटलमें सबके हाथका खाते हैं इसलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अन्त्यजलोग सबके हाथका खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती ? जो यूरोपियनोंमें बाल्यावस्थामें विवाह न करना, लड़का लड़कीको विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे २ आदमियोंका उपदेश नहीं होता वे विद्वान् होकर जिस किसीके पाखण्डमें नहीं फँसते जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभासे निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजातिकी उन्नतिके लिये तन मन धन व्यय करते हैं, आलस्यको छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देशके बने हुए जूते को आफिस और कचहरीमें जाने देते हैं इस देशी जूतेको नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देशके बने जूतोंका भी कितना मान

प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्योंका नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्षसे ऊपर इस देशमें आये यूरोपियनोंको हुए और आजतक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेशमें पहिरते थे परन्तु उन्होंने अपने देशका चाल चलन नहीं छोड़ा और तुममेंसे बहुतसे लोगोंने उनकी नकल करली इसीसे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमानका काम नहीं और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्त्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालोंको व्यापार आदिमें सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मोंसे उनकी उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटलमें खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामोंसे नहीं बढ़े हैं और इनमें जातिभेद भी है देखो! जब कोई यूरोपियन चाहे कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी अन्य देश अन्य मत वालोंकी लड़की वा यूरोपियनकी लड़की अन्य देशवालेसे विवाह कर लेती है तो उसी समय उसका निमन्त्रण साथ बैठकर खाने और विवाह आदि अन्य लोग बन्द कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या? और तुम भोलेभालोंको बहकाते हैं कि हममें जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खतासे मान भी लेते हो। इसलिये जो कुछ करना वह सोच विचारके करना चाहिये जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पड़े। देखो! वैद्य और औषधकी आवश्यकता रोगीके लिये है नीरोगके लिये नहीं। विद्यावान नीरोग और विद्यारहित अविद्या-रोगसे ग्रस्त रहता है। उस रोगके छुड़ानेके लिये सत्यविद्या और सत्योपदेश है। उनको अविद्यासे यह रोग है कि खाने पीने हीमें धर्म्म रहता और जाता है। जब किसीको खाने पीनेमें अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्मभ्रष्ट होगया। उसकी बात न सुननी और न उसके पास बैठते, न उसको अपने पास बैठने देते। अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थके लिये है अथवा परमार्थके लिये। परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्यासे उन अज्ञानि-

योंको लाभ पहुंता। जो कहो कि वे नहीं लेते हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है उनका नहीं, क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुमसे प्रेम कर वे उपकृत होते सो तुमने सहस्रोंका उपकार नाश करके अपना ही सुख किया सो यह तुमको बड़ा अपराध लगा क्योंकि परोपकार करना धर्म्म और परहानि करना अधर्म्म कहाता है। इसलिये विद्वान्‌को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियोंको दुःखसागरसे तारनेके लिये नौकारूप होना चाहिये। सर्वथा मूर्खोंके सदृश कर्म न करने चाहियें। किन्तु जिसमें उनकी और अपनी दिन प्रतिदिन उन्नति हो वैसे कर्म करने उचित हैं।

प्रश्न—हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सबसे सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेदमें, बाइबिलमें वा कुरानमें और अन्य किसी ग्रन्थमें हो हमको ग्राह्य है असत्य किसीका नहीं।

उत्तर—जिस बातसे तुम सत्यग्राही होना चाहते हो उसी बातसे असत्यग्राही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होनेसे भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहितके वचन सर्वांशमें प्रामाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचनका भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्नके समान त्यागके योग्य है। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनायेका प्रमाण किसीको भी न करना चाहिये "चले तो चौबेजी छब्बेजी बननेको गांठके दो खोकर दुबेजी बन गये।" कुछ तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रमसे असत्यको ग्रहण कर सत्यको छोड़ भी देते होंगे इसलिये सर्वज्ञ परमात्माके वचनका सहाय हम अल्पज्ञोंको अवश्य होना चाहिये। जैसा कि वेदके व्याख्यानमें लिख आये हैं वैसा तुमको अवश्य ही मानना चाहिये। नहीं तो "यतो भ्रष्टस्ततो

भ्रष्टः" हो जाता है। जब सर्व सत्य वेदोंसे प्राप्त होता है जिनमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करनेमें शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है इसी बातसे तुमको आर्य्यावर्त्तीय लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्तकी उन्नतिके कारण भी नहीं हो सके क्योंकि तुम सब घरके भिक्षुक ठहरे हो। तुमने समझा है कि इस बातसे हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसीके दो ही माता पिता सब संसारके लड़कोंका पालन करने लगें सबका पालन करना तो असंभव है किन्तु उस बातसे अपने लड़कोंको भी नष्ट कर बैठें वैसे ही आप लोगोंकी गति है। भला वेदादि सत्य शास्त्रोंको माने विना तुम अपने वचनोंकी सत्यता और असत्यताकी परीक्षा और आर्य्यावर्त्तकी उन्नति भी कभी कर सकते हो? जिस देशको रोग हुआ है उसकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य्यावर्तीय लोग तुमको अन्य मतियोंके सदृश समझते हैं। अब भी समझ कर वेदादिके मान्यसे देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वरसे प्रकाशित होता है पुनः ऋषियोंके आत्माओंमें ईश्वरसे प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदोंको क्यों नहीं मानते? हां, यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़नेकी इच्छा करते हो। क्योंकर तुमको वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?।

६—दूसरा जगत्के उपादान कारणके विना जगत्की उत्पत्ति और जीवको भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इसका उत्तर सृष्टयुत्पत्ति और जीवेश्वरकी व्याख्यामें देख लीजिये। कारणके विना कार्यका होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तुका नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है।

७—एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थनासे पापोंकी निवृत्ति मानते हो। इसी बातसे जगत्में बहुतसे पाप बढ़

गये हैं क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रासे, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्थादिसे, ईसाई लोग ईसाके विश्वाससे, मुसलमान लोग "तोबा" करनेसे पापका छूटजाना विना भोगके मानते हैं। इससे पापोंसे भय न होकर पापमें प्रवृत्ति बहुत होगई है इस बातमें ब्राह्म और प्रार्थना समाजी भी पुराणी आदिके समान हैं। जो वेदोंको मानते तो विना भोगके पाप पुण्यकी निवृत्ति न होनेसे पापोंसे डरते और धर्ममें सदा प्रवृत्त रहते जो भोगके विना निवृत्ति माने तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

८—जो तुम जीवकी अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम जीवके गुण कर्म स्वभावका फल भी ससीम होना अवश्य है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु है ससीम कर्मोंका फल अनन्त दे देगा।

उत्तर—ऐसा करे तो परमेश्वरका न्याय नष्ट होजाय और सत्कर्मोंकी उन्नति भी कोई न करेगा क्योंकि थोड़ेसे भी सत्कर्मका अनन्त फल परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थनासे पाप चाहें जितने हों छूट जायंगे ऐसी बातोंसे धर्मकी हानि और पापकर्मोंकी वृद्धि होती है।

प्रश्न—हम स्वाभाविक ज्ञानको वेदसे भी बड़ा मानते हैं नैमित्तिकको नहीं क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हममें न होता तो वेदोंको भी कैसे पढ़ पढ़ा समझ समझा सकते। इसलिये हम लोगोंका मत बहुत अच्छा है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात निरर्थक है क्योंकि जो किसीका दिया हुआ ज्ञान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह सहज ज्ञान होता है और न वह बढ़ घट सकता उससे उन्नति कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि जङ्गली मनुष्योंमें भी स्वाभाविक ज्ञान है। क्यों वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते? और जो नैमित्तिक ज्ञान है वही उन्नतिका कारण है। देखो! तुम हम बाल्यावस्थामें कर्तव्या-

कर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक २ नहीं जानते थे। जब हम विद्वानोंसे पढ़े तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्मको समझने लगे। इसलिये स्वाभाविक ज्ञानको सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

९—जो आप लोगोंने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानोंसे लिया होगा। इसका भी उत्तर पुनर्जन्मकी व्याख्यासे समझ लेना परन्तु इतना समझो कि जीव शाश्वत् अर्थात् नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूपसे नित्य है। कर्म और कर्मवानका नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था? वा रहेगा? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहनेसे होता है। पूर्वापर जन्म न माननेसे कृतहानि और अकृताभ्यागम नैर्घृण्य और वैषम्य दोष भी ईश्वरमें आते हैं क्योंकि जन्म न हो तो पाप पुण्यके फल भोगकी हानि होजाय। क्योंकि जिस प्रकार दूसरेको सुख, दुख, हानि, लाभ पहुंचाया होता है वैसा उसका फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्मके पाप पुण्योंके विना सुख दुखकी प्राप्ति इस जन्ममें क्योंकर होवे? जो पूर्वजन्मके पाप पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाशके समान कर्मका फल होजावे इसलिये यह भी बात आप लोगोंकी अच्छी नहीं।

१०—और एक यह कि ईश्वरके विना दिव्य गुणवाले पदार्थों और विद्वानोंको भी देव न मानना ठीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महादेव और जो देव न होता तो सब देवोंका स्वामी होनेसे महादेव क्यों कहाता?।

११—एक अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मोंको कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं।

१२—ऋषि महर्षियोंके किये उपकारोंको न मानकर ईसा आदिके पीछे झुक पड़ना अच्छा नहीं।

१३—और विना कारण विद्या वेदोंके अन्य कार्य्य विद्याओंकी

प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है।

१४—और जो विद्याका चिह्न यज्ञोपवीत और शिखाको छोड़ मुसलमान ईसाइयोंके सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और "तमगों" की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदिका कुछ बड़ा भार होगया था।

१५—और ब्रह्मासे लेकर पीछे २ आर्य्यावर्त्तमें बहुतसे विद्वान होगये हैं उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुतिमें उतर पड़ना पक्षपात और खुशामदके विना क्या कहाजाय।

१६—और बीजांकुरके समान जड़ चेतनके योगसे जीवोत्पत्ति मानना उत्पत्तिके पूर्व जीवतत्त्वका न मानना और उत्पन्नका नाश न मान पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्तिके पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहांसे आया और संयोग किनका हुआ? जो इन दोनोंको सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टिके पूर्व ईश्वरके विना दूसरे किसी तत्त्वको न मानना यह आपका पक्ष व्यर्थ होजायगा। इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो "आर्य्यसमाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देशके पदार्थोंसे अपना शरीर बना अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धनसे सब जने मिलकर प्रीतिसे करें। इसलिये जैसा आर्य्यसमाज आर्य्यावर्त्त देशकी उन्नतिका कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाजको यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाजका सौभाग्य बढ़ाना समुदायका काम है एकका नहीं।

प्रश्न—आप सबका खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने२ धर्म में सब अच्छे हैं। खंडन किसीका न करना चाहिये। जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो? जो बतलाते हो तो क्या आपसे अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था और न है? ऐसा अभिमान करना

आपको उचित नहीं, क्योंकि परमात्माकी सृष्टिमें एक २ से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसीको घमंड करना उचित नहीं।

उत्तर—धर्म सबका एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरेसे विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एकके विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक् २ होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक ही है अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायोंके उपदेशोंको कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्रसे कम नहीं होंगे परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं क्योंकि इन चारोंमें सब सम्प्रदाय आजाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाम-मार्गीसे पूछे—

हे महाराज! मैंने आजतक न कोई गुरु और न किसी धर्मका ग्रहण किया है कहिये सब धर्मोंमेंसे उत्तम धर्म किसका है? जिसको मैं ग्रहण करूं।

वाममार्गी—हमारा है।

जिज्ञासु—ये नौसौ निन्न्यानवे कैसे हैं?

वाममार्गी—सब झूठे और नरकगामी हैं क्योंकि "कौलात्परतरं नहि" इस वचनके प्रमाणसे हमारे धर्मसे परे कोई धर्म नहीं है।

जिज्ञासु—आपका क्या धर्म है?

वाममार्गी—भगवतीका मानना, मद्य मांसादि पंच मकारोंका सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रोंका मानना इत्यादि, जो तु मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

जिज्ञासु—अच्छा परन्तु और महात्माओंका भी दर्शन कर पूछ पाछ आऊंगा। पश्चात् जिसमें मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेला होजाऊंगा।

वाममार्गी—अरे क्यों भ्रान्तिमें पड़ा है। ये लोग तुझको बहका

कर अपने जालमें फँसा देंगे। किसीके पास मत जावे हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो पछताओगे। देख! हमारे मतमें भोग और मोक्ष दोनों हैं।

जिज्ञासु—अच्छा देख तो आऊं। आगे चलकर शैवके पास जाके पूछा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया। इतना विशेष कहा कि विना शिव, रुद्राक्ष, भस्मधारण और लिङ्गार्चनके मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्तीजीके पास गया।

जिज्ञासु—कहो महाराज! आपका धर्म क्या है?

वेदान्ती—हम धर्माधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं। हममें धर्माधर्म कहां हैं? यह जगत् सब मिथ्या है और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहे तो अपनेको ब्रह्म मान जीवभावको छोड़ नित्य-मुक्त होजायगा।

जिज्ञासु—जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्मके गुण, कर्म, स्वभाव तुममें क्यों नहीं? और शरीरमें क्यों बन्धे हो?

वेदान्ती—तुझको शरीर दीखते हैं इसीसे तू भ्रान्त है। हमको कुछ नहीं दीखता विना ब्रह्मके।

जिज्ञासु—तुम देखनेवाले कौन और किसको देखते हो?

वेदान्ती—देखनेवाला ब्रह्म और ब्रह्मको ब्रह्म देखता है।

जिज्ञासु—क्या दो ब्रह्म हैं?

वेदान्ती—नहीं अपने आपको देखता है।

जिज्ञासु—क्या कोई अपने कन्धे पर आप चढ़ सकता है? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपनेकी है? वह आगे चलकर जैनियोंके पास जाके पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म" के विना सब धर्म खोटा, जगत्का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् अनादि कालसे जैसाका वैसा बना है और बना रहेगा, आ तू हमारा चेला होजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकारसे अच्छे हैं, उत्तम बातोंको मानते हैं। जैनमा[illegible]

भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं। आगे चलके ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गीसे तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया "सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्यसे पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वासके पवित्र होकर मुक्तिको नहीं पा सकता। ईसाने सबके प्रायश्चित्तके लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा"। जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहबके पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा "लाशरीक खुदा उसके पैग़म्बर और कुराणशरीफके विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मज़हबको नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है वाजिबुल्क़त्ल है" जिज्ञासु सुनकर वैष्णवके पास गया। वैसा ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि "हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है"। जिज्ञासुने मनमें समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिसके सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराजके गण क्यों डरेंगे? फिर आगे चला तो सब मत वालोंने अपने २ को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई वल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माधव आदिको बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्रोंसे पूछ उनके परस्पर एक दूसरेका विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं क्योंकि एक २ की झूठमें नौसो निन्न्यानवें गवाह होगये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भड़ुवा आदि अपनी २ वस्तुकी बड़ाई दूसरेकी बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं ऐसा जानः—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच

तान्तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥२॥ मुण्ड० [१।२।१२-१३]

उस सत्यके विज्ञानार्थ वह समित्पाणि अर्थात् हाथ जोड़ अरिक्त-हस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्माको जाननेहारे गुरुके पास जावे। इन पाखण्डियोंके जालमें न गिरे॥ १॥

जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान्‌के पास जाय उस शान्तचित्त जितेन्द्रिय समीप प्राप्त जिज्ञासुको यथार्थ ब्रह्मविद्या परमात्माके गुण कर्म स्वभावका उपदेश करे और जिस २ साधनसे वह श्रोता धर्मार्थ काम मोक्ष और परमात्माको जान सके वैसी शिक्षा किया करे॥ २॥

जब वह ऐसे पुरुषके पास जाकर बोला कि महाराज अब इन सम्प्रदायोंके बखेड़ोंसे मेरा चित भ्रान्त होगया क्योंकि जो मैं इनमेंसे किसी एकका चेला होऊंगा तो नौसौ निन्न्यानवेसे विरोधी होना पड़ेगा। जिसके नौसौ निन्न्यानवे शत्रु और एक मित्र है उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये जिसको मैं ग्रहण करूं।

आप्तविद्वान—ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख पामर और जङ्गली मनुष्यको बहकाकर अपने जालमें फँसाके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे विचारे अपने मनुष्यजन्मके फलसे रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख! जिस बातमें ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो?

आप्त—तू जाकर इन २ बातोंको पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्रोंकी मंडलीके बीचमें खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो! सत्यभाषणमें धर्म है वा मिथ्यामें? सब एकस्वर होकर बोले कि सत्यभाषणमें धर्म और असत्यभाषणमें अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्थामें विवाह, सत्सङ्ग,

पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदिमें धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य, व्यवहार छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मोंमें [अधर्म]। सबने एक मत होके कहा कि विद्यादिके ग्रहणमें धर्म और अविद्यादिके ग्रहणमें अधर्म। तब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्यधर्मकी उन्नति और मिथ्यामार्गकी हानि क्यों नहीं करते हो? वे सब बोले जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञामें न रहें जीविका नष्ट होजाय फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथसे जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने २ मतका उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं क्योंकि "रोटी खाइये शक्करसे दुनियां ठगिये मक्करसे"। ऐसी बात है देखो! संसारमें सूधे सच्चे मनुष्यको कोई नहीं देता और न पूछता जो कुछ ढोंगबाजी और धूर्त्तता करता है वही पदार्थ पाता है।

जिज्ञासु—जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्योंको ठगते हो तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता?

मत वाले—हमने राजाको भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है छूटेगा नहीं।

जिज्ञासु—जब तुम छलसे अन्य मतस्थ मनुष्योंको ठग उनकी हानि करते हो परमेश्वरके सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरकमें पड़ोगे, थोड़े जीवनके लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते?

मत वाले—जब जैसा होगा तब देखा जायगा। नरक और परमेश्वरका दण्ड जब होगा तब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्नतासे धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कारसे नहीं लेते फिर राजा दण्ड क्यों देवे?

जिज्ञासु—जैसे कोई छोटे बालकको फुसलाके धनादि पदार्थ हर लेता है जैसे उसको दण्ड मिलता है वैसे तुमको क्यों नहीं मिलता?

क्योंकिः—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥

मनु॰ [अ० २ । श्लो॰ ५३]

जो ज्ञानरहित होता है वह बालक और जो ज्ञानका देनेहारा है वह पिता और वृद्ध कहाता है । जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो तुम्हारी बातोंमें नहीं फँसता किन्तु अज्ञानी लोग जो बालकके सदृश हैं उनको ठगनेमें तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये ।

मत वाले—जब राजा प्रजा सब हमारे मतमें हैं तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है ? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातोंको छोड़कर दूसरी व्यवस्था करेंगे ।

जिज्ञासु—जो तुम बैठे २ व्यर्थ माल मारते हो सो विद्याभ्यास कर गृहस्थोंके लड़के लड़कियोंको पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थोंका कल्याण हो जाय ।

मत वाले—जब हम बाल्यावस्थासे लेकर मरण तकके सुखोंको छोड़ें, बाल्यावस्थासे युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़नेमें रहें पश्चात् पढ़ानेमें और उपदेश करनेमें जन्मभर परिश्रम करें हमको क्या प्रयोजन ? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते हैं चैन करते हैं, उसको क्यों छोड़ें ?

जिज्ञासु—इसका परिणाम तो बुरा है । देखो ! तुमको बड़े रोग होते हैं, शीघ्र मर जाते हो, बुद्धिमानोंमें निन्दित होते हो, फिर भी क्यों नहीं समझते ?

मत वाले—अरे भाई !

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा ! टका टकटकायते ॥१॥
आना अंशकलाः प्रोक्ताः रूप्योऽसो भगवान्स्वयम् ।

अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम् ॥२॥

तू लड़का है संसारकी बातें नहीं जानता देख टकेके विना धर्म, टकाके विना कर्म, टकाके विना परमपद नहीं होता जिसके घरमें टका नहीं है वह हाय! टका टका करता २ उत्तम पदार्थोंको टक २ देखता रहता है कि हाय! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थको मैं भोगता ॥ १ ॥

क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान्का कथन श्रवण करते हैं सो तो नहीं दीखता परन्तु सोलह आने और पैसे कौड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रुपैया है वही साक्षात् भगवान् है। इसीलिये सब कोई रुपयोंकी खोजमें लगे रहते हैं क्योंकि सब काम रुपयोंसे सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

जिज्ञासु—ठीक है तुम्हारी भीतरकी लीला बाहर आगई तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है वह सब अपने सुखके लिये किया है परन्तु इसमें जगत्का नाश होता है क्योंकि जैसा सत्योपदेशमें संसारको लाभ पहुंचता है वैसी ही असत्योपदेशसे हानि होती है। जब तुमको धनका भी प्रयोजन था तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धनको इकट्ठा क्यों नहीं कर लेते हो?

मत वाले—उसमें परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी लीलामें हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है देखो! तुलसी दल डालके चरणामृत दे, कंठी बांध देते चेला मूडनेसे जन्मभरको पशुवत् हो जाता हैं फिर चाहें जैसे चलावें चल सकता है।

जिज्ञासु—ये लोग तुमको बहुतसा धन किसलिये देते हैं?

मत वाले—धर्म, स्वर्ग और मुक्तिके अर्थ।

जिज्ञासु—जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्तिका स्वरूप व साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने वालोंको क्या मिलेगा?

नमें प्रवृत्त रहते हैं। वेदमार्गकी उन्नति और यावत्पाखण्ड मार्ग हैं तावत्के खण्डनमें प्रवृत्त नहीं होते। ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हमको खण्डन मण्डनसे क्या प्रयोजन ? हम तो महात्मा हैं ऐसे लोग भी संसारमें भाररूप हैं। जब ऐसे हैं तभी तो वेदमार्गविरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये अब भी बढ़ते जाते हैं और इनका नाश होता जाता है तो भी इनकी आंख नहीं खुलती ! खुले कहांसे ? जो कुछ उनके मनमें परोपकार बुद्धि और कर्त्तव्यकर्म करनेमें उत्साह होवे किन्तु ये लोग अपनी प्रतिष्ठा खाने पीनेके सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसारकी निन्दासे बहुत डरते हैं पुनः। (लोकैषणा) लोकमें प्रतिष्ठा। (वित्तैषणा) धन बढ़ानेमें तत्पर होकर विषयभोग। (पुत्रैषणा) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना इन तीन एषणाओंका त्याग करना उचित है जब एषणा ही नहीं छूटी पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है ? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेशसे जगत्के कल्याण करनेमें अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियोंका मुख्य काम है। जब अपने २ अधिकार कर्मोंको नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थमें परिश्रम करते हैं। उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करनेमें संन्यासी भी तत्पर रहैं तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं। देखो ! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं, ईसाई मुसल्मान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुमसे अपने घरकी रक्षा और दूसरोंको मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो ! जबलों वर्त्तमान और भविष्यत्में उन्नतिशील नहीं होते तबलों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्योंकी वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धिके कारण वेदादि सत्यशास्त्रोंका पठनपाठन ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोंके यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। चेत रक्खो ! बहुतसी पाखण्डकी बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु वा दुकानदार पुत्रादि देनेकी

होनेसे संसारमें सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एकसा उपदेश करें तो एकमत होनेमें कुछ भी विलम्ब न हो।

मत वाले—आजकल कलयुग है सत्ययुगकी बात मत चाहो।

जिज्ञासु—कलयुग नाम कालका है, काल निष्क्रिय होनेसे कुछ धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं किन्तु तुम ही कलयुगकी मूर्त्तियां बन रहे हो जो मनुष्य ही सत्ययुग कलियुग न हों तो कोई भी संसारमें धर्मात्मा नहीं होता, ये सब सङ्गके गुण दोष हैं स्वाभाविक नहीं। इतना कहकर आप्तके पास गया। उनसे कहा कि महाराज! तुमने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसीके जालमें फँसकर नष्ट भ्रष्ट हो जाता, अब मैं भी इन पाखण्डियोंका खण्डन और वेदोक्त सत्य मतका मण्डन किया करूंगा।

आप्त—यही सब मनुष्योंका, विशेष विद्वान् और संन्यासियोंका काम है कि सब मनुष्योंको सत्यका मण्डन और असत्यका खण्डन पढ़ा सुनाके सत्योपदेशसे उपकार पहुंचाना चाहिये।

प्रश्न—जो ब्रह्मचारी, संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं?

उत्तर—ये आश्रम तो ठीक हैं परन्तु आजकल इनमें भी बहुतसी गड़बड़ है। कितने ही नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठ मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरणादिमें फँसे रहते हैं विद्या पढ़नेका नाम नहीं लेते कि जिस हेतुसे ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़नेमें परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरीके गलेके स्तनके सदृश निरर्थक हैं। और जो वैसे संन्यासी विद्याहीन दण्ड कमण्डलुले भिक्षामात्र करते फिरते हैं जो कुछ भी वेदमार्गकी उन्नति नहीं करते छोटी अवस्थामें संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याऽभ्यासको छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी इधर उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियोंका दर्शन पूजन करते फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते, एकान्त देशमें यथेष्ट खा पीकर सोते

पड़े रहते हैं और ईर्ष्या द्वेषमें फँसकर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते, काषाय वस्त्र और दण्ड ग्रहणमात्रसे अपनेको कृतकृत्य समझते अपनेको सर्वोत्कृष्ट जानकर उत्तम काम नहीं करते वैसे संन्यासी भी जगत्में व्यर्थ वास करते हैं और जो सब जगत्का हित साधते हैं वे ठीक हैं।

प्रश्न—गिरी, पुरी, भारती आदि गुसाईं लोग तो अच्छे हैं? क्योंकि मण्डली बांधकर इधर उधर घूमते हैं, सैकड़ों साधुओंको आनन्द कराते हैं और सर्वत्र अद्वैत मतका उपदेश करते हैं और कुछ २ पढ़ते पढ़ाते भी हैं इसलिए वे अच्छे होंगे।

उत्तर—ये सब दश नाम पीछेसे कल्पित किये हैं सनातन नहीं, उनकी मण्डलियां केवल भोजनार्थ हैं। बहुतसे साधु भोजन ही के लिये मण्डलियोंमें रहते हैं दम्भी भी हैं क्योंकि एकको महन्त बना सायंकालमें एक महन्त जो कि उनमें प्रधान होता है वह गद्दी पर बैठ जाता है। सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथमें पुष्प लेः—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्॥

इत्यादि श्लोक पढ़के हर हर बोल उनके ऊपर पुष्प वर्षा कर साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं। जो कोई ऐसा न करे उसको वहां रहना भी कठिन है। यह दम्भ संसारको दिखलानेके लिये करते हैं जिससे जगत्में प्रतिष्ठा होकर माल मिले। कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यासका अभिमानमात्र करते हैं, कर्म कुछ नहीं। सन्यासका वही कर्म है जो पांचवें समुल्लासमें लिख आये हैं उनको न करके व्यर्थ समय खोते हैं। जो कोई अच्छा उपदेश करे उसके भी विरोधी होते हैं। बहुधा ये लोग भस्म रुद्राक्ष धारण करते और कोई २ शैव संप्रदायका अभिमान रखते हैं और जब कभी शास्त्रार्थ करते हैं तो अपने मतका अर्थात् शङ्कराचार्योक्तका स्थापन और चक्रांकित आदिके खण्ड-

मतवाले—क्या इस लोकमें मिलता है? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात् परलोकमें मिलता है। जितना ये लोग हमको देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगोंको परलोकमें मिल जाता है।

जिज्ञासु—इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं, तुम लेने वालोंको क्या मिलेगा? नरक वा अन्य कुछ?

मतवाले—हम भजन किया करते हैं। इसका सुख हमको मिलेगा।

जिज्ञासु—तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टका यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्डको यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायगा। जो तुम परमेश्वरका भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।

मत वाले—क्या हम अशुद्ध हैं?

जिज्ञासु—भीतरके बड़े मैले हो।

मत वाले—तुमने कैसे जाना?

जिज्ञासु—तुम्हारी चाल चलन व्यवहारसे।

मत वाले—महात्माओंका व्यवहार हाथीके दांतके समान होता है। जैसे हाथीके दांत खानेके भिन्न और दिखलानेके भिन्न होते हैं वैसे ही भीतरसे हम पवित्र हैं और बाहरसे लीलामात्र करते हैं।

जिज्ञासु—जो तुम भीतरसे शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहरके काम भी शुद्ध होते इसलिये भीतर भी मैले हो।

मत वाले—हम चाहें जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

जिज्ञासु—जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

मत वाले—एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्योंके गुण, कर्म, स्वभाव भिन्न २ हैं।

जिज्ञासु—जो बाल्यावस्थामें एकसी शिक्षा हो सत्यभाषणादि धर्मका ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्मका त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जाय और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहें। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून

सिद्धियां बतलाता है तब उसके पास बहुत स्त्री जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र मांगती हैं और बाबाजी सबको पुत्र होनेका आशीर्वाद देता है। उनमेंसे जिस २ के पुत्र होता है वह २ समझती है कि बाबाजीके वचनसे हुआ। जब उससे कोई पूछेकी सुअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कुटी आदिके कच्चे बच्चे किस बाबाजीके वचनसे होतेहैं? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेगी! जो कोई कहे कि मैं लड़केको जीता रख सकता हूं तो आप ही क्यों मर जाता है? कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े २ बुद्धिमान् भी धोखा खाजाते हैं, जैसे धनसारीके ठग। ये लोग पांच सात मिलके दूर २ देशमें जाते हैं। जो शरीरसे डौलडालमें अच्छा होता है उसको सिद्ध बना लेते हैं जिस नगर वा ग्राममें धनाढ्य होते हैं उसके समीप जङ्गलमें उस सिद्धको बैठाते हैं उसके साधक नगरमें जाके अजान बनके जिस किसीको पूछते हैं "तुमने ऐसे महात्माको यहां कहीं देखा वा नहीं?" वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है?

साधक—बड़ा सिद्ध पुरुष है। मनकी बातें बतला देता है। जो मुखसे कहता है वह होजाता है। बड़ा योगीराज है, उसके दर्शनके लिये हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसीसे सुना था कि वे महात्मा इधरकी ओर आये हैं।

गृहस्थ—जब वे महात्मा तुमको मिलें तो हमको भी कहना, दर्शन करेंगे और मनकी बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिनभर नगरमें फिरते और हरएकको उस सिद्धकी बात कहकर रात्रिको इकट्ठे सिद्ध साधक होकर खाते पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राममें जाके उसी प्रकार दो तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक २ धनाढ्यसे बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुमको दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैयार होते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हमसे कहो कोई पुत्रकी इच्छा करता, कोई धनकी, कोई रोग निवारणकी और कोई शत्रुके

जीतने की । उनको वे साधक लेजाते हैं । सिद्ध साधकोंने जैसा संकेत किया होता है अर्थात् जिसको धनकी इच्छा हो उसको दाहनी ओर जिसको पुत्रकी इच्छा हो उसको सन्मुख, जिसको रोग निवारणकी इच्छा हो उसको बाईं ओर और जिसको शत्रु जीतनेकी इच्छा हो उसको पीछेसे लेजाके सामनेवालेके बीचमें बैठाते हैं । जब नमस्कार करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाईकी झपटसे उच्चस्वरसे बोलता है "क्या यहां हमारे पास पुत्र रक्खे हैं जो तू पुत्रकी इच्छा करके आया है ?" इसी प्रकार धनकी इच्छा वालेसे "क्या यहां थैलियां रक्खी हैं जो धनकी इच्छा करके आया ? फकीरोंके पास धन कहां धरा है ?" रोगवालेसे "क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग छुड़ानेकी इच्छा से आया ? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुड़ावें । जा किसी वैद्यके पास परन्तु जब उसका पिता रोगी हो तो उसका साधक अंगूठा, जो माता रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो तो मध्यमा. जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है । उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है, तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है । तब तो वे चारोंके चारों बड़े मोहित होजाते हैं । साधक लोग उनसे कहते हैं देखो जैसा हमने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं ? गृहस्थ हां जैसा तुमने कहा था वैसे ही हैं । तुमने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा भाग्योदय था जो ऐसे महात्मा मिले जिनके दर्शन करके हम कृतार्थ हुए ।

साधक—सुनो भाई ! ये महात्मा मनोगामी हैं । यहां बहुत दिन रहने वाले नहीं । जो कुछ इनका आशीर्वाद लेना हो तो अपने अपने सामर्थ्यके अनुकूल इनकी तन, मन, धनसे सेवा करो क्योंकि "सेवासे मेवा मिलती है" जो किसी पर प्रसन्न होगये तो जाने क्या वर दे दें । "सन्तोंकी गति अपार है ।" गृहस्थ ऐसे लल्लो पत्तोकी बातें सुनकर बड़े हर्षसे उनकी प्रशंसा करते हुए घरकी ओर जाते हैं साधक भी

उनके साथ ही चले जाते हैं क्योंकि कोई उनका पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्योंका जो कोई मित्र मिला उससे प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार जो २ साधकोंके साथ जाते हैं उन २ का हाल सब कह देते हैं। जब नगरमें हल्ला मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध आये हैं, चलो उनके पास। जब मेलाका मेला जाकर बहुतसे लोग पूछने लगते हैं कि महाराज मेरे मनका हाल कहिये तब तो व्यवस्थाके बिगड़ जानेसे चुपचाप होकर मौन साध जाता है और कहता है कि हमको बहुत मत सताओ तब तो झट उसके साधक भी कहने लग जाते हैं जो तुम इनको बहुत सताओगे तो चले जायंगे और जो कोई बड़ा आदमी होता है वह साधकको अलग बुलाके पूछता है कि हमारे मनकी बात कहलादो तो हम सच मानें। साधकने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्यने उससे कह दी। तब उसको उसी प्रकारके संकेतसे लेजाके बैठाल देता है। उस सिद्धने समझके झट कह दिया तब तो सब मेला भरने सुनली कि अहो! बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेट करता है। फिर जबतक मानता बहुतसी रही तबतक यथेष्ट लूट करते हैं और किन्हीं २ दो एक आंखके अन्धे गांठके पूरोंको पुत्र होनेका आशीर्वाद वा राख उठाके देदेता है और उससे सहस्रों रुपये लेकर कह देता है कि जो तेरी सच्ची भक्ति होगी तो पुत्र हो जायगा इस प्रकारके बहुतसे ठग होते हैं जिनकी विद्वान ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिये वेदादि विद्याका पढ़ना सत्संग करना होता है जिससे कोई उसको ठगाईमें न फँसा सके, औरोंको भी बचा सके। क्योंकि मनुष्यका नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षाके ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्थासे उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान होते हैं। जिनको कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं। इसलिये ज्ञानको विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति । यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाः ॥ [वृ० चा० ११ । १२]

यह किसी कविका श्लोक है । जो जिसका गुण नहीं जानता वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है, जैसे जङ्गली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जाका हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक, सत्पुरुषोंका संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील होता है वही धर्मार्थ काम मोक्षको प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्ममें सदा आनन्दमें रहता है ।

यह आर्यावर्त्तनिवासी लोगोंके मत विषयमें संक्षेपसे लिखा । इसके आगे जो थोड़ासा आर्यराजाओंका इतिहास मिला है इसको सब सज्जनोंको जनानेके लिये प्रकाशित किया जाता है ।

अब थोड़ासा आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराज "युधिष्ठिर" से लेके महाराजे "यशपाल" तक [हुए हैं] का इतिहास लिखते हैं । और श्रीमान् महाराजे "स्वायंभव" मनुसे लेके महाराज "युधिष्ठिर" तकका इतिहास महाभारतादिमें लिखा ही है और इससे सज्जन लोगोंको इधरके कुछ इतिहासका वर्त्तमान विदित होगा । यद्यपि यह विषय विद्यार्थी सम्मिलित "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" और "मोहनचन्द्रिका" जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारेसे निकलता था । (जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर चित्तौड़गढ़में सबको विदित है) उससे हमने अनुवाद किया है यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकोंका खोज कर प्रकाश करेंगे तो देशको बड़ा ही लाभ पहुंचेगा । उस पत्रसम्पादक महाशयने अपने मित्रसे एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रमके १७८२ (सत्रहसौ बयासी) का लिखा हुआ था उससे ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९—२० किरण अर्थात् दो पाक्षिकपत्रोंमें छापा है सो

निम्नलिखे प्रमाणे जानिये।

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली।

इन्द्रप्रस्थमें आर्य लोगोंने श्रीमन्महाराजे "यशपाल" पर्यन्त राज्य किया जिनमें श्रीमन्महाराजे "युधिष्ठिर" से महाराजे "यशपाल" तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एकसौ चौबीस) राजा वर्ष ४१५७ मास ९ दिन १४ समयमें हुए हैं इनका व्यौराः—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्य्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिरादि वंश अनुमान पीढ़ी ३० वर्ष १७७० मास ११ दिन १० इनका विस्तार

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ युधिष्ठिर	३६	८	२५
२ परीक्षित	६०	०	०
३ जनमेजय	८४	७	२३
४ अश्वमेध	८२	८	२२
५ द्वितीयराम	८८	२	८
६ छत्रमल	८१	११	२७
७ चित्ररथ	७५	३	१८
८ दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
९ उग्रसेन	७८	७	२१
१० शूरसेन	७८	७	२१
११ भुवनपति	६९	५	५
१२ रणजीत	६५	१०	४
१३ ऋक्षक	६४	७	४
१४ सुखदेव	६२	०	२४

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१५ नरहरिदेव	५१	१०	२
१६ सुचिरथ	४२	११	२
१७ शूरसेनदू०	५८	१०	८
१८ पर्वतसेन.	५५	८	१०
१९ मेधावी	५२	१०	१०
२० सोनचीर	५०	८	२१
२१ भीमदेव	४७	९	२०
२२ नृहरिदेव	४५	११	२३
२३ पूर्णमल	४४	८	७
२४ करदवी	४४	१०	८
२५ अलंमिक	५०	११	८
२६ उदयपाल	३८	९	०
२७ दुवनमल	४०	१०	२६
२८ दमात	३२	०	०
२९ भीमपाल	५८	५	८
३० क्षेमक	४८	११	२१

राजा क्षेमकके प्रधान विश्रवाने क्षेमक राजाको मारकर राज्य किया पीढ़ी १४ वर्ष ५००

मास ३ दिन १७ इनका विस्तार—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ विश्रवा	१७	३	२६
२ पुरसेनी	४२	८	२१
३ वीरसेनी	५२	१०	७
४ अनङ्गशायी	४७	८	२३
५ हरिजित	३५	६	१७
६ परमसेनी	४४	२	२३
७ सुखपाताल	३०	२	२१
८ कद्रुत	४२	६	२४
९ सज्ज	३२	२	१४
१० अमरचूड़	२७	३	१६
११ अमीपाल	२२	११	२५
१२ दशरथ	२५	४	१२
१३ वीरसाल	३१	८	११
१४ वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेनको वीरमहा प्रधानने मारकर राज्य किया वंश १६ वर्ष ४४५ मास ५ दिन ३ इनका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ वीरमहा	३५	१०	८
२ अजितसिंह	२७	७	१९
३ सर्वदत्त	२८	३	१०
४ भुवनपति	१५	४	१०
५ वीरसेन	२१	२	१३
६ महीपाल	४०	८	७
७ शत्रुशाल	२६	४	३
८ संघराज	१७	२	१०
९ तेजपाल	२८	११	१०
१० माणिकचन्द	३७	७	२१
११ कामसेनी	४२	५	१०
१२ शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३ जीवनलोक	२८	९	१७
१४ हरिराव	२६	१०	२९
१५ वीरसेन द्वि०	३५	२	२०
१६ आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगधदेशके राजाको "धन्धर" नामक राजा प्रयागकेने मारकर राज्य किया वंश पीढ़ी ९ वर्ष ३७४ मास ११ दिन २६ इनका विस्तार

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ धन्धर	४२	७	२४
२ महर्षी	४१	२	२९
३ सनरच्ची	५०	१०	१९
४ महायुद्ध	३०	३	८
५ दुरनाथ	२८	५	२५
६ जीवनराज	४५	२	५
७ रुद्रसेन	४७	४	२८
८ आरीलक	५२	१०	८
९ राजपाल	३६	०	०

राजा राजपालको सामन्त

महानपालने मारकर राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष १४ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा महानपालके राज्य पर राजा विक्रमादित्यने "अवन्तिका (उज्जैन) से लड़ाई करके राजा महान्पालको मारके राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष ९३ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा विक्रमादित्यको शाली-वाहनका उमराव समुद्रपाल योगी पैठणकेने मारकर राज्य किया पीढ़ी १६ वर्ष ३७२ मास ४ दिन २७ इनका विस्तार—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ समुद्रपाल	५४	२	२०
२ चन्द्रपाल	३६	५	४
३ साहायपाल	११	४	११
४ देवपाल	२७	१	२८
५ नरसिंहपाल	१८	०	२०
६ सामपाल	२७	१	१७
७ रघुपाल	२२	३	२५
८ गोविन्दपाल	२७	१	१७
९ अमृतपाल	३६	१०	१३
१० बलीपाल	१२	५	२७
११ महीपाल	१३	८	४
१२ हरीपाल	१४	८	४
१३ सीसपाल*	११	१०	१३
१४ मदनपाल	१७	१०	१९
१५ कर्मपाल	१६	२	२
१६ विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपालने पश्चिम दिशाका राजा (मलुखचन्द बोहरा था) इन पर चढ़ाई करके मैदानमें लड़ाईकी इस लड़ाईमें मलुखचन्दने विक्रमपालको मारकर इन्द्रप्रस्थका राज्य किया पीढ़ी १० वर्ष १९१ मास १ दिन १६ इनका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ मलुखचन्द	५४	२	१०
२ विक्रमचन्द	१२	७	१२
३ अमीनचन्द†	१०	०	५
४ रामचन्द	१३	११	८
५ हरीचन्द	१४	९	२४
६ कल्याणचन्द	१०	५	४
७ भीमचन्द	१६	२	९
८ लोवचन्द	२६	३	२२

---

* किसी इतिहासमें भीमपाल भी लिखा है।

† इसका नाम कहीं मानकचंद भी लिखा है।

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
९ गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१० रानी पद्मावती*	१	०	०

रानी पद्मावती मरगई इसके पुत्र भी कोई नहीं था इसलिये सब मुत्सद्दियोंने सलाह करके हरिप्रेम वैरागीको गद्दी पर बैठाके मुत्सद्दी राज्य करने लगे पीढ़ी ४ वर्ष ५० मास ० दिन २१ हरिप्रेमका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ हरिप्रेम	७	५	१६
२ गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३ गोपालप्रेम	१	७	२८
४ महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोड़के वनमें तपश्चर्या करने गये, यह बङ्गालके राजा आधीसेनने सुनके इन्द्रप्रस्थमें आके आप राज्य करने लगे पीढ़ी १२ वर्ष १५१ मास ११ दिन २ इनका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ आधीसेन	१८	५	२१
२ विलावलसेन	१२	४	२
३ केशवसेन	१५	७	१२
४ माधसेन	१२	४	२
५ मयूरसेन	२०	११	२७
६ भीमसेन	५	१०	९
७ कल्याणसेन	४	८	२१
८ हरीसेन	१२	०	२५
९ क्षेमसेन	८	११	१५
१० नारायणसेन	२	२	२९
११ लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२ दामोदरसेन	११	५	१९

राजा दामोदरसेनने अपने उमरावको बहुत दुःख दिया इसलिये राजाके उमराव दीपसिंहने सेना मिलाके राजाके साथ लड़ाईकी उस लड़ाईमें राजाको मारकर दीपसिंह आप राज्य करने लगे पीढ़ी ६ वर्ष १०७ मास ६ दिन २२ इनका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ दीपसिंह	१७	१	२६
२ राजसिंह	१४	५	०
३ रणसिंह	९	८	११
४ नरसिंह	४५	०	१५
५ हरिसिंह	१३	२	२९
६ जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंहने कुछ कार॰

*यह पद्मावती गोविन्दचंदकी रानी थी।

णके लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशाको भेज दी यह खबर पृथ्वीराज चौहाण वैराटके राजाने सुनकर जीवनसिंहके ऊपर चढ़ाई करके आये और लड़ाईमें जीवनसिंहको मारकर इन्द्रप्रस्थका राज्य किया * पीढ़ी ५ वर्ष ८६ मास ० दिन २० इनका विस्तारः—

आर्य्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ पृथ्वीराज	१२	२	१६
२ अभयपाल	१४	५	१७
३ दुर्जनपाल	११	४	१४
४ उदयपाल	११	७	३
५ यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपालके ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी गढ़गजनीसे चढ़ाई करके आया और राजा यशपालको प्रयागके किलेमें संवत् १२४६ सालमें पकड़कर कैद किया पश्चात् इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्लीका राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा पीढ़ी ५३ वर्ष ७५४ मास १ दिन १७ इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकोंमें लिखा है इसलिये यहां नहीं लिखा। इसके आगे बौद्ध जैनमत विषयमें लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषा विभूषित आर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डन-
विषय एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

---

* [इसके आगे और इतिहासोंमें इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराजके ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी चढ़कर आया और कई बार हारकर लौट गया अन्तमें संवत् १२४६ में आपसकी फूटके कारण महाराज पृथ्वीराजको जीत अन्धा कर अपने देशको लेगया पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य आप करने लगा, मुसलमानोंका राज्य पीढ़ी ७५ वर्ष ६१३ रहा]

अनुभूमिका (२)

जब आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्योंमें सत्यासत्यका यथावत् निर्णय करनेवाली वेदविद्या छूटकर अविद्या फैलके मतमतान्तर खड़े हुए यही जैन आदिके विद्याविरुद्धमतप्रचारका निमित्त हुआ क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादिमें जैनियोंका नाममात्र भी नहीं लिखा और जैनियोंके ग्रन्थोंमें वाल्मीकीय और भारतमें कथित "रामकृष्णादि" की गाथा बड़े विस्तारपूर्वक लिखी है इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला, क्योंकि जैसा अपने मतको बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थोंमें उनकी कथा अवश्य होती इसलिये जैनमत इन ग्रन्थोंके पीछे चला है। कोई कहे कि जैनियोंके ग्रन्थोंमेंसे कथाओंको लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदिमें तुम्हारे ग्रन्थोंका नाम लेख भी क्यों नहीं? और तुम्हारे ग्रन्थोंमें क्यों है? क्या पिताके जन्मका दर्शन पुत्र कर सकता है? कभी नहीं? इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाक्तादि मतोंके पीछे चला है अब इस बारहवें (१२) समुल्लासमें जो २ जैनियोंके मत विषयमें लिखा गया है सो २ उनके ग्रन्थोंके पतेपूर्वक लिखा है इसमें जैनी लोगोंको बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषयमें लिखा है वह केवल सत्यासत्यके निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करनेके अर्थ। इस लेखको जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्यके निर्णयमें विचार और लेख करनेका समय मिलेगा और बोध भी होगा। जबतक वादी प्रतिवादी होकर प्रीतिसे वाद वा लेख न किया जाय तबतक सत्यासत्यका निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान लोगोंमें

सत्यासत्यका निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानोंको महा अन्धकारमें पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है इसलिये सत्यके जय और असत्यके क्षयके अर्थ मित्रतासे वाद वा लेख करना हमारी मनुष्यजातिका मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्योंकी उन्नति कभी न हो। और यह बौद्ध जैन मतका विषय विना इनके अन्य मत वालोंको अपूर्व लाभ और बोध करनेवाला होगा क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकोंको किसी अन्य मत वालेको देखने पढ़ने वा लिखनेको भी नहीं देते। बड़े परिश्रमसे मेरे और विशेष आर्यसमाज मुंबईके मन्त्री "सेठ सेवकलाल कृष्णदास" के पुरुषार्थसे ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं तथा काशीस्थ "जैनप्रभाकर" यन्त्रालयमें छपाने और मुंबईमें "प्रकरणरत्नाकर" ग्रन्थके छपनेसे भी सब लोगोंको जैनियोंका मत देखना सहज हुआ है। भला यह किन विद्वानोंकी बात है कि अपने मतके पुस्तक आप ही देखना और दूसरोंको न दिखलाना! इसीसे विदित होता है कि इन ग्रन्थोंके बनानेवालोंको प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रन्थोंमें असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगेतो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरोंके ग्रन्थ देखेंगे तो इस मतमें श्रद्धा न रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरोंके दोष देखनेमें अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्यायकी बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकालके पश्चात् दूसरेके दोषोंमें दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियोंके मतका विषय सब सज्जनोंके सम्मुख धरता हूं जैसा है वैसा विचारें॥

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु।

अथ द्वादशसमुल्लासारम्भः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमत-खण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मोंको भी नहीं मानता था देखिये उनका मतः—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्युके अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इसलिये जब तक शरीरमें जीव रहे तब तक सुखसे रहे। जो कोई कहे कि धर्माचरणसे कष्ट होता है जो धर्मको छोड़े तो पुनर्जन्ममें बड़ा दुःख पावे! उसको "चारवाक" उत्तर देता है कि अरे भोले भाई! जो मरेके पश्चात् शरीर भस्म होजाता है कि जिसने खाया पिया है वह पुनः संसारमें न आवेगा इसलिये जैसे होसके वैसे आनन्दमें रहो लोकमें नीतिसे चलो, ऐश्वर्य्यको बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो यही लोक समझो परलोक कुछ नहीं। देखो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतोंके परिणामसे यह शरीर बना है इसमें इनके योगसे चैतन्य उत्पन्न होता है जैसे मादक द्रव्य खाने पीनेसे मद (नशा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीरके साथ उत्पन्न होकर शरीरके नाशके साथ आप भी नष्ट हो जाता है फिर किसको पाप पुण्यका फल होगा?

तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् ॥

इस शरीरमें चारों भूतोंके संयोगसे जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हींके वियोगके साथ ही नष्ट हो जाता है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता हम एक प्रत्यक्ष ही को मानते हैं क्योंकि प्रत्यक्षके विना अनुमानादि होते ही नहीं इसलिये मुख्य प्रत्यक्षके सामने अनुमानादि गौण होनेसे उसका ग्रहण नहीं करते सुन्दर स्त्री के आलिङ्गनसे आनन्दका करना पुरुषार्थका फल है ।

उत्तर—ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं इनसे चेतनकी उत्पत्ति कभी नहीं होसकती जैसे अब माता पिताके संयोगसे देहकी उत्पत्ति होती है वैसे ही आदि सृष्टिमें मनुष्यादि शरीरोंकी आकृति परमेश्वर कर्त्ताके विना कभी नहीं हो सकती । मदके समान चेतनकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता क्योंकि मद चेतनको होता है जड़को नहीं । पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसीका नहीं होता इसी प्रकार अदृश्य होनेसे जीवका भी अभाव न मानना चाहिये । जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है जब शरीरको छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्युको प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता । यही बात बृहदारण्यकमें कही है:—

नाहं मोहं ब्रवीमि अनुच्छित्तिधर्मायमात्मेति ॥

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे मैत्रेयि ! मैं मोहसे बात नहीं करता किन्तु आत्मा अविनाशी है जिसके योगसे शरीर चेष्टा करता है जब जीव शरीरसे पृथक् होजाता है तब शरीरमें ज्ञान कुछ भी नहीं रहता जो देहसे पृथक् आत्मा न हो तो जिसके संयोगसे चेतनता और वियोगसे जड़ता होती है वह देहसे पृथक् है जैसे आंख सबको देखती है परन्तु अपनेको नहीं, इसी प्रकार प्रत्यक्षका करनेवाला अपनेको ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता जैसे अपनी आंखसे सब घट पटादि

पदार्थ देखता है वैसे आंखको अपने ज्ञानसे देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है दृश्य कभी नहीं होता जैसे विना आधार आधेय, कारणके विना कार्य्य अवयवीके विना अवयव और कर्त्ताके विना कर्म नहीं रह सकते वैसे कर्ताके विना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने ही को पुरुषार्थका फल मानो तो क्षणिक सुख और उससे दुःख भी होता है वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है तो स्वर्गकी हानि होनेसे दुःख भोगना पड़ेगा जो कहो दुःखके छुड़ाने और सुखके बढ़ानेमें यत्न करना चाहिये तो मुक्ति सुखकी हानि हो जाती है इसलिये वह पुरुषार्थका फल नहीं।

चारवाक—जो दुःख संयुक्त सुखका त्याग करते हैं वे मूर्ख हैं जैसे धान्यार्थी धान्यका ग्रहण और बुसका त्याग करता है वैसे संसारमें बुद्धिमान् सुखका ग्रहण और दुःखका त्याग करें क्योंकि इस लोकके उपस्थित सुखको छोड़के अनुपस्थित स्वर्गके सुखकी इच्छा कर धूर्तकथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डका अनुष्ठान परलोकके लिये करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नहीं तो उसकी आशा करना मूर्खताका काम है क्योंकिः—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥

चारवाकमतप्रचारक "बृहस्पति" कहता है कि अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्मका लगाना बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरुषोंने जीविका बनाली है। किन्तु कांटे लगने आदिसे उत्पन्न हुए दुःख का नाम नरक, लोकसिद्ध राजा परमेश्वर और देहका नाश होना मोक्ष अन्य कुछ भी नहीं।

उत्तर—विषयरूपी सुखमात्रको पुरुषार्थका फल मानकर विषय दुःख निवारणमात्रमें कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है अग्निहोत्रादि यज्ञोंसे वायु, वृष्टि, जलकी शुद्धि द्वारा आरोग्यताका होना उससे

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि होती है उसको न जानकर वेद ईश्वर और वेदोक्त धर्मकी निन्दा करना धूर्तोंका काम है। जो त्रिदण्ड और भस्मधारणका खण्डन है सो ठीक है। यदि कण्टकादिसे उत्पन्न ही दुःखका नाम नरक हो तो उससे अधिक महारोगादि नरक क्यों नहीं? यद्यपि राजाको ऐश्वर्यवान् और प्रजापालनमें समर्थ होनेसे श्रेष्ठ मानें तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीरका विच्छेद होनामात्र मोक्ष है तो गद्हे कुत्ते आदि और तुममें क्या भेद रहा? किन्तु आकृति ही मात्र भिन्न रही।

चारवाकः—

अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥१॥
न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥२॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ ३ ॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ ४ ॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥५॥
यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥६॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।

कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥७॥
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥८॥
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥९॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम् ।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥१०॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम् ॥११॥

चारवाक, आभाणक. बौद्ध और जैन भी जगत्‌की उत्पत्ति स्वभावसे मानते हैं जो २ स्वभाविक गुण हैं उस २ से द्रव्यसंयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं कोई जगत्का कर्त्ता नहीं॥ १॥

परन्तु इनमेंसे चारवाक ऐसा मानता है किन्तु परलोक और जीवात्मा बौद्ध जैन मानते हैं चारवाक नहीं शेष इन तीनोंका मत कोई २ बात छोड़के एकसा है। न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोकमें जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रमकी क्रिया फलदायक है ॥ २ ॥

जो यज्ञमें पशुको मार होम करनेसे वह स्वर्गको जाता हो तो यजमान अपने पितादिको मार होम करके स्वर्गको क्यों नहीं भेजता ? ॥ ३ ॥

जो मरे हुए जीवोंका श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेशमें जाने वाले मार्गमें निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादिको क्यों ले जाते हैं ? क्योंकि जैसे मृतकके नामसे अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्गमें पहुंचता है तो परदेशमें जाने वालोंके लिये उनके सम्बन्धी भी घरमें उनके नामसे अर्पण करके देशान्तरमें पहुंचा देवें जो यह नहीं

पहुंचता तो स्वर्गमें वह क्योंकर पहुंच सकता है ? ॥ ४ ॥

जो मर्त्यलोकमें दान करनेसे स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देनेसे घरके ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता ? ॥ ५ ॥

इसलिये जब तक जीवे तब तक सुखसे जीवे जो घरमें पदार्थ न हो तो ऋण लेके आनन्द करे, ऋण देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस शरीरमें जीवने खाया पिया है उन दोनोंका पुनरागमन न होगा फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देवेगा ? ॥ ६ ॥

जो लोग कहते हैं कि मृत्युसमय जीव निकलके परलोकको जाता है यह बात मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्बके मोहसे बद्ध होकर पुनः घरमें क्यों नहीं आजाता ? ॥ ७ ॥

इसलिये यह सब ब्राह्मणोंने अपनी जीविकाका उपाय किया है जो दशगात्रादि मृतकक्रिया करते हैं यह सब उनकी जीविकाकी लीला है ॥ ८ ॥

वेदके बनानेहारे भांड, धूर्त्त और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन "जर्फरी" "तुर्फरी" इत्यादि पण्डितोंके धूर्त्ततायुक्त वचन हैं ॥ ९ ॥

देखो धूर्तोंकी रचना घोड़ेके लिङ्गको स्त्री ग्रहण करे उसके साथ समागम यजमानकी स्त्री से कराना कन्यासे ठट्ठा आदि लिखना धूर्त्तोंके विना नहीं हो सकता ॥ १० ॥

और जो मांसका खाना लिखा है वह वेदभाग राक्षसका बनाया है ॥ ११ ॥

उत्तर—विना चेतन परमेश्वरके निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयं आपसमें स्वभावसे नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। जो स्वभावसे ही होते हों तो द्वितीय सूर्य चन्द्र पृथिवी और नक्षत्रादि लोक आपसे आप क्यों नहीं बन जाते हैं ॥ १ ॥

स्वर्ग सुख भोग और नरक दुःख भोगका नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख दुःखका भोक्ता कौन होसके ? जैसे इस समय सुख दुःखका भोक्ता जीव है वैसे परजन्ममें भी होता है क्या सत्यभाषण

और परोपकारादि क्रिया भी वर्णाश्रमियोंकी निष्फल होगी? कभी नहीं ॥ २ ॥

पशु मारके होम करना वेदादि सत्यशास्त्रोंमें कहीं नहीं लिखा और मृतकोंका श्राद्ध तर्पण करना कपोलकल्पित है क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे भागवतादि पुराणमत वालोंका मत है इसलिये इस बातका खण्डन अखण्डनीय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता, विद्यमान जीवका अभाव नहीं हो सकता, देह भस्म हो जाता है जीव नहीं, जीव तो दूसरे शरीरमें जाता है इसलिये जो कोई भृगादि कर विराने पदार्थोंसे इस लोकमें भोग कर नहीं देते हैं वे निश्चय पापी होकर दूसरे जन्ममें दुःखरूपी नरक भोगते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

देहसे निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तरको प्राप्त होता है और उसको पूर्वजन्म तथा कुटुम्बादिका ज्ञान कुछ भी नहीं रहता इसलिये पुनः कुटुम्बमें नहीं आ सकता ॥७॥

हां ब्राह्मणोंने प्रेतकर्म अपनी जीविकार्थ बना लिया है, परन्तु वेदोक्त न होनेसे खण्डनीय है ॥८॥

अब कहिये जो चारवाक आदिने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वा पढ़े होते तो वेदोंकी निन्दा कभी न करते कि वेद भांड, धूर्त और निशाचरवत् पुरुषोंने बनाये हैं। ऐसा वचन कभी न निकालते। हां, भांड, धूर्त, निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्तता है, वेदोंकी नहीं। परन्तु शोक है, चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियोंपर कि इन्होंने मूल चार वेदोंकी संहिताओंको भी न सुना न देखा और न किसी विद्वान्से पढ़ा इसलिये नष्ट भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदोंकी निन्दा करने लगे। दुष्ट वाममार्गियोंकी प्रमाणशून्य कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओंको देखकर वेदोंसे विरोधी होकर अविद्यारूपी अगाध समुद्रमें जा गिरे ॥९॥

भला विचारना चाहिये कि स्त्रीसे अश्वके लिङ्गका ग्रहण कराके

उससे समागम कराना और यजमानकी कन्यासे हाँसी ठट्ठा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगोंसे अन्य मनुष्योंका काम नहीं है बिना इन महापापी वाममार्गियोंके भ्रष्ट, वेदार्थसे विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता ? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक आदि पर है जो कि विना विचारे वेदोंकी निन्दा करने पर तत्पर हुए तनिक तो अपनी बुद्धिसे काम लेते। क्या करें विचारे उनमें इतनी विद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्यका विचार कर सत्यका मण्डन और असत्यका खंडन करते ॥ १० ॥

और जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारोंकी लीला है इसलिये उनको राक्षस कहना उचित है परन्तु वेदोंमें कहीं मांसका खाना नहीं लिखा इसलिये इत्यादि मिथ्या बातोंका पाप उन टीकाकारोंको और जिन्होंने वेदोंके जाने सुने बिना मनमानी निन्दा की है निःसन्देह उनको लगेगा सच तो यह है कि जिन्होंने वेदोंसे विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविद्यारूपी अन्धकारमें पड़के सुखके बदले दारुण दुःख जितना पावें उतना ही न्यून है। इसलिये मनुष्यमात्रको वेदानुकूल चलना समुचित है ॥ ११ ॥

जो वाममार्गियोंने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदोंके नामसे अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कर्मोंकी प्रवृत्ति होनेके अर्थ वेदोंको कलङ्क लगाया इन्हीं बातोंको देखकर चारवाक बौद्ध तथा जैन लोग वेदोंकी निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेदविरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया। जो चारवाकादि वेदोंका मूलार्थ विचारते तो झूठी टीकाओंको देखकर सत्य वेदोक्त मतसे क्यों हाथ धो बैठते ? क्या करें विचारे "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" जब नष्ट भ्रष्ट होनेका समय आता है तब मनुष्यकी उलटी बुद्धि होजाती है ॥

अब जो चारवाकादिकोंमें भेद है सो लिखते हैं:—ये चारवाकादि बहुतसी बातोंमें एक हैं परन्तु चारवाक देहकी उत्पत्तिके साथ जीवो-

त्पत्ति और उसके नाशके साथ ही जीवका भी नाश मानता है। पुनर्जन्म और परलोकको नहीं मानता एक प्रत्यक्ष प्रमाणके बिना अनुमानादि प्रमाणोंको भी नहीं मानता। चारवाक शब्दका अर्थ "जो बोलनेमें प्रगल्भ और विशेषार्थ वैतण्डिक होता है"। और बौद्ध जैन प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्तिको भी मानते हैं इतना ही चारवाकसे बौद्ध और जैनियोंका भेद है परन्तु नास्तिकता, वेद ईश्वरकी निन्दा, परमतद्वेष, छः यतना (आगे कहे छः कर्म) और जगत्का कर्त्ता कोई नहीं इत्यादि बातोंमें सब एक ही हैं। यह चारवाकका मत संक्षेपसे दर्शा दिया।

अब बौद्धमतके विषयमें संक्षेपसे लिखते हैं—

कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात्।
अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनात्॥

कार्य्यकारणभाव अर्थात् कार्य्यके दर्शनसे कारण और कारणके दर्शनसे कार्य्यादिका साक्षात्कार प्रत्यक्षसे शेषमें अनुमान होता है इसके विना प्राणियोंके संपूर्ण व्यवहार पूर्ण नहीं हो सकते इत्यादि लक्षणोंसे अनुमानको अधिक मानकर चारवाकसे भिन्न शाखा बौद्धों की हुई है बौद्ध चार प्रकारके हैं:—

एक "माध्यमिक" दूसरा "योगाचार" तीसरा "सौत्रान्तिक" और चौथा "वैभाषिक" "बुद्ध्या निवर्त्तते स बौद्धः" जो बुद्धिसे सिद्ध हो अर्थात् जो २ बात अपनी बुद्धिमें आवे उस २ को माने और जो २ बुद्धिमें न आवे उस २ को नहीं माने। इनमेंसे पहिला "माध्यमिक" सर्वशून्य मानता है अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे सब शून्य अर्थात् आदिमें नहीं होते अन्तमें नहीं रहते, मध्यमें जो प्रतीत होता है वह भी प्रतीत समयमें है पश्चात् शून्य होजाता है, जैसे उत्पत्तिके पूर्व घट नहीं था, प्रध्वंसके पश्चात् नहीं रहता और घटज्ञान समयमें भासता और पदार्थान्तरमें ज्ञान जानेसे घटज्ञान नहीं रहता इसलिये शून्य ही

एक तत्त्व है। दूसरा "योगाचार" जो बाह्य शून्य मानता है अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञानमें भासते हैं बाहर नहीं जैसे घटज्ञान आत्मामें है तभी मनुष्य कहता है कि यह घट है जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता ऐसा मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" जो बाहर अर्थका अनुमान मानता है क्योंकि बाहर कोई पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होनेसे शेषमें अनुमान किया जाता है इसका ऐसा मत है। चौथा "वैभाषिक" है उसका मत बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है भीतर नहीं जैसे "अयं नीलो घटः" इस प्रतीतिमें नीलयुक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है यह ऐसा मानता है। यद्यपि इनका आचार्य्य बुद्ध एक है तथापि शिष्योंके बुद्धिभेदसे चार प्रकारकी शाखा होगई है जैसे सूर्य्यास्त होनेमें चार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म्म करते हैं। समय एक परन्तु अपनी २ बुद्धिके अनुसार भिन्न २ चेष्टा करते हैं अब इन पूर्वोक्त चारोंमें "माध्यमिक" सबको क्षणिक मानता है अर्थात् क्षण २ में बुद्धिके परिणाम होनेसे जो पूर्वक्षणमें ज्ञात वस्तु था वैसा ही दूसरे क्षणमें नहीं रहता इसलिये सबको क्षणिक मानना चाहिये ऐसे मानता है। दूसरा "योगाचार" जो प्रवृत्ति है सो सब दुःखरूप है क्योंकि प्राप्तिमें सन्तुष्ट कोई भी नहीं रहता एककी प्राप्तिमें दूसरेकी इच्छा बनी ही रहती है इस प्रकार मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" सब पदार्थ अपने २ लक्षणोंसे लक्षित होते हैं जैसे गायके चिह्नोंसे गाय और घोड़ोंके चिह्नोंसे घोड़ा ज्ञात होता है वैसे लक्षण लक्ष्यमें सदा रहते हैं ऐसा कहता है। चौथा "वैभाषिक" शून्य ही को एक पदार्थ मानता है प्रथम माध्यमिक सबको शून्य मानता था उसीका पक्ष वैभाषिकका भी है इत्यादि बौद्धोंमें बहुतसे विवाद पक्ष हैं इस प्रकार चार प्रकारकी भावना मानते हैं।

उत्तर—जो सब शून्य हो तो शून्यका जाननेवाला शून्य नहीं हो सकता और जो सब शून्य होवे तो शून्यको शून्य नहीं जान सके

इसलिये शून्यका ज्ञाता और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं और जो योगाचार बाह्य शून्यत्व मानता है तो पर्वत इसके भीतर होना चाहिये जो कहे कि पर्वत भीतर है तो उसके हृदयमें पर्वतके समान अवकाश कहां है इसलिये बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मामें रहता है सौत्रान्तिक किसी पदार्थको प्रत्यक्ष नहीं मानता तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी अनुमेय होना चाहिये प्रत्यक्ष नहीं जो प्रत्यक्ष न हो तो "अयं घटः" यह प्रयोग भी न होना चाहिये किन्तु "अयं घटैकदेशः" यह घटका एकदेश है और एकदेशका नाम घट नहीं किन्तु समुदायका नाम घट है "यह घट है" यह प्रत्यक्ष है अनुमेय नहीं क्योंकि सब अवयवोंमें अवयवी एक है उसके प्रत्यक्ष होनेसे सब घटके अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है। चौथा वैभाषिक बाह्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष मानता है वह भी ठीक नहीं क्योंकि जहां ज्ञाता और ज्ञान होता है वहीं प्रत्यक्ष होता है यद्यपि प्रत्यक्षका विषय बाहर होता है तदाकार ज्ञान आत्माको होता है वैसे जो क्षणिक पदार्थ और उसका ज्ञान क्षणिक हो तो "प्रत्यभिज्ञा" अर्थात् मैंने वह बात की थी ऐसा स्मरण न होना चाहिये परन्तु पूर्व दृष्ट श्रुतका स्मरण होता है इसलिये क्षणिकवाद भी ठीक नहीं जो सब दुःख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुखकी अपेक्षाके विना दुःख सिद्ध नहीं हो सकता जैसे रात्रिकी अपेक्षासे दिन और दिनकी अपेक्षासे रात्रि होती है इसलिये सब दुःख मानना ठीक नहीं जो स्वलक्षण ही मानें तो नेत्र रूपका लक्षण है और रूप लक्ष्य है जैसा घटका रूप घटके रूपका लक्षण चक्षु लक्ष्यसे भिन्न है और गन्ध पृथिवीसे अभिन्न है इसी प्रकार भिन्नाभिन्न लक्ष्य लक्षण मानना चाहिये। शून्यका जो उत्तर पूर्व दिया है वही अर्थात् शून्यका जाननेवाला शून्यसे भिन्न होता है।

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थंकरसंगतम्।

जिनको बौद्ध तीर्थंकर मानते हैं उन्हींको जैन भी मानते हैं इसी-

लिये ये दोनों एक हैं और पूर्वोक्त भावनाचतुष्टय अर्थात् चार भावनाओंसे सकल वासनाओंकी निवृत्तिसे शून्यरूप निर्वाण अर्थात् मुक्ति मानते हैं अपने शिष्योंको योग आचारका उपदेश करते हैं गुरुके वचनका प्रमाण करना अनादि बुद्धिमें वासना होनेसे बुद्धि ही अनेकाकार भासती है उनमेंसे प्रथमस्कन्धः—

रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः ।

(प्रथम) जो इन्द्रियोंसे रूपादि विषय ग्रहण किया जाता है वह "रूपस्कन्ध" (दूसरा) आलयविज्ञान प्रवृत्तिका जाननारूप व्यवहारको "विज्ञानस्कन्ध" (तीसरा) रूपस्कन्ध और विज्ञानस्कन्धसे उत्पन्न हुआ सुख दुःख आदि प्रतीति रूप व्यवहारको "वेदनास्कन्ध" (चौथा) गौ आदि संज्ञाका सम्बन्ध नामीके साथ मानने रूपको "संज्ञास्कन्ध" (पांचवां) वेदनास्कन्धसे रागद्वेषादि क्लेश और क्षुधा तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म और अधर्मरूप व्यवहारको "संस्कारस्कन्ध" मानते हैं। सब संसारमें दुःखरूप दुःखका घर दुःखका साधनरूप भावना करके संसारसे छूटना चारवाकोंसे अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीवको न मानना बौद्ध मानते हैं।

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः ।
भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल ॥१॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणः ।
भिन्ना हि देशना भिन्नशून्यताद्वयलक्षणा ॥२॥
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै ।
परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥३॥
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः ॥४॥

अर्थात् जो ज्ञानी, विरक्त, जीवनमुक्त लोकोंके साथ बुद्ध आदि तीर्थंकरोंके पदार्थके स्वरूपको जाननेवाला, जो कि भिन्न २ पदार्थोंका उपदेशक है जिसको बहुतसे भेद और बहुतसे उपायोंसे कहा है उसको मानना ॥ १ ॥

बड़े गम्भीर और प्रसिद्ध भेदसे कहीं २ गुप्त और प्रकटतासे भिन्न २ गुरुओंके उपदेशक जो कि न्यून लक्षणयुक्त पूर्व कह आये उनको मानना ॥ २ ॥

जो द्वादशायतन पूजा है वही मोक्ष करनेवाली है उस पूजाके लिये बहुतसे द्रव्यादि पदार्थोंको प्राप्त होके द्वादशायतन अर्थात् बारह प्रकारके स्थान विशेष बनाके सब प्रकारसे पूजा करनी चाहिये अन्यकी पूजा करनेसे क्या प्रयोजन ॥ ३ ॥

इनकी द्वादशायतन पूजा यह है—पांच ज्ञान इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका । पांच कर्मेन्द्रिय अर्थात् वाक्, हस्त, पाद, गुह्य, और उपस्थ ये १० इन्द्रियां और मन, बुद्धि इनहींका सत्कार अर्थात् इनको आनन्दमें प्रवृत्त रखना इत्यादि बौद्धका मत है ॥ ४ ॥

उत्तर—जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीवकी प्रवृत्ति न होनी चाहिये संसारमें जीवोंकी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है इसलिये सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें सुख दुःख दोनों हैं। और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं तो खानपानादि करना और पथ्य तथा ओषध्यादि सेवन करके शरीररक्षण करनेमें प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं ? जो कहें कि हम प्रवृत्त तो होते हैं परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं तो यह कथन ही सम्भव नहीं क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दुःख जानके निवृत्त होता है। संसारमें धर्म क्रिया विद्या सत्सङ्गादि श्रेष्ठ व्यवहार सब सुखकारक हैं इनको कोई भी विद्वान् दुःखका लिंग नहीं मान सकता विना बौद्धोंके। जो पांच स्कन्ध हैं वे भी पूर्ण अपूर्ण हैं क्योंकि जो ऐसे २ स्कन्ध विचा-

रने लगें तो एक २ के अनेक भेद हो सकते हैं। जिन तीर्थंकरोंको उपदेशक और लोकनाथ मानते हैं और अनादि जो नाथोंका भी नाथ परमात्मा है उसको नहीं मानते तो उन तीर्थंकरोंने उपदेश किससे पाया? जो कहैं कि स्वयं प्राप्त हुआ तो ऐसा कथन संभव नहीं क्योंकि कारणके विना कार्य्य नहीं हो सकता। अथवा उनके कथनानुसार ऐसा ही होता तो अब भी उनमें विना पढ़े पढ़ाये सुने सुनाये और ज्ञानियोंके सत्संग किये विना ज्ञानी क्यों नहीं होजाते जब नहीं होते तो ऐसा कथन सर्वथा निर्मूल और युक्तिशून्य सन्निपात रोगग्रस्त मनुष्यके बर्डानेके समान है जो शून्यरूप ही अद्वैत उपदेश बौद्धोंका है तो विद्यमान वस्तु शून्यरूप कभी नहीं हो सकता, हां सूक्ष्म कारणरूप तो होजाता है इसलिये यह भी कथन भ्रमरूपी है। जो द्रव्योंके उपार्जनसे ही पूर्वोक्त द्वादशायतनपूजा मोक्षका साधन मानते हैं तो दश प्राण और ग्यारहवें जीवात्माकी पूजा क्यों नहीं करते? जब इन्द्रिय और अन्तःकरणकी पूजा भी मोक्षप्रद है तो इन बौद्धों और विषयीजनोंमें क्या भेद रहा? जो उनसे ये बौद्ध नहीं बच सके तो वहां मुक्ति भी कहां रही जहां ऐसी बातें हैं वहां मुक्तिका क्या काम? क्या ही इन्होंने अपनी अविद्याकी उन्नति की है जिसका सादृश्य इनके विना दूसरोंसे नहीं घट सकता निश्चय तो यही होता है कि इनको वेद ईश्वरसे विरोध करनेका यही फल मिला। पूर्व तो सब संसारको दुःखरूपी भावना की, फिर बीचमें द्वादशायतनपूजा लगादी, क्या इनकी द्वादशायतनपूजा संसारके पदार्थोंसे बाहरकी है जो मुक्तिकी देनेहारी होसके तो भला कभी आंख मीचके कोई रत्न ढूंढा चाहैं वा ढूंढे कभी प्राप्त हो सकता है? ऐसी ही इनकी लीला वेद ईश्वरको न माननेसे हुई अब भी सुख चाहैं तो वेद ईश्वरका आश्रय लेकर अपना जन्म सफल करें। विवेकविलास ग्रन्थमें बौद्धोंका इस प्रकारका मत लिखा है—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।

आर्य्यसत्त्वाख्ययादत्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥१॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥२॥
दुःखसंसारिणस्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः।
विज्ञानं वेदनासंज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दा वा विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥४॥
रागादीनां गणो यः स्यात्समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः ॥५॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥६॥
प्रत्यक्षानुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥७॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥८॥
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदां स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥९॥
रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्त्तिता ॥१०॥
कृत्तिः कमण्डलुर्मौञ्ज्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।

संघो रक्तांबरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥११॥

बौद्धोंका सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव और जगत् क्षणभंगुर आर्य्यपुरुष और आर्य्या स्त्री तथा तत्त्वोंकी आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धोंमें मन्तव्य पदार्थ हैं ॥ १ ॥

इस विश्वको दुःखका घर जाने तदनन्तर समुदय अर्थात् उन्नति होती है और इनकी व्याख्या क्रमसे सुनो ॥ २ ॥

संसारमें दुःख ही है जो पञ्चस्कन्ध पूर्व कह आये हैं उनको जानना ॥ ३ ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय उनके शब्दादि विषय पांच और मन बुद्धि अन्तःकरण धर्मका स्थान ये द्वादश हैं ॥ ४ ॥

जो मनुष्योंके हृदयमें रागद्वेषादि समूहकी उत्पत्ति होती है वह समुदय और जो आत्मा आत्माके सम्बन्धी और स्वभाव है वह आख्या इन्हींसे फिर समुदय होता है ॥ ५ ॥

सब संस्कार क्षणिक हैं जो यह वासना स्थिर होना वह बौद्धोंका मार्ग है और वही शून्य तत्त्व शून्यरूप हो जाना मोक्ष है ॥ ६ ॥

बौद्ध लोग प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं चार प्रकारके इनमें भेद हैं वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक ॥ ७ ॥

इनमें वैभाषिक ज्ञानमें जो अर्थ है उसको विद्यमान मानना है क्योंकि जो ज्ञानमें नहीं है उसका होना सिद्ध पुरुष नहीं मान सकता। और सौत्रान्तिक भीतरको प्रत्यक्ष पदार्थ मानता है बाहर नहीं ॥ ८ ॥

योगाचार आकार सहित विज्ञानयुक्त बुद्धिको मानता है और माध्यमिक केवल अपनेमें पदार्थोंका ज्ञानमात्र मानता है पदार्थोंको नहीं मानता ॥ ९ ॥

और रागादि ज्ञानके प्रवाहकी वासनाके नाशसे उत्पन्न हुई मुक्ति चारों बौद्धोंकी है ॥ १० ॥

मृगादिका चमड़ा, कमण्डलु, मूण्ड मुड़ाये, वल्कल वस्त्र, पूर्वाह्न अर्थात् ६ बजेसे पूर्व भोजन, अकेला न रहै, रक्त वस्त्रका धारण यह बौद्धोंके साधुओंका वेश है ॥ ११ ॥

उत्तर—जो बौद्धोंका सुगत बुद्ध ही देव है तो उसका गुरु कौन था ? और जो विश्व क्षणभंग हो तो चिरदृष्ट पदार्थका यह वही है ऐसा स्मरण न होना चाहिये जो क्षणभंग होता तो वह पदार्थ ही नहीं रहता पुनः स्मरण किसका होवे जो क्षणिकवाद ही बौद्धोंका मार्ग है तो इनका मोक्ष भी क्षणभंग होगा जो ज्ञानसे युक्त अर्थ द्रव्य हो तो जड़ द्रव्यमें भी ज्ञान होना चाहिये और वह चालनादि क्रिया किस पर करता है ? भला जो बाहर दीखता है वह मिथ्या कैसे हो सकता है ? जो आकाशसे सहित बुद्धि होवे तो दृश्य होना चाहिये जो केवल ज्ञान ही हृदयमें आत्मस्थ होवे बाह्य पदार्थोंको बल ज्ञान ही माना जाय तो ज्ञेय पदार्थके विना ज्ञान ही नहीं हो सकता, जो वासनाच्छेद ही मुक्ति हैं तो सुषुप्तिमें भी मुक्ति माननी चाहिये ऐसा मानना विद्यासे विरुद्ध होनेके कारण तिरस्करणीय है। इत्यादि बातें संक्षेपतः बौद्ध मतस्थोंकी प्रदर्शित कर दी हैं अब बुद्धिमान् विचारशील पुरुष अवलोकन करके जान जायेंगे कि इनकी कैसी विद्या और कैसा मत है। इसको जैन लोग भी मानते हैं ॥

यहांसे आगे जैनमतका वर्णन है।

प्रकरणरत्नाकर १ भाग, नयचक्रसारमें निम्नलिखित बातें लिखी हैं

बौद्ध लोग समय २ में नवीनपनसे (१) आकाश, (२) काल, (३) जीव, (४) पुद्गल ये चार द्रव्य मानते हैं और जैनी लोग धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल इन छः द्रव्योंको मानते हैं। इनमें कालको आस्तिकाय नहीं मानते किन्तु ऐसा कहते हैं कि काल उपचारसे द्रव्य है वस्तुतः नहीं उनमेंसे "धर्मास्तिकाय" जो गतिपरिणामीपनसे परिणामको प्राप्त हुआ जीव

और पुद्गल इसकी गतिके समीपसे स्तम्भन करनेका हेतु है वह धर्मास्तिकाय और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और लोकमें व्यापक है दूसरा "अधर्मास्तिकाय" यह है कि जो स्थिरतासे परिणामी हुए जीव तथा पुद्गलकी स्थितिके आश्रयका हेतु है। तीसरा "आकाशास्तिकाय" उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्योंका आधार जिसमें अवगाहन प्रवेश निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलोंको अवगाहनका हेतु और सर्वव्यापी है। चौथा "पुद्गलास्तिकाय" यह है कि जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एक रस, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, कार्यका लिङ्ग पूरने और गलनेके स्वभाववाला होता है। पांचवां "जीवास्तिकाय" जो चेतनालक्षण ज्ञान दर्शनमें उपयुक्त अनन्त पर्यायोंसे परिणामी होनेवाला कर्त्ता भोक्ता है। और छठा "काल" यह है कि जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायोंका परत्व अपरत्व नवीन प्राचीनताका चिह्नरूप प्रसिद्ध वर्त्तमानरूप पर्यायोंसे युक्त है वह काल कहाता है।

समीक्षक—जो बौद्धोंने चार द्रव्य प्रतिसमयमें नवीन २ माने हैं वे झूठे हैं क्योंकि आकाश, काल, जीव और परमाणु ये नये वा पुराने कभी नहीं हो सकते क्योंकि ये अनादि और कारणरूपसे अविनाशी हैं पुनः नया और पुरानापन कैसे घट सकता है। और जैनियोंका मानना भी ठीक नहीं क्योंकि धर्माधर्म द्रव्य नहीं किन्तु गुण हैं ये दोनों जीवास्तिकायमें आजाते हैं इसलिये आकाश, परमाणु, जीव और काल मानते तो ठीक था और जो नव द्रव्य वैशेषिकमें माने हैं वे ही ठीक हैं क्योंकि पृथिव्यादि पांच तत्व, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव पृथक् २ पदार्थ निश्चित हैं, एक जीवको चेतन मानकर ईश्वरको न मानना यह जैन बौद्धोंकी मिथ्या पक्षपातकी बात है।

अब जो बौद्ध और जैनी लोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते हैं सो यह है कि "सन् घट" इसको प्रथम भङ्ग कहते हैं क्योंकि घट अपनी वर्त्तमानतासे युक्त अर्थात् घड़ा है इसने अभावका विरोध किया है। दूसरा भङ्ग "असन घट" घड़ा नहीं है प्रथम घटके भावसे इस

घड़ेके असद्भावसे दूसरा भङ्ग है। तीसरा भङ्ग यह है कि "सन्नसन्न घटः" अर्थात् यह घड़ा तो है परन्तु पट नहीं क्योंकि उन दोनोंसे पृथक् होगया। चौथा भंग "घटोऽघटः" जैसे "अघटः पटः" दूसरे पटके अभावकी अपेक्षा अपनेमें होनेसे घट अघट कहाता है युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है। पांचवां भंग यह है कि घटको पट कहना अयोग्य अर्थात् उसमें घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है। छठा भंग यह है कि जो घट नहीं है वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह है और कहने योग्य भी है। और सातवां भंग यह है कि जो कहनेको इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहनेके योग्य भी घट नहीं यह सप्तमभंग कहाता है इसी प्रकार—

स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भंगः ॥१॥
स्यान्नास्ति जीवो द्वितीयो भंगः ॥२॥
स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंगः ॥३॥
स्यादस्ति नास्ति नास्तिरूपो जीवश्चतुर्थो भंगः।४।
स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पंचमो भंगः ॥५॥
स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भंगः ॥६॥
स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भंगः ॥७॥

अर्थात् है जीव, ऐसा कथन होवे तो जीवके विरोधी जड़ पदार्थोंका जीवमें अभावरूप भंग प्रथम कहाता है। दूसरा भंग यह है कि नहीं है जीव जड़में ऐसा कथन भी होता है इससे यह दूसरा भंग कहाता है। जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं यह तीसरा भंग। जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीरसे पृथक् होता है तब अप्रसिद्ध रहता है ऐसा कथन होवे उसको चतुर्थ भंग

कहते हैं जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं जो ऐसा कथन है उसको पञ्चम भंग कहते हैं जीव प्रत्यक्ष प्रमाणसे कहनेमें नहीं आता इसलिये चक्षु प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा व्यवहार है उसको छठा भंग कहते हैं एक कालमें जीवका अनुमानसे होना और अदृश्यपनमें न होना और एकसा न रहना किन्तु क्षण २ में परिणामको प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होवे और नास्ति अस्ति व्यवहार भी न होवे यह सातवां भंग कहाता है।

इसी प्रकार नित्यत्व सप्तभंगी और अनित्यत्व सप्तभंगी तथा सामान्य धर्म विशेष धर्म्म गुण और पर्य्यायोंकी प्रत्येक वस्तुमें सप्तभंगी होती है वैसे द्रव्य, गुण, स्वभाव और पर्य्यायोंके अनन्त होनेसे सप्तभंगी भी अनन्त होती है ऐसा बौद्ध तथा जैनियोंका स्याद्वाद और सप्तभंगी न्याय कहाता है।

समीक्षक—यह कथन एक अन्योऽन्याभावमें साधर्म्य और वैधर्म्यमें चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरणको छोड़कर कठिन जाल रचना केवल अज्ञानियोंके फँसानेके लिये होता है। देखो! जीवका अजीवमें और अजीवका जीवमें अभाव रहता ही है जैसे जीव और जड़के वर्त्तमान होनेसे साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होनेसे वैधर्म्य अर्थात् जीवमें चेतनत्व (अस्ति) है और जड़त्व (नास्ति) नहीं है। इसी प्रकार जड़में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है इससे गुण, कर्म, स्वभावके समान धर्म और विरुद्ध धर्म्मके विचारसे सब इनका सप्तभंगी और स्याद्वाद सहजतासे समझमें आता है फिर इतना प्रपञ्च बढ़ाना किस कामका है? इसमें बौद्ध और जैनोंका एक मत है। थोड़ासा ही पृथक् होनेसे भिन्नभाव भी हो जाता है।

अब इसके आगे केवल जैनमत विषयमें लिखा जाता है—

चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।

उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥१॥
हेयं हि कर्तृ रागादि तत् कार्यमविवेकिनः।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥२॥

जैन लोग "चित्" और "अचित्" अर्थात् चेतन और जड़ दो ही परतत्त्व मानते हैं उन दोनोंके विवेचनका नाम विवेक जो २ ग्रहणके योग्य है उस २ का ग्रहण और जो २ त्याग करने योग्य है उस २ के त्याग करनेवालेको विवेकी कहते हैं ॥ १ ॥

जगत्का कर्त्ता और रागादि तथा ईश्वरने जगत् किया है इस अविवेकी मतका त्याग और योगसे लक्षित परमज्योतिस्वरूप जो जीव है उसका ग्रहण करना उत्तम है ॥ २ ॥

अर्थात्—जीवके विना दूसरा चेतन तत्त्व ईश्वरको नहीं मानते, कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं ऐसा बौद्ध जैन लोग मानते हैं। इसमें राजा शिवप्रसादजी "इतिहासतिमिरनाशक" ग्रन्थमें लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं एक जैन और दूसरा बौद्ध, ये पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बौद्धोंमें वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनियोंका विरोध परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं उनका नाम बौद्धोंने बुद्ध रक्खा है और जो जैनियोंने गणधर और जिनवर इसमें जिनकी परम्परा जैनमत है उन राजा शिवप्रसादजीने अपने 'इतिहासतिमिरनाशक' ग्रन्थके तीसरे खण्डमें लिखा है कि "स्वामी शङ्कराचार्य" से पहिले जिनको हुए कुल हजार वर्षके लगभग गुजरे हैं सारे भारतवर्षमें बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था इस पर नोट—"बौद्ध कहनेसे हमारा आशय उस मतसे है जो महावीरके गणधर गौतम स्वामीके समयसे शङ्कर स्वामीके समय तक वेदविरुद्ध सारे भारतवर्षमें फैला रहा और जिसको अशोक और सम्प्रति महाराजने माना उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते। जिन जिससे जैन निकला और बुद्ध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं कोशमें

दोनोंका अर्थ एक ही लिखा है और गौतमको दोनों मानते हैं. वनो द्वीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थोंमें शाक्यमुनि गौतम बुद्धको अकसर महावीर ही के नामसे लिखा है। पस उसके समयमें एक ही उनका मत रहा होगा हमने जो जैन न लिखकर गौतमके मत वालोंको बौद्ध लिखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उसको दूसरे देशवालोंने बौद्ध ही के नामसे लिखा है" ॥ ऐसा ही अमरकोशमें भी लिखा है:—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः ॥१॥
षडभिज्ञोदशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः।२।
स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धश्शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः ॥३॥

अमरकोश कां० १। वर्ग १ श्लोक ८ से १० तक ॥

अब देखो! बुद्ध जिन और बौद्ध तथा जैन एकके नाम हैं वा नहीं? क्या अमरसिंह भी बुद्ध जिनके एक लिखनेमें भूल गया है? जो अविद्वान् जैन हैं वे तो न अपना जानते और न दूसरेका, केवल हठमात्रसे बर्डाया करते हैं परन्तु जो जैनोंमें विद्वान् हैं वे सब जानते हैं कि "बुद्ध" और "जिन" तथा "बौद्ध" और "जैन" पर्यायवाची हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं। जैन लोग कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर होजाता है, वे जो अपने तीर्थंकरोंको ही केवली मुक्ति प्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन्, केवली, तीर्थंकृत, जिन ये छः नास्तिकोंके देवताओंके नाम हैं। आदिदेवका स्वरूप चन्द्रसूरिने "आप्तनिश्चयालङ्कार" ग्रन्थमें लिखा है:—

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।

यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥१॥

वैसे ही "तौतातितों" ने भी लिखा है कि—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥२॥
न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः।
न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्पते ॥३॥
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते।
न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥४॥

जो रागादि दोषोंसे रहित, त्रैलोक्यमें पूजनीय यथावत् पदार्थोंका वक्ता सर्वज्ञ अर्हन देव है वही परमेश्वर है ॥ १ ॥

जिसलिये हम इस समय परमेश्वरको नहीं देखते इसलिये कोई सर्वज्ञ अनादि परमेश्वर प्रत्यक्ष नहीं, जब ईश्वरमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान भी नहीं घट सकता क्योंकि एक देश प्रत्यक्षके विना अनुमान नहीं हो सकता ॥ २ ॥

जब प्रत्यक्ष अनुमान नहीं तो आगम अर्थात् नित्य अनादि सर्वज्ञ परमात्माका बोधक शब्दप्रमाण भी नहीं हो सकता, जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थवाद अर्थात् स्तुति निन्दा परकृति अर्थात् पराये चरित्रका वर्णन और पुराकल्प अर्थात् इतिहासका तात्पर्य भी नहीं घट सकता ॥ ३ ॥

और अन्यार्थप्रधान अर्थात् बहुब्रीहि समासके तुल्य परोक्ष परमात्माकी सिद्धिका विधान भी नहीं हो सकता, पुनः ईश्वरके उपदेष्टाओंसे सुने विना अनुवाद भी कैसे हो सकता है ? ॥ ४ ॥

(इसका प्रत्याख्यान अर्थात् खण्डन) जो अनादि ईश्वर न होता तो "अर्हन्" देवके माता पिता आदिके शरीरका सांचा कौन

बनाता ? विना संयोगकर्त्ताके यथायोग्य सर्वाऽवयवसम्पन्न, यथोचित कार्य करनेमें उपयुक्त शरीर बन ही नहीं सकता और जिन पदार्थोंसे शरीर बना है उनके जड़ होनेसे स्वयं इस प्रकारकी उत्तम रचनासे युक्त शरीर रूप नहीं बन सकते क्योंकि उनमें यथायोग्य बननेका ज्ञान ही नहीं और जो रागादि दोषोंसे सहित होकर पश्चात् दोष रहित होता है वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिस निमित्तसे वह रागादिसे मुक्त होता है वह मुक्ति उस निमित्तके छूटनेसे उसका कार्य मुक्ति भी अनित्य होगी, जो अल्प और अल्पज्ञ है वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता क्योंकि जीवका स्वरूप एकदेशी और परिमित गुण, कर्म, स्वभाववाला होता है वह सब विद्याओंमें सब प्रकार यथार्थवक्ता नहीं हो सकता इसलिये तुम्हारे तीर्थंकर परमेश्वर कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

क्या तुम जो प्रत्यक्ष पदार्थ हैं उन्हींको मानते हो अप्रत्यक्षको नहीं जैसे कानसे रूप और चक्षुसे शब्दका ग्रहण नहीं हो सकता वैसे अनादि परमात्माको देखनेका साधन शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्याससे पवित्रात्मा परमात्माको प्रत्यक्ष देखता है जैसे विना पढ़े विद्याके प्रयोजनोंकी प्राप्ति नहीं होती वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञानके विना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता, जैसे भूमिके रूपादि गुण ही को देख जानके गुणोंसे अव्यवहित सम्बन्धसे पृथिवी प्रत्यक्ष होती है वैसे इस सृष्टिमें परमात्माकी रचना विशेष लिङ्ग देखके परमात्मा प्रत्यक्ष होता है और जो पापाचरणेच्छा समयमें भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्माकी ओरसे है इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होता है। अनुमानके होनेमें क्या सन्देह हो सकता है ॥ २ ॥

और प्रत्यक्ष तथा अनुमानके होनेसे आगम प्रमाण भी नित्य, अनादि सर्वज्ञ ईश्वरका बोधक होता है इसलिये शब्द प्रमाण भी ईश्वरमें है जब तीनों प्रमाणोंसे ईश्वरको जीव जान सकता है तब अर्थवाद

अर्थात् परमेश्वरके गुणोंकी प्रशंसा करना भी यथार्थ घटना है क्योंकि जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य होते हैं उनकी प्रशंसा करनेमें कोई भी प्रतिबन्धक नहीं ॥ ३ ॥

जैसे मनुष्योंमें कर्त्ताके विना कोई भी कार्य नहीं होता वैसे ही इस महत्कार्यका कर्त्ताके विना होना सर्वथा असंभव है। जब ऐसा है तो ईश्वरके होनेमें मूढ़को भी सन्देह नहीं हो सकता। जब परमात्माके उपदेश करनेवालोंसे सुनेंगे पश्चात् उसका अनुवाद करना भी सरल है ॥ ४ ॥

इससे जैनोंके प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ईश्वरका खण्डन करना आदि व्यवहार अनुचित है ॥

प्रश्न—

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥१॥
अथतद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रदीयते।
प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः ॥२॥
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता।
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते ॥३॥

बीचमें सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्रका अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि किये हुए असत्य वचनसे उसका प्रतिपादन किस प्रकारसे हो सके ? ॥ १ ॥

और जो परमेश्वर ही के वचनसे परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वरसे अनादि शास्त्रकी सिद्धि, अनादि शास्त्रसे अनादि ईश्वरकी सिद्धि, अन्योऽन्याश्रय दोष आता है ॥ २ ॥

क्योंकि सर्वज्ञके कथनसे वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेदवचनसे ईश्वरकी सिद्धि करते हो यह कैसे सिद्ध हो सकता है ? उस

शास्त्र और परमेश्वरकी सिद्धिके लिये तीसरा कोई प्रमाण चाहिये जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोष आवेगा ॥ ३ ॥

उत्तर—हम लोग परमेश्वर और परमेश्वरके गुण, कर्म स्वभावको अनादि मानते हैं. अनादि नित्य पदार्थोंमें अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं आ सकता जैसे कार्य्यसे कारणका ज्ञान और कारणसे कार्य्यका बोध होता है, कार्य्यमें कारणका स्वभाव और कारणमें कार्य्यका स्वभाव नित्य है वैसे परमेश्वर और परमेश्वरके अनन्त विद्यादि गुण नित्य होनेसे ईश्वरप्रणीत वेदमें अनवस्था दोष नहीं आता ॥१।२।३॥

और तुम तीर्थंकरोंको परमेश्वर मानते हो यह कभी नहीं घट सकता क्योंकि विना माता पिताके उनका शरीर ही नहीं होता तो वे तपश्चर्य्याज्ञान और मुक्तिको कैसे पा सकते हैं वैसे ही संयोगका आदि अवश्य होता है क्योंकि विना वियोगके संयोग हो ही नहीं सकता इसलिये अनादि सृष्टिकर्त्ता परमात्माको मानो। देखो ! चाहे कितना ही कोई सिद्ध हो तो भी शरीर आदिकी रचनाको पूर्णतासे नहीं जान सकता, जब सिद्ध जीव सुषुप्ति दशामें जाता है तब उसको कुछ भी भान नहीं रहता, जब जीव दुःखको प्राप्त होता है तब उसका ज्ञान भी न्यून हो जाता है, ऐसे परिच्छिन्न सामर्थ्यवाले एक देशमें रहनेवालेको ईश्वर मानना विना भ्रान्तिबुद्धियुक्त जैनियोंसे अन्य कोई भी नहीं मान सकता। जो तुम कहो कि वे तीर्थंकर अपने माता पिताओंसे हुए तो वे किनसे और उनके माता पिता किनसे ? फिर उनके भी माता पिता किनसे उत्पन्न हुए ? इत्यादि अनवस्था आवेगी।

आस्तिक और नास्तिक संवाद ॥

इसके आगे प्रकरणरत्नाकरके दूसरे भाग आस्तिक नास्तिकके संवादके प्रश्नोत्तर यहां लिखते हैं जिसको बड़े २ जैनियोंने अपनी सम्मतिके साथ माना और मुम्बईमें छपवाया है।

नास्तिक—ईश्वरकी इच्छासे कुछ नहीं होता जो कुछ होता है वह कर्मसे।

आस्तिक—जो सब कर्मसे होता है तो कर्म किससे होता है? जो कहो कि जीव आदिसे होता है तो जिन श्रोत्रादि साधनोंसे जीव कर्म करता है वे किनसे हुए? जो कहो कि अनादि काल और स्वभावसे होते हैं तो अनादिका छूटना असम्भव होकर तुम्हारे मतमें मुक्तिका अभाव होगा। जो कहो कि प्रागभाववत् अनादि सान्त हैं तो विना यत्नके सबके कर्म निवृत्त हो जायेंगे। यदि ईश्वर फलप्रदाता न हो तो पापके फल दुःखको जीव अपनी इच्छासे कभी नहीं भोगेगा जैसे चोर आदि चोरीका फल दण्ड अपनी इच्छासे नहीं भोगते किन्तु राज्यव्यवस्थासे भोगते हैं वैसे ही परमेश्वरके भुगानेसे जीव पाप और पुण्यके फलोंको भोगते हैं अन्यथा कर्मसङ्कर हो जायेंगे अन्यके कर्म अन्यको भोगने पड़ेंगे।

नास्तिक—ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करता होता तो कर्मका फल भी भोगना पड़ता इसलिये जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तोंको अक्रिय मानते हैं वैसे तुम भी मानो।

आस्तिक—ईश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है जब चेतन है तो कर्त्ता क्यों नहीं? और जो कर्त्ता है तो वह क्रियासे पृथक् कभी नहीं हो सकता जैसा तुम कृत्रिम बनावटके ईश्वर तीर्थंकरको जीवसे बने हुए मानते हो इस प्रकारके ईश्वरको कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता क्योंकि जो निमित्तसे ईश्वर बने तो अनित्य और पराधीन होजाय क्योंकि ईश्वर बननेके प्रथम जीव था पश्चात् किसी निमित्तसे ईश्वर बना तो फिर भी जीव होजायगा अपने जीवत्व स्वभावको कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अनन्तकालसे जीव है और अनन्तकाल तक रहेगा इसलिये इस अनादि स्वतः सिद्ध ईश्वरको मानना योग्य है। देखो! जैसे वर्त्तमान समयमें जीव पाप पुण्य करता, सुख दुःख भोगता है वैसे ईश्वर कभी नहीं होता। जो ईश्वर क्रियावान् न होता तो इस जगत्को कैसे बना सकता? जो कर्मोंको प्रागभाववत् अनादि सान्त मानते हो तो कर्म समवाय सम्बन्धसे नहीं रहेगा जो समवाय

सम्बन्धसे नहीं वह संयोगज होके अनित्य होता है, जो मुक्तिमें क्रिया ही न मानते हो तो वे मुक्त जीव ज्ञानवाले होते हैं वा नहीं ? जो कहो होते हैं तो अन्त क्रिया वाले हुए, क्या मुक्तिमें पाषाणवत् जड़ होजाते, एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार और बन्धनमें पड़गये।

नास्तिक—ईश्वर व्यापक नहीं है जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होतीं ? और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिकी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट अवस्था क्यों हुई। क्योंकि सबमें ईश्वर एकसा व्याप्त है तो छोटाई बड़ाई न होनी चाहिये।

आस्तिक—व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी होता है जैसे आकाश सबमें व्यापक है और भूगोल और घटपटादि सब व्याप्य एकदेशी हैं, जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं, जैसे सब घटपटादिमें आकाश व्यापक है और घटपटादि आकाश नहीं वैसे परमेश्वर चेतन सबमें है और सब चेतन नहीं होता, जैसे विद्वान् अविद्वान् और धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कर्म सुशीलतादि स्वभावके न्यूनाधिक होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े छोटे माने जाते हैं वर्णोंकी व्याख्या जैसी "चतुर्थसमुल्लास" में लिख आये हैं वहां देखलो।

नास्तिक—जो ईश्वरकी रचनासे सृष्टि होती तो माता पितादिका क्या काम ?

आस्तिक—ऐश्वरी सृष्टिका ईश्वर कर्त्ता है, जैवी सृष्टिका नहीं, जो जीवोंके कर्त्तव्य कर्म हैं उनको ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है जैसे वृक्ष, फल, ओषधि, अन्नादि ईश्वरने उत्पन्न किया है उसको लेकर मनुष्य न पीसें, न कूटें, न रोटी आदि पदार्थ बनावें और न खावें तो क्या ईश्वर उसके बदले इन कामोंको कभी करेगा ? और जो न करें तो जीवका जीवन भी न होसके इसलिये आदिसृष्टिमें जीवके

शरीरों और सांचेको बनाना ईश्वराधीन पश्चात् उनसे पुत्रादिकी उत्पत्ति करना जीवका कर्त्तव्य काम है।

नास्तिक—जब परमात्मा शाश्वत, अनादि, चिदानन्द ज्ञानस्वरूप है तो जगत्के प्रपञ्च और दुःखमें क्यों पड़ा? आनन्द छोड़ दुःखका ग्रहण ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता ईश्वरने क्यों किया।

आस्तिक—परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुःखमें नहीं गिरता न अपने आनन्दको छोड़ता है क्योंकि प्रपञ्च और दुःखमें गिरना जो एकदेशी हो उसका हो सकता है सर्वदेशीका नहीं। जो अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत्को न बनावे तो अन्य कौन बना सके? जगत् बनानेका जीवमें सामर्थ्य नहीं और जड़में स्वयं बननेका भी सामर्थ्य नहीं इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत्को बनाता और सदा आनन्दमें रहता है, जैसे परमात्मा परमाणुओंसे सृष्टि करता है वैसे माता पितारूप निमित्तकारणसे भी उत्पत्तिका प्रबन्ध नियम उसीने किया है।

नास्तिक—ईश्वर मुक्तिरूप सुखको छोड़ जगत्की सृष्टिकरण धारण और प्रलय करनेके बखेड़ेमें क्यों पड़ा?

आस्तिक—ईश्वर सदा मुक्त होनेसे, तुम्हारे साधनोंसे सिद्ध हुए तीर्थंकरोंके समान एकदेशमें रहनेहारे बन्धपूर्वक मुक्तिसे युक्त, सनातन परमात्मा नहीं है जो अनन्तस्वरूप गुण कर्म स्वभावयुक्त परमात्मा है वह इस किंचिन्मात्र जगत्को बनाता धरता और प्रलय करता हुआ भी बन्धमें नहीं पड़ता क्योंकि बन्ध और मोक्ष सापेक्षतासे हैं, जैसे मुक्तिकी अपेक्षासे बन्ध और बन्धकी अपेक्षासे मुक्ति होती है, जो कभी बद्ध नहीं था वह मुक्त क्योंकर कहा जा सकता है? और जो एकदेशी जीव हैं वेही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं, अनन्त, सर्वदेशी, सर्व व्यापक, ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्तिके चक्रमें, जैसे कि तुम्हारे तीर्थंकर है, कभी नहीं पड़ता, इसलिये वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है

नास्तिक—जीव कर्मोंके फल ऐसे ही भोग सकते हैं जैसे भांग पीनेके मदको स्वयमेव भोगता है इसमें ईश्वरका काम नहीं।

आस्तिक—जैसे विना राजाके डाकू लम्पट चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी वा कारागृहमें नहीं जाते न वे जाना चाहते हैं किन्तु राज्यकी न्यायव्यवस्थानुसार बलात्कारसे पकड़ा कर यथोचित राजा दण्ड देता है इसी प्रकार जीवको भी ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्थासे स्व २ कर्मानुसार यथायोग्य दण्ड देता है क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मोंके फल भोगना नहीं चाहता इसलिये अवश्य परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिये।

नास्तिक—जगत्में एक ईश्वर नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं वे सब ईश्वर हैं।

आस्तिक—यह कथन सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो तो पुनः बन्धमें अवश्य पड़े क्योंकि वे स्वाभाविक सदैव मुक्त नहीं जैसे तुम्हारे चौबीस तीर्थंकर पहिले बद्ध थे पुनः मुक्त हुए फिर भी बन्धमें अवश्य गिरेंगे और जब बहुतसे ईश्वर हैं तो जैसे जीव अनेक होनेसे लड़ते, भिड़ते, फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा भिड़ा करेंगे।

नास्तिक—हे मूढ़, जगत्का कर्त्ता कोई नहीं किन्तु जगत् स्वयंसिद्ध है।

आस्तिक—यह जैनियोंकी कितनी बड़ी भूल है भला विना कर्त्ताके कोई कर्म, कर्मके विना कोई कार्य्य जगत्में होता दीखता है! यह ऐसी बात है कि जैसे गेहूंके खेतमें स्वयंसिद्ध पिसान, रोटी बनके जैनियोंके पेटमें चली जाती हो! कपास, सूत, कपड़ा, अङ्गरखा, दुपट्टा, धोती, पगड़ी आदि बनके कभी नहीं आते! जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्त्ताके विना यह विविध जगत् और नाना प्रकारकी रचना विशेष कैसे बन सकती? जो हठधर्मसे स्वयंसिद्ध जगत्को मनो तो स्वयंसिद्ध उपरोक्त वस्त्रादिकोंको कर्त्ताके विना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ

जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाणशून्य कथनको कौन बुद्धिमान मान सकता है ?

नास्तिक—ईश्वर विरक्त है वा मोहित ? जो विरक्त है तो जगत्के प्रपञ्चमें क्यों पड़ा ? जो मोहित है तो जगत्के बनानेको समर्थ नहीं हो सकेगा।

आस्तिक—परमेश्वरमें वैराग्य वा मोह कभी नहीं घट सकता, क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किसको छोड़े और किसको ग्रहण करे ईश्वरसे उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसीमें मोह भी नहीं होता वैराग्य और मोहका होना जीवमें घटता है ईश्वरमें नहीं।

नास्तिक—जो ईश्वरको जगत्का कर्त्ता और जीवोंके कर्मोंके फलोंका दाता मानोगे तो ईश्वर प्रपंची होकर दुःखी हो जायगा।

आस्तिक—भला अनेकविध कर्मोंका कर्त्ता और प्राणियोंको फलोंका दाता धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् कर्मोंमें नहीं फंसता न प्रपंची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्यवाला प्रपंची और दुःखी क्योंकर होगा ? हां तुम अपने और अपने तीर्थंकरोंके समान परमेश्वरको भी अपने अज्ञानसे समझते हो सो तुम्हारी अविद्याकी लीला है जो अविद्यादि दोषोंसे छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रोंका आश्रय लेओ क्यों भ्रममें पड़े २ ठोंकरें खाते हो॥

अब जैन लोग जगत्को जैसा मानते हैं वैसा इनके सूत्रोंके अनुसार दिखलाते और संक्षेपतः मूलार्थके लिये पश्चात् सत्य झूठकी समीक्षा करके दिखलाते हैं:—

मूल—सामिअणाइ अणन्ते च नूगइ संसार घोरकान्तरे। मोहाइ कम्मगुरु ठिइ विवाग वसनुभमइजीव रो॥ प्रकरणरत्नाकर॥

भाग दूसरा २। षष्ठीशतक ६०। सूत्र २॥

यह रत्नसार भाग नामक ग्रन्थके 'सम्यक्त्वप्रकाश प्रकरणमें गौतम और महावीरका संवाद है ॥

इसका संक्षेपसे उपयोगी यह अर्थ है कि यह संसार अनादि अनन्त है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होता है अर्थात् किसीका बनाया जगत् नहीं सो ही आस्तिक नास्तिकके संवादमें, हे मूढ़ ! जगत्का कर्त्ता कोई नहीं न कभी बना और न कभी नाश होता।

समीक्षक—जो संयोगसे उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। और उत्पत्ति तथा विनाश हुए विना कर्म नहीं रहता जगत्में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाशवाले देखे जाते हैं पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं ? इसलिये तुम्हारे तीर्थंकरोंको सम्यक् बोध नहीं था जो उनको सम्यक् ज्ञान होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिखते ? जैसे तुम्हारे गुरु हैं वैसे तुम शिष्य भी हो तुम्हारी बातें सुननेवालेको पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता भला जो प्रत्यक्ष संयुक्त पदार्थ दीखता है उसकी उत्पत्ति और विनाश क्योंकर नहीं मानते अर्थात् इनके आचार्य वा जैनियोंको भूगोल खगोल विद्या भी नहीं आती थीं और न अब वह विद्या इनमें है नहीं तो निम्नलिखित ऐसी असम्भव बातें क्योंकर मानते और कहते ? देखो ! इस सृष्टिमें पृथिवीकाय अर्थात् पृथिवी भी जीवका शरीर है और जलकायादि जीव भी मानते हैं इसको कोई भी नहीं मान सकता। और भी देखो ! इनकी मिथ्या बातें जिन तीर्थंकरोंको जैन लोग सम्यकज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बातोंके ये नमूने हैं। "रत्नसारभाग" (इस ग्रन्थको जैन लोग मानते हैं और यह ईसवी सन् १८७९ अप्रेल ता० २८ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेसमें नानकचन्द जतीने छपवाकर प्रसिद्ध किया है) के १४५ पृष्ठमें कालकी इस प्रकार व्याख्या की है अर्थात् समयका नाम सूक्ष्मकाल है। और असंख्यात समयोंको "आवलि" कहते हैं। एक क्रोड़ सड़सठ लाख सत्तर सहस्र दोसौ सोलह आवलियोंका एक "मुहूर्त्त" होता

है वैसे तीस मुहूर्त्तोंका एक "दिवस" वैसे पन्द्रह दिवसोंका एक "पक्ष" वैसे दो पक्षोंका एक "मास" वैसे बारह महीनोंका एक "वर्ष" होता है वैसे सत्तर लाख क्रोड़ छप्पन सहस्र क्रोड़ वर्षोंका एक "पूर्व" होता है, ऐसे असंख्यात पूर्वोंका एक "पल्योपम" काल कहते हैं। असंख्यात इसको कहते हैं कि एक चार कोशका चौरस और उतना ही गहरा कुआ खोद कर उसको जुगुलिये मनुष्यके शरीरके निम्न-लिखित बालोंके टुकड़ोंसे भरना अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यकेबालसे जुगुलिये मनुष्यका बाल चार हजार छानवें भाग सूक्ष्म होता है, जब जुगुलिये मनुष्योंके चार सहस्र छानवे बालोंको इकट्ठा करें तो इस समयके मनुष्योंका एक बाल होता है ऐसे जुगुलिये मनुष्यके एक बालके एक अंगुल भागके सात वार आठ २ टुकड़े करनेसे २०९७१५२ अर्थात् बीस लाख सत्तानवें सहस्र एकसौ बावन टुकड़े होते हैं, ऐसे टुकड़ोंसे पूर्वोक्त कुआको भरना उसमेंसे सौ वर्षके अन्तरे एक २ टुकड़ा निकालना जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआ खाली हो जाय तो भी वह संख्यात काल है और जब उनमेंसे एक २ टुकड़ेके असंख्यात टुकड़े करके उन टुकड़ोंसे उसी कूपको ऐसा ठसके भरना कि उसके ऊपरसे चक्रवर्त्ती राजाकी सेना चली जाय तो भी न दबे उन टुकड़ोंमें से सौ वर्षके अन्तरे एक टुकड़ा निकाले जब वह कुआ रीता हो जाय तब उसमें असंख्यात पूर्व पड़े तब एक २ पल्योपम काल होता है। वह पल्योपम काल कुआके दृष्टान्तसे जानना, जब दश क्रोड़ान क्रोड़ पल्योपम काल बीतें तब एक "सागरोपम" काल होता है जब दश क्रोड़ान् क्रोड़ सागरोपम काल बीत जाय तब एक "उत्सर्प्पणी" काल होता है और जब एक उत्सर्प्पणी और एक अवसर्प्पणी काल बीत जाय तब एक "कालचक्र" होता है, जब अनन्त कालचक्र बीत जावें तब एक पुद्गलपरावृत्त" होता है अब अनन्तकाल किसको कहते हैं जो सिद्धान्त पुस्तकोंमें नव दृष्टान्तोंसे कालकी संख्या की है, उससे उपरान्त "अनन्तकाल" कहाता है, वैसे अनन्त पुद्गलपरावृत्त काल जीवको

भ्रमते हुए बीते हैं इत्यादि।

सुनो भाई गणितविद्यावाले लोगों ! जैनियोंके ग्रन्थोंकी कालसंख्या कर सकोगे वा नहीं ? और तुम इसको सच भी मान सकोगे वा नहीं ? देखो ! इन तीर्थंकरोंने ऐसी गणितविद्या पढ़ी थी ऐसे २ तो इनके मतमें गुरु और शिष्य है जिनको अविद्याका कुछ पारावार नहीं। और भी इनका अन्धेर सुनो रत्नसार भाग पृ० १३३ से लेके जो कुछ बूटावाले अर्थात् जैनियोंके सिद्धान्त ग्रन्थ जो कि उनके तीर्थंकर अर्थात् ऋषभदेवसे लेके महावीर पर्य्यन्त चौवीस हुए हैं उनके वचनोंका सारसंग्रह है ऐसा रत्नसारभाग पृ० १४८ में लिखा है कि पृथिवीकायके जीव मट्टी पाषाणादि पृथिवीके भेद जानना, उनमें रहने वाले जीवोंके शरीरका परिमाण एक अंगुलका असंख्यातवां समझना अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं उनका आयुमान अर्थात् वे अधिकसे अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं। (रत्न० पृ० १४९) वनस्पतिके एक शरीरमें अनन्त जीव होते हैं वे साधारण वनस्पति कहाती हैं जो कि कन्दमूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं उनको साधारण वनस्पतिके जीव कहने चाहियें उनका आयुमान अनन्तमुहूर्त्त होता है परन्तु यहां पूर्वोक्त इनका मुहूर्त्त समझना चाहिये और एक शरीरमें जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियोंका योजन ४ कोशका परन्तु जैनियोंका योजन १०००० (दश सहस्र) कोशोंका होता है ऐसे चार सहस्र कोशका शरीर होता है उसका आयुमान अधिकसे अधिक दश सहस्र वर्षका होता है अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख कौड़ी और जूं आदि होते हैं उनका देहमान अधिकसे अधिक अड़तालीस कोशका स्थूल शरीर होता है। और उनका आयुमान अधिकसे अधिक बारह वर्षका होता है, यहां बहुत ही भूल गया क्योंकि इतने बड़े शरीरका आयु अधिक लिखता और

अड़तालीस कोशकी स्थूल जूं जैनियोंके शरीरमें पड़ती होगी और उन्होंने देखी भी होगी और का भाग्य ऐसा कहां जो इतनी बड़ी जूंको देखें !!! (रत्नसार भाग पृ० १५०) और देखो ! इनका अन्धाधुन्ध बीछू, बगाई, कसारी और मक्खी एक योजनके शरीरवाले होते हैं इनका आयुमान अधिकसे अधिक छः महीनेका है। देखो भाई! चार २ कोशका बीछू अन्य किसीने देखा न होगा जो आठ मीलतकका शरीरवाला बीछू और मक्खी भी जैनियोंके मतमें होती हैं ऐसे बीछू और मक्खी उन्हींके घरमें रहते होंगे और उन्हींने देखे होंगे अन्य किसीने संसारमें नहीं देखे होंगे कभी ऐसे बीछू किसी जैनीको काटें तो उसका क्या होता होगा ! जलचर मच्छी आदिके शरीरका मान एक सहस्र योजन, अर्थात् १०००० कोशके योजनके हिसाबसे १०००००००० (एक क्रोड़) कोशका शरीर होता है और एक क्रोड़ पूर्व वर्षोंका इनका आयु होता है। वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियोंके अन्य किसीने न देखा होगा। और चतुष्पाद हाथी आदिका देहमान दो कोशसे नव कोश पर्यन्त और आयुमान चौरासी सहस्र वर्षोंका इत्यादि, ऐसे बड़े २ शरीरवाले जीव भी जैनी लोगोंने देखे होंगे और मानते हैं और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता। (रत्नसारभा० पृ० १५१) जलचर गर्भज जीवोंका देहमान उत्कृष्ट एक सहस्र योजन अर्थात् १०००००००० (एक क्रोड़) कोशोंका और आयुमान एक क्रोड़ पूर्व वर्षोंका होता है इतने बड़े शरीर और आयुवाले जीवोंको भी इन्हींके आचार्योंने स्वप्नमें देखे होंगे। क्या यह महा झूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके !

अब सुनिये भूमिके परिमाणको ! (रत्नसार भा० पृ० १५२) इस तिरछे लोकमें असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं इन असंख्यातका प्रमाण अर्थात् जो अढ़ाई सागरोपम कालमें जितना समय हो उतने द्वीप तथा समुद्र जानना अब इस पृथिवीमें "जम्बूद्वीप" प्रथम सब द्वीपोंके बीचमें है इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् एक

अरब कोशका है, और इसके चारों ओर लवण समुद्र है उसका प्रमाण दो लाख योजन कोशका है अर्थात् दो अरब कोषका। इस जम्बूद्वीपके चारों ओर जो "धातकीखण्ड" नाम द्वीप है उसका चार लाख योजन अर्थात् चार अरब कोशका प्रमाण है और उसके पीछे "कालोदधि" समुद्र है उसका आठ लाख अर्थात् आठ अरब कोशका प्रमाण है उसके पीछे "पुष्करावर्त्त" द्वीप है उसका प्रमाण सोलह कोशका है उस द्वीपके भीतरकी कोरें हैं उस द्वीपके आधेमें मनुष्य वसते हैं और उसके उपरांत असंख्यात द्वीप समुद्र हैं उनमें तिर्यग् योनिके जीव रहते हैं। (रत्नासार भा० पृ० १५३) जम्बूद्वीपमें एक हिमवन्त, एक ऐरण्डवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र हैं॥

समीक्षक—सुनो भाई! भूगोलविद्याके जाननेवाले लोगो! भूगोलके परिमाण करनेमें तुम भुले वा जैन! जो जैन भूल गये हों तो तुम उनको समझाओ और जो तुम भूले हो तो उनसे समझ लेओ। थोड़ासा विचार कर देखो तो यही निश्चय होता है कि जैनियोंके आचार्य्य और शिष्योंने भूगोल खगोल और गणित विद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी पढ़े होते तो महा असम्भव गपोड़ा क्यों मारते? भला ऐसे अविद्वान् पुरुष जगत्को अकर्तृक और ईश्वरको न मानें इसमें क्या आश्चर्य है? इसलिये जैनी लोग अपने पुस्तकोंको कीन्हीं विद्वान अन्य मतस्थोंको नहीं देते क्योंकि जिनको ये लोग प्रामाणिक तीर्थंकरोंके बनाये हुए सिद्धान्त ग्रन्थ मानते हैं उनमें इसी प्रकारकी अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं इसलिये नहीं देखने देते जो देवें तो पोल खुल जाय इनके विना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा वह कदापि इस गपोड़ाध्यायको सत्य नहीं मान सकेगा, यह सब प्रपञ्च जैनियोंने जगत्को अनादि माननेके लिये खड़ा किया है परन्तु यह निरा झूठ है हां! जगत्का धारण अनादि है क्योंकि वह परमाणु आदि तत्त्वस्वरूप अकर्तृक है परन्तु उनमें नियमपूर्वक बनने वा बिगड़-

नेका सामर्थ्य कुछ भी नहीं क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसीका नाम है और स्वभावसे पृथक् २ रूप और जड़ हैं वे अपने आप यथायोग्य नहीं बन सकते इसलिये इनका बनानेवाला चेतन अवश्य है और वह बनानेवाला ज्ञानस्वरूप है। देखो! पृथिवी सूर्यादि सब लोकोंको नियममें रखना अनंत अनादि चेतन परमात्माका काम है, जिसमें संयोग रचना विशेष दीखता है वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता, जो कार्य जगत्को नित्य मानोगे तो उसका कारण कोई न होगा किन्तु वही कार्यकारणरूप होजायगा जो ऐसा कहोगे तो अपना कार्य और कारण आपही होनेसे अन्योऽन्याश्रय और आत्माश्रय दोष आवेगा, जैसे अपने कन्धे पर आप चढ़ना और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता, इसलिये जगत्का कर्त्ता अवश्य ही मानना है।

प्रश्न—जो ईश्वरको जगत्का कर्त्ता मानते हो तो ईश्वरका कर्त्ता कौन है ?

उत्तर—कर्त्ताका कर्त्ता और कारणका कारण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्त्ता और कारणके होनेसे ही कार्य्य होता है जिसमें संयोग वियोग नहीं होता, जो प्रथम सयोग वियोगका कारण है उसका कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता इसकी विशेष व्याख्या आठवें समुल्लासमें सृष्टिकी व्याख्यामें लिखी है देख लेना। इन जैन लोगोंको स्थूल बातका भी यथावत् ज्ञान नहीं तो परम सूक्ष्म सृष्टिविद्याका बोध कैसे हो सकता है? इसलिये जो जैनी लोग सृष्टिको अनादि अनन्त मानते और द्रव्यपर्यायोंको भी अनादि अनन्त मानते हैं और प्रतिगुण प्रतिदेशमें पर्यायों और प्रतिवस्तुमें भी अनन्त पर्यायको मानते हैं यह प्रकरणरत्नाकरके प्रथम भागमें लिखा है यह भी बात कभी नहीं घट सकती क्योंकि जिनका अन्त अर्थात् मर्यादा होती है उनके सब सम्बन्धी अन्तवाले ही होते हैं यदि अनन्तको असंख्य कहते तो भी नहीं घट सकता किन्तु जीवापेक्षामें यह बात घट सकती है परमेश्वरके सामने नहीं क्योंकि एक २ द्रव्यमें

अपने २ एक २ कार्य्यकारण सामर्थ्यको अविभाग पर्यायोंसे अनन्त सामर्थ्य मानना केवल अविद्याकी बात है जब एक परमाणु द्रव्यकी सीमा है तो उसमें अनन्त विभागरूप पर्य्याय कैसे रह सकते हैं ? ऐसे ही एक २ द्रव्यमें अनन्त गुण और एक गुण प्रदेशमें अविभागरूप अनन्त पर्यायोंको भी अनन्त मानना केवल बालकपनकी बात है क्योंकि जिसके अधिकरणका अन्त हैं तो उसमें रहनेवालोंका अन्त क्यों नहीं ? ऐसा ही लम्बी चौरी मिथ्या बातें लिखी हैं, अब जीव और अजीव इन दो पदार्थोंके विषयमें जैनियोंका निश्चय ऐसा है:—

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥

यह जिनदत्तसूरिका वचन है। और यही प्रकरणरत्नाकर भाग पहि में नयचक्रसारमें भी लिखा है कि चेतनालक्षण जीव और चेतनारहित अजीव अर्थात् जड़ है॥ सत्कर्मरूप पुद्गल पुण्य और पापकर्मरूप पुद्गल पाप कहाते हैं।

समीक्षक—जीव और जड़का लक्षण तो ठीक है परन्तु जो जड़रूप पुद्गल हैं वे पापपुण्ययुक्त कभी नहीं हो सकते क्योंकि पाप पुण्य करनेका स्वभाव चेतनमें होता है देखो! ये जितने जड़ पदार्थ हैं वे सब पाप पुण्यसे रहित हैं जो जीवोंको अनादि मानते हैं यह तो ठीक है परन्तु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीवको मुक्ति दशामें सर्वज्ञ मानना झूठ है क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है उसका सामर्थ्य भी सर्वदा समीप रहेगा। जैनी लोग जगत्, जीव जीवके कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं यहां भी जैनियोंके तीर्थंकर भूल गये हैं क्योंकि संयुक्त जगत्का कार्य्यकारण, प्रवाहसे कार्य और जीवके कर्म, बन्ध भी अनादि नहीं हो सकते जब ऐसा मानते हो तो कर्म और बन्धका छूटना क्यों मानते हो ? क्योंकि जो अनादि पदार्थ है वह कभी नहीं छूट सकता। जो अनादिका भी नाश मानोगे तो तुम्हारे सब अनादि

पदार्थोंके नाशका प्रसंग होगा और जब अनादिको नित्य मानोगे तो कर्म और बन्ध भी नित्य होगा। और जब सब कर्मोंके नाशका प्रसंग होगा और जब अनादिको नित्य मानोगे तो कर्म और बन्ध भी नित्य होगा और जब सब कर्मोंके छूटनेसे मुक्ति मानते हो तो सब कर्मोंका छूटनारूप मुक्तिका निमित्त हुआ तब नैमित्तिकी मुक्ति होगी तो सदा नहीं रह सकेगी और कर्म कर्त्ताका नित्य सम्बन्ध होनेसे कर्म भी कभी न छूटेंगे पुनः जब तुमने अपनी मुक्ति और तीर्थंकरोंकी मुक्ति नित्य मानी है सो नहीं बन सकेगी।

प्रश्न—जैसे धान्यका छिलका उतारने वा अग्निके संयोग होनेसे वह बीज पुनः नहीं उगता इसी प्रकार मुक्तिमें गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसारमें नहीं आता।

उत्तर—जीव और कर्मका सम्बन्ध छिलके और बीजके समान नहीं है किन्तु इनका समवाय सम्बन्ध है, इससे अनादि कालसे जीव और उसमें कर्म और कर्तृत्वशक्तिका सम्बन्ध है, जो उसमें कर्म करनेकी शक्तिका भी अभाव मानोगे तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे और मुक्तिको भोगनेका भी सामर्थ्य नहीं रहेगा, जैसे अनादि कालका कर्मबन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है तो तुम्हारी नित्य मुक्तिसे भी छूट कर बन्धनमें पड़ेगा क्योंकि जैसे कर्मरूप मुक्तिके साधनोंसे भी छूटकर जीवका मुक्त होना मानते हो वैसे ही नित्य मुक्तसे भी छूटके बन्धनमें पड़ेगा, साधनोंसे सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन सिद्धके विना मुक्ति मानोगे तो कर्मोंके विना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा। जैसे वस्त्रोंमें मैल लगता और धोनेसे छूट जाता है पुनः मैल लग जाता है वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओंसे रागद्वेषादिके आश्रयसे जीवको कर्मरूप फल लगता है और जो सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्रसे निर्मल होता है और मैल लगनेके कारणोंसे मलोंका लगना मानते हो तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीवका मुक्त होना अवश्य मानना पड़ेगा क्योंकि जैसे निमित्तोंसे मलिनता छूटती

है वैसे निमित्तोंसे मलिनता लग भी जायगी इसलिये जीवको बन्ध और मुक्ति प्रवाहरूपसे अनादि मानो अनादि अनन्ततासे नहीं॥

प्रश्न—जीव निर्मल कभी नहीं था किन्तु मलसहित है।

उत्तर—जो कभी निर्मल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो सकेगा जैसे शुद्ध वस्त्रमें पीछेसे लगे हुए मैलको धोनेसे छुड़ा देते हैं उसके स्वाभाविक श्वेत वर्णको नहीं छुड़ा सकते मैल फिर भी वस्त्रमें लग जाता है इसी प्रकार मुक्तिमें भी लगेगा।

प्रश्न—जीव पूर्वोपार्जित कर्म ही से शरीर धारण कर लेता है, ईश्वरका मानना व्यर्थ है॥

उत्तर—जो केवल कर्म ही शरीर धारणमें निमित्त हो, ईश्वर कारण न हो तो वह जीव बुरा जन्म कि जहां बहुत दुःख हो उसको धारण कभी न करे किन्तु सदा अच्छे २ जन्म धारण किया करे॥ जो कहो कि कर्म प्रतिबन्धक है तो भी जैसे चोर आपसे आके बन्दीगृहमें नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता किन्तु राजा देता है, इसी प्रकार जीवको शरीरधारण कराने और उसके कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वरको तुम भी मानो॥

प्रश्न—मद (नशा) के समान कर्म स्वयं प्राप्त होता है फल देनेमें दूसरेकी आवश्यकता नहीं।

उत्तर—जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करनेवालोंको मद कम चढ़ता अनभ्यासीको बहुत चढ़ता है, वैसे नित्य बहुत पाप पुण्य करनेवालोंको न्यून और कभी २ थोड़ा २ पाप पुण्य करनेवालोंको अधिक फल होना चाहिये और छोटे कर्म वालोंको अधिक फल होवे।

प्रश्न—जिसका जैसा स्वभाव होता है उसका वैसा ही फल हुआ करता है।

उत्तर—जो स्वभावसे है तो उसका छूटना वा मिलना नहीं हो सकता, हां जैसे शुद्ध वस्त्रमें निमित्तोंसे मल लगता है उसके छुड़ानेके निमित्तोंसे छूट भी जाता है ऐसा मानना ठीक है।

प्रश्न—संयोगके विना कर्म परिणामको प्राप्त नहीं होता, जैसे दूध और खटाईके संयोगके विना दही नहीं होता इसी प्रकार जीव और कर्मके योगसे कर्मका परिणाम होता है।

उत्तर—जैसे दही और खटाईका मिलानेवाला तीसरा होता है वैसे ही जीवोंको कर्मोंके फलके साथ मिलानेवाला तीसरा ईश्वर होना चाहिये क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियमसे संयुक्त नहीं होते और जीव भी अल्पज्ञ होनेसे स्वयं अपने कर्मफलको प्राप्त नहीं हो सकते, इससे यह सिद्ध हुआ कि विना ईश्वरस्थापित सृष्टिक्रमके कर्मफलव्यवस्था नहीं हो सकती।

प्रश्न—जो कर्मसे मुक्त होता है वही ईश्वर कहाता है।

उत्तर—जब अनादि कालसे जीवके साथ कर्म लगे हैं तो उनसे जीव मुक्त कभी नहीं हो सकेंगे।

प्रश्न—कर्मका बन्ध सादि है।

उत्तर—जो सादि है तो कर्मका योग अनादि नहीं और संयोगकी आदिमें जीव निष्कर्म होगा और जो निष्कर्मको कर्म लग गया तो मुक्तोंको भी लग जायगा और कर्म कर्त्ताका समवाय अर्थात् नित्य सम्बन्ध होता है यह कभी नहीं छूटता, इसलिये जैसा ९ वें समुल्लासमें लिख आये हैं वैसा ही मानना ठीक है। जीव चाहे जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे तो भी उसमें परिमितज्ञान और ससीम सामर्थ्य रहेगा ईश्वरके समान कभी नहीं हो सकता। हां जितना सामर्थ्य बढ़ना उचित है उतना योगसे बढ़ा सकता है और जो जैनियोंमें आर्हत लोग देहके परिमाणसे जीवका भी परिमाण मानते हैं उनसे पूछना चाहिये कि जो ऐसा हो तो हाथीका जीव कीड़ीमें और कीड़ीका जीव हाथीमें कैसे समा सकेगा ? यह भी एक मूर्खताकी बात है क्योंकि जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो कि एक परमाणुमें भी रह सकता है परन्तु उसकी शक्तियां शरीरमें प्राण बिजुली और नाड़ी आदिके साथ संयुक्त हो रहती हैं उनसे सब शरीरका वर्त्तमान जानता है अच्छे

संगसे अच्छा और बुरे संगसे बुरा हो जाता है। अब जैन लोग धर्म इस प्रकारका मानते हैं:—

मूल—रे जीव भवदुहाइं इक्कं चिय हरइ जिण मयं धम्मं। इयराणं परमं तो सुहकप्पे मूढमुसि ओसि॥ प्र० भाग २।६०।३॥

अरे जीव! एक ही जिनमत श्रीवीतरागभाषित धर्म संसार सम्बन्धी जन्म जरामरणादि दुःखोंका हरणकर्त्ता है इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैन मत वालेको जानना इतर जो वीतराग ऋषभदेवसे लेके महावीर पर्य्यन्त वीतराग देवोंसे भिन्न अन्य हरिहर ब्रह्मादि कुदेव हैं उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं वे सब मनुष्य ठगाये गये हैं। इसका यह भावार्थ है कि जैन मतके सुदेव सुगुरु तथा सुधर्मको छोड़के अन्य कुदेव कुगुरु तथा कुधर्मको सेवनेसे कुछ भी कल्याण नहीं होता॥

समीक्षक—अब विद्वानोंको विचारना चाहिये कि कैसे निन्दायुक्त इनके धर्मके पुस्तक हैं!॥

मूल—अरिहं देवो सुगुरु सुद्ध धम्मं च पंच नवकारो। धन्नाणं कयच्छाणं निरन्तरं वसइ हिययम्मि॥ प्र०भा० २ ष० ६० सू० १॥

जो अरिहन् देवेन्द्रकृत पूजादिकनके योग्य दूसरा पदार्थ उत्तम कोई नहीं ऐसा जो देवोंका देव शोभायमान अरिहन्त देव ज्ञान क्रियावान् शास्त्रोंका उपदेष्टा शुद्ध कषाय मलरहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित जो धर्म है वही दुर्गतिमें पड़नेवाले प्राणियोंका उद्धार करनेवाला है और अन्य हरिहरादिका धर्म संसारसे उद्धार करनेवाला नहीं और पंच अरिहन्तादिक परमेष्ठी तत्सम्बन्धी उनको नमस्कार ये चार पदार्थ धन्य हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं अर्थात् दया, क्षमा,

सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह जैनोंका धर्म है ॥

समीक्षक—जब मनुष्यमात्र पर दया नहीं वह दया न क्षमा ज्ञानके बदले अज्ञान दर्शन अन्धेर और चारित्रके बदले भूखे 'मरना कौनसी अच्छी बात है ? जैन मतके धर्मकी प्रशंसाः—

मूल—जइन कुणसि तव चरणं पढसि न गुणोसि देसि नो दाणम् । ता इत्तियं न सक्किसिजं देवो इक्क अरिहन्तो ॥

प्रकरण० भा० २। षष्ठी० सू० २॥

हे मनुष्य! जो तू तप चारित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादिका विचार कर सकता और सुपात्रादिको दान नहीं दे सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराधनाके योग्य सुगुरु सुधर्म जैनमतमें श्रद्धा रखना सर्वोत्तम बात और उद्धारका कारण है ॥

समीक्षक—यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु है तथापि पक्षपातमें फँसनेसे दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाती है इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीवको दुःख न देना यह बात सर्वथा संभव नहीं हो सकती क्योंकि दुष्टोंको दंड देना भी दयामें गणनीय है, जो एक दुष्टको दंड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्योंको दुःख प्राप्त हो इसलिये वह दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाय यह तो ठीक है कि सब प्राणियोंके दुःखनाश और सुखकी प्राप्तिका उपाय करना दया कहाती है। केवल जल छानके पीना, क्षुद्र जन्तुओंको बचाना ही दया नहीं कहाती, किन्तु इस प्रकारकी दया जैनियोंके कथनमात्र ही है. क्योंकि वैसा वर्त्तते नहीं। क्या मनुष्यादि पर चाहें किसी मतमें क्यों न हो दया करके उसको अन्नपानादिसे सत्कार करना और दूसरे मतके विद्वानोंका मान्य और सेवा करना दया नहीं है ? जो इनकी सच्ची दया होती तो "विवेकसार" के पृष्ठ २२१ में देखो! क्या लिखा

है "एक परमतीकी स्तुति" अर्थात् उनका गुणकीर्तन कभी न करना। दूसरा "उनको नमस्कार" अर्थात् वन्दना भी न करनी। तीसरा "आलापन" अर्थात् अन्य मतवालोंके साथ थोड़ा बोलना। चौथा "संलपन" अर्थात् उनसे वार २ न बोलना। पांचवां "उनको अन्न वस्त्रादि दान" अर्थात् उनको खाने पीनेकी वस्तु भी न देनी। छठा "गन्धपुष्पादि दान" अन्य मतकी प्रतिमा पूजनके लिये गन्धपुष्पादि भी न देना। ये छः यतना अर्थात् इन छः प्रकारके कर्मोंको जैन लोग कभी न करें।

समीक्षक—अब बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये कि इन जैनी लोगोंकी अन्य मत वाले मनुष्यों पर कितनी अदया, कुदृष्टि और द्वेष है। जब अन्य मतस्थ मनुष्यों पर इतनी अदया है तो फिर जैनियों को दयाहीन कहना संभव है क्योंकि अपने घरवालों ही की सेवा करना विशेष धर्म नहीं कहाता। उनके मतके मनुष्य उनके घरके समान हैं इसलिये उनकी सेवा करते अन्य मतस्थोंकी नहीं, फिर उनको दया-वान कौन बुद्धिमान कह सकता है? विवेक० पृष्ठ १०८ में लिखा है कि मथुराके राजाके नमुची नामक दीवानको जैनमतियोंने अपना विरोधी समझ कर मार डाला और आलोयणा (प्रायश्चित्त) करके शुद्ध होगये। क्या यह भी दया और क्षमाका नाशक कर्म नहीं है? जब अन्य मतवालों पर प्राण लेने पर्यन्त वैरबुद्धि रखते हैं तो इनको दयालुके स्थान पर हिंसक कहना ही सार्थक है। अब सम्यक्त्व दर्शनादिके लक्षण आर्हत प्रवचनसंग्रह परमागमनसारमें कथित है। सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये चार मोक्षमार्गके साधन हैं इनकी व्याख्या योगदेवने की है। जिस रूपसे जीवादि द्रव्य अवस्थित हैं उसी रूपसे जिनप्रतिपादित ग्रन्थानुसार विपरीत अभि-निवेशादि रहित जो श्रद्धा अर्थात् जिनमतमें प्रीति है सो सम्यक् श्रद्धान और सम्यक् दर्शन है॥

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते।

जिनोक्त तत्त्वोंमें सम्यक् श्रद्धा करनी चाहिये अर्थात् अन्यत्र कहीं नहीं॥

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
यो बोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥

जिस प्रकारके जीवादि तत्त्व हैं उनका संक्षेप वा विस्तारसे जो बोध होता है उसीको सम्यग्ज्ञान बुद्धिमान् कहते हैं॥

सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।
कीर्त्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेनपञ्चधा॥
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः।

सब प्रकारसे निन्दनीय अन्य मतसम्बन्धका त्याग चारित्र कहाता है और अहिंसादि भेदसे पांच प्रकारका व्रत है। एक (अहिंसा) किसी प्राणीमात्रको न मारना। दूसरा (सूनृता) प्रिय वाणी बोलना। तीसरा (अस्तेय) चोरी न करना। चौथा (ब्रह्मचर्य्य) उपस्थ इन्द्रियका संयमन और पांचवां (अपरिग्रह) सब वस्तुओंका त्याग करना। इनमें बहुतसी बातें अच्छी हैं अर्थात् अहिंसा और चोरी आदि निन्दनीय कर्मोंका त्याग अच्छी बात है परन्तु ये सब अन्य मतकी निन्दा करने आदि दोषोंसे सब अच्छी बातें भी दोषयुक्त होगई हैं जैसे प्रथम सूत्रमें लिखी हैं अन्य हरिहरादिका धर्म संसारमें उद्धार करनेवाला नहीं। क्या यह छोटी निन्दा है कि जिनके ग्रन्थ देखनेसे ही पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है उसको बुरा कहना और अपने महा असंभव जैसा कि पूर्व लिख आये वैसी बातोंके कहनेवाले अपने तीर्थंकरोंकी स्तुति करना केवल हठकी बातें हैं भला जो जैनी कुछ चारित्र न कर सके, न पढ़ सके, न दान देनेका सामर्थ्य हो तो भी जैनमत सच्चा है क्या इतना कहने ही से वह उत्तम होजाय? और

अन्य मत वाले श्रेष्ठ भी अश्रेष्ठ होजायें ? ऐसे कथन करनेवाले मनुष्योंको भ्रान्त और बालबुद्धि न कहा जाय तो क्या कहें ? इसमें यही विदित होता है कि इनके आचार्य स्वार्थी थे पूर्ण विद्वान् नहीं क्योंकि जो सबकी निन्दा न करते तो ऐसी झूठी बातोंमें कोई न फँसता न उनका प्रयोजन सिद्ध होता। देखो यह तो सिद्ध होता है कि जैनियोंका मत डुबानेवाला और वेदमत सबका उद्धार करनेहारा हरिहरादि देव सुदेव और इनके ऋषभदेवादि सब कुदेव दूसरे लोग कहें तो क्या वैसा ही उनको बुरा न लगेगा और भी इनके आचार्य और माननेवालोंकी भूल देखलोः—

मूल—जिनवर आणा भंगं उमग्ग उस्सुतले सदेसणउ। आणा भंगे पावंता जिणमय दुक्करं धम्मम्॥ प्र० भाग २ ष० ६ सू० ११॥

उन्मार्ग उत्सूत्रके लेश दिखानेसे जो जिनवर अर्थात् वीतराग तीर्थंकरोंकी आज्ञाका भङ्ग होता है वह दुःखका हेतु पाप है जिनेश्वरके कहे सम्यक्त्वादि धर्म ग्रहण करना बड़ा कठिन है इसलिये जिस प्रकार जिन आज्ञाका भङ्ग न हो वैसा करना चाहिये॥

समीक्षक—जो अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा और अपने ही धर्मको बड़ा कहना और दूसरेकी निन्दा करनी है वह मूर्खताकी बात है क्योंकि प्रशंसा उसीकी ठीक है कि जिसकी दूसरे विद्वान करें अपने मुखसे अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं तो क्या वे प्रशंसनीय हो सकते हैं ? इसी प्रकारकी इनकी बातें हैं॥

मूल—बहुगुणविज्झा निलयो उस्सुत्तभासी तहा विमुत्तव्वो। जहवरमणिजुत्तो विहुविग्घकरो विसहरो लोए॥ प्र० भा० २।६।१८॥

जैसे विषधर सर्पमें मणि त्यागने योग्य है वैसे जो जैनमतमें वह

चाहे कितना बड़ा धार्मिक पण्डित हो उसको त्याग देना ही जैनियोंको उचित है ॥

समीक्षक—देखिये ! कितनी मूलकी बात है जो इनके चेले और आचार्य विद्वान् होते तो विद्वानोंसे प्रेम करते जब इनके तीर्थंकर सहित अविद्वान् हैं तो विद्वानोंका मान्य क्यों करें ? क्या सुवर्णको मल वा धूलमें पड़ेको कोई त्यागता है इससे यह सिद्ध हुआ कि विना जैनियोंके वैसे दूसरे कौन पक्षपाती हठी दुराग्रही विद्याहीन होंगे ॥

मूल—अइ सयपा वियपा वाधम्मि अपव्वे सुतो विपावरया । न चलन्ति सुद्धधमार धन्ना किविपावपव्वेसु ॥ प्र० भा० २ ष० सू० २६ ॥

अन्य दर्शनी कुलिङ्गी अर्थात् जैनमत विरोधी उनका दर्शन भी जैनी लोग न करें ॥

समीक्षक—बुद्धिमान् लोग विचार लेंगे कि यह कितनी पापरपनकी बात है, सच तो यह है कि जिसका मत सत्य है उसको किसीसे डर नहीं होता इनके आचार्य्य जानते थे कि हमारा मत पोलपाल है जो दूसरेको सुनावेंगे तो खण्डन हो जायगा इसलिये सबकी निन्दा करो और मूर्ख जनोंको फँसाओ ॥

मूल—नामं पितस्सअसुहं जेणनिदिठाइ मिच्छपव्वाइ । जेसिं अणुसंगा उधम्मीणविहोइ पावमई ॥ प्र० भा० २ ष० ६ सू० २७ ॥

जो जैनधर्मसे विरुद्ध धर्म हैं वे सब मनुष्योंको पापी करनेवाले हैं इसलिये किसीके अन्य धर्मको न मानकर जैनधर्म ही को मानना श्रेष्ठ है ॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता कि सबसे वैर, विरोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि दुष्ट कर्मरूप सागरमें डुबानेवाला जैनमार्ग है, जैसे जैनी

लोग सबके निन्दक हैं वैसा कोई भी दूसरे मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा । क्या एक ओरसे सबकी निन्दा और अपनी अति-प्रशंसा करना शठ मनुष्योंकी बातें नहीं हैं ? विवेकी लोग तो चाहें किसीके मतके हों उनमें अच्छेको अच्छा और बुरेको बुरा कहते हैं ॥

मू०—हाहा गुरुअअ कज्र्झं सामीनहु अच्छिक्कस्स पुक्करिमो । कह जिणवयण कह सुगुरु सावया कहइय अकज्झं ॥ प्र०भा० २।३५॥

सर्वज्ञभाषित जिन वचन, जैनके सुगुरु और जैनधर्म कहां और उनसे विरुद्ध कुगुरु अन्य मार्गोंके उपदेशक कहां अर्थात् हमारे सुगुरु सुदेव सुधर्म और अन्यके कुदेव कुगुरु कुधर्म हैं ॥

समीक्षक—यह बात बेर बेचनेहारी कूंजड़ीके समान है जैसे वह अपने खट्टे बेरोंको मीठा और दूसरीके मीठोंको खट्टा और निकम्मे बतलाती है, इसी प्रकारकी जैनियोंकी बातें हैं ये लोग अपने मतसे भिन्न मत वालोंकी सेवामें बड़ा अकार्य्य अर्थात् पाप गिनते हैं ॥

मूल—सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंता इदेह मरणाइ । तोवरिसप्पं गहियुं मा कुगुरुसेवणं भद्दम् ॥ प्र० भा०२ सू० ३७ ॥

जैसे प्रथम लिख आये कि सर्प्पमें मणिका भी त्याग करना उचित है वैसे अन्य मार्गियोंमें श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंका भी त्याग कर देना, अब उससे भी विशेष निन्दा अन्य मत वालोंकी करते हैं जैन-मतसे भिन्न सब कुगुरु अर्थात् वे सर्प्पसे भी बुरे हैं उनका दर्शन, सेवा, संग कभी न करना चाहिये क्योंकि सर्प्पके संगसे एक वार मरण होता है और अन्यमार्गी कुगुरुओंके संगसे अनेक वार जन्म मरणमें गिरना पड़ता है इसलिये हे भद्र ! अन्यमार्गियोंके कुगुरुओंके पास भी मत खड़ा रह क्योंकि जो तू अन्यमार्गियोंकी कुछ भी सेवा

करेगा तो दुःखमें पड़ेगा॥

समीक्षक—देखिये जैनियोंके समान कठोर, भ्रान्त, द्वेषी, निन्दक भूला हुआ दूसरे मत वाले कोई भी न होंगे इन्होंने मनसे यह विचारा है कि जो हम अन्यकी निन्दा और अपनी प्रशंसा न करेंगे तो हमारी सेवा और प्रतिष्ठा न होगी परन्तु यह बात उनके दौर्भाग्यकी है क्योंकि जबतक उत्तम विद्वानोंका संग सेवा न करेंगे तबतक इनको यथार्थ ज्ञान और सत्य धर्मकी प्राप्ति कभी न होगी इसलिये जैनियोंको उचित है कि अपनी विद्याविरुद्ध मिथ्या बातें छोड़ वेदोक्त सत्य बातोंका ग्रहण करें तो उनके लिये बड़े कल्याणकी बात है॥

मूल—किं भणिमो किं करिमो ताणहयासाण धिठदुठाणं। जे दंसि ऊण लिंगं खिवंति नरयम्मि मुद्धजणं॥ प्र०भा० २ ष०सू०४०॥

जिसकी कल्याणकी आशा नष्ट होगई, धीठ, बुरे काम करनेमें अतिचतुर दुष्ट दोषवालेसे क्या कहना? और क्या करना क्योंकि जो उसका उपकार करो तो उलटा उसका नाश करे जैसे कोई दया करके अन्धे सिंहकी आंख खोलनेको जाय तो वह उसीको खालेवे वैसे ही कुगुरु अर्थात् अन्यमार्गियोंका उपकार करना अपना नाश कर लेना है अर्थात् उनसे सदा अलग ही रहना॥

समीक्षक—जैसे जैन लोग विचारते हैं वैसे दूसरे मत वाले भी विचारें तो जैनियोंकी कितनी दुर्दशा हो? और उनका कोई किसी प्रकारका उपकार न करे तो उनके बहुतसे काम नष्ट होकर कितना दुःख प्राप्त हो? वैसा अन्यके लिये जैनी क्यों नहीं विचारते?॥

मूल—जहजहतुट्टइ धम्मो जहजह दुठानहोय अइउदउ। समद्दिठिजियाण तह तह उल्लसइस भत्तं॥ प्र० भा० २ ष०सू० ४२॥

* जैसे२ दर्शनभ्रष्ट निह्नव, पाच्छत्ता, उसन्ना तथा कुसीलियादिक और अन्य दर्शनी, त्रिदण्डी, परिव्राजक तथा विप्रादिक दुष्ट लोगोंका अतिशय बल सत्कार पूजादिक होवे वैसे २ सम्यग्दृष्टि जीवोंका सम्यक्त्व विशेष प्रकाशित होवे यह बड़ा आश्चर्य है ॥

समीक्षक—अब देखो ! क्या इन जैनोंसे अधिक ईर्ष्या, द्वेष, वैरबुद्धियुक्त दूसरा कोई होगा ? हां दूसरे मतमें भी ईर्ष्या, द्वेष है परन्तु जितनी इन जैनियोंमें है उतनी किसीमें नहीं और द्वेष ही पापका मूल है इसलिये जैनियोंमें पापाचार क्यों न हो ? ॥

मू०—संगो विजाण अहिउते सिंधम्माइ जेपकुब्बन्ति। मुतूण चोरसंगं करन्ति ते चोरिय पावा ॥ प्र० भाग २ ष० सू० ७५ ॥

* इसका मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि जैसे मूढ़जन चोरके संगसे नासिकाछेदादि दण्डसे भय नहीं करते वैसे जैनमतसे भिन्न चोर धर्मोंमें स्थित जन अपने अकल्याणसे भय नहीं करते ॥

समीक्षक—जो जैसा मनुष्य होता है वह प्रायः अपने ही सदृश दूसरोंको समझता है क्या यह बात सत्य हो सकती है कि अन्य सब चोरमत और जैनका साहूकार मत है ? जबतक मनुष्यमें अति अज्ञान और कुसंगसे भ्रष्ट बुद्धि होती है तबतक दूसरोंके साथ अति ईर्ष्या द्वेषादि दुष्टता नहीं छोड़ता जैसा जैनमत पराया द्वेषी है ऐसा अन्य कोई नहीं ॥

मूल—जच्छ पसुमहिसलरका पव्वंहोमन्ति पावन वमीए। पूअन्तितंपि सङ्गाहा हो लावी परायस्सं ॥ प्र० भाग २ ष० सू० ७६ ॥

* पूर्व सूत्रमें जो मिथ्यात्वी अर्थात् जैनमार्ग भिन्न सब मिथ्यात्वी और आप सम्यक्त्वी अर्थात् अन्य सब पापी, जैन लोग सब

पुण्यात्मा इसलिये जो कोई मिथ्यात्वीके धर्मका स्थापन करे वह पापी है ॥

समीक्षक—जैसे अन्यके स्थानोंमें चामुण्डा, कालिका, ज्वाला, प्रमुखके आगे पापनौमी अर्थात् दुर्गानौमी तिथि आदि सब बुरे हैं वैसे क्या तुम्हारे पजूशण आदि व्रत बुरे नहीं हैं जिनसे महाकष्ट होता है? यहां वाममार्गियोंकी लीलाका खण्डन तो ठीक है परन्तु जो शासनदेवी और मरुतदेवी आदिको मानते हैं उनका भी खण्डन करते तो अच्छा था, जो कहें कि हमारी देवी हिंसक नहीं तो इनका कहना मिथ्या है क्योंकि शासनदेवीने एक पुरुष और दूसरा बकरेकी आंखें निकाल ली थीं पुनः वह राक्षसी और दुर्गा कालिकाकी सगी बहिन क्यों नहीं? और अपने पच्चखाण आदि मतोंको अतिश्रेष्ठ और नवमी आदिको दुष्ट कहना मूढ़ताकी बात है, क्योंकि दूसरेके उपवासोंकी तो निन्दा और अपने उपवासोंकी स्तुति करना मूर्खताकी बात है, हां जो सत्यभाषणादि व्रत धारण करते हैं वे तो सबके लिये उत्तम हैं जैनियों और अन्य किसीका उपवास सत्य नहीं ॥

मूल—चेसाणवंदियाणय माहणडुं बाणजर कसिरकाणं। भत्ता भर कठाणं वियाणं जन्ति दूरेणं ॥ प्र० भाग २ ष० सू० ८२ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो वेश्या, चारण भाटादि लोगों, ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक मिथ्यादृष्टि देवी आदि देवताओंका भक्त है जो इनके माननेवाले हैं वे सब डुबाने और डूबनेवाले हैं क्योंकि उन्हींके पास वे सब वस्तुएं मानते हैं और वीतराग पुरुषोंसे दूर रहते हैं ॥

समीक्षक—अन्य मार्गियोंके देवताओंको झूठ कहना और अपने देवताओंको सच कहना केवल पक्षपातकी बात है और अन्य वाममार्गियोंकी देवी आदिका निषेध करते हैं परन्तु जो श्राद्धदिनकृत्यके पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासनदेवीने रात्रिमें भोजन करनेके कारण

एक पुरुषके थपेड़ा मारा उसकी आंख निकाल डाली उसके बदले बकरे की आंख निकाल कर उस मनुष्यके लगा दी इस देवीको हिंसक क्यों नहीं मानते? रत्नसार भाग १ पृ० ६७ में देखो क्या लिखा है मरुदेवी पथिकोंको पत्थरकी मूर्ति होकर सहाय करती थी इसको भी वैसी क्यों नहीं मानते?॥

मूल—किंसोपि जणणि जाओ जाणो जणणी इकिं अगोविद्धि। जइमिच्छरओ जाओ गुणे सुतमच्छरं वहइ॥ प्र०भा०२ ष०सू० ८१॥

जो जैनमतविरोधी मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्मवाले हैं वे क्यों जन्मे? जो जन्मे तो बढ़े क्यों? अर्थात् शीघ्र ही नष्ट होजाते तो अच्छा होता॥

समीक्षक—देखो! इनके वीतरागभाषित दया धर्म दूसरे मत वालोंका जीवन भी नहीं चाहते केवल इनका दया धर्म कथनमात्र है और जो है सो क्षुद्र जीवों और पशुओंके लिये है जैनभिन्न मनुष्योंके लिये नहीं॥

मूल—शुद्धे मग्गे जाया सुहेण मच्छत्ति सुद्धिमग्गमि। जे पुणअमग्गजाया मग्गे गच्छन्ति ते चुप्पं॥ प्र० भाग २ ष० सू० ८३॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जैनकुलमें जन्म लेकर मुक्तिको जाय तो कुछ आश्चर्य्य नहीं परन्तु जैनभिन्न कुलमें जन्मे हुए मिथ्यात्वी अन्यमार्गी मुक्तिको प्राप्त हों इसमें बड़ा आश्चर्य्य है इसका फलितार्थ यह है कि जैनमत वाले ही मुक्तिको जाते हैं, अन्य कोई नहीं जो जैनमतका ग्रहण नहीं करते वे नरकगामी हैं॥

समीक्षक—क्या जैनमतमें कोई दुष्ट वा नरकगामी नहीं होता? सब ही मुक्तिमें जाते हैं? और अन्य कोई नहीं? क्या यह उन्मत्त-

पनकी बात नहीं है? विना भोले मनुष्योंके ऐसी बात कौन मान सकता है?॥

मूल—तिच्छराणं पूआसंमत्तगुणाणकारिणी भणिया। सावियमिच्छत्तयरी जिण समये देसिया पूआ। प्र० भा० २ ष० सू० ६० ॥

एक जिनमूर्त्तियोंकी पूजा सार और इससे भिन्नमार्गियोंकी मूर्त्तिपूजा असार है जो जिनमार्गकी आज्ञा पालता है वह तत्वज्ञानी, जो नहीं पालता है वह तत्त्वज्ञानी नहीं॥

समीक्षक—वाहजी! क्या कहना!! क्या तुम्हारी मूर्त्ति पाषाणादि जड़ पदार्थोंकी नहीं जैसी कि वैष्णवादिकोंकी हैं? जैसी तुम्हारी मूर्त्तिपूजा मिथ्या है वैसी ही मूर्तिपूजा वैष्णवादिकोंकी भी मिथ्या है जो तुम तत्त्वज्ञानी बनते हो और अन्योंको अतत्त्वज्ञानी बनाते हो इससे विदित होता है कि तुम्हारे मतमें तत्त्वज्ञान नहीं॥

मूल—जिण आणा एधम्मो आणा रहिं आण फुडं अहमुत्ति। इयमुणि ऊण यतत्तं जिण आणाए कुणहु धम्मं॥ प्रक० २। ६२॥

जो जिनदेवकी आज्ञा दया क्षमादि रूप धर्म है उससे अन्य सब आज्ञा अधर्म हैं॥

समीक्षक—यह कितने बड़े अन्यायकी बात है क्या जैनमतसे भिन्न कोई भी पुरुष सत्यवादी धर्मात्मा नहीं है? क्या उस धार्मिक जनको न मानना चाहिये? हां जो जैनमतस्थ मनुष्योंके मुख जिह्वा चमड़ेकी न होती और अन्यकी चमड़ेकी होती तो यह बात घट सकती थी इससे अपने ही मतके ग्रन्थ वचन साधु आदिकी ऐसी बड़ाईकी है कि जानो भाटोंके बड़े भाई ही जैन लोग बन रहे हैं॥

मूल—वन्नेमिनारया उविजेसिन्दुरकाइ सम्भरंता-

णम्। भव्वाण जणइ हरिहररिद्धि समिद्धी विउद्धोसं॥ प्र० भा० २ ष०सू० ६५॥

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि हरिहरादि देवोंकी विभूति है वह नरकका हेतु है उसको देखके जैनियोंके रोमाञ्च खड़े होजाते हैं जैसे राजाज्ञा भङ्ग करनेसे मनुष्य मरण तक दुःख पाता है वैसे जिनेन्द्र-आज्ञा भङ्गसे क्यों न जन्म मरण दुःख पावेगा ?

समीक्षक—देखिये ! जैनियोंके आचार्य्य आदिकी मानसी वृत्ति अर्थात् ऊपरके कपट और ढोंगकी लीला अब तो इनके भीतरकी भी खुल गई हरिहरादि और उनके उपासकोंके ऐश्वर्य्य और बढ़तीको देख भी नहीं सकते उनके रोमाञ्च इसलिये खड़े होते हैं कि दूसरेकी बढ़ती क्यों हुई। बहुधा वैसे चाहते होंगे कि इनका सब ऐश्वर्य्य हमको मिल जाय और ये दरिद्र होजायं तो अच्छा और राजाज्ञाका दृष्टान्त इस-लिये देते हैं कि ये जैन लोग राज्यके बड़े खुशामदी झूठे और डरपु-कने हैं क्या झूठी बात भी राजाकी मान लेनी चाहिये जो ईर्ष्या द्वेषी हो तो जैनियोंसे बढ़के दूसरा कोई भी न होगा॥

मूल—जो देइशुद्धधम्मं सो परमप्पा जयम्मि नहु अन्नो। किं कप्पदुदुम्म सरिसो इयरतरू होइकइयावि॥ प्र०भा० २ ष०सू० १०१॥

वे मूर्ख लोग हैं जो जैनधर्मसे विरुद्ध हैं और जो जितेन्द्रभाषित धर्मोपदेष्टा साधु वा गृहस्थ अथवा ग्रन्थकर्त्ता हैं वे तीर्थंकरोंके तुल्य हैं उनके तुल्य कोई भी नहीं॥

समीक्षक—क्यों न हो ! जो जैनीलोग छोकर-बुद्धि न होते तो ऐसी बात क्यों मान बैठते ? जैसे वेश्या विना अपनेके दूसरीकी स्तुति नहीं करती वैसे ही यह बात भी दीखती है॥

मूल—जे अमुणि अगुण दोषाते कह अबुआणहु-

न्तिम भच्छा। अहते विहुम भच्छाता विसअमि आण तुल्लत्तं ॥ प्रक० २।१०२॥

जिनेन्द्र देव तदुक्त सिद्धान्त और जिनमतके उपदेष्टाओंका त्याग करना जैनियोंको उचित नहीं है ॥

समीक्षक—यह जैनियोंका हठ पक्षपात और अविद्याका फल नहीं तो क्या है? किन्तु जैनियोंकी थोड़ीसी बात छोड़के अन्य सब त्यक्तव्य हैं। जिसकी कुछ थोड़ीसी भी बुद्धि होगी वह जैनियोंके देव, सिद्धान्त-ग्रन्थ और उपदेष्टाओंको देखे, सुने, विचारे तो उसी समय निस्सन्देह छोड़ देगा ॥

मूल—वयणे विसुगुरुजिणवल्लहस्सके सिंन उल्लस इसम्मं। अहकहद्दिण मणितेयं उलुआणं-हरइ अन्धत्तं ॥ प्रक० २। १०८॥

जो जिनवचनके अनुकूल चलते हैं वे पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं वे अपूज्य हैं जैनगुरुओंको मानना अर्थात् अन्यमार्गियोंको न मानना ॥

समीक्षक—भला जो जैन लोग अन्य अज्ञानियोंको पशुवत् चेले करके न बांधते तो उनके जालमेंसे छूटकर अपनी मुक्तिके साधन कर जन्म सफल कर लेते भला जो कोई तुमको कुमार्गी, कुगुरु, मिथ्यात्वी और कुपदेष्टा कहे तो तुमको कितना दुःख लगे? वैसे ही जो तुम दूसरेको दुःखदायक हो इसलिये तुम्हारे मतमें असार बातें बहुतसी भरी हैं ॥

मूल—तिहुअण जणं मरंतं दट्ठूण निअन्तिजेन अप्पाणं। विरमंतिन पावा उधिद्धी धिठ-त्तणं ताणम् ॥ प्रक० भाग २ सू० १०६ ॥

जो मृत्युपर्यन्त दुःख हो तो भी कृषि व्यापारादि कर्म जैनी लोग न करें क्योंकि ये कर्म नरकमें ले जानेवाले हैं ॥

समीक्षक—अब कोई जैनियोंसे पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो? इन कर्मोंको क्यों नहीं छोड़ देते? और जो छोड़ देओ तो तुम्हारे शरीरका पालन पोषण भी न होसके और जो तुम्हारे कहनेसे सब लोग छोड़ दें तो तुम क्या वस्तु खाके जीओगे? ऐसा अत्याचारका उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है, क्या करें विचारे विद्या सत्सङ्गके विना जो मनमें आया सो बक दिया ॥

मूल—तइया हमाण अहमा कारण रहिया अनाण गव्येण। जेजपन्ति उशुत्तं तेसिंदिद्धिछ-पम्मिचं ॥ प्र०भा० २ षष्ठी सू०१२१ ॥

जो जैनागमसे विरुद्ध शास्त्रोंके माननेवाले हैं वे अधमाऽधम हैं। चाहे कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो तो भी जैनमतसे विरुद्ध न बोलें न माने चाहें कोई प्रयोजन सिद्ध होता है तो भी अन्य मतका त्याग करदे ॥

समीक्षक—तुम्हारे मूलपुरुषोंसे लेके आजतक जितने होगये और होंगे उन्होंने विना दूसरे मतको गालिप्रदानके अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे भला जहां २ जैनी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध होना देखते हैं वहां चेलोंके भी चेले बन जाते हैं तो ऐसी मिथ्या लम्बी चौड़ी बातोंके हांकनेमें तनिक भी लज्जा नहीं आती यह बड़े शोककी बात है ॥

मूल—जम्बीर जिणस्सजिओ मिरई उरसुत्तले स-देसणओ। सागर कोड़ा कोड़िहिं मइ अइ भी भवरणे ॥ प्र० भा० २ ष० सू० १२२ ॥

जो कोई ऐसा कहे कि जैनसाधुओंमें धर्म है हमारे और अन्यमें

भी धर्म है तो वह मनुष्य क्रोड़ान् क्रोड़ वर्ष तक नरकमें रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है।

समीक्षक—वाहरे! वाह!! विद्याके शत्रुओ! तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनोंका कोई खण्डन न करे इसीलिये यह भयङ्कर वचन लिखा है सो असम्भव है। अब कहांतक तुमको समझावें तुमने तो झूठ निन्दा और अन्य मतोंसे वैर विरोध करने पर ही कटिबद्ध होकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना मोहनभोग समान समझ लिया है।

मूल—दूरे करणं दूरम्मि साहूणं तहयभावणा दूरे।
जिणधम्म सद्दहारं पितिर कदुरकाइनिठवइ॥

प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० १२७॥

जिस मनुष्यसे जैनधर्मका कुछ भी अनुष्ठान न होसके तो भी जो जैनधर्म सच्चा है, अन्य कोई नहीं। इतनी श्रद्धामात्र ही से दुःख तरसे जाता है॥

समीक्षक—भला इससे अधिक मूर्खोंको अपने मतजालमें फँसाने की दूसरी कौनसी बात होगी? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मुक्ति हो ही जाय ऐसा मूंढ़ मत कौनसा होगा?

मूल—कइया होही दिवसो जइया सुगुरूण पाय-
मूलम्मि। उस्सुत्त सविसलवर हिलेओनि-
सुणे सुजिणधम्मं॥ प्र०भा०२ ष०सू०१२८॥

जो मनुष्य हूं तो जिनागम अर्थात् जैनोंके शास्त्रोंको सुनूंगा उत्सूत्र अर्थात् अन्य मतके ग्रन्थोंको कभी न सुनूंगा इतनी इच्छा करे वह इतनी इच्छामात्र ही से दुःखसागरसे तर जाता है॥

समीक्षक—यह भी बात भोले मनुष्योंको फँसानेके लिये है क्योंकि उस पूर्वोक्त इच्छासे यहांके दुःखसागरसे भी नहीं तरता और पूर्वज-

न्मके भी संचित पापोंके दुःखरूपी फल भोगे विना नहीं छूट सकता। जो ऐसी २ झूठ अर्थात् विद्याविरुद्ध बात न लिखते तो इनके अविद्यारूप ग्रन्थोंको वेदादि शास्त्र देख सुन सत्यासत्य जानकर इनके पोकल-ग्रन्थोंको छोड़ देते परन्तु ऐसा जकड़ कर इन अविद्वानोंको बांधा है कि इस जालसे कोई एक बुद्धिमान् सत्संगी चाहे छूट सके तो सम्भव है परन्तु अन्य जड़बुद्धियोंका छूटना तो अतिकठिन है॥

मूल—ब्रह्मजेणं हिं भणियं सुयववहारं विसोहियंतस्स। जायइ विसुद्ध बोही जिणआणा राह गत्ताओ॥ प्र० भाग २ षष्ठी सू० १३८॥

जो जिनाचार्योंने कहे सूत्र निरुक्ति वृत्ति भाष्यचूर्णी मानते हैं वे ही शुभ व्यवहार और दुःसहव्यवहारके करनेसे चारित्रयुक्त होकर सुखोंको प्राप्त होते हैं अन्य मतके ग्रन्थ देखनेसे नहीं॥

समीक्षक—क्या अत्यन्त भूखे मरने आदि कष्ट सहनेको चारित्र कहते हैं जो भूखा प्यासा मरना आदि ही चारित्र है तो बहुतसे मनुष्य अकाल वा जिनको अन्नादि नहीं मिलते भूखे मरते हैं वे शुद्ध होकर शुभ फलोंको प्राप्त होने चाहियें सो न ये शुद्ध होवें और न तुम, किन्तु पित्तादिके प्रकोपसे रोगी होकर सुखके बदले दुःखको प्राप्त होते हैं धर्म तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि है और असत्यभाषण अन्यायाचरणादि पाप है और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकारार्थ वर्त्तना शुभ चरित्र कहाता है जैनमतस्थोंका भूखा प्यासा रहना आदि धर्म नहीं इन सूत्रादिको माननेसे थोड़ासा सत्य और अधिक झूठको प्राप्त होकर दुःखसागरमें डूबते हैं॥

मूल—जइजाणसि जिणनाहो लोयाया राविपरकए-भूओ। तातंतं मन्नं तो कहमन्नसि लोअ आयारं॥ प्र०भा० २ ष० सू० १४८॥

जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं वे ही जिनधर्मका ग्रहण करते हैं अर्थात् जो जिनधर्मका ग्रहण नहीं करते उनका प्रारब्ध नष्ट है ॥

समीक्षक—क्या यह बात भूलकी और झूठ नहीं है ? क्या अन्य मतमें श्रेष्ठप्रारब्धी और जैनमतमें नष्ट प्रारब्धी कोई भी नहीं है ? और जो यह कहा कि सधर्मी अर्थात् जैनधर्मवाले आपसमें क्लेश न करें किन्तु प्रीतिपूर्वक वर्त्तें इससे यह बात सिद्ध होती है कि दूसरेके साथ कलह करनेमें बुराई जैन लोग नहीं मानते होंगे यह भी इनकी बात अयुक्त है क्योंकि सज्जन पुरुष सज्जनोंके साथ प्रेम और दुष्टोंको शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं और जो यह लिखा कि ब्राह्मण, त्रिदण्डी, परिव्राजकाचार्य अर्थात् संन्यासी और तापसादि अर्थात् वैरागी आदि सब जैनमतके शत्रु हैं। अब देखिये कि सबको शत्रुभावसे देखते और निन्दा करते हैं तो जैनियोंकी दया और क्षमारूप धर्म कहां रहा क्योंकि जब दूसरे पर द्वेष रखना दया क्षमाका नाश और इसके समान कोई दूसरा हिंसारूप दोष नहीं जैसे द्वेषमूर्त्तियां जैनी लोग हैं वैसे दूसरे थोड़े ही होंगे। ऋषभदेवसे लेके महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकरोंको रागी द्वेषी मिथ्यात्वी कहें और जैनमत माननेवालेको सन्निपातज्वरसे फँसे हुए मानें और उनका धर्म नरक और विषके समान समझें तो जैनियोंको कितना बुरा लगेगा ? इसलिए जैनी लोग निन्दा और परमतद्वेषरूप नरकमें डूबकर महाक्लेश भोग रहे हैं इस बातको छोड़ दें तो बहुत अच्छा होवे ॥

मूल—एगो अगरू एगो विसाव गोचे इआणि विवहाणि। तच्छयजं जिणद्व्वं परूप्परन्तं न विञ्चन्ति ॥ प्र०भा० २षष्ठी० सू० १५०॥

सब श्रावकोंका देवगुरुधर्म एक है चैत्यवन्दन अर्थात् जिनप्रतिबिम्ब मूर्त्तिदेवल और जिनद्रव्यकी रक्षा और मूर्त्तिकी पूजा करना धर्म है ॥

समीक्षक—अब देखो! जितना मूर्त्तिपूजाका झगड़ा चला है वह सब जैनियोंके घरसे और पाखण्डोंका मूल भी जैनमत है॥ श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ १ में मूर्त्तिपूजाके प्रमाणः—

नवकारेण विबोहो ॥ १ ॥ अनुसरणं सावउ ॥२॥ वयाइं इमे ॥ ३ ॥ जोगो ॥ ४ ॥ चिय वन्दणगो ॥ ५ ॥ यच्चरखाणं तु विहि पुच्छम् ॥ ६ ॥

इत्यादि श्रावकोंको पहिले द्वारमें नवकारका जप कर जाना ॥१॥

दूसरा नवकार जपे पीछे मैं श्रावक हूं स्मरण करना ॥ २ ॥

तीसरे अणुव्रतादिक हमारे कितने हैं॥ ३ ॥

चौथे द्वारे चार वर्गमें अग्रगामी मोक्ष है उस कारण ज्ञानादिक है सो योग उसका सब अतीचार निर्मल करनेसे छः आवश्यक कारण सो भी उपचारसे योग कहाता है सो योग कहेंगे ॥ ४ ॥

पांचवें चैत्यवन्द अर्थात् मूर्त्तिको नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे ॥ ५ ॥

छठा प्रत्याख्यान द्वार नवकारसीप्रमुख विधिपूर्वक कहूंगा इत्यादि ॥ ६ ॥

और इसी ग्रन्थमें आगे २ बहुतसी विधि लिखी हैं अर्थात् संध्याके भोजन समयमें जिनबिम्ब अर्थात् तीर्थंकरोंकी मूर्त्तिपूजना और द्वार पूजना और द्वारपूजामें बड़े २ बखेड़े हैं। मन्दिर बनानेके नियम पुराने मंदिरोंको बनवाने और सुधारनेसे मुक्ति होजाती है मंदिरमें इस प्रकार जाकर बैठे बड़े भाव प्रीतिसे पूजा करे "नमो जिनेन्द्रेभ्यः" इत्यादि मन्त्रोंसे स्नानादि कराना। और "जलचन्दनपुष्पधूपदीपनैः" इत्यादिसे गन्धादि चढ़ावें। रत्नसार भागके १२ वें पृष्ठमें मूर्त्तिपूजाका फल यह लिखा है कि पुजारीको राजा वा प्रजा कोई भी न रोक सके॥

समीक्षक—ये बातें सब कपोलकल्पित हैं क्योंकि बहुतसे जैन पूजारियोंको राजादि रोकते हैं। रत्नसा० पृष्ठ ३ में लिखा है "मूर्त्ति-

पूजासे रोग पीड़ा और महादोष छूट जाते हैं एक किसीने ५ कौड़ीका फूल चढ़ाया उसने १८ देशका राज पाया उसका नाम कुमारपाल हुआ था इत्यादि सब बातें झूठी और मूर्खोंको लुभानेकी हैं क्योंकि अनेक जैनी लोग पूजा करते२ रोगी रहते हैं और १ बीघेका भी राज्य पाषाणादि मूर्त्तिपूजासे नहीं मिलता ! और जो पांच कौड़ीका फूल चढ़ानेसे राज्य मिले तो पांच२ कौड़ीके फूल चढ़ाके सब भूगोलका राज्य क्यों नहीं कर लेते ? और राजदंड क्यों भोगते हैं ? और जो मूर्ति-पूजा करके भवसागरसे तर जाते हो तो ज्ञान सम्यग्दर्शन और चारित्र क्यों करते हो ? रत्नसार भाग पृष्ठ १३ में लिखा है कि गौतमके अंगूठेमें अमृत और उसके स्मरणसे मनवांछित फल पाता है ॥

समीक्षक—जो ऐसा हो तो सब जैनी लोग अमर हो जाने चाहिये सो नहीं होते इससे यह इनकी केवल मूर्खोंके बहकानेकी बात है दूसरे इसमें कुछ भी तत्त्व नहीं इनकी पूजा करनेका श्लोक रत्नसार भा० पृष्ठ ५२ में:—

जलचन्दनधूपनैरथ दीपाक्षतकैर्नैवेद्यवस्त्रैः।
उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजामहे ॥

हम जल, चन्दन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र और अति श्रेष्ठ उपचारोंसे जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरोंकी पूजा करें। इसीसे हम कहते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली है। (विवेकसार पृष्ठ २१) जिनमन्दिरमें मोह नहीं आता और भवसागरके पार उतारने वाला है। (विवेकसार पृ० ५१ से ५२) मूर्तिपूजासे मुक्ति होती है और जिन मन्दिरमें जानेसे सद्गुण आते हैं जो जल चन्दनादिसे तीर्थंकरों की पूजा करे वह नरकसे छूट स्वर्गको जाय। (विवेकसार पृ० ५५) जिन मन्दिरमें ऋषभदेवादिकी मूर्तियोंके पूजनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि होती है। (विवेकसार पृ० ६१) जिनमूर्तियोंकी पूजा करे तो सब जगत्के क्लेश छूट जायें ॥

समीक्षक—अब देखो! इनकी अविद्यायुक्त असंभव बातें जो इस प्रकारसे पापादि बुरे कर्म छूट जायें, मोह न आवे, भवसागरसे पार उतर जायें, सद्गुण आजायें, नरकको छोड़ स्वर्गमें जायें, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको प्राप्त होवें और सब क्लेश छूट जायं तो सब जैनी लोग सुखी और सब पदार्थोंकी सिद्धिको प्राप्त क्यों नहीं होते? इसी विवेकसारके ३ पृष्ठमें लिखा है कि जिन्होंने जिनमूर्तिका स्थापन किया है उन्होंने अपनी और अपने कुटुम्बकी जीविका खड़ी की है। (विवेकसार पृ० २२५) शिव विष्णु आदिकी मूर्तियोंकी पूजा करनी बहुत बुरी है अर्थात् नरकका साधन है।

समीक्षक—भला जब शिवादिकी मूर्तियां नरकके साधन हैं तो जैनियोंकी मूर्तियां क्या वैसी नहीं? जो कहें कि हमारी मूर्तियां त्यागी, शान्त और शुभमुद्रायुक्त हैं इसलिये अच्छी और शिवादिकी मूर्ति वैसी नहीं इसलिये बुरी हैं तो इनसे कहना चाहिये कि तुम्हारी मूर्तियां तो लाखों रुपयोंके मन्दिरमें रहती हैं और चन्दन केशरादि चढ़ता है पुनः त्यागी कैसी? और शिवादिकी मूर्तियां तो विना छाया के भी रहती हैं, वे त्यागी क्यों नहीं? और जो शान्त कहो तो जड़ पदार्थ सब निश्चल होनेसे शान्त हैं सब मतोंकी मूर्त्तियां व्यर्थ है।

प्रश्न—हमारी मूर्त्तियां वस्त्र आभूषणादि धारण नहीं करती इसलिये अच्छी हैं।

उत्तर—सबके सामने नंगी मूर्त्तियोंका रहना और रखना पशुवत् लीला है।

प्रश्न—जैसी स्त्रीका चित्र या मूर्त्ति देखनेसे कामोत्पत्ति होती है वैसे साधु और योगियोंकी मूर्तियोंको देखनेसे शुभ गुण प्राप्त होते हैं।

उत्तर—जो पाषाणमूर्त्तियोंके देखनेसे शुभ परिणाम मानते हो तो उसके जड़त्वादि गुण भी तुम्हारेमें आजायेंगे। जब जड़बुद्धि होंगे तो सर्वथा नष्ट हो जाओगे। दूसरे जो उत्तम विद्वान् हैं उनके संग सेवासे छूटनेसे मूढ़ता भी अधिक होगी और जो २ दोष ग्यारहवें समुल्लासमें

लिखे हैं वे सब पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने व लोंको लगते हैं। इसलिये जैसा जैनियोंने मूर्त्तिपूजामें झूठा कोलाहल चलाया है वैसे इनके मन्त्रों में भी बहुतसी असम्भव बातें लिखी हैं यह इनका मन्त्र है। रत्नसार भाग पृष्ठ १ में:—

नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूणं एसो पञ्च नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो मङ्गलाचरणं च सव्वे सिपढमं हवइ मङ्गलम्॥ ११ ॥

इस मन्त्रका बड़ा माहात्म्य लिखा है और सब जैनियोंका यह गुरु मन्त्र है। इसका ऐसा माहात्म्य धरा है कि तंत्र पुराण भाटोंकी भी कथाको पराजय कर दिया है, श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ ३:—

नमुक्कार तउपढे ॥ ९ ॥ जउकव्वं। मन्ताणमन्तो परमो इमुत्ति धेयाणधेयं परमं इमुत्ति। तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं संसारसत्ताणदुहाहयाणं ॥ १० ॥ ताणं अन्नन्तु नो अत्थि। जीवाणं भवसायरे। बुड्डूं ताणं इमं मुत्तुं। न मुक्कारं सुपोययम् ॥११॥ कव्वं। अणेगजम्मंतरसं चिआणं। दुहाणं दुहाणं सारीरिअमाणुसाणुसाणं। कत्तोय भव्वाणभविज्ज-नासो न जावपत्तो नवकारमन्तो ॥ १२ ॥

जो यह मंत्र है पवित्र और परममन्त्र है वह ध्यानके योग्यमें परम ध्येय है, तत्त्वोंमें परमतत्त्व है, दुःखोंसे पीड़ित संसारी जीवोंको नवकार मन्त्र ऐसा है कि जैसी समुद्रके पार उतारनेकी नौका होती है॥ ९। १० ॥

७ जो यह नवकार मन्त्र है वह नौकाके समान है जो इसको छोड़ देते हैं वे भवसागरमें डूबते हैं और जो इसका ग्रहण करते हैं वे दुःखों से तर जाते हैं जीवोंको दुःखोंसे पृथक् रखने वाला सब पापोंका नाशक मुक्तिकारक इस मन्त्रके विना दूसरा कोई नहीं ॥११॥

अनेक भवान्तरमें उत्पन्न हुआ शरीर सम्बन्धी दुःख भव्य जीवों को भवसागरसे तारनेवाला यही है, जब तक नवकार मन्त्र नहीं पाया तब तक भवसागरसे जीव नहीं तर सकता। यह अर्थ सूत्रमें कहा है और जो अग्नि-प्रमुख अष्ट महाभयोंमें सहाय एक नवकार मन्त्रको छोड़कर दूसरा कोई नहीं। जैसे महारत्न वैदूर्य नामक मणि ग्रहण करनेमें आवे अथवा शत्रुभय में अमोघ शस्त्रके ग्रहण करनेमें आवे वैसे श्रुत केवलीका ग्रहण करे और सब द्वादशांगाका नवकार मन्त्र रहस्य है इस मन्त्रका अर्थ यह है। (नमो अरिहन्ताणं) सब तीर्थंकरोंको नमस्कार (नमो सिद्धाणं) जैनमतके सब सिद्धोंको नमस्कार। (नमो आयरियाणं) जैनमतके सब आचार्योंको नमस्कार। (नमो उवज्झायाणं) जैनमतके सब उपाध्यायोंको नमस्कार। (नमो लोए सव्व साहूणं) जितने जैनमतके साधु इस लोकमें हैं उन सबको नमस्कार है। यद्यपि मन्त्रमें जैन पद नहीं है तथापि जैनियोंके अनेक ग्रन्थोंमें विना जैन मतके अन्य किसीको नमस्कार भी न करना लिखा है। इसलिये यही अर्थ ठीक है (तत्त्वविवेक पृष्ठ १६६) जो मनुष्य लकड़ी पत्थरको देवबुद्धि कर पूजता है वह अच्छे फलोंको प्राप्त होता है॥

समीक्षक—जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप फलों को प्राप्त क्यों नहीं होते? (रत्नसारभाग पृ० १०) पार्श्वनाथकी मूर्त्ति के दर्शनसे पाप नष्ट हो जाते हैं। कल्पभाष्य पृ० ५१ में लिखा है कि सवालाख मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया इत्यादि। मूर्त्तिपूजा विषयमें इनका बहुतसा लेख है। इसीसे समझा जाता है कि मूर्त्तिपूजाका मूल कारण जैनमत है। अब इन जैनियोंके साधुओंकी लीला देखिये। (विवेकसार पृ० २२८) एक जैनमतका साधु कोशा वेश्यासे भोग

करके पश्चात् त्यागी होकर स्वर्गलोकको गया। (विवेकसार पृ० १०) अर्णकमुनि चारित्रसे चूककर कई वर्ष पर्यन्त दत्त सेठके घरमें विषय भोग करके पश्चात् देवलोकको गया। श्रीकृष्णके पुत्र ढंढण मुनिको स्थालिया उठा लेगया पश्चात् देवता हुआ। (विवेकसार पृ० १५६) जैनमतका साधु लिङ्गधारी अर्थात् वेशधारी मात्र हो तो भी उसका सत्कार श्रावक लोग करें चाहें साधु शुद्धचरित्र हो चाहें अशुद्धचरित्र सब पूजनीय हैं। (विवेकसार पृ० १६८) जैनमतका साधु चरित्रहीन हो तो भी अन्य मतके साधुओंसे श्रेष्ठ है। (विवेकसार पृ० १७१) श्रावक लोग जैनमतके साधुओंको चरित्ररहित भ्रष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिये। (विवेकसार पृ० २१६) एक चोरने पांच मूठी लोंच कर चारित्र ग्रहण किया। बड़ा कष्ट और पश्चात्ताप किया, छठे महीनेमें केवल ज्ञान पाके सिद्ध होगया।

समीक्षक—अब देखिये इनके साधु और गृहस्थोंकी लीला इनके मतमें बहुत कुकर्म करनेवाला साधु भी सद्गतिको गया और विवेकसार पृष्ठ १०६ मे लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नरकमें गया। विवेकसार पृष्ठ १४५ में लिखा है कि धन्वन्तरि नरकमें गया। विवेकसार पृष्ठ ४८ में जोगी, जंगम, काजी, मुल्ला कितने ही अज्ञानसे तप कष्ट करके भी कुगतिको पाते हैं। रत्नसार भा० पृष्ठ १७१ में लिखा है कि नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विपृष्ठ वासुदेव, स्वयंभू वासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव, सिंहपुरुष वासुदेव, पुरुष पुण्डरीक वासुदेव, दत्तवासुदेव, लक्ष्मण वासुदेव और श्रीकृष्ण वासुदेव ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाइसवें तीर्थंकरोंके समयमें नरकको गये और नवप्रतिवासुदेव अर्थात् अश्वग्रीवप्रतिवासुदेव, तारकप्रतिवासुदेव, मोदकप्रतिवासुदेव, मधुप्रतिवासुदेव, निशुम्भप्रतिवासुदेव, बलीप्रतिवासुदेव, प्रह्लादप्रतिवासुदेव, रावणप्रतिवासुदेव और जरासिंधुप्रतिवासुदेव ये भी सब नरकको गये। और कल्पभाष्यमें लिखा है कि ऋषभदेवसे लेके महावीर पर्यन्त २४ तीर्थंकर सब मोक्षको

प्राप्त हुए ॥

समीक्षक—भला कोई बुद्धिमान् पुरुष विचारे कि इनके साधु गृहस्थ और तीर्थंकर जिनमें बहुतसे वेश्यागामी, परस्त्रीगामी, चोर आदि सब जैन मतस्थ स्वर्ग और मुक्तिको गये और श्रीकृष्णादि महाधार्मिक महात्मा सब नरकको गये यह कितनी बड़ी बुरी बात है? प्रत्युत विचारके देखें तो अच्छे पुरुषको जैनियोंका संग करना वा उनको देखना भी बुरा है क्योंकि जो इनका संग करे तो ऐसी ही झूठी २ बातें उसके भी हृदयमें स्थित हो जावेंगी क्योंकि इन महाहठी, दुराग्रही मनुष्योंके संगसे सिवाय बुराइयोंके अन्य कुछ भी पल्ले न पड़ेगा। हां जो जैनियोंमें उत्तमजन * हैं उनसे सत्संगादि करनेमें भी दोष नहीं। विवेकसार पृष्ठ ५५ में लिखा है कि गङ्गादि तीर्थ और काशी आदि क्षेत्रोंके सेवनेसे कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता और अपने गिरनार, पालीटाणा और आबू आदि तीर्थ क्षेत्र मुक्ति पर्यन्तके देनेवाले हैं ॥

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि जैसे शैव वैष्णवादिके तीर्थ और क्षेत्र जल स्थल जड़स्वरूप हैं वैसे जैनियोंके भी हैं इसमेंसे एककी निन्दा और दूसरेकी स्तुति करना मूर्खताका काम है ॥

जैनों की मुक्तिका वर्णन ॥

(रत्नसार भाग पृष्ठ २३) महावीर तीर्थंकर गौतमजीसे कहते हैं कि ऊर्ध्वलोकमें एक सिद्धशिला स्थान है स्वर्गपुरीके ऊपर पैंतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी ही पोली है तथा ८ योजन मोटी है जैसे मोतीका श्वेतहार वा गोदुग्ध है उससे भी उजली है। सोनेके समान प्रकाशमान और स्फटिकसे भी निर्मल है यह सिद्धशिला चौदहवें लोककी शिखापर है और उस सिद्धशिलाके ऊपर शिवपुर धाम उसमें भी मुक्त पुरुष अधर रहते हैं वहां जन्म मरणादि कोई दोष नहीं और

* जो उत्तमजन होगा वह इस असार जैनमतमें कभी न रहेगा।

आनन्द करते रहते हैं पुनः जन्ममरणमें नहीं आते सब कर्मोंसे छूट जाते हैं यह जैनियोंकी मुक्ति है ॥

समीक्षक—विचारना चाहिये कि जैसे अन्य मतमें वैकुण्ठ, कैलास, गोलोक, श्रीपुर आदि पुराणी, चौथे आसमानमें ईसाई, सातवें आसमानमें मुसलमानोंके मतमें मुक्तिके स्थान लिखे हैं वैसे ही जैनियों की सिद्धशिला और शिवपुर भी हैं। क्योंकि जिसको जैनी लोग ऊंचा मानते हैं वही नीचे वाले जो कि हमसे भूगोलके नीचे रहते हैं उनकी अपेक्षामें नीचा ऊंचा व्यवस्थित पदार्थ नहीं है जो आर्यावर्त्त-वासी जैनी लोग ऊंचा मानते हैं उसीको अमेरिका वाले नीचा मानते हैं और आर्यावर्तवासी जिसको नीचा मानते हैं उसीको अमेरिकावाले ऊंचा मानते हैं चाहे वह शिला पैंतालीस लाखसे दूनी नब्बेलाख कोश की होती तो भी वे मुक्त बन्धनमें हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलनेसे उनकी मुक्ति छूट जाती होगी। और सदा उसमें रहनेकी प्रीति और उससे बाहर जानेमें अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्योंकर कह सकते हैं? मुक्ति तो जैसी नवमें समुल्लासमें वर्णन कर आये हैं वैसी मानना ठीक है और यह जैनियोंकी मुक्ति भी एक प्रकारका बन्धन है ये जैनी भी मुक्ति विषयमें भ्रमसे फँसे हैं। यह सच है कि विना वेदोंके यथार्थ अर्थ बोधके मुक्तिके स्वरूपको कभी नहीं जान सकते ॥

अब और थोड़ीसी असम्भव बातें इनकी सुनो। (विवेकसार पृष्ठ ७८) एक करोड़ साठ लाख कलशोंसे महावीरको जन्म समयमें स्नान कराया। (विवेकसार पृष्ट १३६) दशार्ण राजा महावीरके दर्शनको गया वहां कुछ अभिमान किया उसके निवारणके लिये १६, ७७, ७२, १६००० इतने इन्द्रके स्वरूप और १३, ३७, ०५, ७२, ८०, ००००००० इतनी इन्द्राणी वहां आई थीं। देखकर राजा आश्चर्य हो गया।

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि इन्द्र और इन्द्राणियोंके

खड़े रहनेके लिये ऐसे २ कितने ही भूगोल चाहियें। श्राद्धदिनकृत्य आत्मनिन्दा भावना पृष्ठ ३१ में लिखा है कि बावड़ी, कुआ और तालाब न बनवाना चाहिये ॥

समीक्षक—भला जो सब मनुष्य जैनमतमें हो जायें और कुआ तालाब, बावड़ी आदि कोई भी न बनवावें तो सब लोग जल कहांसे पियें ?

प्रश्न—तालाब आदि बनवानेसे जीव पड़ते हैं उससे बनवाने वालेको पाप लगता है। इसलिये हम जैनी लोग इस कामको नहीं करते।

उत्तर—तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों होगई ? क्योंकि जैसे क्षुद्र २ जीवोंके मरनेसे पाप गिनते हो तो बड़े २ गाय आदि पशु और मनुष्यादि प्राणियोंके जल पीने आदिसे महापुण्य होगा उसको क्यों नहीं गिनते ? (तत्वविवेक पृष्ठ १९६) इस नगरीमें एक नन्दमणिकार सेठने बावड़ी बनवाई उससे धर्मभ्रष्ट होकर सोलह महारोग हुए, मरके उसी बावड़ीमें मेंडुका हुआ, महावीरके दर्शनसे उसको जातिस्मरण होगया, महावीर कहते हैं कि मेरा आना सुनकर वह पूर्व जन्मके धर्माचार्य जान वन्दनाको आने लगा, मार्गमें श्रेणिकके घोड़ेकी टापसे मरकर शुभध्यानके योगसे दर्दुरांक नाम महर्द्धिक देवता हुआ, अवधिज्ञानसे मुझको यहां आया जान वन्दनापूर्वक ऋद्धि दिखाके गया।

समीक्षक—इत्यादि विद्याविरुद्ध असम्भव मिथ्या बातके कहनेवाले महावीरको सर्वोत्तम मानना महाभ्रान्तिकी बात है, श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ ३६ में लिखा है कि मृतकवस्त्र साधु ले लेवें।

समीक्षक—देखिये इनके साधु भी महाब्राह्मणके समान होगये वस्त्र तो साधु लेवें परन्तु मृतकके आभूषण कौन लेवे बहुमूल्य होनेसे घरमें रख लेते होंगे तो आप कौन हुए। (रत्नसार पृ० १०५) भंजने, कूटने, पीसने, अन्न पकाने आदिमें पाप होता है।

समीक्षक—अब देखिये इनकी विद्याहीनता भला ये कर्म न किये जायें तो मनुष्यादि प्राणी कैसे जी सकें ? और जैनी लोग भी पीड़ित

होकर मर जायें । (रत्नसार पृ० १०४) बागीचा लगानेसे एक लक्ष पाप मालीको लगता है ।

समीक्षक—जो मालीको लक्ष पाप लगता है तो अनेक जीव पत्र, फल, फूल और छायासे आनन्दित होते हैं तो करोंड़ो गुणा पुण्य भी होता ही है इस पर कुछ ध्यान भी न दिया यह कितना अन्धेर है । (तत्त्वविवेक पृ० २०२) एक दिन लब्धि साधु भूलसे वेश्याके घरमें चला गया और धर्मसे भिक्षा मांगी वेश्या बोली कि यहां धर्मका काम नहीं किन्तु अर्थका काम है तो उस लब्धि साधुने साढ़े बारह लाख अशर्फी उसके घरमें वर्षा दीं ।

समीक्षक—इस बातको सत्य विना नष्टबुद्धि पुरुषके कौन मानेगा ? रत्नसार भाग पृ० ६७ में लिखा है कि एक पाषाणकी मूर्त्ति घोड़े पर चढ़ी हुई उसका जहां स्मरण करे वहां उपस्थित होकर रक्षा करती है ।

समीक्षक—कहो जैनीजी ! आजकल तुम्हारे यहां चोरी, डांका आदि और शत्रुका भय होता ही है तो तुम उसका स्मरण करके अपनी रक्षा क्यों नहीं करा लेते हो ? क्यों जहां तहां पुलिस आदि राजस्थानोंमें मारे २ फिरते हो ? अब इनके साधुओंके लक्षणः—

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः ।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसङ्गा जैनसाधवः ॥१॥
लुञ्चिता पिच्छिका हस्ता पाणिपात्रा दिगम्बराः ।
ऊर्ध्वासिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥ २ ॥
भुङ्क्ते न केवलं न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः ।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह ॥ ३ ॥

जैनके साधुओंके लक्षणार्थ जिनदत्तसूरीने ये श्लोकोंसे कहे हैं (सरजोहरण) चमरी रखना, और भिक्षा मांगके खाना, शिरके बाल लुञ्चित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना,

किसीका संग न करना ऐसे लक्षणयुक्त जैनियोंके श्वेताम्बर जिनको यती कहते हैं ॥ १ ॥

दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण न करना, शिरके बाल उखाड़ डालना, पिच्छिका एक ऊनके सूतोंका झाड़ू लगानेका साधन बगलमें रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथमें लेकर खालेना ये दिगम्बर दूसरे प्रकारके साधु होते हैं ॥ २ ॥

और भिक्षा देनेवाला गृहस्थ जब भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें वे जिनर्षि अर्थात् तीसरे प्रकारके साधु होते हैं दिगम्बरोंका श्वेताम्बरोंके साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्रीका अपवर्ग नहीं करते और श्वेताम्बर कहते हैं इत्यादि बातोंसे मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यह इनके साधुओंका भेद है। इससे जैन लोगोंका केशलुञ्चन सर्वत्र प्रसिद्ध है और पांच मुष्टि लुञ्चन करना इत्यादि भी लिखा है। विवेकसार भा० पृष्ठ २१६ में लिखा है कि पांच मुष्टि लुञ्चन कर चारित्र ग्रहण किया अर्थात् पांच मूठी शिरके बाल उखाड़के साधु हुआ (कल्पसूत्रभाष्य पृष्ठ १०८) केशलुञ्चन करे गौके बालोंके तुल्य रक्खे।

समीक्षक—अब कहिये जैन लोगो ! तुम्हारा दया धर्म कहां रहा ? क्या यह हिंसा अर्थात् चाहें अपने हाथसे लुञ्चन करे चाहें उसका गुरु करे वा अन्य कोई परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीवको होता होगा ? जीवको कष्ट देना ही हिंसा कहाती है। विवेकसार पृ० संवत् १६३३ के सालमें श्वेताम्बरोंमेंसे ढूंढिया और ढूंढियोंमेंसे तेरहपन्थी आदि ढोंगी निकले हैं। ढूंढिये लोग पाषाणादि मूर्त्तिको नहीं मानते और वे भोजन स्नानको छोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते हैं और जती आदि भी जब पुस्तक बांचते हैं तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं अन्य समय नहीं।

प्रश्न—मुख पर पट्टी अवश्य बांधना चाहिये क्योंकि "वायुकाय"

अर्थात् जो वायुमें सूक्ष्म शरीरवाले जीव रहते हैं वे मुखके बाफकी उष्णतासे मरते हैं और उसका पाप मुख पर पट्टी न बांधनेवाले पर होता है इसलिये हम लोग मुख पर पट्टी बांधना अच्छा समझते हैं।

उत्तर—यह बात विद्या और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणकी रीतिसे अयुक्त है क्योंकि जीव अजर अमर हैं फिर वे मुखकी बाफसे कभी नहीं मर सकते इनको तुम भी अजर अमर मानते हो।

प्रश्न—जीव तो नहीं मरता परन्तु जो मुखके उष्ण वायुसे उनको पीड़ा पहुंचती है उस पीड़ा पहुंचानेवालेको पाप होता है इसीलिये मुख पर पट्टी बांधना अच्छा है।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है क्योंकि पीड़ा दिये विना किसी जीवका किंचित् भी निर्वाह नहीं हो सकता जब मुखके वायुसे तुम्हारे मतमें जीवोंको पीड़ा पहुंचती है तो चलने, फिरने; बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादिके चलानेमें पीड़ा अवश्य पहुंचती होगी इसलिये तुम भी जीवोंको पीड़ा पहुंचानेसे पृथक् नहीं रह सकते।

प्रश्न—हां जहांतक बन सके वहां तक जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये और जहां हम नहीं बचा सकते वहां अशक्त हैं क्योंकि सब वायु आदि पदार्थोंमें जीव भरे हुए हैं जो हम मुख पर कपड़ा न बांधें तो बहुत जीव मरें कपड़ा बांधनेसे न्यून मरते हैं।

उत्तर—यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है क्योंकि कपड़ा बांधनेसे जीवोंको अधिक दुःख पहुंचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बांधे तो उसका मुखका वायु रुकके नीचे वा पार्श्व और मौन समयमें नासिकाद्वारा इकट्ठा होकर वेगसे निकलता है उससे उष्णता अधिक होकर जीवोंको विशेष पीड़ा तुम्हारे मतानुसार पहुंचती होगी। देखो! जैसे घर व कोठरीके सब दरवाजे बन्द किये व पड़दे, डाले जायें तो उसमें उष्णता विशेष होती है खुला रखनेसे उतनी नहीं होती वैसे मुख पर कपड़ा बांधनेसे उष्णता अधिक होती है और खुला रहनेसे न्यून वैसे तुम अपने मतानुसार जीवोंको अधिक दुःखदायक हो और जब

मुख बन्द किया जाता है तब नासिकाके छिद्रोंसे वायु रुक इकट्ठा होकर वेगसे निकलता हुआ जीवोंको अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा। देखो! जैसे कोई मनुष्य अग्निको मुखसे फूँकता और कोई नलीसे तो मुखका वायु फैलनेसे कम बल और नलीका वायु इकट्ठा होनेसे अधिक बलसे अग्निमें लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बांधकर वायुके रोकनेसे नासिकाद्वारा अतिवेगसे निकल कर जीवोंको अधिक दुःख देता है इससे मुख पर पट्टी बांधनेवालोंसे नहीं बांधनेवाले धर्मात्मा हैं। और मुख पर पट्टी बांधनेसे अक्षरोंका यथायोग्य स्थान प्रयत्नके साथ उच्चारण भी नहीं होता निरनुनासिक अक्षरोंको सानुनासिक बोलनेसे तुमको दोष लगता है तथा मुख पर पट्टी बांधनेसे दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीरके भीतर दुर्गन्ध भरा है। शरीरसे जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त प्रत्यक्ष है जो वह रोका जाय तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय जैसा कि बंद "जाजरूर" अधिक दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्यून दुर्गन्धयुक्त होता है वैसे ही मुखपट्टी बांधने, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन और स्नान न करने तथा वस्त्र न धोनेसे तुम्हारे शरीरसे अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होकर संसारमें बहुतसे रोग करके जीवोंको जितनी पीड़ा पहुंचाते हो उतना पाप तुमको अधिक होता है। जैसे मेले आदिमें अधिक दुर्गन्ध होनेसे "विशूचिका" अर्थात् हैजा आदि बहुत प्रकारके रोग उत्पन्न होकर जीवोंको दुःखदायक होते हैं और न्यून दुर्गन्ध होनेसे रोग भी न्यून होकर जीवोंको बहुत दुःख नहीं पहुंचता इससे तुम अधिक दुर्गन्ध बढ़ानेमें अधिक अपराधी और जो मुख पर पट्टी नहीं बांधते, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके स्थान, वस्त्रोंको शुद्ध रखते हैं वे तुमसे बहुत अच्छे हैं। जैसे अन्त्यजोंकी दुर्गन्धके सहवाससे पृथक् रहनेवाले बहुत अच्छे हैं जैसे अन्त्यजोंकी दुर्गन्धके सहवाससे निर्मल बुद्धि नहीं होती वैसे तुम और तुम्हारे संगियोंकी भी बुद्धि नहीं बढ़ती, जैसे रोगकी अधिकता और बुद्धिके स्वल्प होनेसे धर्मानुष्ठानकी बाधा होती है वैसे ही दुर्गन्धयुक्त

तुम्हारा और तुम्हारे सङ्गियोंका भी वर्त्तमान होता होगा।

प्रश्न—जैसे बन्द मकानमें जलाये हुए अग्निकी ज्वाला बाहर निकलके बाहरके जीवोंको दुःख नहीं पहुंचा सकती वैसे हम मुखपट्टी बांधके वायुको रोककर बाहरके जीवोंको न्यून दुःख पहुंचाने वाले हैं। मुखपट्टी बांधनेसे बाहरके वायुके जीवोंको पीड़ा नहीं पहुंचती और जैसे सामने अग्नि जलता है उसको आड़ा हाथ देनेसे कम लगता है और वायुके जीव शरीरवाले होनेसे उनको पीड़ा अवश्य पहुंचती है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात लड़कपनकी है प्रथम तो देखो जहां छिद्र और भीतरके वायुका योग बाहरके वायुके साथ न हो तो वहां अग्नि जल ही नहीं सकता जो इनको प्रत्यक्ष देखना चाहो तो किसी फानूसमें दीप जलाकर सब छिद्र बन्द करके देखो तो दीप उसी समय बुझ जायगा जैसे पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी बाहरके वायुके योगके विना नहीं जी सकते वैसे अग्नि भी नहीं जल सकता। जब एक ओरसे अग्निका वेग रोका जाय तो दूसरी ओर अधिक वेगसे निकलेगा और हाथकी आड़ करनेसे मुख पर आंच न्यून लगती है परन्तु वह आंच हाथ पर अधिक लग रही है इसलिये तुम्हारी बात ठीक नहीं।

प्रश्न—इसको सब कोई जानता है कि जब किसी बड़े मनुष्यसे छोटा मनुष्य कानमें वा निकट होकर बात कहता है तब मुख पर पल्ला वा हाथ लगाता है इसलिये कि मुखसे थूक उड़कर वा दुर्गन्ध उसको न लगे और जब पुस्तक बांचता है तब अवश्य थूक उड़कर उस पर गिरनेसे उच्छिष्ट होकर वह बिगड़ जाता है इसलिये मुख पर पट्टीका बांधना अच्छा है।

उत्तर—इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवरक्षार्थ मुखपट्टी बांधना व्यर्थ है और जब कोई बड़े मनुष्यसे बात करता है तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिये रखते हैं कि उस गुप्त बातको दूसरा कोई न सुन लेवे क्योंकि जब कोई प्रसिद्ध बात करता है तब कोई भी मुख पर

हाथ वा पल्ला नहीं धरता, इससे क्या विदित होता है कि गुप्त बातके लिये यह बात है। दन्तधावनादि न करनेसे तुम्हारे मुखादि अवयवोंसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता है और जब तुम किसीके पास वा कोई तुम्हारे पास बैठता होगा तो विना दुर्गन्धके अन्य क्या आता होगा? इत्यादि मुखके आड़ा हाथ वा पल्ला देनेके प्रयोजन अन्य बहुत हैं जैसे बहुत मनुष्योंके सामने गुप्त बात करनेमें जो हाथ वा पल्ला न लगाया जाय तो दूसरोंकी ओर वायुके फैलनेसे बात भी फैल जाय, जब वे दोनों एकान्तमें बात करते हैं तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिये नहीं लगाते कि वहां तीसरा कोई सुननेवाला नहीं जो बड़ों ही के ऊपर थूक न गिरे इससे क्या छोटोंके ऊपर थूक गिराना चाहिये? और उस थूकसे बच भी नहीं सकता क्योंकि हम दूरस्थ बात करें और वायु हमारी ओरसे दूसरेकी ओर जाता हो तो सूक्ष्म होकर उसके शरीर पर वायुके साथ त्रसरेणु अवश्य गिरेंगे उसका दोष गिनना अविद्याकी बात है क्योंकि जो मुखकी उष्णतासे जीव मरते वा उनको पीड़ा पहुंचती हो तो वैशाख वा ज्येष्ठ महीनेमें सूर्य्यकी महा उष्णतासे वायुकायके जीवोंमेंसे मरे विना एक भी न बच सके, सो उस उष्णतासे भी वे जीव नहीं मर सकते इसलिये यह तुम्हारा सिद्धान्त झूठा है क्योंकि जो तुम्हारे तीर्थंकर भी पूर्ण विद्वान होते तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते? देखो! पीड़ा उन्हीं जीवोंको पहुंचती है जिनकी वृत्ति सब अवयवोंके साथ विद्यमान हो, इसमें प्रमाणः—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः॥ सांख्य० ५।२७॥

जब पांचों इन्द्रियोंका पांचों विषयोंके साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःखकी प्राप्ति जीवको होती है जैसे बधिरको गालीप्रदान, अन्धेको रूप वा आगेसे सर्प्प व्याघ्रादि भयदायक जीवोंका चला जाना शून्य बहिरीवालेको स्पर्श, पिन्नस रोगवालेको गन्ध और शून्य जिह्वावालेको रस प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार उन जीवोंकी भी

व्यवस्था है। देखो! जब मनुष्यका जीव सुषुप्ति दशामें रहता है तब उसको सुख वा दुःखकी प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीरके भीतर तो है परन्तु उसका बाहरके अवयवोंके साथ उस समय सम्बन्ध न रहनेसे सुख दुःखकी प्राप्ति नहीं कर सकता और जैसे वैद्य वा आजकलके डाक्टर लोग नशेकी वस्तु खिला वा सुंघाके रोगी पुरुष के शरीरके अवयवोंको काटते वा चीरते हैं उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर वाले जीवोंको सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःखको प्राप्त नहीं हो सकता वैसे वे वायुकायादिके जीव भी अत्यन्त मूर्छित होनेसे सुख दुःखको प्राप्त नहीं हो सकते फिर इनको पीड़ासे बचानेकी बात सिद्ध कैसे हो सकती है? जब उनको सुख दुःखकी प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती तो अनुमानादि यहां कैसे युक्त हो सकते हैं।

प्रश्न—जब वे जीव हैं तो उनको सुख दुःख क्यों नहीं होगा।

उत्तर—सुनो भोले भाइयो! जब तुम सुषुप्तिमें होते हो तब तुम को सुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख दुःखकी प्राप्तिका हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है, अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघाके डाक्टर लोग अङ्गोंको चीरते फाड़ते और काटते हैं जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता इसी प्रकार अतिमूर्च्छित जीवोंको सुख दुःख क्योंकर प्राप्त होवे क्योंकि वहां प्राप्ति होनेका साधन कोई भी नहीं।

प्रश्न—देखो! निलोति अर्थात् जितने हरे शाक, पात और कन्द-मूल हैं उनको हम लोग नहीं खाते क्योंकि निलोतिमें बहुत और कन्दमूलमें अनन्त जीव हैं जो हम उनको खावें तो उन जीवोंको मारने और पीड़ा पहुंचानेसे हम लोग पापी होजावें।

उत्तर—यह तुम्हारी बड़ी अविद्याकी बात है, क्योंकि हरित शाक खानेमें जीवका मारना मनको पीड़ा पहुंचनी क्योंकर मानते हो? भला जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और जो

दीखाती है तो हमको भी दिखलाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देखा वा हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान और शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकता फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं वह इस बातका भी उत्तर है क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार महासुषुप्ति और महानशामें जीव हैं इनको सुख दुःखकी प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरोंकी भी भूल विदित होती है जिन्होंने तुमको ऐसी युक्ति और विद्याविरुद्ध उपदेश किया है, भला जब घरका अन्त है तो उसमें रहनेवाले अनन्त क्योंकर हो सकते हैं? जब कन्दका अन्त हम देखते हैं तो उसमें रहनेवाले जीवोंका अन्त क्यों नहीं? इससे यह तुम्हारी बात बड़ी भूलकी है।

प्रश्न—देखो! तुम लोग विना उष्ण किये कच्चा पानी पीते हो यह बड़ा पाप करते हो, जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं वैसे तुम लोग भी पिया करो।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात भ्रमजालकी है क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो तब पानीके जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जलमें रंधकर वह पानी सौंफके अर्कके तुल्य होनेसे जानो तुम उनके शरीरोंका "तेजाब" पीते हो इसमें तुम बड़े पापी हो। और जो ठंडा जल पीते हैं वे नहीं क्योंकि जब ठंडा पानी पीयेंगे तब उदरमें जानेसे किंचित् उष्णता पाकर श्वासके साथ वे जीव बाहर निकल जायेंगे, जलकाय जीवोंको सुख दुःख प्राप्त पूर्वोक्त रीतिसे नहीं हो सकता पुनः इसमें पाप किसीको नहीं होगा।

प्रश्न—जैसे जाठराग्निसे वैसे उष्णता पाके जलसे बाहर जीव क्यों न निकल जायेंगे?

उत्तर—हां निकल तो जाते परन्तु जब तुम मुखके वायुकी उष्णतासे जीवका मरना मानते हो तो जल उष्ण करनेसे तुम्हारे मतानुसार जीव मर जावेंगे वा अधिक पीड़ा पाकर निकलेंगे और उनके शरीर उस जलमें रंध जायेंगे इससे तुम अधिक पापी होगे वा नहीं?

प्रश्न—हम अपने हाथसे उष्ण जल नहीं करते और न किसी गृहस्थको उष्ण जल करनेकी आज्ञा देते हैं इसलिये हमको पाप नहीं।

उत्तर—जो तुम उष्ण जल न लेते न पीते तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते इसलिये उस पापके भागी तुम ही हो प्रत्युत अधिक पापी हो क्योंकि जो तुम किसी एक गृहस्थको उष्ण करनेको कहते तो एक ही ठिकाने उष्ण होता जब वे गृहस्थ इस भ्रममें रहते हैं कि न जाने साधुजी किसके घरको आवेंगे इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपने २ घरमें उष्ण जल कर रखते हैं इसके पापके भागी मुख्य तुम ही हो। दूसरा अधिक काष्ठ और अग्निके जलने जलानेसे भी ऊपर लिखे प्रमाणे रसोई खेती और व्यापारादिमें अधिक पापी और नरकगामी होते हो फिर जब तुम उष्ण जल करानेके मुख्य निमित्त और तुम उष्ण जलके पीने और ठंडेके न पीनेके उपदेश करनेसे तुमही मुख्य पापके भागी हो और जो तुम्हारा उपदेश मान कर ऐसी बातें करते हैं वे भी पापी हैं। अब देखो! कि तुम बड़ी अविद्यामें होते हो वा नहीं कि छोटे २ जीवों पर दया करनी और अन्य मत वालोंकी निन्दा, अनुपकार करना क्या थोड़ा पाप है? जो तुम्हारे तीर्थंकरोंका मत सच्चा होता तो सृष्टिमें इतनी वर्षा नदियोंका चलना और इतना जल क्यों उत्पन्न ईश्वरने किया? और सूर्य्यको भी उत्पन्न न करता क्योंकि इसमें क्रोड़ा-नक्रोड़ जीव तुम्हारे मतानुसार मरते ही होंगे जब वे विद्यमान थे और तुम जिनको ईश्वर मानते हो उन्होंने दया कर सूर्य्यका ताप और मेघको बन्द क्यों न किया? और पूर्वोक्त प्रकारसे विना विद्यमान प्राणियोंके दुःख सुखकी प्राप्ति कन्दमूलादि पदार्थोंमें रहनेवाले जीवोंको नहीं होती सर्वथा सब जीवों पर दया करना भी दुःखका कारण होता है क्योंकि जो तुम्हारे मतानुसार सब मनुष्य हो जावें, चोर डाकूओंको कोई भी दंड न देवे तो कितना बड़ा पाप खड़ा हो जाय? इसलिये दुष्टोंको यथावत् दंड देने और श्रेष्ठोंके पालन करनेमें दया और इससे विपरीत करनेमें दया क्षमारूप धर्मका नाश है। कितनेक जैनी लोग

दुकान करते, उन व्यवहारोंमें झूठ बोलते, पराया धन मारते और दीनोंको छलना आदि कुकर्म करते हैं उनके निवारणमें विशेष उपदेश क्यों नहीं करते ? और मुखपट्टी बांधने आदि ढोंगमें क्यों रहते हो ? जब तुम चेला चेली करते हो तब केशलुञ्चन और बहुत दिवस भूखे रहनेमें पराये वा अपने आत्माको पीड़ा दे और पीड़ाको प्राप्त होके दूसरोंको दुःख देते और आत्महत्या अर्थात् आत्माको दुःख देनेवाले होकर हिंसक क्यों बनते हो ? जब हाथी, घोड़े, बैल, ऊंट पर चढ़ने और मनुष्योंको मजूरी करानेमें पाप जैनी लोग क्यों नहीं गिनते ! जब तुम्हारे चेले ऊटपटांग बातोंको सत्य नहीं कर सकते तो तुम्हारे तीर्थंकर भी सत्य नहीं कर सकते जब तुम कथा बांचते हो तब मार्गमें श्रोताओंके और तुम्हारे मतानुसार जीव मरते ही होंगे इसलिये तुम इस पापके मुख्य कारण क्यों होते हो ? इस थोड़े कथनसे बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायुके स्थावरशरीरवाले अत्यन्तमूर्छित जीवोंको दुःख वा सुख कभी नहीं पहुंच सकता।

अब जैनियोंकी और भी थोड़ीसी असम्भव कथा लिखते हैं सुनना चाहिये और यह भी ध्यानमें रखना कि अपने हाथसे साढ़े तीन हाथका धनुष होता है और कालकी संख्या जैसी पूर्व लिख आये हैं वैसी ही समझना। रत्नसार भाग १ पृष्ठ १६६-१६७ तकमें लिखा है।

(१) ऋषभदेवका शरीर ५०० (पांचसौ) धनुष लम्बा और ८४००००० (चौरासी लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(२) अजितनाथका ४५० (चारसौ पचास) धनुष परिमाणका शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(३) संभवनाथका ४०० (चारसौ) धनुष परिमाण शरीर और ६०००००० (साठ लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(४) अभिनन्दनका ३५० (साढ़े तीनसौ) धनुषका शरीर और ५०००००० (पचास लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(५) सुमतिनाथका ३०० (तीनसौ) धनुष परिमाणका शरीर

और ४०००००० (चालीस लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(६) पद्मप्रभका १४० (एकसौ चालीस) धनुषका शरीर और ३०००००० (तीस लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(७) पार्श्वनाथका २०० (दोसौ) धनुषका शरीर और २०००००० (बीस लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(८) चन्द्रप्रभका १५० (डेढ़सौ) धनुष परिमाणका शरीर और १०००००० (दश लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(९) सुविधिनाथका १०० (सौ) धनुषका शरीर और २००००० (दो लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(१०) शीतलनाथका ९० (नब्बे) धनुषका शरीर और १००००० (एक लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(११) श्रेयांसनाथका ८० (अस्सी) धनुषका शरीर और ८४००००० (चौरासी लाख) वर्षका आयु।

(१२) वासुपूज्य स्वामीका ७० (सत्तर) धनुषका शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) वर्षका आयु।

(१३) विमलनाथका ६० (साठ) धनुषका शरीर और ६०००००० (साठ लाख) वर्षोंका आयु।

(१४) अनन्तनाथका ५० (पचास) धनुषका शरीर और ३०००००० (तीस लाख) वर्षोंका आयु।

(१५) धर्मनाथका ४५ (पैंतालीस) धनुषोंका शरीर और १०००००० (दश लाख) वर्षोंका आयु।

(१६) शान्तिनाथका ४० (चालीस) धनुषोंका शरीर और १००००० (एक लाख) वर्षका आयु।

(१७) कुंथुनाथका ३५ (पैंतीस) धनुषका शरीर और ९५००० (पंचानवे सहस्र) वर्षोंका आयु।

(१८) अमरनाथका ३० (तीस) धनुषोंका शरीर और ८४००० (चौरासी सहस्र) वर्षोंका आयु।

(१९) मल्लीनाथका २५ (पच्चीस) धनुषोंका शरीर और ५५००० (पचपन सहस्र) वर्षोंका आयु।

(२०) मुनिसुव्रतका २० (बीस) धनुषोंका शरीर और ३०००० (तीस सहस्र) वर्षोंका आयु।

(२१) नमिनाथका १४ (चौदह) धनुषोंका शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्षका आयु।

(२२) नेमिनाथका १० (दश) धनुषोंका शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्षका आयु।

(२३) पार्श्वनाथका ९ (नौ) हाथका शरीर और १०० (सौ) वर्षका आयु।

(२४) महावीर स्वामीका ७ (सात) हाथका शरीर और ७२ (बहत्तर) वर्षोंका आयु। ये चौबीस तीर्थंकर जैनियोंके मत चलानेवाले आचार्य और गुरु हैं इन्हींको जैनी लोग परमेश्वर मानते हैं और ये सब मोक्षको गये हैं इसमें बुद्धिमान् लोग विचार लेवें की इतने बड़े शरीर और इतना आयु मनुष्यदेहका होना कभी सम्भव है? इस भूगोलमें बहुत ही थोड़े मनुष्य बस सकते हैं। इन्हीं जैनियोंके गपोड़े लेकर जो पुराणियोंने एकलाख दश सहस्र और एक सहस्र वर्षका आयु लिखा सो भी सम्भव नहीं हो सकता तो जैनियोंका कथन सम्भव कैसे हो सकता है। अब और भी सुनो कल्पभाष्य पृष्ठ ४—नागकेतने ग्रामकी बराबर एक शिला अंगुली पर धरली (!)। कल्पभाष्य पृष्ठ ३५—महावीरने अंगूठेसे पृथ्वीको दबाई उससे शेषनाग कम्प गया (!)। कल्पभाष्य पृष्ठ ४६—महावीरको सर्पने काटा रुधिरके बदले दूध निकला और वह सर्प ८ वें स्वर्गको गया (!)। कल्पभाष्य पृष्ठ ४७—महावीरके पग पर खीर पकाई और पग न जले (!)। कल्पभाष्य पृष्ठ १६—छोटेसे पात्रमें ऊंट बुलाया (!)। रत्नसार भाग १ प्रथम पृष्ठ १४—शरीरके मैलको न उतारे और न खुजलावे। विवेकसार भा० १ पृष्ठ १५—जैनियोंके एक दमसार

साधुने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहरमें आग लगादी और महावीर तीर्थंकरका अतिप्रिय था। विवेक० भा० १ पृष्ठ १२७—राजाकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिये। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२७—एक कोशा वेश्याने थालीमें सरसोंकी ढेरी लगा उसके ऊपर फूलोंसे ढकी हुई सुई खड़ीकर उस पर अच्छे प्रकार नाच किया परन्तु सुई पगमें गड़ने न पाई और सरसोंकी ढेरी बिखरी नहीं (!!!)। तत्त्वविवेक पृष्ठ २२८—इसी कोशा वेश्याके साथ एक स्थूलमुनिने १२ वर्ष तक भोग किया और पश्चात् दीक्षा लेकर सद्गतिको गया और कोशा वेश्या भी जैनधर्मको पालती हुई सद्गतिको गई। विवेक० भा० १ पृष्ठ १८५—एक सिद्ध की कन्था जो गलेमें पहिनी जाती है वह ५०० अशर्फी एक वैश्यको नित्य देती रही। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२८—बलवान् पुरुषकी आज्ञा, देवकी आज्ञा, घोर वनमें कष्टसे निर्वाह, गुरुके रोकने, माता, पिता, कुलाचार्य्य ज्ञातीय लोग और धर्मोपदेष्टा इन छः के रोकनेसे धर्ममें न्यूनता होनेसे धर्मकी हानि नहीं होती।

समीक्षक—अब देखिये इनकी मिथ्या बातें! एक मनुष्य ग्रामके बराबर पाषाणकी शिलाको अंगुली पर कभी धर सकता है? और पृथिवीके ऊपरसे अंगूठे दाबनेसे पृथिवी कभी दब सकती है? और जब शेषनाग ही नहीं तो कंपेगा कौन?॥ भला शरीरके काटनेसे दूध निकलना किसीने नहीं देखा, सिवाय इन्द्रजालके दूसरी बात नहीं, उसको काटनेवाला सर्प तो स्वर्गमें गया और महात्मा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरकको गये यह कितनी मिथ्या बात है?॥ जब महावीरके पग पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गये?॥ भला छोटेसे पात्रमें कभी ऊंट आसकता है?॥ जो शरीरका मैल नहीं उतारते और खुजलाते होंगे वे दुर्गन्धरूप महानरक भोगते होंगे॥ जिस साधुने नगर जलाया उसकी दया और क्षमा कहां गई? जब महावीरके सङ्गसे भी उसका पवित्र आत्मा न हुआ तो अब महावीरके मरे

पीछे उसके आश्रयसे जैन लोग कभी पवित्र न होंगे ।। राजाकी आज्ञा माननी चाहिए परन्तु जैन लोग बनिये हैं इसलिए राजासे डरकर यह बात लिख दी होगी ।। कोशा वेश्या चाहे उसका शरीर कितना ही हलका हो तो भी सरसोंकी ढेरी पर सुई खड़ी कर उसके ऊपर नाचना सुईका न छिदना और सरसोंका न बिखरना अतीव झूठ नहीं तो क्या है ? ।। धर्म किसीको किसी अवस्थामें भी न छोड़ना चाहिये चाहे कुछ भी हो जाय ? भला कन्था वस्त्रका होता है वह नित्यप्रति ५०० अशर्फी किस प्रकार दे सकता है ? अब ऐसी ऐसी असम्भव कहानी इनकी लिखें तो जैनियोंके थोथे पोथोंके सदृश बहुत बढ़ जाय इसलिए अधिक नहीं लिखते अर्थात् थोड़ीसी इन जैनियोंकी बातें छोड़के शेष सब मिथ्या जाल भरा है देखियेः—

दोससि दोरवि पढमे । दुगुणा लवणं मिधाय ईसं मे । वारससस्सि वारसरवि । तत्यभि इंनि दिठ ससि रविणो ।। प्र०भा० ४ संग्रहणी सूत्र ७७ ।।

जो जम्बूद्वीप लाख योजन अर्थात् ४ (चार) लाख कोशका लिखा है उनमें यह पहिला द्वीप कहाता है इसमें दो चन्द्र और दो सूर्य्य हैं और वैसे ही लवण समुद्रमें उससे दुगुणे अर्थात् ४ चन्द्रमा और ४ सूर्य्य हैं तथा धातकीखण्डमें बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य्य हैं ।। और इनको तिगुणा करनेसे छत्तीस होते हैं उनके साथ दो जम्बूद्वीपके और चार लवण समुद्रके मिलकर ब्यालीस चन्द्रमा और ब्यालीस सूर्य्य कालोदधि समुद्रमें हैं इसी प्रकार अगले २ द्वीप और समुद्रोंमें पूर्वोक्त ब्यालीसको तिगुणा करें तो एकसो छब्बीस होते हैं उनमें धातकीखण्डके बारह, लवण समुद्रके ४ (चार) और जम्बूद्वीपके जो दो २ इसी रीतिसे निकाल कर १४४ (एकसो चवालीस) चन्द्र और १४४ सूर्य्य पुष्करद्वीपमें हैं यह भी आधे मनुष्यक्षेत्रकी गणना है परन्तु जहांतक मनुष्य नहीं रहते हैं वहां बहुतसे सूर्य्य और

बहुतसे चन्द्र हैं और जो पिछले अर्ध पुष्करद्वीपमें बहुत चन्द्र और सूर्य्य हैं वे स्थिर हैं, पूर्वोक्त एकसौ चवालीसको तिगुणा करनेसे ४३२ और उनमें पूर्वोक्त जम्बूद्वीपके दो चन्द्रमा, दो सूर्य्य, चार २ लवण समुद्रके और बारह २ धातकीखण्डके और ब्यालीस कालोदधिके मिलानेसे ४६२ चन्द्र तथा ४६२ सूर्य्य पुष्कर समुद्रमें हैं ये सब बातें श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमणने बड़ी "संघयणी" में तथा "योतीसकरण्डक पयन्न." मध्ये और "चन्द्रपन्नति" तथा "सूरपन्नति" प्रमुख सिद्धान्तग्रन्थोंमें इसी प्रकार कहा है।

समीक्षक— अब सुनिये भूगोल खगोलके जानने वालो! इस एक भूगोलमें एक प्रकार ४६२ (चारसौ बानवे) और दूसरे प्रकार असंख्य चन्द्र और सूर्य्य जैनी लोग मानते हैं। आप लोगोंका बड़ा भाग्य है कि वेदमतानुय यी सूर्य्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रन्थोंके अध्ययनसे ठीक २ भूगोल खगोल विदित हुए जो कहीं जैनके महाअन्धेरमें होते तो जन्मभर अन्धेरमें रहते जैसे कि जैनी लोग आजकल हैं इन अविद्वानोंको यह शंका हुई कि जम्बूद्वीपमें एक सूर्य्य और एक चन्द्रसे काम नहीं चलता क्योंकि इतनी बड़ी पृथिवियोंको तीस घड़ीमें चन्द्र सूर्य्य कैसे आसकें। क्योंकि पृथिवीको जो लोग सूर्य्यादिसे भी बड़ी मानते हैं यही इनकी बड़ी भूल है॥

दो ससि दो रवि पंती एगंतरियाछ सठिसंखाया। मेरुं पयाहिणंता। माणुसखित्तो परिअडंति॥

प्रकरण० भा० ४। संग्रहसू० ७६॥

मनुष्यलोकमें चन्द्रमा और सूर्यकी पंक्तिकी संख्या कहते हैं दो चन्द्रमा और दो सूर्यकी पंक्ति (श्रेणी) हैं वे एक २ लाख योजन अर्थात् चार लाख कोशके आंतरेसे चलते हैं, जैसे सूर्यकी पंक्तिके आंतरे एक पंक्ति चन्द्रकी है इसी प्रकार चन्द्रमाकी पंक्तिके आंतरे सूर्यकी पंक्ति है, इसी रीतिसे चार पंक्ति हैं वे एक २ चन्द्रपंक्तिमें ६६

चन्द्रमा और एक २ सूर्यपंक्तिमें ६६ सूर्य हैं वे चारों पंक्ति जंबूद्वीपके मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करती हुई मनुष्यक्षेत्रमें परिभ्रमण करती हैं अर्थात् जिस समय जंबूद्वीपके मेरुसे एक सूर्य दक्षिण दिशामें विहरता उस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशामें फिरता है, वैसे ही लवण समुद्रकी एक २ दिशामें दो २ चलते फिरते, धातकीखण्डके ६, कालोदधिके २१, पुष्करार्द्धके ३६, इस प्रकार सब मिलकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशामें अपने २ क्रमसे फिरते हैं। और जब इन दोनों दिशाके सब सूर्य मिलाये जायें तो १३२ सूर्य और ऐसे ही छासठ २ में चन्द्रमाकी दोनों दिशाओंकी पंक्तियां मिलाई जायें तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोकमें चाल चलते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमाके साथ नक्षत्रादिकी भी पंक्तियां बहुतसी जाननीं।

समीक्षक—अब देखो भाई! इस भूगोलमें १३२ सूर्य और १३२ चन्द्रमा जैनियोंके घर पर तपते होंगे भला जो तपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं? और रात्रिमें भी शीतके मारे जैनी लोग जकड़ जाते होंगे? ऐसी असम्भव बातमें भूगोल खगोलके न जाननेवाले फँसते हैं अन्य नहीं। जब एक सूर्य इस भूगोलके सदृश अन्य अनेक भूगोलोंको प्रकाशता है तब इस छोटेसे भूगोलकी क्या कथा कहनी? और जो पृथिवी न घूमे और सूर्य पृथिवीके चारों ओर घूमे तो कई एक वर्षोंका दिन और रात होवे। और सुमेरु विना हिमालयके दूसरा कोई नहीं यह सूर्यके सामने ऐसा है कि जैसे घड़ेके सामने राईका दाना भी नहीं. इन बातोंको जैनी लोग जबतक उसी मतमें रहेंगे तबतक नहीं जान सकते किन्तु सदा अन्धेरेमें रहेंगे॥

समत्तचरण सहियासव्वंलोगं फुसे निरवसेसं।
सत्तयचउदसभाए पंचयसुपदेसविरईए॥

प्रकरण० भा० ४। संग्रहसू० १३५॥

सम्यक्चारित्र सहित जो केवली ने केवल समुद्घात अवस्थासे

सर्व चौदह राज्यलोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरेंगे ॥

समीक्षक—जैनी लोग १४ (चौदह) राज्य मानते हैं उनमेंसे चौदहवेंकी शिखा पर सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजासे ऊपर थोड़े दूर पर सिद्धशिला तथा दिव्य आकाशको शिवपुर कहते हैं उसमें केवली अर्थात् जिनको केवलज्ञान सर्वज्ञता और पूर्व पवित्रता प्राप्त हुई है वे उस लोकमें जाते हैं और अपने आत्मप्रदेशसे सर्वज्ञ रहते हैं। जिसका प्रदेश होता है वह विभु नहीं, जो विभु नहीं, वह सर्वज्ञ केवलज्ञानी कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका आत्मा एकदेशी है वही जाता आता है और बद्ध, मुक्त, ज्ञानी, अज्ञानी होता है सर्वव्यापी सर्वज्ञ वैसा कभी नहीं हो सकता जो जैनियोंके तीर्थंकर जीवरूप अल्प अल्पज्ञ होकर स्थित थे वे सर्वव्यापक सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकते किन्तु जो परमात्मा अनादि अनन्त सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पवित्र, ज्ञानस्वरूप है उसको जैनी लोग मानते नहीं कि जिसमें सर्वज्ञादि गुण याथातथ्य घटते हैं ॥

गब्भनरति पलियाऊ। तिगाउ उक्कोसते जहन्नेणं। मुच्छिम दुहावि अन्तमुहु। अङ्गुल असंख भागतणू ॥ २४१ ॥

यहां मनुष्य दो प्रकारके हैं एक गर्भज दूसरे जो गर्भके विना उत्पन्न हुए उनमें गर्भज मनुष्यका उत्कृष्ट तीन पल्योपमका आयु जानना और तीन कोशका शरीर ॥

समीक्षक—भला तीन पल्योपमका आयु और तीन कोशके शरीर वाले मनुष्य इस भूगोलमें बहुत थोड़े समा सकें और फिर तीन पल्योपमकी आयु जैसा कि पूर्व लिख आये हैं उतने समय तक जीवें तो वैसे ही उनके सन्तान भी तीन कोशके शरीर वाले होने चाहियें जैसे मुंबईसे शहरमें दो और कलकत्ता ऐसे शहरमें तीन या, चार मनुष्य निवास कर सकते हैं जो ऐसा हैं तो जैनियोंने एक नगरमें । मनुष्य लिखे हैं तो उनके रहनेका नगर भी लाखों कोशोंका चाहिये

तो सब भूगोलमें वैसा एक नगर भी न बस सके ॥

पणया ललरकयोयण। विरकंभा सिद्धिशिलफलिहविमला। तदुवरि गजोयणंते लोगन्तो तच्छ सिद्धठिई ॥ २५८ ॥

जो सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजासे ऊपर १२ योजन सिद्धशिला है वह बाटला और लंबेपन और पोलपन ४५ (पैतालीस) लाख योजन प्रमाण है वह सब धवला अर्जुन सुवर्णमय स्फटिकके समान निर्मल सिद्धशिलाकी सिद्धभूमि है इसको कोई "ईषत्" "प्राग्भरा" ऐसा नाम कहते हैं यह सर्वार्थसिद्ध शिला विमानसे १२ योजन अलोक भी है यह परमार्थ केवली श्रुत जानता है यह सिद्धशिला सर्वार्थ मध्य भागमें ८ योजन स्थूल है वहां से ४ दिशा और ४ उपदिशामें घटती २ मक्खीके पांखके सदृश पतली उत्तानछत्र और आकार करके सिद्धशिला की स्थापना है, उस शिलासे ऊपर १ (एक) योजनके आन्तरे लोकान्त है वहां सिद्धोंकी स्थिति है ॥

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि जैनियोंके मुक्तिका स्थान सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर ४५ (पैंतालीस) लाख योजनकी शिला अर्थात् चाहें ऐसी अच्छी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुक्त जीव एक प्रकारके बद्ध हैं क्योंकि उस शिलासे बाहर निकलनेमें मुक्तिके सुखसे छूट जाते होंगे और जो भीतर रहते होंगे तो उनको वायु भी न लगता होगा, यह केवल कल्पनामात्र अविद्यानोंको फँसानेके लिये भ्रमजाल है ॥

वितिचउरिं दिस सरीरं। बारसजोयणति कोसच उकोसं जोयणसहस पणिंदिय। उहे बुच्छन्ति विसेसंतु ॥ प्र०भा० ४ संग्रहसू० २६७ ॥

सामान्यपनसे एकेन्द्रियका शरीर १ सहस्र योजनके शरीरवाला

उत्कृष्ट जानना और दो इन्द्रियवाले जो शंखादिका शरीर १२ योजनका जानना और चतुरिन्द्रिय भ्रमरादिका शरीर ४ कोशका और पञ्चेन्द्रिय एक सहस्र योजन अर्थात् ४ सहस्र कोशके शरीर वाले जानना ॥

समीक्षक—चार २ सहस्र कोशके प्रमाणवाले शरीरधारी हों तो भूगोलमें तो बहुत थोड़े मनुष्य अर्थात् सैकड़ों मनुष्योंसे भूगोल ठस भरजाय किसीको चलनेकी जगह भी न रहे फिर वे जैनियोंसे रहनेका ठिकाना और मार्ग पूछें और जो इन्होंने लिखा है तो अपने घरमें रख लें परन्तु चार सहस्र कोशके शरीर वालेको निवासार्थ कोई एकके लिये ३२ (बत्तीस) सहस्र कोशका घर तो चाहिये ऐसे एक घरके बनानेमें जैनियोंका सब धन चुक जाय तो भी घर न बन सके, इतने बड़े आठ सहस्र कोशकी छत्त बनानेके लिये लट्ठे कहांसे लावेंगे ? और जो उसमें खम्भा लगावें तो वह भीतर प्रवेश भी नहीं कर सकता इसलिये ऐसी बातें मिथ्या हुआ करती हैं ॥

ते थूला पल्ले विहुसं खिज्जाचे वहुति सव्वेवि ।
तेइक्किक्क असंखे । सुहुमे खम्मे पकप्पेह ॥

प्रकरण० भ० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० ४ ॥

पूर्वोक्त एक अंगुल लोमके खण्डोंसे ४ कोशका चौरस और उतना ही गहिरा कुआ हो, अंगुल प्रमाण लोमका खण्ड सब मिलके बीस लाख सत्तावन सहस्र एकसौ बावन होते हैं और अधिकसे अधिक (३३०,७६२१०४,२४६५६२५,४२१९९६०,९७५३६००,०००००००) तैंतीस क्रोड़ा क्रोड़ी, सात लाख बासठ हजार एकसौ चार क्रोड़ाक्रोड़ी, चौबीस लाख पैंसठ हजार छःसौ पच्चीस इतने क्रोड़ क्रोड़ी तथा बयालीस लाख उन्नीस हजार नौसो साठ इतने क्रोड़ाक्रोड़ी तथा सत्तानवे लाख त्रेपन हजार और छःसौ क्रोड़ाक्रोड़ी, इतनी वाटला घन योजन पल्योपममें सर्व स्थूल रोम खण्डकी संख्या होवे यह भी संख्यातकाल

होता है पूर्वोक्त एक लोम खण्डके असंख्यात खण्ड मनसे कल्पे तब असंख्यात सूक्ष्म रोमाणु होवें ।

समीक्षक—अब देखिये ! इनकी गिनतीकी रीति एक अंगुल प्रमाण लोमके कितने खण्ड किये यह कभी किसीकी गिनतीमें आ सकते हैं ? और उसके उपरान्त मनसे असंख्य खण्ड कल्पते हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त खण्ड हाथसे किये होंगे जब हाथसे न होसके तब मनसे किये भला यह बात कभी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल रोमके असंख्य खण्ड होसकें ॥

जंबूद्दीपपमाणं गुलजोयाणलरक वट्टविरकंभी । लवणाईयासेसा । बलया भादुगुणदुगुणाय ॥

प्रकरण० भा० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० १२ ॥

प्रथम जम्बूद्वीपका लाख योजनका प्रमाण और पोला है और बाकी लवणादि सात समुद्र, सात द्वीप जम्बूद्वीपके प्रमाणसे दुगुणे २ हैं इस एक पृथिवीमें जम्बूद्वीपादि और सात समुद्र हैं जैसे कि पूर्व लिख आये हैं ।

समीक्षक—अब जंबूद्वीपसे दूसरा द्वीप दो लाख योजन, तीसरा चार लाख योजन, चौथा आठ लाख योजन, पांचवां सोलह लाख योजन, छठा बत्तीस लाख योजन और सातवां चौंसठ लाख योजन और इतने प्रमाण वा उनसे अधिक समुद्रके प्रमाणसे इस पन्द्रह सहस्र परिधिवाले भूगोलमें क्योंकर समा सकते हैं ? इससे यह बात केवल मिथ्या है ॥

कुरुनइचुलसी सहसा । छच्चेवन्तनरई उपइ विजयं । दोदो महानईउ । चनुदस सहसा उपरोयं ॥

प्रकरणरत्ना० भा० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० ६३ ॥

कुरुक्षेत्रमें ८४ (चौरासी) सहस्र नदी हैं ।

समीक्षक—भला कुरुक्षेत्र बहुत छोटा देश है उसको न देखकर एक मिथ्या बात लिखनेमें इनको लज्जा भी न आई॥

यमुत्तरा उताउ। इगेग सिंहासणाउ अइपुव्वं। चउ सु वितास निआसण, दिसि भवजिण मज्ज- णं होई॥ प्र०भा० लघुक्षेत्रसमा० ४ सू० ११६॥

उस शिलाके विशेष दक्षिण और उत्तर दिशामें एक २ सिंहासन जानना चाहिये उन शिलाओंके नाम दक्षिण दिशामें अतिपाण्डु कम्बला, उत्तर दिशामें अतिरिक्त कम्बला शिला है उन सिंहासनों पर तीर्थंकर वैठते हैं॥

समीक्षक—देखिये! इनके तीर्थंकरोंके जन्मोत्सवादि करनेकी शिलाको, ऐसी ही मुक्तिकी सिद्धशिला है ऐसी इनकी बहुतसी बातें गोलमाल हैं कहांतक लिखें, किन्तु जल छानके पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रिको भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं बाकी जितना इनका कथन है सब असम्भवग्रस्त है, इतने ही लेखसे बुद्धिमान् लोग बहुतसा जान लेंगे थोड़ासा यह दृष्टान्तमात्र लिखा है जो इनकी असंभव बातें सब लिखें तो इतने पुस्तक होजायें कि एक मनुष्य आयु भरमें पढ़ भी न सके इसलिये जैसे एक हंडेमें चुड़ते चावलोंमेंसे एक चावलकी परीक्षा करनेसे कच्चे वा पक्के हैं सब चावल विदित हो जाते हैं ऐसे ही इस थोड़ेसे लेखसे सज्जन लोग बहुतसी बातें समझ लेंगे बुद्धिमानोंके सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशयको बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं। इसके आगे ईसाइयोंके मतके विषयमें लिखा जायगा॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषा- विभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमतखण्डन- मण्डनविषये द्वादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १२॥

अनुभूमिका (३)

जो यह बाइबलका मत है वह केवल ईसाइयोंका है सो नहीं किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं जो यहां १३ (तेरहवें) समुल्लासमें, ईसाई मतके विषयमें लिखा है इसका यही अभिप्राय है कि आजकल बाइबलके मतके ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं मुख्यके ग्रहणसे गौणका ग्रहण होजाता है इससे यहूदियोंका भी ग्रहण समझ लीजिये इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बाइबलमेंसे कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तकको अपने धर्मका मूलकारण समझते हैं। इस पुस्तकके भाषान्तर बहुतसे हुए हैं जो कि इनके मतमें बड़े २ पादरी हैं उन्होंने किये हैं उनमेंसे देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबलमें बहुतसी शंका हुई हैं उनमेंसे कुछ थोड़ी सी इस १३ (तेरहवें) समुल्लासमें सबके विचारार्थ लिखी हैं यह लेख केवल सत्यकी वृद्धि और असत्यके ह्रास होनेनेके लिये है न कि किसीको दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगानेके अर्थ। इसका अभिप्राय उत्तर लेखमें सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है इस लेखसे यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्रको देखना सुनना लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मतका आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्योंको धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत और कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्यकर्मका स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्यकर्मका परित्याग करना सहजतासे हो सकेगा। सब मनुष्योंको उचित है कि

सबके मतविषयक पुस्तकोंको देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें नहीं तो सुना करें, क्योंकि जैसे पढ़नेसे पण्डित होता है वैसे सुननेसे बहुश्रुत होता है। यदि श्रोता दूसरेको नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है, जो कोई पक्षपात रूप यानारूढ़ होके देखते हैं उनको न अपने और न पराये गुण दोष विदित हो सकते हैं मनुष्यका आत्मा यथायोग्य सत्यासत्यके निर्णय करनेका सामर्थ्य रखता है जितना अपना पठित वा श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है यदि एक मत वाले दूसरे मत वालेके विषयोंको जानें और अन्य न जाने तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़ेमें घिर जाते हैं ऐसा न हो इसलिये इस ग्रन्थमें प्रचरित सब मतोंका विषय थोड़ा २ लिखा है इतने ही से शेष विषयोंमें अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे, जो २ सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एकसे हैं झगड़ा झूठे विषयोंमें होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ासा विवाद चलता है। यदि वादीप्रतिवादी सत्यासत्य निश्चयके लिये वादप्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय। अब मैं इस १३ वें समुल्लासमें ईसाईमत विषयक थोड़ासा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूं विचारिये कि कैसा है॥

अलमितिलेखेन विचक्षणवरेषु॥

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनमतविषयं समीक्षिष्यामः

अब इसके आगे ईसाइयोंके मत विषयमें लिखते हैं जिससे सबको विदित होजाय कि इनका मत निर्दोष और इनकी बाइबल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं ? प्रथम बाइबलके तौरेतका विषय लिखा जाता है:—

१—आरम्भमें ईश्वरने आकाश और पृथिवीको सृजा और पृथिवी बेडौल और सूनी थी। और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वरका आत्मा जलके ऊपर डोलता था ॥ पर्व १। आय० १। २॥

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो ?

ईसाई—सृष्टिके प्रथमोत्पत्तिको।

समीक्षक—क्या यही सृष्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी ?

ईसाई—हम नहीं जानते हुई थी वा नहीं ईश्वर जाने।

समीक्षक—जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया ? कि जिससे सन्देहका निवारण नहीं होसकता और इसीके भरोसे लोगोंको उपदेश कर इस सन्देहके भरे हुए मतमें क्यों फँसाते हो ? और निःसन्देह सर्वशंकानिवारक वेदमतको स्वीकार क्यों नहीं करते ? जब तुम ईश्वरकी सृष्टिका हाल नहीं जानते तो ईश्वरको कैसे जानते होगे ? आकाश किसको मानते हो ?

ईसाई—पोल और ऊपरको।

समीक्षक—पोलकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई क्योंकि यह विभु पदार्थ और अतिसूक्ष्म है और ऊपर नीचे एकसा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और आकाश था वा नहीं ? जो नहीं था तो ईश्वर जगत्का कारण और जीव कहां रहते थे ? विना आकाशके कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता इसीलिये तुम्हारी बाइबलका कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान कर्म बेडौल होता है वा सब डौलवाला ?

ईसाई—डौलवाला होता है।

समीक्षक—तो यहां ईश्वरकी बनाई पृथिवी बेडौल थी ऐसा क्यों लिखा ?

ईसाई—बेडौलका अर्थ यह है कि ऊंची नीची थी बराबर नहीं।

समीक्षक—फिर बराबर किसने की ? और क्या अब भी ऊंची नीची नहीं है ? इसलिये ईश्वरका काम बेडोल नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, उसके काममें न भूल न चूक कभी हो सकती है ! और बाइबलमें ईश्वरकी सृष्टि बेडौल लिखी इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता है। प्रथम ईश्वरका आत्मा क्या पदार्थ है?

ईसाई—चेतन।

समीक्षक—वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी।

ईसाई—निराकार चेतन और व्यापक है परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि स्थानोंमें विशेष करके रहता है।

समीक्षक—जो निराकार है तो उसको किसने देखा और व्यापकका जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता भला जब ईश्वरका आत्मा जल पर डोलता था तब ईश्वर कहां था ? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वरका शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने कुछ आत्माके एक टुकड़ेको जल पर डुलाया होगा जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता जो विभु नहीं तो जगत्की रचना धारण पालन

और जीवोंके कर्मोंकी व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस पदार्थका स्वरूप एकदेशी उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण कर्म स्वभावयुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदोंमें कहा है उसीको मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

२—और ईश्वरने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला होगया ॥ और ईश्वरने उजियालेको देखा कि अच्छा है ॥ पर्व १। आ० ३। ४ ॥

समीक्षक—क्या ईश्वरकी बात जड़रूप उजियालेने सुन ली ? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्निका प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता ? प्रकाश जड़ होता है वह कभी किसीकी बात नहीं सुन सकता क्या जब ईश्वरने उजियालेको देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है ? पहिले नहीं जानता था जो जानता होता तो देखकर अच्छा क्यों कहता ? जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं इसलिये तुम्हारी बाइबल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है ॥ २ ॥

३—और ईश्वरने कहा कि पानियोंके मध्यमें आकाश होवे और पानियोंको पानियोंसे विभाग करे तब ईश्वरने आकाशको बनाया और आकाशके नीचेके पानियोंको आकाशके ऊपरके पानियोंसे विभाग किया और ऐसा होगया। और ईश्वरने आकाशको स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ ॥ पर्व १। आ० ६। ७। ८ ॥

समीक्षक—क्या आकाश और जलने भी ईश्वरकी बात सुन ली ? और जो जलके बीचमें आकाश न होता तो जल रहता ही कहां ? प्रथम आयतमें आकाशको सृजा था पुनः आकाशका बनाना व्यर्थ हुआ। जो आकाशको स्वर्ग कहा तो वह सर्वव्यापक है इसलिये सर्वत्र स्वर्ग हुआ फिर ऊपरको स्वर्ग है यह कहना व्यर्थ है। जब सूर्य्य उत्पन्न

ही नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहांसे होगई ऐसी असम्भव बातें आगेकी आयतोंमें भरी हैं ॥ ३ ॥

४—तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनावें ॥ तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वरके स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया ॥ और ईश्वरने उन्हें आशीष दिया ॥ पर्व १। आ० २६। २७। २८॥

समीक्षक—यदि आदमको ईश्वरने अपने स्वरूपमें बनाया तो ईश्वरका स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूपमें नहीं बना और आदमको उत्पन्न किया तो ईश्वरने अपने स्वरूप ही को उत्पत्तिवाला किया पुनः वह अनित्य क्यों नहीं ? और आदमको उत्पन्न कहांसे किया ?

ईसाई—मट्टीसे बनाया।

समीक्षक—मट्टी कहांसे बनाई ?

ईसाई—अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्यसे।

समीक्षक—ईश्वरका सामर्थ्य अनादि है वा नवीन ?

ईसाई—अनादि है।

समीक्षक—जब अनादि है तो जगत्का कारण सनातन हुआ फिर अभावसे भाव क्यों मानते हो ?

ईसाई—सृष्टिके पूर्व ईश्वरके विना कोई वस्तु नहीं थी।

समीक्षक—जो नहीं थी तो यह जगत् कहांसे बना ? और ईश्वरका सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण ? जो द्रव्य है तो ईश्वरसे भिन्न दूसरा पदार्थ था और जो गुण है तो गुणसे द्रव्य कभी नहीं बन सकता जैसे रूपसे अग्नि और रससे जल नहीं बन सकता और जो ईश्वरसे जगत् बना होता तो ईश्वरके सदृश गुण, कर्म, स्वभाववाला होता, उसके गुण, कर्म, स्वभावके सदृश न होनेसे यही निश्चय है कि ईश्वरसे नहीं

बना किन्तु जगत्‌के कारण अर्थात् परमाणु आदि नामवाले जड़से बना है, जैसी कि जगत्‌की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रोंमें लिखी है वैसी ही मान लो जिससे ईश्वर जगत्‌को बनाता है. जो आदमका भीतरका स्वरूप जीव और बाहरका मनुष्यके सदृश है तो वैसा ईश्वरका स्वरूप क्यों नहीं ? क्योंकि जब आदम ईश्वरके सदृश बना तो ईश्वर आदमके सदृश अवश्य होना चाहिये ॥ ४ ॥

५—तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूलसे आदमको बनाया और उसके नथुनोंमें जीवनका श्वास फूंका और आदम जीवता प्राण हुआ ॥ और परमेश्वर ईश्वरने अदनमें पूर्वकी ओर एक बाड़ी लगाई और उस आदमको जिसे उसने बनाया था उसमें रक्खा ॥ और उस बाड़ीके मध्यम जीवनका पेड़ और भले बुरेके ज्ञानका पेड़ भूमिसे उगाया ॥ पर्व २ । आ० ७ । ८ । ९ ॥

समीक्षक—जब ईश्वरने अदनमें बाड़ी बनाकर उसमें आदमको रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको पुनः यहांसे निकालना पड़ेगा ? और जब ईश्वरने आदमको धूलीसे बनाया तो ईश्वरका स्वरूप नहीं हुआ और जो है तो ईश्वर भी धूलीसे बना होगा ? जब उसके नथुनोंमें ईश्वरने श्वास फूंका तो वह श्वाश ईश्वरका स्वरूप था वा भिन्न ? जो भिन्न था तो ईश्वर आदमके स्वरूपमें नहीं बना जो एक है तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदमके सदृश जन्म, मरण, वृद्धि, क्षय, क्षुधा, तृषा आदि दोष ईश्वरमें आये, फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है ? इसलिये यह तौरेतकी बात ठीक नहीं विदित होती और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है ॥ ५ ॥

६—और परमेश्वर ईश्वरने आदमको बड़ी नींदमें डाला और वह सोगया तब उसने उसकी पसलियोंमेंसे एक पसली निकाली और उसकी सन्ति मांस भर दिया और परमेश्वर ईश्वरने आदमकी उस पसलीसे एक नारी बनाई और उसे आदमके पास लाया ॥ पर्व २ । आ० २१ । २२ ॥

समीक्षक—जो ईश्वरने आदमको धूलीसे बनाया तो उसकी स्त्री को धूलीसे क्यों नहीं बनाया ? और जो नारीको हड्डीसे बनाया तो आदमको हड्डीसे क्यों नहीं बनाया ? और जैसे नरसे निकलनेसे नारी नाम हुआ तो नारीसे नर नाम भी होना चाहिये और उनमें परस्पर प्रेम भी रहे जैसे स्त्रीके साथ पुरुष प्रेम करे वैसे पुरुषके साथ स्त्री भी प्रेम करे। देखो विद्वान लोगो! ईश्वरकी कैसी पदार्थविद्या अर्थात् "फिलासफी" चिलकती है! जो आदमकी एक पसली निकाल कर नारी बनाई तो सब मनुष्योंकी एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्रीके शरीरमें एक पसली होनी चाहिये क्योंकि वह एक पसलीसे बनी है क्या जिस सामग्रीसे सब जगत् बनाया उस सामग्रीसे स्त्रीका शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये यह बाइबलका सृष्टिक्रम सृष्टिविद्यासे विरुद्ध है ॥ ६ ॥

७—अब सर्प भूमिके हर एक पशुसे जिसे परमेश्वर ईश्वरने बनाया था धूर्त था और उसने स्त्रीसे कहा क्या निश्चय ईश्वरने कहा है कि तुम इस बाड़ीके हर एक पेड़से न खाना॥ और स्त्रीने सर्पसे कहा कि हम तो इस बाड़ीके पेड़ोंका फल खाते हैं। परन्तु उस पेड़का फल जो बाड़ीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे न खाना और न छूना न हो कि मरजाओ। तब सर्पने स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगे। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आंखें खुल जायेंगी और तुम भले बुरेकी पहिचानमें ईश्वरके समान हो जाओगे। और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें सुस्वाद और दृष्टिमें सुन्दर और बुद्धि देनेके योग्य है तो उसके फलमेंसे लिया और खाया और अपने पतिको भी दिया और उसने खाया तब उन दोनोंकी आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने अञ्जीरके पत्तोंको मिलाके सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया तब परमेश्वर ईश्वरने सर्पसे कहा कि जो तूने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हरएक बनके पशुसे अधिक स्रापित होगा

तू अपने पेटके बल चलेगा और अपने जीवन भर धूळ खाया करेगा॥ और मैं तुझमें और स्त्रीमें तेरे वंश और उसके वंशमें बैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एड़ीको काटेगा॥ और उसने स्त्रीको कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारणको बहुत बढ़ाऊंगा, तू पीड़ासे बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा॥ और उसने आदमसे कहा कि तू ने जो अपनी पत्नीको शब्द माना है और जिस पेड़से मैंने तुझे खानेको बर्जा था तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये स्रापित है अपने जीवन भर तू उससे पीड़ाके साथ खायगा॥ और वह कांटे और ऊंटकटारे तेरे लिये उगावेगी और तू खेतका साग पात खायगा॥ तौरेत उत्पत्ति पर्व ३। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। १४। १५। १६। १७। १८॥

समीक्षक—जो ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्प अर्थात् शैतानको क्यों बनाता? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराधका भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प्प नहीं था किन्तु मनुष्य था क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्यकी भाषा क्योंकर बोल सकता? और जो आप झूठा और दूसरेको झूठमें चलावे उसको शैतान कहना चाहिये सो यहां शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्रीको नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईश्वरने आदम और हव्वासे झूठ कहा कि इसके खानेसे तुम मर जाओगे जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था तो उसके फल खानेसे क्यों बर्जा और जो बर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकानेवाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्षके फल मनुष्योंको ज्ञान और सुखकारक थे अज्ञान और मृत्युकारक नहीं, जब ईश्वरने फल खानेसे बर्जा तो उस वृक्षकी उत्पत्ति किसलिये की थी? जो अपने लिए की तो क्या

आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था ? और जो दूसरोंके लिये बनाया तो फल खानेमें अपराध कुछ भी न हुआ और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखनेमें नहीं आता, क्या ईश्वरने उसका बीज भी नष्ट कर दिया ? ऐसी बातोंसे मनुष्य छली कपटी होता है तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि जो कोई दूसरेसे छल कपट करेगा वह छली कपटी क्यों न होगा ? और जो इन तीनोंको शाप दिया वह विना अपराधसे है पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ और यह शाप ईश्वरको होना चाहिये क्योंकि वह झूठ बोला और उनको बहकाया यह "फिलासफी" देखो क्या विना पीड़ाके गर्भ-धारण और बालकका जन्म हो सकता था ? और विना श्रमके कोई अपनी जीविका कर सकता है ? क्या प्रथम कांटे आदिके वृक्ष न थे ? और जब शाक पात खाना सब मनुष्योंको ईश्वरके कहनेसे उचित हुआ तो जो उत्तरमें मांस खाना बाइबलमें लिखा वह झूठा क्यों नहीं और जो वह सचा हो तो यह झूठा है जब आदमका कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्योंको आदमके अपराधसे सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं ? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानोंके सामने योग्य हो सकता है ? ॥ ७ ॥

८—और परमेश्वर ईश्वरने कहा कि देखो ! आदम भले बुरेके जाननेमें हममेंसे एककी नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवनके पेड़मेंसे भी लेकर खावे और अमर होजाय सो उसने आदमको निकाल दिया और अदनकी बाड़ीकी पूर्व और करोबीम चमकते हुए खड्ग जो चारों ओर घूमते थे, ठहराये जिनसे जीवनके पेड़के मार्गकी रखवाली करें ॥ पर्व ३ । आ० २२ । २४ ॥

समीक्षक—भला ! ईश्वरको ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञानमें हमारे तुल्य हुआ ? क्या यह बुरी बात हुई ? यह शङ्का ही क्यों पड़ी ? क्योंकि ईश्वरके तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता परन्तु इस

लेखसे यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्य विशेष था, बाइबलमें जहां कहीं ईश्वरकी बात आती है वहां मनुष्यके तुल्य ही लिखी आती है, अब देखो! आदमके ज्ञानकी बढ़तीमें ईश्वर कितना दुःखी हुआ और फिर अमर वृक्षके फल खानेमें कितनी ईर्ष्या की, और प्रथम जब उसको बारीमें रक्खा तब उसको भविष्यत्‌का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा इसलिये ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था और चमकते खड्गका पहिरा रक्खा यह भी मनुष्यका काम है ईश्वरका नहीं ॥ ८ ॥

९—और कितने दिनोंके पीछे यों हुआ कि काइन भूमिके फलों-मेंसे परमेश्वरके लिये भेट लाया ॥ और हाबील भी अपनी झुण्ड * मेंसे पहिलौठी और मोटी २ भेड़ लाया और परमेश्वरने हाबील और उसकी भेटका आदर किया परन्तु कानइका, उसकी भेटका आदर न किया इसलिये काइन अतिकुपित हुआ और अपना मुंह फुलाया ॥ तब परमेश्वरने काइनसे कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यों फूल गया ॥ तौ० पर्व ४। आ० ३। ४। ५। ६॥

समीक्षक—यदि ईश्वर मांसाहारी न हो तो भेड़की भेट और हाबीलका सत्कार और काइनका तथा उसकी भेटका तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबीलके मृत्युका कारण भी ईश्वर ही हुआ और जैसे आपसमें मनुष्य लोग एक दूसरेसे बातें करते हैं वैसे ही ईसाइयोंके ईश्वरकी बातें हैं बगीचेमें आना जाना उसका बनाना भी मनुष्योंका कर्म है इससे विदित होता है कि यह बाइबल मनुष्योंकी बनाई है ईश्वरकी नहीं ॥ ९ ॥

१०—जब परमेश्वरने काइनसे कहा तेरा भाई हाबिल कहां है और वह बोला मैं नहीं जानता क्या मैं अपने भाईका रखवाला हूं ॥ तब उसने कहा तूने क्या किया तेरे भाईके लोहूका शब्द भूमिसे मुझे

* भेड़ बकरियोंके झुंड ॥

पुकारता है ॥ और अब तू पृथिवीसे स्रापित है ॥ तौ० पर्व ४। आ० ९। १०। ११ ॥

समीक्षक—क्या ईश्वर काइनसे विना पूछे हाबिलका हाल नहीं जानता था और लोहूका शब्द भूमिसे कभी किसीको पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानोंकी हैं इसलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान्का बनाया हो सकता है ॥ १० ॥

११—और हनूक मतूसिलहकी उत्पत्तिके पीछे तीनसौ वर्षलों ईश्वरके साथ २ चलता था ॥ तौ० पर्व ५। आ० २२ ॥

समीक्षक—भला ईसाइयोंका ईश्वर मनुष्य न होता तो हनूक उसके साथ २ क्यों चलता! इससे जो वेदोक्त निराकार ईश्वर है उसीको ईसाई लोग मानें तो उनका कल्याण होवे ॥ ११ ॥

१२—और उनसे बेटियां उत्पन्न हुईं ॥ तो ईश्वरके पुत्रोंने आदमकी पुत्रियोंको देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमेंसे जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें ब्याहा ॥ और उन दिनोंमें पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वरके पुत्र आदमकी पुत्रियोंसे मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान् हुए जो आगेसे नामी थे ॥ और ईश्वर ने देखा कि आदमकी दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मनकी चिंता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है ॥ तब आदमीको पृथिवी पर उत्पन्न करनेसे परमेश्वर पछताया और उसे अतिशोक हुआ ॥ तब परमेश्वरने कहा कि आदमीको जिसे मैंने उत्पन्न किया आदमीसे लेके पशुनलों और रेंगवैयोंको और आकाशके पक्षियोंको पृथिवी परसे नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनानेसे मैं पछताता हूं ॥ तौ० पर्व ६। आ० १। २। ४। ५। ६। ७ ॥

समीक्षक—ईसाइयोंसे पूछना चाहिये कि ईश्वरके बेटे कौन हैं? और ईश्वरकी स्त्री, सास, श्वसुर, साला और सम्बन्धी कौन हैं क्योंकि अब तो आदमीकी बेटियोंके साथ विवाह होनेसे ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ और जो उनसे उत्पन्न होते हैं वे पुत्र और प्रपौत्र हुए क्या ऐसी

बात ईश्वर और ईश्वरके पुस्तककी हो सकती है ? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जङ्गली मनुष्योंने यह पुस्तक बनाया है, वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो न भविष्यत्की बात जाने वह जीव है क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था ? और पछताना अति शोकादि होना भूलसे काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयोंके ईश्वरमें घट सकता है कि ईसाइयोंका ईश्वर पूर्ण विद्वान योगी भी नहीं था नहीं तो शान्ति और विज्ञानसे अतिशोकादिसे पृथक् हो सकता था। भला पशु पक्षी भी दुष्ट होगये यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता ? इसलिये यह न ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख, शोकादिसे रहित "सच्चिदानन्दस्वरूप" है उसको ईसाई लोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्यजन्मको सफल कर सकें॥ १२॥

१३—उस नावकी लम्बाई तीनसौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊंचाई तीस हाथकी होवे॥ तू नावमें जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरी बेटोंकी पत्नियां तेरे साथ और सारे शरीरोंमेंसे जीवता जन्तु दो २ अपने साथ नावमें लेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें वे नर और नारी होवें॥ पंछीमेंसे उसके भांति २ के और ढोर * में से उसके भांति २ के और पृथिवीके हरएक रेंगवैयोंमेंसे भांति २ के हरएकमेंसे दो २ तुझ पास आवें जिससे जीते रहें॥ और तू अपने लिये खानेको सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजन होगा॥ सो ईश्वरकी सारी आज्ञाके समान नूहने किया॥ तौ० पर्व ६। आ० १५। १८। १९। २०। २१। २२॥

समीक्षक—भला कोई भी विद्वान् ऐसी विद्यासे विरुद्ध असम्भव बातके वक्ताको ईश्वर मान सकता है ? क्योंकि इतनी बड़ी चौड़ी

---

* चौपाये।

ऊंची नावमें हाथी, हथनी, ऊंट, ऊंटनी आदि क्रोड़ों जन्तु और उनके खाने पीनेकी चीजें वे सब कुटुम्बके भी समा सकते हैं? यह इसलिये मनुष्यकृत पुस्तक है जिसने यह लेख किया है वह विद्वान् भी नहीं था॥ १३॥

१४—और नूह परमेश्वरके लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हरएक पवित्र पंछियोंमेंसे लिये और होमकी भेट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वरने सुगन्ध सूघा और परमेश्वरने अपने मनमें कहा कि आदमीके लिये मैं पृथिवीको फिर कभी स्राप न दूंगा। इस कारण कि आदमीके मनकी भावना उसकी लड़ाईसे बुरी है और जिस रीतिसे मैंने सारे जीवधारियोंको मारा फिर कभी न मारूंगा॥ तौ० पर्व० ८। आ० २०। २१॥

समीक्षक—वेदीके बनाने, होम करनेके लेखसे यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदोंसे बाइबलमें गई हैं क्या परमेश्वरके नाक भी है कि जिससे सुगन्ध सूंघा? क्या यह ईसाइयोंका ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है? कि कभी शाप देता है और कभी पछताता है, कभी कहता है शाप न दूंगा, पहिले दिया था और फिर भी देगा प्रथम सबको मार डाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा!!! ये बातें सब लड़कोंकी सी हैं ईश्वरकी नहीं और न किसी विद्वान्की क्योंकि विद्वानकी भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है॥ १४॥

१५—और ईश्वरने नूहको और उसके बेटोंको आशीष दिया और उन्हें कहा॥ कि हरएक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजनके लिये होगा मैंने हरी तरकारीके समान सारी वस्तु तुम्हें दीं केवल मांस उसके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना॥ तौ० पर्व ९। आ० १। ३। ४॥

समीक्षक—क्या एकको प्राणकष्ट देकर दूसरोंको आनन्द करानेसे दयाहीन ईसाइयोंका ईश्वर नहीं है? जो माता पिता एक लड़केको मरवाकर दूसरेको खिलावे तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह

बात है क्योंकि ईश्वरके लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। ऐसा न होनेसे इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्योंको हिंसक भी इसीने बनाया है, इसलिये ईसाइयोंका ईश्वर निर्दय होनेसे पापी क्यों नहीं ? ॥ १५ ॥

१६—और सारी पृथिवीपर एकही बोली और एकही भाषा थी ॥ फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्गलों पहुंचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें। न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न होजायें ॥ तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्मटके जिसे आदमके सन्तान बनाते थे देखनेको उतरा ॥ तब परमेश्वरने कहा कि देखो ये लोग एक ही हैं और उन सबकी एक ही बोली है अब वे ऐसा २ कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे ॥ आओ हम उतरें और वहां उनकी भाषाको गड़बड़ावें जिससे एक दूसरेकी बोली न समझें ॥ तब परमेश्वरने उन्हें वहांसे सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न किया और वे उस नगरके बनानेसे अलग रहे ॥ तौ० पर्व ११ । आ० १।४।५।६।७।८ ॥

समीक्षक—जब सारी पृथिवीपर एक भाषा और बोली होगी उस समय सब मनुष्योंको परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा परन्तु क्या किया जाय यह ईसाइयोंके ईर्ष्यक ईश्वरने सबकी भाषा गड़बड़ाके सबका सत्यानाश किया उसने यह बड़ा अपराध किया ! क्या यह शैतानके कामसे भी बुरा काम नहीं है ? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सनाई पहाड़ आदि पर रहता था और जीवोंकी उन्नति भी नहीं चाहता था यह विना एक अविद्वान्के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्योंकर हो सकता है ? ॥१६॥

१७—तब उसने अपनी पत्नी सरीसे कहा कि देखा मैं जानता हूं तू देखनेमें सुन्दर स्त्री है ॥ इसलिये यों होगा कि जब मिश्री तुझे देखें तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे परन्तु तुझे जीती रक्खेंगे ॥ तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूं जिससे तेरे

कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतुसे जीता रहे ॥ तौ० पर्व १२ । आ० ११ । १२ । १३ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! अबिरहाम बड़ा पैगम्बर ईसाई और मुसलमानोंका बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं, भला जिनके ऐसे पैगम्बर हों उनको विद्या वा कल्याणका मार्ग कैसे मिल सके ? ॥ १७ ॥

१८—और ईश्वरने अबिरहामसे कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियोंमें मेरे नियमको माने तुम मेरा नियम जो मुझसे और तुमसे और तेरे पीछे तेरे वंशसे है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुममेंसे हर एक पुरुषका खतनः किया जाय । और तुम अपने शरीरकी खलड़ी काटो और मेरे और तुम्हारे मध्यमें नियमका चिह्न होगा और तुम्हारी पीढ़ियोंमें रहे । एक आठ दिनके पुरुषका खतनः किया जाय जो घरमें उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशीसे जो तेरे वंशका न हो ॥ रूपेसे मोल लिया जाय जो तेरे घरमें उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूपेसे मोल लिया गया हो अवश्य उसका खतनः किया जाय और मेरा नियम तुम्हारे मांसमें सर्वदा नियमके लिये होगा । और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ीका खतनः न हुआ हो सो प्राणी अपने लोगसे कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है ॥ तौ० पर्व १७ । आ० ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ ॥

समीक्षक—अब देखिये ईश्वरकी अन्यथा आज्ञा कि जो यह खतनः करना ईश्वरको इष्ट होता तो उस चमड़ेको आदि सृष्टिमें बनाता ही नहीं और जो यह बनाया है वह रक्षार्थ है जैसा आंखके ऊपरका चमड़ा क्योंकि वह गुप्तस्थान अतिकोमल है जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ीके भी काटने और थोड़ीसी चोट लगनेसे बहुतसा दुःख होवे और वह लघुशङ्काके पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ोंमें न लगे इत्यादि बातोंके लिये इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञाको क्यों नहीं करते ? यह आज्ञा सदाके लिये है इसके न करनेसे ईसाकी

गवाही जोकि व्यवस्थाके पुस्तकका एक विन्दु भी झूठा नहीं है मिथ्या हो गई इसका सोच विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते ॥१८॥

१६—जब ईश्वर अविरहामसे बातें कर चुका तो ऊपर चला गया ॥ तौ० पर्व । १७ । आ० २२ ॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर आता जाता रहता था यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है ॥ १६ ॥

२०—फिर ईश्वरने उसे ममरेके बलूतोंमें दिखाई दिया और वह दिनको घामके समयमें अपने तम्बूके द्वार पर बैठा था ॥ और उसने अपनी आंखें उठाईं और क्या देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देखके वह तम्बूके द्वार परसे उनकी भेटको दौड़ा और भूमि तक दण्डवत की ॥ और कहा हे मेरे स्वामि! यदि मैंने अब आपकी दृष्टिमें अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूं कि अपने दासके पाससे चले न जाइये ॥ इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये ॥ और मैं एक कौर रोटी लाऊं और आप तृप्त हूजिये। उसके पीछे आगे बढ़िये क्योंकि आप इसीलिये अपने दासके पास आये हैं तब वे बोले कि जैसा तू ने कहा वैसा कर और अविरहाम तम्बूमें सरः पास उतावलीसे गया और उसे कहा कि फुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान लेके गूंध और उसके फुलके पका ॥ और अविरहाम झुण्डकी ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दासको दिया और उसने भी उसे सिद्ध करनेमें चटक किया ॥ और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था लिया और उसके आगे धरा और आप उसके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया ॥ तौ० पर्व १८ । आ० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ॥

समीक्षक—अब देखिये! सज्जन लोगो! जिनका ईश्वर बछड़ेका मांस खावे उसके उपासक गाय बछड़े आदि पशुओंको क्यों छोड़ें!

जिसको कुछ दया नहीं और मांसके खानेमें आतुर रहे वह विना हिंसक मनुष्यके ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वरके साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे ? इससे विदित होता है कि जङ्गली मनुष्योंकी एक मण्डली थी उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबलमें ईश्वर रक्खा होगा इन्हीं बातोंसे बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तकको ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसेको ईश्वर समझते हैं ॥ २० ॥

२१—और परमेश्वरने अबिरहामसे कहा कि सरः क्यों यह कहके मुस्कुराई कि जो मैं बुढ़िया हूं सचमुच बालक जनूंगी क्या परमेश्वरके लिये कोई बात असाध्य है ॥ तौ० पर्व १८। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये ! कि क्या ईसाइयोंके ईश्वरकी लीला कि जो लड़के वा स्त्रियोंके समान चिड़ता और ताना मारता है ! ! ! ॥ २१ ॥

२२—तब परमेश्वरने सदूमसूरा पर गन्धक और आग परमेश्वरकी ओरसे वर्षाया ॥ और उन नगरोंको और सारे चौगानको और नगरोंके सारे निवासियोंको और जो कुछ भूमि पर उगता था उलटा दिया ॥ तौ० उत्प० पर्व० १९। आ० २४। २५ ॥

समीक्षक—अब यह भी लीला बाइबलके ईश्वरकी देखिये ! कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई। क्या वे सब ही अपराधी थे जो सबको भूमि उलटाके दबा मारा ? यह बात न्याय, दया और विवेकसे विरुद्ध है जिनका ईश्वर ऐसा काम करे उनके उपासक क्यों न करें ? ॥ २२ ॥

२३—आओ हम अपने पिताको दाखरस पिलावें और हम उसके साथ शयन करें कि हम अपने पितासे वंश चलावें। तब उन्होंने उस रात अपने पिताको दाख रस पिलाया और पहिलौठी गई और अपने पिताके साथ शयन किया ॥ हम उसे आज रात भी दाखरस पिलावें तू जाके शयन कर। सोलूतकी दोनों बेटियां अपने पितासे गर्भिणी हुईं ॥ तौ० उत्प० पर्व १९। आ० ३२। ३३। ३४। ३६ ॥

समीक्षक—देखिये ! पिता पुत्री भी जिस मद्यपानके नशेमें कुकर्म करनेसे न बच सके ऐसे दुष्ट मद्यको जो ईसाई आदि पीते हैं उनकी बुराईका क्या पारावार है ? इसलिये सज्जन लोगोंको मद्यके पीनेका नाम भी न लेना चाहिये ॥ २३ ॥

२४—और अपने कहनेके समान परमेश्वरने सरःसे भेट किया और अपने वचनके समान परमेश्वरने सरःके विषयमें किया ॥ और सरः गर्भिणी हुई ॥ तौ० उत्प० पर्व २१ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब विचारिये कि सरःसे भेट कर गर्भवतीकी, यह काम कैसे हुआ ? क्यों विना परमेश्वर और सरःके तीसरा कोई गर्भस्थापनका कारण दीखता है ? ऐसा विदित होता है कि सरः परमेश्वरकी कृपासे गर्भवती हुई !!! ॥ २४ ॥

२५—तब अबिरहामने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखालमें जल लिया और हाजिरःके कन्धे पर धर दिया और लड़केको भी उसे सौंपके उसे विदा किया ॥ उसने लड़केको एक झाड़ीके तले डाल दिया ॥ और वह उसके सन्मुख बैठके चिल्ला चिल्ला रोई ॥ तब ईश्वर ने उस बालकका शब्द सुना ॥ तौ० उत्प० पर्व २१ । आ० १४ । १५ । १६ । १७ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाइयोंके ईश्वरकी लीला कि प्रथम तो सरःका पक्षपात करके हाजिरःको वहांसे निकलवादी और चिल्ला २ रोई हाजिरः और शब्द सुना लड़केका. यह कैसी अद्भुत बात है ? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वरको भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है भला यह ईश्वर और ईश्वरकी पुस्तककी बात कभी हो सकती है ? विना साधारण मनुष्यके वचनके इस पुस्तकमें थोड़ीसी बात सत्य के सब असार भरा है ॥ २५ ॥

२६—और इन बातोंके पीछे यों हुआ कि ईश्वरने अबिरहामकी परीक्षा किई और उसे कहा । हे अबिरहाम ! तू अपने बेटेको अपने इकलौठे इजहाकको जिसे तू प्यार करता है ले ॥ उसे होमकी भेटके

लिये चढ़ा और अपने बेटे इजहाकको बांधके उसे वेदीमें लकड़ियों पर धरा ॥ और अबिरहामने छुरी लेके अपने बेटेको घात करनेके लिये हाथ बढ़ाया ॥ तब परमेश्वरके दूतने स्वर्ग परसे उसे पुकारा कि अबिरहाम २ अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा उसे कुछ मत कर क्योंकि मैं जानता हूं कि तू ईश्वरसे डरता है ॥ तौ० उत्प० पर्व २२। आ० १।२।६।१०। ११।१२॥

समीक्षक—अब स्पष्ट हो गया कि वह बाइबलका ईश्वर अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं और अबिरहाम भी एक भोला मनुष्य था नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता? और जो बाइबलका ईश्वर सर्वज्ञ होता तो उसकी भविष्यत् श्रद्धाको भी सर्वज्ञतासे जान लेता इससे निश्चित होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं ॥ २६ ॥

२७—सो आप हमारी समाधिनमेंसे चुनके एकमें अपने मृतकको गाड़िये जिसतें आप अपने मृतकको गाड़ें ॥ तौ० उत्प० पर्व २३। आ० ६ ॥

समीक्षक—मुर्दोंके गाड़नेसे संसारकी बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़के वायुको दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न—देखो! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिये गाड़ना अच्छा है।

उत्तर—जो मृतकसे प्रीति करते हो तो अपने घरमें क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मासे प्रीति थी वह निकल गया अब दुर्गन्धमय मट्टीसे क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवीमें क्यों गाड़ते हो क्योंकि किसीसे कोई कहे कि तुझको भूमिमें गाड़ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौनसी प्रीतिका काम है? और सन्दूकमें डालके गाड़नेसे बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवीसे निकल वायुको बिगाड़ कर दारुण

रोगोत्पत्ति करता है दूसरा एक मुर्देके लिये कमसे कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये इसी हिसाबसे सौ हजार वा लाख अथवा क्रोड़ों मनुष्योंके लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है न वह खेत, न बग़ीचा और न बसनेके कामकी रहती है इसलिये सबसे बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जलमें डालना क्योंकि उसको जल जन्तु उसी समय चीर फाड़के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जलमें रहेगा वह सड़कर जगत्को दुःखदायक होगा उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जङ्गलमें छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच खायंगे तथापि जो उसके हाड़की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्ध करेगा उतना जगत्का अनुपकार होगा और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायुमें उड़ जायेंगे।

प्रश्न—जलानेसे भी दुर्गन्ध होता है।

उत्तर—जो अविधिसे जलावें तो थोड़ासा होता है परन्तु गाड़ने आदिसे बहुत कम होता है और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेदमें लिखा है मुर्देके तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तलेमें डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा उतार वेदी खोदकर शरीरके बराबर घी उसमें एक सेरमें रत्ती भर कस्तूरी, मासा भर केशर डाल न्यूनसे न्यून आधमन चन्दन अधिक चाहें जितना ले अगर तगर कपूर आदि और पलाश आदिकी लकड़ियोंको वेदीमें जमा उस पर मुर्दा रखके पुनः चारों ओर ऊपर वेदीके मुखसे एक २ बीता तक भरके घी की आहुति देकर जलाना चाहिये इस प्रकारसे दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसीका नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है और जो दरिद्र हो तो बीस सेरसे कम घी चितामें न डाले चाहें वह भीख मांगने वा जाति वालेके देने अथवा राजसे मिलनेसे प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करे और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदिसे केवल लकड़ीसे भी मृतकका जलाना उत्तम

है क्योंकि एक विश्वाभर भूमिमें अथवा एक वेदीमें लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं, भूमि भी गाड़नेके समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबरके देखनेसे भय भी होता है इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है॥ २७॥

२८—परमेश्वर मेरे स्वामी अबिरहामका ईश्वर धन्य जिसने मेरे स्वामीको अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा, मार्गमें परमेश्वरने मेरे स्वामीके भाइयोंके घरकी ओर मेरी अगुआई किई॥ तौ० उत्प० पर्व २३। आ० २७॥

समीक्षक—क्या वह अबिरहाम ही का ईश्वर था? और जैसे आजकल बिगारी व अगुवे लोग अगुवाई अर्थात् आगे २ चलकर मार्ग दिखलाते हैं तथा ईश्वरने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता? और मनुष्योंसे बातें क्यों नहीं करता? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर व ईश्वरके पुस्तककी कभी नहीं हो सकतीं किन्तु जङ्गली मनुष्योंकी हैं॥ २८॥

२९—इसमअऐलके बेटोंके नाम ये हैं—इसमअऐलका पहिलौठा नवीत और कीदार और अदबिएल और मिवसाम और मिसमाअ और दूमः और मस्सा। हदर और तैमा, इतूर, नफीस और किदमः॥ तौ० उत्प० पर्व २५। आ० १३। १४। १५॥

समीक्षक—यह इसमअऐल अबिरहामसे उसकी हाजिरः दासीका हुआ था॥ २९॥

३०—मैं तेरे पिताकी रुचिके समान स्वादित भोजन बनाऊंगी और तू अपने पिताके पास ले जाइयो जिससे वह खाय और अपने मरनेसे आगे तुझे आशीष देवे॥ और रिवकः ने अपने घरमेंसे अपने जेठे बेटे एसौका अच्छा पहिरावा लिया और बकरीके मेम्नोंका चमड़ा उसके हाथों और गलेकी चिकनाई पर लपेटा तब यअकूब अपने पितासे बोला कि मैं आपका पहिलौठा ऐसौ हूं आपके कहनेके समान मैंने किया है उठ बैठिये और मेरे अहेरके मांसमेंसे खाइये जिसते

आपका प्राण मुझे आशीष दे ॥ तौ० उत्प० पर्व २७। आ० ६। १०। १५। १६। १६॥

समीक्षक—देखिये! ऐसे झूठ कपटसे आशीर्वाद लेके पश्चात् सिद्ध और पैगम्बर बनते हैं क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है? और ऐसे ईसाइयोंके अगुआ हुए हैं पुनः इनके मतकी गड़बड़में क्या न्यूनता हो? ॥ ३०॥

३१—और यअकूब विहानको तड़के उठा और उस पत्थरको जिसे उसने अपना उसीसा किया था खम्भा खड़ा किया और उस पर तेल डाला॥ और उस स्थानका नाम बैतएल रक्खा॥ और यह पत्थर जो मैंने खम्भा खड़ा किया ईश्वरका घर होगा॥ तौ० उत्प० पर्व २८ आ० १८। १६। २२॥

समीक्षक—अब देखिये! जङ्गलियोंके काम, इन्हींने पत्थर पूजे और पुजवाये और इसको मुसलमान लोग "बयतलमुकद्दस" कहते हैं क्या यही पत्थर ईश्वरका घर और उसी पत्थरमात्रमें ईश्वर रहता था? वाह! वाह!! जी क्या कहना है, ईसाई लोगो! महाबुत्परस्त तो तुम्हीं हो॥ ३१॥

३२—और ईश्वरने राखिलको स्मरण किया और ईश्वरने उसकी सुनी और उसकी कोखको खोला और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और बोली कि ईश्वर मेरी निन्दा दूर किई॥ तौ० उत्प० पर्व ३०। आ० २२। २३॥

समीक्षक—वाह ईसाइयोंके ईश्वर! क्या बड़ा डाक्टर है स्त्रियोंकी कोख खोलनेको कौनसे शस्त्र व औषध थे जिनसे खोली ये सब बातें अन्धाधुन्धकी हैं॥ ३२॥

३३—परन्तु ईश्वर आरामी लावनके स्वप्नमें रातको आया और उसे कहा कि चौकस रह तू ईश्वर यअकूबको भला बुरा मत कह, क्योंकि अपने पिताके घरका निपट अभिलाषी है तूने किसलिये मेरे देवोंको चुराया है॥ तौ० उत्प० पर्व ३१। आ० २४। ३०॥

समीक्षक—यह हम नमूना लिखते हैं हजारों मनुष्योंको स्वप्नमें आया, बातें किईं, जागृत साक्षात् मिला, खाया, पिया, आया, गया आदि बाइबलमें लिखा है परन्तु अब न जाने वह है व नहीं ? क्योंकि अब किसीको स्वप्न व जागृत्में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि वे जङ्गली लोग पाषाणादि मूर्त्तियोंको देव मानकर पूजते थे परन्तु ईसाइयोंका ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है नहीं तो देवोंका चुराना कैसे घटे ? ॥ ३३ ॥

३४—और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वरके दूत उससे आमिले ॥ और यअकूबने उन्हें देखके कहा कि यह ईश्वरकी सेना है ॥ तौ० उत्प० पर्व ३२ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब ईसाइयोंके ईश्वरके मनुष्य होनेमें कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा क्योंकि सेना भी रखता है जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे और जहां तहां चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा नहीं तो सेना रखनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ ३४ ॥

३५—और यअकूब अकेला रह गया और वहां पौ फटेलों एक जन उससे मल्लयुद्ध करता रहा। और जब उसने देखा कि वह उस पर प्रबल न हुआ तो उसकी जांघको भीतरसे छुआ तब यअकूबके जांघकी नस उसके संग मल्लयुद्ध करनेमें चढ़ गई ॥ तब वह बोला कि मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है और वह बोला मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे ॥ तब उसने उसे कहा कि तेरा नाम क्या ? और वह बोला कि यअकूब ॥ तब उसने कहा कि तेरा नाम आगेको यअकूब न होगा परन्तु इसरायेल क्योंकि तूने ईश्वरके आगे और मनुष्योंके आगे राजाकी नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता ॥ तब यअकूबने यह कहिके उससे पूछा कि अपना नाम बताइये और वह बोला कि तू मेरा नाम क्यों पूछता है और उसने उसे वहां आशीष दिया ॥ और यअकूबने उस स्थानका नाम फनूएल रक्खा क्योंकि मैंने ईश्वरको प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है ॥ और

जब वह फनूएलसे पार चला तो सूर्य्यकी ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जांघसे लङ्गड़ाता था इसलिये इसरायेलके वंश उस जांघकी नसको जो चढ़ गई थी आज लों नहीं खाते क्योंकि उसने यअकूबके जांघकी नसको चढ़ गई थी छुआ था ॥ तौ० उत्प० पर्व० ३२ । आ० २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ ॥

समीक्षक—जब ईसाइयोंका ईश्वर अखाड़मल्ल है तभी तो सरः और राखल पर पुत्र होनेकी कृपा की भला यह कभी ईश्वर हो सकता है ? और देखो ! लीला कि एक जना नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतलावे ? और ईश्वरने उसकी नाड़ीको चढ़ा तो दी और जीता गया परन्तु जो डाक्टर होता तो जांघ ी नाड़ीको अच्छी भी करता और ऐसे ईश्वरकी भक्तिसे जैसा कि यअकूब लङ्गड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लँगड़ाते होंगे जब ईश्वरको प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया यह बात विना शरीरवालेके कैसे हो सकती है ? यह केवल लड़कपनकी लीला है ॥ ३५ ॥

३६—और यहूदाहका पहिलौठा एर परमेश्वरकी दृष्टिमें दुष्ट था सो परमेश्वरने उसे मार डाला ॥ तब यहूदाहने ओनानको कहा कि अपनी भाईकी पत्नी पास जा और उससे ब्याह कर अपने भाईके लिये वंश चला ॥ और ओनानने जाना कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपनी भाईकी पत्नी पास गया तो वीर्य्यको भूमि पर गिरा दिया ॥ और उसका वह कार्य्य परमेश्वरकी दृष्टिमें बुरा था इसलिये उसने उसे भी मारडाला ॥ तौ० उत्प० पर्व ३८ । आ० ७ । ८ । ९ । १० ॥

समीक्षक—अब देख लीजिये ! ये मनुष्योंके काम हैं कि ईश्वरके जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मारडाला ? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न करदी और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था यह निश्चय हुआ कि नियोगकी बातें सब देशोंमें चलती थीं । ३६॥

तौरेत यात्राकी पुस्तक

३७—जब मूसा सयाना हुआ और अपने भाइयोंमेंसे एक इबरानीको देखा कि मिश्री उसे मार रहा है॥ तब उसने इधर उधर दृष्टि किई देखा कि कोई नहीं तब उसने उस मिश्रीको मारडाला और बालूमें उसे छिपा दिया॥ जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा दो इबरानी आपुसमें झगड़ रहे हैं तब उसने उस अंधेरीको कहा कि तू अपने परोसीको क्यों मारता है॥ तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया क्या तू चाहता है कि जिस रीतिसे तूने मिश्रीको मारडाला मुझे भी मार डाले तब मूसा डरा और भाग निकला॥ तौ० या० प० २। आ० ११। १२। १३। १४। १५॥

समीक्षक—अब देखिये! जो बाइबलका मुख्य सिद्धकर्त्ता मतका आचार्य्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुर्गुणोंसे युक्त मनुष्यकी हत्या करनेवाला और चोरवत् राजदण्डसे बचनेहारा अर्थात् जब बातको छिपाता था तो झूठ बोलनेवाला भी अवश्य होगा ऐसेको भी जो ईश्वर मिला वह पैगम्बर बना उसने यहूदी आदिका मत चलाया वह भी मूसा ही के सदृश हुआ। इसलिये ईसाइयोंके जो मूल पुरुषा हुए हैं वे सब मूसासे आदि ले करके जङ्गली अवस्थामें थे, विद्याऽवस्थामें नहीं इत्यादि॥ ३७॥

३८—और फसह मेम्ना मारो॥ और एक मूठी जूफा लेओ और उसे उस लोहूमें जो बासनमें है बोरके ऊपरकी चौखटके और द्वारकी दोनों ओर उससे छापो और तुममेंसे कोई बिहानलों अपने घरके द्वारसे बाहर न जावे॥ क्योंकि परमेश्वर मिश्रके मारनेके लिये आरपार जायगा और जब वह ऊपरकी चौखट पर और द्वारकी दोनों ओर लोहूको देखे तब परमेश्वर द्वारसे बीत जायगा और नाशक तुम्हारे घरोंमें न जाने देगा कि मारे॥ तौ० या० प० १२। आ० २१। २२। २३॥

समीक्षक—भला यह जो टोने टामन करनेवालेके समान है वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है ? जब लोहूका छापा देखे तभी इसरायेल कुलका घर जाने अन्यथा नहीं। यह काम क्षुद्र बुद्धिवाले मनुष्यके सदृश है इससे यह विदित होता है कि ये बातें किसी जङ्गली मनुष्यकी लिखी हैं ॥ ३८ ॥

३९—और यों हुआ कि परमेश्वरने आधीरातको मिश्रके देशमें सारे पहिलौठेको फिरऊनके पहिलौठेसे लेके जो अपने सिंहासन पर बैठता था उस बन्धुआके पहिलौठे लों जो बन्दीगृहमें था पशुनके पहिलौठे समेत नाश किये और रातको फिरऊन उठा वह और उसके सब सेवक और सारे मिश्री उठे और मिश्रमें बड़ा विलाप था क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा ॥ तौ० या० प० १२। आ० २९। ३० ॥

समीक्षक—वाह ! अच्छा आधीरातको डाकूके समान निर्दयी होकर ईसाइयोंके ईश्वरने लड़के वाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आई और मिश्रमें बड़ा विलाप होता रहा तो भी क्या ईसाइयोंके ईश्वरके चित्तसे निष्ठुरता नष्ट न हुई ? ऐसा काम ईश्वरका तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्यके भी करनेका नहीं है। यह आश्चर्य्य नहीं क्योंकि लिखा है "मांसाहारिणः कुतो दया" जब ईसाइयोंका ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया करनेसे क्या काम है ॥ ३९ ॥

४०—परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा ॥ इसरायेलके सन्तानसे कहा कि वे आगे बढ़े ॥ परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उससे दो भाग कर और इसरायेलके सन्तान समुद्रके बीचो बीचसे सूखी भूमिमें होकर चले जायेंगे ॥ तौ० या० प० १४। आ० १४। १५। १६ ॥

समीक्षक—क्योंजी आगे तो ईश्वर भेड़ोंके पीछे गड़रियेके समान इसरायेल कुलके पीछे २ डोला करता था अब न जाने कहां अन्तर्धान

होगया ? नहीं तो समुद्रके बीचमेंसे चारों ओरके रेलगाड़ियोंकी सड़क बनवा लेते जिससे सब संसारका उपकार होता और नाव आदि बनानेका श्रम छूट जाता। परन्तु क्या किया जाय ईसाइयोंका ईश्वर न जाने कहां छिप रहा है ? इत्यादि बहुतसी मूसाके साथ असम्भव लीला बाइबलके ईश्वरने की हैं परन्तु यह विदित हुआ कि जैसा ईसाइयोंका ईश्वर है वैसे ही उसके सेवक और ऐसी ही उसकी बनाई पुस्तक है। ऐसी पुस्तक और ऐसा ईश्वर हम लोगोंसे दूर रहे तभी अच्छा है॥ ४०॥

४१—क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान हूं पितरोंके अपराधका दण्ड उनके पुत्रोंको जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ीलों देवैया हूं॥ तौ० या० प० २०। आ० ५॥

समीक्षक—भला यह किस घरका न्याय है कि जो पिताके अपराधसे ४ पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समझना। क्या अच्छे पिताके दुष्ट और दुष्टके अच्छे सन्तान नहीं होते ? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पांचवीं पीढ़ीसे आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा, विना अपराध किसीको दण्ड देना अन्यायकारीकी बात है॥ ४१॥

४२—विश्रामके दिनको उसे पवित्र रखनेके लिये स्मरण कर॥ छः दिनलों तू परिश्रम कर॥ और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वरका विश्राम है। परमेश्वरने विश्राम दिनको आशीष दी॥ तौ० या० प० २०। आ० ८। ९॥

समीक्षक—क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं ? और क्या परमेश्वरने छः दिन तक बड़ा परिश्रम किया था ? कि जिससे थकके सातवें दिन सोगया ? और जो रविवारको आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनोंको क्या दिया ? अर्थात् शाप दिया होगा ऐसा काम विद्वानका भी नहीं तो ईश्वरका क्योंकर हो सकता है ? भला रविवारमें क्या गुण और सोमवार आदिने क्या दोष

किया था कि जिससे एकको पवित्र तथा वर दिया और अन्योंको ऐसे ही अपवित्र कर दिये ! ॥ ४२ ॥

४३—अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे ॥ अपने परोसीकी स्त्री और उसके दास उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तुका जो तेरे परोसीकी है लालच मत कर ॥ तौ० या० प० २० । आ० १६ । १७ ॥

समीक्षक—वाह ! तभी तो ईसाई लोग परदेशियोंके माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानों प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर, जैसी यह केवल मतलबसिन्धु और पक्षपातकी बात है ऐसा ही ईसाइयोंका ईश्वर अवश्य होगा। यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्रको परोसो मानते हैं तो सिवाय मनुष्योंके अन्य कौन स्त्री और दासी वाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें ? इसलिये ये बातें स्वार्थी मनुष्योंकी हैं ईश्वरकी नहीं ॥ ४३ ॥

४४—सो अब लड़कोंमेंसे हरएक बेटेको और हरएक स्त्रीको जो पुरुषसे संयुक्त हुई हो प्राणसे मारो ॥ परन्तु वे बेटियां जो पुरुषसे संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिये जीती रक्खो ॥ तौ० गिनती० प० ३१ । आ० १७ । १८ ॥

समीक्षक—वाहजी ! मूसा पैगम्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है ! कि जो स्त्री, बालक, वृद्ध और पशु आदिकी हत्या करनेसे भी अलग न रहे और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था, क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षत योनि अर्थात् पुरुषोंसे समागम न की हुई कन्याओंको अपने लिये मंगवाता व उनको ऐसी निर्दय व विषयीपनकी आज्ञा क्यों देता ? ॥ ४४ ॥

४५—जो कोई किसी मनुष्यको मारे और वह मरजाय वह निश्चय घात किया जाय ॥ और वह मनुष्य घातमें न लगा हो परन्तु ईश्वरने उसके हाथमें सौंप दिया हो तब मैं तुझे भागनेका स्थान बता दूंगा ॥ तौ० या० प० २१ । आ० १२ । १३ ॥

समीक्षक—जो यह ईश्वरका न्याय सच्चा है तो मूसा एक आदमी को मार गाड़कर भाग गया था उसको यह दण्ड क्यों न हुआ ? जो कहो ईश्वरने मूसाको मारनेके निमित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ क्योंकि उस मूसाका राजासे न्याय क्यों न होने दिया ? ॥४५॥

४६—और कुशलका बलिदान बैलोंसे परमेश्वरके लिये चढ़ाया ॥ और मूसाने आधा लोहू लेके पात्रोंमें रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का ॥ और मूसाने उस लोहूको लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियमका है जिस परमेश्वरने इन बातोंके कारण तुम्हारे साथ किया है ॥ और परमेश्वरने मूसासे कहा कि पहाड़ पर मुझ पास आ और वहां रह और तुझे पत्थरकी पटियां और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है दूंगा ॥ तौ० या० प० २४। आ० ५। ६। ८। १२॥

समीक्षक—अब देखिये ! ये सब जङ्गली लोगोंकी बातें हैं व नहीं और परमेश्वर बैलोंका बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कता यह कैसी जङ्गलीपन, असभ्यताकी बात है ? जब ईसाइयोंका खुदा भी बैलोंका बलिदान लेवे तो उसके भक्त गायके बलिदानकी प्रसादीसे पेट क्यों न भरें ? और जगत्‌की हानि क्यों न करें ? ऐसी २ बुरी बातें बाइबलमें भरी हैं इसीके कुसंस्कारोंसे वेदोंमें भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदोंमें ऐसी बातोंका नाम भी नहीं। और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयोंका ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था जब वह खुदा स्याही, लेखनी, कागज़ नहीं बना जानता और न उसको प्राप्त था इसीलिये पत्थरकी पटियोंपर लिख २ देता था और इन्हीं जङ्गलियोंके सामने ईश्वर भी बन बैठा था ॥ ४६ ॥

४७—और बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देखके कोई मनुष्य न जियेगा ॥ और परमेश्वरने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह ॥ और यों होगा कि जब मेरा विभव चलके निकलेगा तो मैं तुझे पहाड़के दरा-

रमें रक्खूंगा और जबलों निकलूं तुझे अपने हाथ ले ढांपूंगा ।। और अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा ।। तौ० या० प० ३३ । आ० २० । २१ । २२ । २३ ।।

समीक्षक— अब देखिये ! ईसाइयोंका ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी और मूसासे कैसा प्रपञ्च रचके आप स्वयं ईश्वर बन गया जो पीछा देखेगा रूप न देखेगा तो हाथसे उसको ढांप दिया भी न होगा जब खुदाने अपने हाथसे मूसाको ढांपा होगा तब क्या उसके हाथका रूप उसने न देखा होगा ? ।। ४७ ।।

लय व्यवस्थाकी पुस्तक तौ० ।

४८—और परमेश्वरने मूसाको बुलाया और मण्डलीके तम्बूमेंसे यह वचन उसे कहा कि ।। इसराएलके सन्तानमें बोल और उन्हें कह यदि कोई तुममें से परमेश्वरके लिये भेंट लावे तो तुम ढोरमें से अर्थात् गाय बैल और भेड़ बकरीमें से अपनी भेंट लाओ ।। तौ० लय व्यवस्थाकी पुस्तक प० १ आ० १ । २ ।।

समीक्षक—अब विचारिये ! ईसाइयोंका परमेश्वर गाय बैल आदिकी भेंट लेनेवाला जो कि अपने लिये बलिदान करानेके लिये उपदेश करता है वह बैल गाय आदि पशुओंके लोहू मांसका भूखा प्यासा है वा नहीं ? इसीसे वह अहिंसक और ईश्वर कोटिमें गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी प्रपंची मनुष्यके सदृश है ।।४८।।

४९—और वह उस बैलको परमेश्वरके आगे बलि करे और हारूनके बेटे याजक लोहूको निकट लावे और लोहूको यज्ञवेदीके चारों ओर जो मण्डलीके तम्बूके द्वार पर है छिड़कें ।। तब वह उस भेटके बलिदानकी खाल निकाले और उसे टुकड़ा २ करे ।। और हारूनके बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खे और उस पर लकड़ी चुनें ।। और हारूनके बेटे याजक उसके टुकड़ोंको और शिर और चिकनाईको उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदीकी आग पर हैं विधिसे धरें ।। जिसते

बलिदानकी भेट होवे जो आगसे परमेश्वरके सुगन्धके लिये भेट किया गया॥ तौ० लयव्यवस्थाकी पुस्तक प०१ आ० ५। ६। ७। ८। ९॥

समीक्षक—तनिक विचारिये! कि बैलको परमेश्वरके आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहूको चारों ओर छिड़कें, अग्निमें होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला यह कसाईके घरसे कुछ कमती लीला है? इसीसे न बाइबल ईश्वर कृत और न वह जङ्गली मनुष्यके सदृश लीलाधारी ईश्वर हो सकता है॥ ४९॥

५०—फिर परमेश्वर मूसासे यह कहके बोला यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगोंके पापके समान पाप करे तो वह अपने पाप के कारण जो उसने किया है अपने पापकी भेटके लिये निसखोट एक बछिया परमेश्वरके लिये लावे॥ और बछियाके शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछियाको परमेश्वरके आगे बली करे॥ लयव्यवस्था तौ० प० ४। आ० १। ३। ४॥

समीक्षक—अब देखिये! पापोंके छुड़ानेके प्रायश्चित्त, स्वयं पाप करे गाय आदि उत्तम पशुओंकी हत्याकरे और परमेश्वर करवावे धन्य हैं ईसाई लोग कि ऐसी बातोंके करने हारेको भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदिकी आशा करते हैं!!!॥ ५०॥

५१—जब कोई अध्यक्ष पाप करे॥ तब वह बकरीका निसखोट नर मेम्ना अपनी भेटके लिये लावे॥ और उसे परमेश्वरके आगे बली करे यह पापकी भेट है॥ तौ० लय प० ४। आ० २२। २३। २४॥

समीक्षक—वाहजी! वाह!! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करनेसे क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्तके बदलेमें गाय, बछिया, बकरे आदिके प्राण लेवें, तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षीके प्राण लेने में शंकित नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जङ्गली मतको छोड़के सुसभ्य धर्ममय वेदमतको स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो॥५१॥

५२—और यदि उसे भेड़ लानेकी पूंजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराधके लिये दो पिंडुकियां और कपोतके दो बच्चे परमेश्वरके लिये लावे॥ और उसका शिर उसके गलेके पाससे मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे। उसके किये हुए पापका प्रायश्चित्त करे और उसकेलिये क्षमा किया जायगा पर यदि उसे दो पिंडुकियां और कपोतके दो बच्चे लानेकी पूंजी न हो तो सेर भर चोखा पिसानका दशवां हिस्सा पापकी भेटके लिये लावे * उस पर तेल न डाले॥ और वह क्षमा किया जायगा॥ तौ० लै प० ५ आ० ७। ८। १०। ११। १२। १३॥

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयोंमें पाप करनेसे कोई धनाढ्य भी न डरता होगा और न दरिद्र क्योंकि इनके ईश्वरने पापोंका प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है, एक यह बात ईसाइयोंकी बाइबलमें बड़ी अद्भुत है कि विना कष्ट किये पापसे पाप छूट जाय क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवोंकी हिंसा की और खूब आनन्दसे मांस

---

* इस ईश्वरको धन्य है! कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरीका बच्चा, कपोत और पिसान [आटे] तक लेनेका नियम किया। अद्भुत बात तो यह है कि कपोतके बच्चे "गरदन मरोरवाके" लेता था अर्थात् गर्दन तोड़नेका परिश्रम न करना पड़े इन सब बातोंके देखनेसे विदित होता है कि जंगलियोंमें कोई चतुर पुरुष था वह पहाड़ पर जा बैठा और अपनेको ईश्वर प्रसिद्ध किया, जो जंगली अज्ञानी थे उन्होंने उसीको ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियोंसे वह पहाड़ पर ही खानेके लिये पशु पक्षी और अन्नादि मंगा लिया करता था और मौज करता था। उसके दूत फरिश्ते काम किया करते थे। सज्जन लोग विचारें कि कहां तो बाइबलमें बछड़ा, भेड़ी, बकरीका बच्चा, कपोत और "अच्छे" पिसानका खानेवाला ईश्वर और कहां सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर?।

खाया और पाप भी छूट गया, भला कपोतके बच्चेका गला मरोड़नेसे वह बहुत देर तक तड़फता होगा तब भी ईसाइयोंको दया नहीं आती। दया क्योंकर आवे इनके ईश्वरका उपदेश ही हिंसा करनेका है और जब सब पापोंका ऐसा प्रायश्चित है तो ईसाके विश्वाससे पाप छूट जाता है यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं॥ ५२॥

५३—सो उसी बलिदानकी खाल उसी याजककी होगी जिसने उसे चढ़ाया और समस्त भोजनकी भेट जो तन्दूरमें पकाई जावे और सब जो कड़ाहीमें अथवा तवे पर सो उसी याजककी होगी॥ तौ० लय प० ७। आ० ८। ९॥

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवीके भोपे और मन्दिरोंके पुजारियोंकी पोपलीला विचित्र है परन्तु ईसाइयोंके ईश्वर और उनके पुजारियोंकी पोपलीला उससे सहस्रगुणा बढ़कर है क्योंकि चामके दाम और भोजनके पदार्थ खानेको आवें फिर ईसाइयोंने खूब मौज उड़ाई होगी और अब भी उड़ाते होगे? भला कोई मनुष्य एक लड़केको मरवावे और दूसरे लड़केको उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है? वैसे ही ईश्वरके सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता, इसीसे यह बाइबल ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके माननेवाले धर्मज्ञ कभी नहीं हो सकते, ऐसी ही सब बातें लयव्यवस्था आदि पुस्तकोंमें भरी हैं कहांतक गिनावें॥ ५३॥

गिनतीकी पुस्तक।

५४—सो गदहीने परमेश्वरके दूतको अपने हाथमें तलवार खैंचे हुये मार्गमें खड़ा देखा तब गदही मार्गसे अलग खेतमें फिरगई, उसे मार्गमें फिरनेके लिये बलआमने गदहीको लाठीसे मारा॥ तब परमेश्वरने गदहीका मुंह खोला और उसने बलआमसे कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन बार मारा॥ तौ० गि० प०

२२ । आ० २३ । २८ ॥

समीक्षक—प्रथम तो गदहे तक ईश्वरके दूतोंको देखते थे और आजकल विशेष पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्योंको भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं ? यदि हैं तो क्या बड़ी नींदमें सोते हैं ? वा रोगी अथवा अन्य भूगोलमें चले गये ? वा किसी अन्य धन्धेमें लग गये वा अब ईसाइयोंसे रुष्ट होगये ? अथवा मर गये ? विदित नहीं होता कि क्या हुआ अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते तो तब भी नहीं थे और न दीखते होंगे किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं ॥ ५४ ॥

समुएलकी दूसरी पुस्तक ।

५५—और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वरका वचन यह कह के नातनको पहुंचा । कि जा और मेरे सेवक दाऊदसे कह कि परमेश्वर यों कहता है मेरे निवासके लिये तू एक घर बनावेगा क्यों जबसे इसरायलके सन्तानको मिश्रसे निकाल लाया मैंने तो आजके दिनलों घरमें वास न किया परन्तु तम्बूमें और डेरेमें फिरा किया ॥ तौ० समुएलकी दूसरी पु० प० ७ । आ० ४ । ५ । ६ ॥

समीक्षक—अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयोंका ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है । और उलहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया इधर उधर डोलता फिरा तो अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं, क्यों ईसाइयोंको ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तकको माननेमें लज्जा नहीं आती ? परन्तु क्या करें विचारे फँस ही गये अब निकलनेके लिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है ॥ ५५ ॥

राजाओंका पुस्तक ।

५६—और बाबुलके राजा नबूखुद्नजरके राज्यके उन्नीसवें वर्ष के पांचवें मास सातवीं तिथिमें बाबुलके राजाका एक सेवक नबूस

अद्दान जो निज सेनाका प्रधान अध्यक्ष था यरूसलममें आया और उसने परमेश्वरका मन्दिर और राजाका भवन और यरूसलमके सारे घर और हरएक बड़े घरको जला दिया और कसदियोंकी सारी सेनाने जो उस निज सेनाके अध्यक्षके साथ थी यरूसलमकी भीतोंको चारों ओरसे ढादिया ॥ तौ० रा० प० २५। आ० ८। ९। १०॥

समीक्षक—क्या किया जाय ईसाइयोंके ईश्वरने तो अपने आरामके लिये दाऊद आदिसे घर बनवाया था उसमें आराम करता होगा, परन्तु नबूसर अद्दानने ईश्वरके घरको नष्ट भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतोंकी सेना कुछ भी न करसकी प्रथम तो इनका ईश्वर बड़ी लड़ाइयां मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला तुड़वा बैठा न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा ? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये ? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वरका पराक्रम भी न जाने कहां उड़ गया ? यदि यह बात सच्ची हो तो जो २ विजयकी बातें प्रथम लिखीं सो २ सब व्यर्थ ही गईं क्या मिस्रके लड़के लड़कियोंके मारनेमें ही शूरवीर बना था अब शूरवीरोंके सामने चुपचाप हो बैठा ? यह तो ईसाइयोंके ईश्वरने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा कराली ऐसे ही हजारों इस पुस्तकमें निकम्मी कहानियां भरी हैं॥ ५६ ॥

ज़बूर दूसरा भाग

कालके समाचारकी पहिली पुस्तक।

५७—सो परमेश्वर मेरे ईश्वरने इसराएल पर मरी भेजी और इसराएलमेंसे सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये ॥ काल० दू० २। प० २१। आ० १४॥

समीक्षक—अब देखिये ! इसराएलके ईसाइयोंके ईश्वरकी लीला जिस इसराएल कुलको बहुतसे वर दिये थे और रात दिन जिनके पालनमें डोलता था अब झट क्रोधित होकर मरी डालके सत्तर सहस्र

मनुष्योंको मारडाला जो यह किसी कविने लिखा है सत्य है कि:—

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥ १॥

जैसे कोई मनुष्य क्षणमें प्रसन्न, क्षणमें अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण २ में प्रसन्न अप्रसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है वैसी लीला ईसाइयोंके ईश्वरकी है॥ ५७॥

ऐयूबकी पुस्तक।

५८—और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वरके आगे ईश्वरके पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्यमें परमेश्वरके आगे आ खड़ा हुआ। और परमेश्वरने शैतानसे कहा कि तू कहांसे आता है तब शैतानने उत्तर देके परमेश्वरसे कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर उधरसे फिरते चला आता हूं। तब परमेश्वरने शैतानसे पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूबको जांचा है कि उसके समान पृथिवीमें कोई नहीं है वह सिद्ध और खरा जन ईश्वरसे डरता और पापसे अलग रहता है और अबलों अपनी सच्चाईको धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करनेको उभारा है। तब शैतानने उत्तर देके परमेश्वरसे कहा कि चामके लिये चाम हां जो मनुष्यका है सो अपने प्राणके लिये देगा। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ मांसको छू तब वह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा तब परमेश्वरने शैतानसे कहा कि देख, वह तेरे हाथमें है केवल उसके प्राणको बचा। तब शैतान परमेश्वरके आगेसे चला गया और ऐयूबको शिरसे तलवेलों बुरे फोड़ोंसे मारा॥ जबूर ऐयू० प० । २ आ० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसाइयोंके ईश्वरका सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तोंको दुःख देता है, न शैतानको दण्ड, न

अपने भक्तोंको बचा सकता है और न दूतोंमेंसे कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतानने सबको भयभीत कर रक्खा है और ईसाइयोंका ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है जो सर्वज्ञ होता तो येयूबकी परीक्षा शैतानसे क्यों कराता ? ॥ ५८ ॥

उपदेशकी पुस्तक।

५६—हां मेरे अन्तःकरणने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने बुद्धि और बौहापन और मूढ़ता जाननेको मन लगाया मैंने जान लिया कि यह भी मनका झूंझट है। क्योंकि अधिक बुद्धिमें बड़ा शोक है और जो ज्ञानमें बढ़ता है सो दुःखमें बढ़ता है॥ ज० उ० प० १। आ० १६। १७। १८॥

समीक्षक—अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं इनको दो मानते हैं और बुद्धि वृद्धिमें शोक और दुःख मानना विना अविद्वानोंके ऐसा लेख कौन कर सकता है ? इसलिये यह बाइबल ईश्वरकी बनाई तो क्या किसी विद्वान्‌की भी बनाई नहीं है॥ ५६ ॥

यह थोड़ासा तौरेत जबूरके विषयमें लिखा, इसके आगे कुछ मत्तीरचित आदि इञ्जीलके विषयमें लिखा जाता है कि जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं जिसका नाम इञ्जील रक्खा है उसकी परीक्षा थोड़ीसी लिखते हैं कि यह कैसी है।

मत्तीरचित इञ्जील।

६०—यीशुख्रीष्टका जन्म इस रीतिसे हुआ उसकी माता मरियमकी यूसफसे मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठा होनेके पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मासे गर्भवती है देखो परमेश्वरके एक दूतने स्वप्नमें उसे दर्शन दे कहा, हे दाऊदके सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियमको वहां लानेसे मत डर क्योंकि जो गर्भ रहा सो पवित्र आत्मासे है॥ इं० प० १। आ० १८। २०॥

समीक्षक—इन बातोंको कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो

प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रमसे विरुद्ध हैं इन बातोंको मानना मूर्ख मनुष्य जङ्गलियोंका काम है सभ्य विद्वानोंका नहीं, भला जो परमेश्वरका नियम है उसको कोई तोड़ सकता है ? जो परमेश्वर भी नियमको उलटा पलटा करे तो उसकी आज्ञाको कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है, ऐसे तो जिस २ कुमारिकाके गर्भ रहजाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भका रहना ईश्वरकी ओरसे है और झूठ मूठ कहदे कि परमेश्वरके दूतने मुझको स्वप्नमें कह दिया है कि यह गर्भ परमात्माकी ओरसे है, जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्यसे कुन्तीका गर्भवती होना भी पुराणोंमें असम्भव लिखा है, ऐसी २ बातोंको आंखके अन्धे गांठके पूरे लोग मानकर भ्रमजालमें गिरते हैं यह ऐसी बात हुई होगी किसी पुरुषके साथ समागम होनेसे गर्भवती मरियम हुई होगी, उसने वा किसी दूसरेने ऐसी असम्भव बात उड़ादी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वरकी ओरसे है ॥ ६० ॥

६१—तब आत्मा यीशुको जङ्गलमें ले गया कि शैतानसे उसकी परीक्षा कीजाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ तब परीक्षा करनेहारेने कहा कि जो तू ईश्वरका पुत्र है तो कहदे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें ॥ इं० प० ४ । आ० १ । २ । ३ ॥

समीक्षक—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतानसे क्यों कराता स्वयं जान लेता भला किसी ईसाईको आजकल चालीस रात चालीस दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा ? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वरका बेटा और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी नहीं तो शैतानके सामने पत्थरकी रोटियां क्यों न बना देता ? और आप भूखा क्यों रहता ? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वरने पत्थर बनाये हैं उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता

और ईश्वर भी पूर्वकृत नियमको उलटा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम विना भूल चूकके हैं ॥ ६१ ॥

६२—उसने उनसे कहा मेरे पीछे आओ मैं तुमको मनुष्योंके मछुवे बनाऊंगा वे तुरन्त जालोंको छोड़के उसके पीछे होलिये ॥ इं० प० ४। आ० १९। २०। २१।

समीक्षक—विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेतमें दश आज्ञाओंमें लिखा है कि (सन्तान लोग अपने माता पिताकी सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े सो) ईसाने न अपने माता पिताकी सेवाकी और दूसरेको भी माता पिताकी सेवासे छुड़ाये इसी अपराधसे चिरञ्जीवी न रहा और यह भी विदित हुआ कि ईसाने मनुष्योंके फँसानेके लिये एक मत चलाया है कि जालमें मच्छीके समान मनुष्योंको स्वमतमें फँसाकर अपना प्रयोजन साधे जब ईसा ही ऐसा था तो आजकलके पादरी लोग अपने जालमें मनुष्योंको फँसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी बड़ी और बहुत मच्छियोंको जालमें फँसानेवालेकीप्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है ऐसे ही जो बहुतोंको अपने मतमें फँसाले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसीसे ये लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रको न पढ़ा न सुना उन विचारे भोले मनुष्योंको अपने जालमें फँसाके उसके मा बाप कुटुम्ब आदिसे पृथक् कर देते हैं इससे सब बिद्वान आर्य्योंको उचित है कि स्वयं इनके भ्रमजालसे बचकर अन्य अपने भोले भाइयोंके बचानेमें तत्पर रहें ॥ ६२ ॥

६३—तब यीशु सारे गालील देशमें उनकी सभाओंमें उपदेश करता हुआ और राज्यकी सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगोंमें हरएक रोग और हर व्याधिको चङ्गा करता हुआ फिरा किया। सब रोगियोंको जो नानाप्रकारके रोगों और पीड़ाओंसे दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगीवाले और अर्द्धाङ्गियोंको उस पास लाये और उसने चङ्गा किया॥ इं० म० प० ४ आ० २३।२४।२५॥

समीक्षक—जैसे आजकल पोपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद बीज और भस्मकी चुटकी देनेसे भूतोंको निकालना रोगोंको छुड़ाना सच्चा हो तो वह इंजीलकी बात भी सच्ची होवे इस कारण भोले मनुष्योंको भ्रममें फँसानेके लिये ये बातें हैं जो ईसाई लोग ईसाकी बातोंको मानते हैं तो यहांके देवी भोपोंकी बातें क्यों नहीं मानते ? क्योंकि वे बातें इन्हींके सदृश हैं ॥ ६३ ॥

६४—धन्य वे जो मनमें दीन हैं क्योंकि स्वर्गका राज्य उन्हींका है। क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूं कि जबलों आकाश और पृथिवी टल न जायें तबलों व्यवस्थासे एक मात्रा अथवा एक विन्दु विना पूरा हुए नहीं टलेगा। इसलिये इन अति छोटी आज्ञाओंमेंसे एकको लोप करे और लोगोंको वैसे ही सिखावे वह स्वर्गके राज्यमें सबसे छोटा कहावेगा॥ इं० मत्ती० प० ५। आ० ३। ४। १८। १९॥

समीक्षक—जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिए इसलिये जितने दीन हैं वे सब स्वर्गको जावेंगे तो स्वर्गमें राज्यका अधिकार किसको होगा अर्थात् परस्पर लड़ाई भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड बण्ड हो जायगी और दीनके कहनेसे जो कंगले लोगे तब तो ठीक नहीं, जो निरभिमानी लोगे तो भी ठीक नहीं, क्योंकि दीन और अभिमानका एकार्थ नहीं किन्तु जो मनमें दीन होता है उसको सन्तोष कभी नहीं होता इसलिए यह बात ठीक नहीं। जब आकाश पृथिवी टलजायें तब व्यवस्था भी टल जायगी ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्योंकी होती है सर्वज्ञ ईश्वरकी नहीं और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओंको न मानेगा वह स्वर्गमें सबसे छोटा गिना जायगा॥ ६४॥

६५—हमारी दिन भरकी रोटी आज हमें दे। अपने लिये पृथिवी पर धनका संचय मत करो॥ इं० म० प० ६। आ० ११। १९॥

समीक्षक—इससे विदित होता है कि जिस समय ईसाका जन्म हुआ है उस समय लोग जङ्गली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही

दरिद्र था इसीसे तो दिन भरकी रोटीकी प्राप्तिके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं उनको चाहिये कि ईसाके वचनसे विरुद्ध न चलकर सब दान पुण्य करके दीन होजायें ॥ ६५ ॥

६६—हरएक जो मुझसे हे प्रभु २ कहता है स्वर्गके राज्यमें प्रवेश नहीं करेगा ॥ इं० म० प० ७। आ० २१ ॥

समीक्षक—अब विचारिये बड़े २ पादरी विशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसाका वचन सत्य है ऐसा समझें तो ईसाको प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें. यदि इस बातको न मानेंगे तो पापसे कभी नहीं बच सकेंगे ॥ ६६ ॥

६७—उस दिनमें बहुतेरे मुझसे कहेंगे तब मैं उनसे खोलके कहूंगा मैंने तुमको कभी नहीं जाना है कुकर्म्म करनेहारे मुझसे दूर होओ ॥ इं० म० प० ७। आ० २२। २३ ॥

समीक्षक—देखिये ईसा जङ्गली मनुष्योंको विश्वास करानेके लिये स्वर्गमें न्यायाधीश बनना चाहता था, यह केवल भोले मनुष्योंको प्रलोभन देनेकी बात है ॥ ६७ ॥

६८—और देखो एक कोढ़ीने आ उसको प्रणाम कर कहा हे प्रभु ! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं, यीशुने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा मैं तो चाहता हूं शुद्ध होजा और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध होगया ॥ इं० म० प० ८। आ० २। ३ ॥

समीक्षक—ये सब बातें भोले मनुष्योंके फँसानेकी हैं क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या, सृष्टिक्रमविरुद्ध बातोंको सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदिकी बातें जो पुराण और भारतमें अनेक दैत्योंकी मरी हुई सेनाको जिला दी. बृहस्पतिके पुत्र कचको टुकड़ा २ कर जानवर और मच्छियोंको खिला दिया फिर भी शुक्राचार्य्यने जीता कर दिया पश्चात् कचको मारकर शुक्राचार्य्यको खिला दिया फिर भी उसको पेटमें जीता कर बाहर निकाला, आप मरगया

उसको कचने जीता किया, कश्यप ऋषिने मनुष्यसहित वृक्षको तक्षकसे भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्यको जिला दिया धन्वन्तरिने लाखों मुर्दे जिलाये, लाखों कोढ़ी आदि रोगियोंको चङ्गा किया, लाखों अन्धे और बहिरोंको आंख और कान दिये इत्यादि कथाको मिथ्या क्यों कहते हैं ? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसाकी बात मिथ्या क्यों नहीं जो दूसरेकी बातको मिथ्या और अपनी झूठीको सच्ची कहते हैं तो हठी क्यों नहीं ? इसलिए ईसाइयोंकी बातें केवल हठ और लड़कोंके समान हैं ॥ ६८ ॥

६९—तब भूतग्रस्त मनुष्य कबरस्थानमेंसे निकल उससे आमिले जो यहांलों अतिप्रचंड थे कि उस मार्गसे कोई नहीं जासकता था और देखो उन्होंने चिल्लाके कहा हे यीशु ईश्वरके पुत्र ! आपको हमसे क्या काम क्या आप समयके आगे हमें पीड़ा देनेको यहां आये हैं सो भूतोंने उससे विनती कर कहा जो आप हमको निकालते हैं तो सूअरोंके झुण्डमें पैठने दीजिये उसने उनसे कहा जाओ और वे निकलके सूअरोंके झुण्डमें पैठे और देखो सूअरोंका सारा झुण्ड कड़ाड़े परसे समुद्रमें दौड़ गया और पानीमें डूब मरा ॥ इ० म० प० ८। आ०२८ २९। ३०। ३१। ३२। ३३ ॥

समीक्षक—भला यहां तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठ हैं क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थानसे कभी नहीं निकल सकता है किसी पर न जाते न संवाद करते हैं ये सब बातें अज्ञानी लोगोंकी हैं जो कि महाजङ्गली हैं वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं और उन सूअरोंकी हत्या कराई, सूअरवालोंकी हानि करनेका पाप ईसाको हुआ होगा और ईसाई लोग ईसाको पापक्षमा और पवित्र करनेवाला मानते हैं तो उन भूतोंको पवित्र क्यों न कर सका ? और सूअरवालोंकी हानि क्यों न भरदी ? क्या आजकलके सुशिक्षित ईसाई अंगरेज लोग इन गपोड़ोंको भी मानते होंगे ? यदि मानते हैं तो भ्रमजालमें पड़े हैं ॥ ६९ ॥

७०—देखो लोग एक अर्धाङ्गीको जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीशुने उनका विश्वास देखके उस अर्धाङ्ग से कहा हे पुत्र! ढाढस कर तेरे पाप क्षमा किये गये हैं मैं धर्मियोंको नहीं परन्तु पापियोंको पश्चात्तापके लिये बुलाने आया हूं॥ इं० म० प० ६। आ० २। १३॥

समीक्षक—यह भी बात वैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करनेकी बात है वह केवल भोले लोगोंको प्रलोभन देकर फँसाना है। जैसे दूसरेके पीये मद्य भांग और अफीम खायेका नशा दूसरेको नहीं प्राप्त हो सकता वैसे ही किसीका किया हुआ पाप किसीके पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वरका न्याय है, यदि दूसरेका किया पाप पुण्य दूसरेको प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे वा कर्त्ताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी होजावे, देखो धर्म ही कल्याणकारक है ईसा वा अन्य कोई नहीं और धर्मात्माओंके लिये ईसा आदिकी कुछ आवश्यकता भी नहीं और न पापियोंके लिये, क्योंकि पाप किसीका नहीं छूट सकता॥ ७०॥

७१—यीशुने अपने १२ शिष्योंको अपने पास बुलाके उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हरएक रोग और हर व्याधिको चङ्गा करें। बोलनेहारे तो तुम नहीं हो परन्तु तुम्हारे पिताका आत्मा तुममें बोलता है। मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवानेको नहीं, परन्तु खड्ग चलवानेको आया हूं। मैं मनुष्यको उसके पितासे और बेटीको उसकी मासे और पतोहूको उसकी साससे अलग करने आया हूं। मनुष्यके घरहीके लोग उसके बैरी होंगे॥ इं० म० प० १०। आ० १३। ३४। ३५। ३६॥

समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं जिनमेंसे एक ३०) (तीस) रु० के लोभ पर ईसाको पकड़ावेगा और अन्य बदल कर अलग २ भागेंगे, भला ये बातें जब विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूतोंका आना वा निका-

छना, विना ओषधि वा पथ्यके व्याधियोंका छूटना सृष्टिक्रमसे असम्भव है इसलिये ऐसी २ बातोंका मानना अज्ञानियोंका काम है, यदि जीव बोलनेहारे नहीं ईश्वर बोलनेहारा है तो जीव क्या काम करते हैं? और सत्य वा मिथ्याभाषणके फल सुख वा दुःखको ईश्वर ही भोगता होगा यह भी एक मिथ्या बात है। और जैसा ईसा फूट कराने और लड़ानेको आया था वही आजकल कलह लोगोंमें चल रहा है, यह कैसी बुरी बात है कि फूट करानेसे सर्वथा मनुष्योंको दुःख होता है और ईसाइयोंने इसीको गुरुमन्त्र समझ लिया होगा क्योंकि एक दूसरेकी फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो यह क्यों नहीं मानते होंगे? यह ईसा ही का काम होगा कि घरके लोगोंके शत्रु घरके लोगोंको बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुषका काम नहीं ॥ ७१ ॥

७२—तब यीशुने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियां तब उसने लोगोंको भूमि पर बैठनेकी आज्ञा दी तब उसने उन सात रोटियोंको और मछलियोंको धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्योंको दिया और शिष्योंने लोगोंको दिया सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकोंको छोड़ चार सहस्र पुरुष थे ॥ इं० म० प० १५। आ० ३४। ३५। ३६। ३७। ३८। ३९ ॥

समीक्षक—अब देखिये! क्या यह आजकलके झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदिके समान छलकी बात नहीं है? उन रोटियोंमें अन्य रोटियां कहांसे आगईं? यदि ईसामें ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलरके फल खानेको क्यों भटका करता था, अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदिसे मोहनभोग रोटियां क्यों न बनालीं? ये सब बातें लड़कोंके खेलपनकी हैं जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छलकी बातें करके भोले मनुष्योंको ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं ॥ ७२ ॥

७३—और तब वह हरएक मनुष्यको उसके कार्य्यके अनुसार फल देगा ॥ इं० म० प० १६। आ० २७ ॥

समीक्षक—जब कर्मानुसार फल दिया जायगा तो ईसाइयोंका पाप क्षमा होनेका उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह झूठा होवे, यदि कोई कहे कि क्षमा करनेके योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करनेके योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं क्योंकि सब कर्मोंका फल यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी दया होती है ॥ ७३ ॥

७४—हे अविश्वासी और हठीले लोगो! मैं तुमसे सत्य कहता हूं यदि तुमको राईके एक दानेके तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहाड़से जो कहोगे कि यहांसे वहां चला जाय वह चला जयगा और कोई काम तुमसे असाध्य नहीं होगा॥ इं० म० प० १७। आ० १७। ३०॥

समीक्षक—अब जो ईसाईलोग उपदेश करते फिरते हैं कि "आओ हमारे मतमें पाप क्षमा कराओ मुक्ति पाओ" आदि वह सब मिथ्या बातें हैं। क्योंकि जो ईसामें पाप छुड़ाने, विश्वास जमाने और पवित्र करनेका सामर्थ्य होता तो अपने शिष्योंके आत्माओंको निष्पाप विश्वासी पवित्र क्यों न कर देता? जो ईसाके साथ २ घूमते थे जब उन्हींको शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहां है? इस समय किसीको पवित्र नहीं कर सकेगा, जब ईसाके चेले राईभर विश्वाससे रहित थे और उन्हींने यह इञ्जील पुस्तक बनाई है तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि जो अविश्वासी अपवित्रात्मा अधर्मी मनुष्योंका लेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याणकी इच्छा करने वाले मनुष्योंका काम नहीं और इसीसे यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसाका वचन सच्चा है तो किसी ईसाईमें एक राईके दानेके समान विश्वास अर्थात् ईमान नहीं है जो कोई कहे कि हममें पूरा वा थोड़ा विश्वास है तो उससे कहना कि आप इस पहाड़को मार्गमेंसे हटा देवें यदि उनके हटानेसे हटजाय तो भी पूरा विश्वास नहीं किन्तु एक राईके दानेके बराबर है और जो

न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास, ईमान अर्थात् धर्मका ईसाइयोंमें नहीं है यदि कोई कहे कि यहां अभिमान आदि दोषोंका नाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तोंको चङ्गा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तोंको बोध करके सचेत कुशल किया होगा जो ऐसा मानें तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो स्वशिष्योंको ऐसा क्यों न कर सकता? इसलिये असम्भव बात कहना ईसाकी अज्ञानताका प्रकाश करता है भला जो कुछ भी ईसामें विद्या होती तो ऐसी अटाटूट जङ्गलीपनकी बातें क्यों कह देता? तथापि (निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते) जैसे जिस देशमें कोई भी वृक्ष न हो तो उस देशमें एरण्डका वृक्ष ही सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजङ्गली अविद्वानोंके देशमें ईसाका भी होना ठीक था पर आजकल ईसाकी क्या गणना हो सकती है? ॥ ७४ ॥

७५—मैं तुम्हें सच कहता हूं जो तुम मन न फिराओ और बालकोंके समान न होजाओ तो स्वर्गके राज्यमें प्रवेश करने पाओगे॥ इं० म० प० १८। आ० ३॥

समीक्षक—जब अपनी ही इच्छासे मनका फिराना स्वर्गका कारण और न फिराना नरकका कारण है तो कोई किसीका पाप पुण्य कभी नहीं ले सकता ऐसा सिद्ध होता है और बालकके समान होनेके लेखसे यह विदित होता है कि ईसाकी बातें विद्या और सृष्टिक्रमसे बहुतसी विरुद्ध थीं और यह भी उसके मनमें था कि लोग मेरी बातोंको बालकके समान मानलें, पूछें गाछें कुछ भी नहीं, आंख मीचके मान लेवें बहुतसे ईसाईयोंकी बालबुद्धिवत् चेष्टा है नहीं तो ऐसी युक्ति विद्यासे विरुद्ध बातें क्यों मानते? और यह भी सिद्ध हुआ जो ईसा आप विद्याहीन बालबुद्धि न होता तो अन्यको बालवत् बननेका उपदेश क्यों करता? क्योंकि जो जैसा होता है वह दूसरेको भी अपने सदृश बनाना चाहता ही है॥ ७५॥

७६—मैं तुमसे सच कहता हूं धनवानोंको स्वर्गके राज्यमें प्रवेश करना कठिन होगा फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ईश्वरके राज्यमें धनवानके प्रवेश करनेसे ऊंटका सूईके नाकेमेंसे जाना सहज है ॥ इ० म० प० १९ । आ० २३ । २४ ॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था धनवान लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे इसलिये यह लिखा होगा परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रोंमें अच्छे बुरे होते हैं जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वरका राज्य किसी एक देशमें मानता था, सर्वत्र नहीं, जब ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना केवल अविद्याकी बात है और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे? दरिद्र सब स्वर्गमें जायेंगे? भला तनिकसा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्योंके पास होती है उतनी दरिद्रोंके पास नहीं, यदि धनाढ्य लोग विवेकसे धर्ममार्गमें व्यय करें तो दरिद्र नीच गतिमें पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गतिको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ७६ ॥

७७—यीशुने उनसे कहा मैं तुमसे सच कहता हूं कि नई सृष्टिमें जब मनुष्यका पुत्र अपने ऐश्वर्यके सिंहासन पर बैठेगा तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो बारह सिंहासनों पर बैठके इस्रायेलके बारह कुलों का न्याय करोगे जिस किसीने मेरे नामके लिये घरों वा भाइयों वा बहिनों वा पिता माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमिको त्यागा है सो सौ गुणा पावेगा और अनन्त जीवनका अधिकारी होगा ॥ इ० म० प० १९ । आ० २८ । २९ ॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसाके भीतरकी लीला कि मेरे जालसे मेरे पीछे भी लोग न निकल जायँ और जिसने ३०) रुपयेके लोभसे अपने गुरुको पकड़ मरवाया वैसे पापी भी इसके पास सिंहासन पर

बैठेंगे और इस्रायेलके कुलका पक्षपातसे न्याय ही न किया जायगा किन्तु उनके सब गुनः माफ और अन्य कुलोंका न्याय करेंगे, अनुमान होता है इसलिये ईसाई लोग ईसाइयोंका बहुत पक्षपात कर किसी गोरेने कालेको मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपातसे निरपराधी कर छोड़ देते हैं ऐसा ही ईसाके स्वर्गका भी न्याय होगा और इससे बड़ा दोष आता है क्योंकि एक सृष्टिकी आदिमें मरा और एक क़यामतकी रातके निकट मरा, एक तो आदिसे अन्त तक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरेका उसी समय न्याय हो गया यह कितना बड़ा अन्याय है और जो नरकमें जायगा सो अनन्त कालतक नरक भोगे और जो स्वर्गमें जायगा वह सदा स्वर्ग भोगेगा यह भी बड़ा अन्याय है क्योंकि अन्तवाले साधन और कर्मोंका फल अन्तवाला होना चाहिये और तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवोंका भी नहीं हो सकता इसलिये तारतम्यसे अधिक न्यून सुख दुःख वाले अनेक स्वर्ग और नरक हों तभी सुख दुःख भोग सकते हैं सो ईसाइयोंके पुस्तकमें कहीं व्यवस्था नहीं इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत वा ईसा ईश्वरका बेटा कभी नहीं हो सकता, यह बड़े अनर्थकी बात है कि कदापि किसीके मा बाप सौ सौ नहीं हो सकते किन्तु एककी एक मा और एक ही बाप होता है अनुमान है कि मुसलमानोंने जो एकको ७२ स्त्रियां बहिश्तमें मिलतीं हैं लिखा है सो यहींसे लिया होगा ॥ ७७॥

७८—भोरको जब वह्म घरको फिर जाता था तब उसको भूख लगी और मार्गमें एक गूलरका वृक्ष देखके वह उस पास आया परन्तु उसमें और कुछ न पाया केवल पत्ते और उसको कहा तुझमें फिर कभी फल न लगेंगे इस पर गूलरका पेड़ तुरन्त सूख गया ॥ इं० म० प० २१। आ० १८। १९॥

समीक्षक—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त शमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था परन्तु इस बातको देखनेसे ज्ञात होता है कि ईसा क्रोधी और ऋतुके ज्ञानरहित था और वह जंगली

मनुष्यपनके स्वभावयुक्त वर्त्तता था, भला जो वृक्ष जड़ पदार्थ है उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया, उसके शापसे तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी ओषधि डालनेसे सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं ॥ ७८ ॥

७९—उन दिनों क्लेशके पीछे तुरन्त सूर्य अँधियारा हो जायगा और चाँद अपनी ज्योति देगा तारे आकाशसे गिर पड़ेंगे और आकाशकी सेना डिग जायगी ॥ इं०म०प० २४ आ० २९ ॥

समीक्षक—वाहजी ईसा! तारोंको किस विद्यासे गिर पड़ना आपने जाना और आकाशकी सेना कौनसी है जो डिग जायगी? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि ये तारे सब भूगोल हैं क्योंकर गिरेंगे इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ईके कुलमें उत्पन्न हुआ था सदा लकड़े चीरने, छीलना काटना और जोड़ना करता रहा होगा जब तरङ्ग उठी कि मैं भी इस जङ्गली देशमें पैगम्बर हो सकूंगा बातें करने लगा, कितनी बातें उसके मुखसे अच्छी भी निकली और बहुतसी बुरी, वहांके लोग जङ्गली थे मान बैठे, जैसा आजकल यूरोप देश उन्नतियुक्त है वैसा पूर्व होता तो इसकी सिद्धाई कुछ भी न चलती अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहारके पेच और हठसे इस पोल मतको न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्गकी ओर नहीं झुकते यही इनमें न्यूनता है ॥ ७९ ॥

८०—आकाश और पृथिवी टल जायंगे परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी ॥ इं० म० प० २४ । आ० २५ ॥

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्खताकी है भला आकाश हिलकर कहां जायगा जब आकाश अतिसूक्ष्म होनेसे नेत्रसे दीखता नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है? और अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्योंका काम नहीं ॥ ८० ॥

८१—तब वह उनसे जो बाईं ओर हैं कहेगा हे स्रापित लोगो! मेरे पाससे उस अनन्त आगमें जाओ जो शैतान और उसके दूतोंके

लिये तैयारकी गई है ॥ इं० म० प० २५ । आ० ४१ ॥

समीक्षक—भला यह कितनी बड़ी पक्षपातकी बात है जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं उनको अनन्त आगमें गिराना परन्तु जब आकाश ही न रहेगा तो अनन्त आग नरक बहिश्त कहां रहेगी ? जो शैतान और उसके दूतोंको ईश्वर न बनाता तो इतनी नरककी तैयारी क्यों करनी पड़ती ? और एक शैतान ही ईश्वरके भयसे न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है क्योंकि उसीका दूत होकर बागी होगया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़कर बन्दीगृहमें न डाल सका न मार सका पुनः उसकी ईश्वरता क्या जिसने ईसाको भी चालीस दिन दुःख दिया ? ईसा भी उसका कुछ न कर सका तो ईश्वरका बेटा होना व्यर्थ हुआ इसलिये ईसा ईश्वरका न बेटा और न बाइबलका ईश्वर, ईश्वर हो सकता है ॥ ८१ ॥

८२—तब बारह शिष्योंमेंसे एक यहूदाह इसकरियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकोंके पास गया और कहा जो मैं यीशुको आप लोगोंके हाथ पकड़वाऊं तो आप लोग मुझे क्या देंगे उन्होंने उसे तीस रुपये देनेको ठहराया ॥ इं० म० प० २६ । आ० १४ । १५ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाकी सब करामात और ईश्वरता यहां खुल गई क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था वह भी उसके साक्षात् संगसे पवित्रात्मा न हुआ तो औरोंको वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसेमें कितने ठगाये जाते हैं क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्धमें शिष्यका कुछ कल्याण न किया वह मरे पीछे किसीका कल्याण क्या कर सकेगा ॥ ८२ ॥

८३—जब वे खाते थे तब यीशुने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़के शिष्योंको दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है और उसने कटोरा लेके धन्यवाद माना और उसको देके कहा तुम इससे पीयो क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियमका है ॥ इं० म० प० २६ । आ० २६ । २७ । २८ ॥

समीक्षक—भला यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा विना अविद्वान् जंगली मनुष्यके, शिष्योंसे खानेकी चीजको अपने मांस और पीनेकी चीजोंको लोहू नहीं कह सकता और इसी बातको आजकलके ईसाई लोग प्रभुभोजन कहते हैं अर्थात् खाने पीनेकी चीजोंमें ईसाके मांस और लोहूकी भावना कर खाते पीते हैं यह कितनी बुरी बात है? जिन्होंने अपने गुरुके मांस लोहूको भी खाने पीनेकी भावनासे न छोड़ा तो और को कैसे छोड़ सकते हैं॥ ८३॥

८४—और वह पिताको और जब दो के दोनों पुत्रोंको अपने सङ्ग लेगया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा तब उसने उनसे कहा कि मेरा मन यहां लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं और थोड़ा आगे बढ़के वह मुंहके बल गिरा और प्रार्थना की हे मेरे पिता जो होसके तो यह कटोरा मेरे पाससे टल जाय॥ इं० म० प० ३६। आ० ३७। ३८। ३९॥

समीक्षक—देखो! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वरका बेटा और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपंच ईसाने अथवा उसके चेलोंने झूठ मूठ बनाया है कि वह ईश्वरका बेटा भूत भविष्यत्का वेत्ता और पाप क्षमाका कर्त्ता है इससे समझना चाहिये यह केवल साधारण सूधा सच्चा अविद्वान् था न विद्वान, न योगी, न सिद्ध था॥ ८४॥

८५—वह बोलता ही था कि देखो यहूदाह जो बारह शिष्योंमेंसे एक था आ पहुंचा और लोगोंके प्रधान याजकों और प्राचीनोंकी ओरसे बहुत लोग खड्ग और लाठियां लिये उसके संग यीशुके पकड़वानेहारेने उन्हें यह पता दिया था जिसको मैं चूमूं उसको पकड़ो और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला हे गुरु प्रणाम और उसको चूमा। तब उन्होंने यीशु पर हाथ डालके उसे पकड़ा तब सब शिष्य उसे छोड़के भागे। अन्तमें दो झूठे साक्षी आके बोले इसने कहा कि मैं ईश्वरका मन्दिर ढा सकता हूं उसे तीन दिनमें फिर बना सकता हूं। तब महा-

याजक खड़ा हो यीशुसे कहा क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्षी देते हैं। परन्तु यीशु चुप रहा इस पर महायाजकने उससे कहा मैं तुझे जीवते ईश्वरकी क्रिया देता हूं हमसे कह तू ईश्वरका पुत्र खीष्ट है कि नहीं। यीशु उससे बोला तू तो कहचुका तब महायाजकने अपने वस्त्र फाड़के कहा यह ईश्वरकी नि दा कर चुका है अब हमें साक्षियोंका और क्या प्रयोजन देखो तुमने अभी उसके मुखसे ईश्वरकी निन्दा सुनी है। अब क्या विचार करते हो तब उन्होंने उत्तर दिया वह बधके योग्य है। तब उन्होंने उसके मुंह पर थूका और उसे घूंसे मारे औरोंने थपेड़े मारके कहा हे खीष्ट हमसे भविष्यत्‌वाणी बोल किसने मुझे मारा। पितरस बाहर अङ्गनेमें बैठा था और एक दासी उस पास आके बोली तू भी यीशु गालीलीके सङ्ग था उसने सभोंके सामने मुकरके कहा मैं नहीं जानता तू क्या कहती। जब वह बाहर डेवढ़ीमें गया तो दूसरी दासीने उसे देखके जो लोग वहां थे उनसे कहा यह भी यीशु नासरीके सङ्ग था। उसने क्रिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्यको नहीं जानता हूं तब वह धिक्कार देने और क्रिया खाने लगा कि मैं उस मनुष्यको नहीं जनता हूं॥ इं० म० प० २६। आ० ४७। ४८। ४६। ५०। ६१। ६२। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७ ६८। ६६। ७०। ७१। ७२। ७४॥

समीक्षक—अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेलेको दृढ़ विश्वास करा सके और वे चेले चाहे प्राण भी क्यों न जाते तो भी अपने गुरुको लोभसे न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी क्रिया खाते और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था जैसा तौरेतमें लिखा है कि लूतके घर पर पाहुनोंको बहुतसे मारनेको चढ़ आये थे वहां ईश्वरके दो दूत थे उन्होंने उन्हींको अन्धा कर दिया यद्यपि यह भी बात असम्भव है तथापि ईसामें तो इतना भी सामर्थ्य न था और आजकल कितना बढ़ावा उसके नाम पर ईसाइयोंने बढ़ा रक्खा है, भला ऐसी दुर्दशासे मरनेसे

आप स्वयं जूझ वा समाधि चढ़ा अथवा किसी प्रकारसे प्राण छोड़ता तो अच्छा था परन्तु वह बुद्धि विना विद्याके कहांसे उपस्थित हो ॥ वह ईसा यह भी कहता है कि ॥ ८५ ॥

८६—मैं अभी अपने पितासे विनती नहीं करता हूं और वह मेरे पास स्वर्गदूतोंकी बारह सेनाओंसे अधिक पहुंचा न देगा ॥ इं० म० प० २६ । आ० ५३ ॥

समीक्षक—धमकाता भी जाता अपनी और अपने पिताकी बड़ाई भी करता जाता पर कुछ भी नहीं कर सकता देखो आश्चर्यकी बात जब महायाजकने पूछा था कि ये लोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं इसका उत्तर दे तो ईसा चुप रहा यह भी ईसाने अच्छा न किया क्योंकि जो सच था वह वहां अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता ऐसी बहुतसी अपने घमण्डकी बातें करनी उचित न थीं और जिन्होंने ईसा पर झूठा दोष लगाकर मारा उनको भी उचित न था क्योंकि ईसाका उस प्रकारका अपराध नहीं था जैसा उसके विषयमें उन्होंने किया परन्तु वे भी तो जङ्गली थे न्यायकी बातोंको क्या समझें ? यदि ईसा झूठ मूठ ईश्वरका बेटा न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्त्तते तो दोनोंके लिये उत्तम काम था परन्तु इतनी विद्या धर्मात्मा और न्यायशीलता कहांसे लावें ? ॥ ८६ ॥

८७—यीशु अध्यक्ष आगे खड़ा हुआ और अध्यक्षने उससे पूछा क्या तू यहूदियोंका राजा है, यीशुने उससे कहा आप ही तो कहते हैं । जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उस पर दोष लगाते थे तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तब पिलातने उससे कहा क्या तू नहीं सुनता कि वे लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं । परन्तु उसने एक बातका भी उसको उत्तर न दिया यहांलों कि अध्यक्षने बहुत अचंभा किया पिलातने उनसे कहा तो मैं यीशुसे जो ख्रीष्ट कहावता है क्या करूं सभोंने उससे कहा वह क्रूश पर चढ़ाया जावे और यीशुको कोड़े मारके क्रूश पर चढ़ा जानेको सौंप दिया तब अध्यक्षके योधाओंने

यीशुको अध्यक्ष भवनमें लेजाके सारी पल्टन उस पास इकट्ठीकी और उन्होंने उसका वस्त्र उतारके उसे लाल बागा पहिराया और कांटोंका मुकुट गूंथके उसके शिर पर रक्खा और उसके दहिने हाथ पर नर्कट दिया और उसके आगे घुटने टेकके यह कहके उसे ठट्ठा किया हे यहूदियोंके राजा प्रणाम और उन्होंने उस पर थूका और उस नर्कटको ले उसके शिर पर मारा जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतारके मसीका वस्त्र पहिराके उसे क्रूश पर चढ़ानेको ले गये। जब वे एक स्थान पर जो गल गया था अर्थात् खोपड़ीका स्थान कहाता है पहुंचे तब उन्होंने सिरकेमें पित्त मिलाके उसे पीनेको दिया परन्तु उसने चीखके पीना न चाहा तब उन्होंने उसे क्रूश पर चढ़ाया और उन्होंने उसका दोषपत्र उसके शिरके ऊपर लगाया तब दो डाकू एक दहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके संग क्रूशों पर चढ़ाये गये। जो लोग उधरसे आते जाते थे उन्होंने अपने शिर हिलाके और यह कहके उसकी निंदा की हे मन्दिरके ढाहनेहारे अपनेको बचा जो तू ईश्वरका पुत्र है तो क्रूश परसे उतर आ। इसी रीतिसे प्रधान याजकोंने भी अध्यापकों और प्राचीनोंके संगियोंने ठट्ठा कर कहा उसने औरोंको बचाया अपनेको बचा नहीं सकता है जो वह इस्रायेलका राजा है तो क्रूश परसे अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है यदि ईश्वर उसको चाहता है तो उसको अब बचावे क्योंकि उसने कहा मैं ईश्वरका पुत्र हूं जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये उन्होंने भी इसी रीतिसे उसकी निन्दाकी दो प्रहरसे तीसरे प्रहरलों सारेदेशमें अन्धकार होगया तीसरे प्रहरके निकट यीशुने बड़े शब्दसे पुकारके कहा "एली एलीलामा सबक्तनी" अर्थात् हे मेरे ईश्वर हे मेरे ईश्वर तूने क्यों मुझे त्यागा है जो लोग वहां खड़े थे उनमेंसे कितनोंने यह सुनके कहा वह एलियाहको बुलाता है उनमेंसे एकने तुरन्त दौड़के इसपंज लेके सिर्केमें भिगोया और नल पर रखके उसे पीनेको दिया तब यीशुने फिर बड़े शब्दसे पुकारके प्राण त्यागा ॥

इं० म० प० २७। आ० ११। १२। १३। १४। २२। २३। २४। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३३। ३४। ३७। ३८। ३९। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०॥

समीक्षक—सर्वथा यीशुके साथ उन दुष्टोंने बुरा काम किया परन्तु यीशुका भी दोष है क्योंकि ईश्वरका न कोई पुत्र न वह किसीका बाप है क्योंकि जो वह किसीका बाप होवे तो किसीका श्वसुर श्याला सम्बन्धी आदि भी होवे और जब अध्यक्षने पूछा था तब जैसा सच था उत्तर देना था और यह ठीक है कि जो २ आश्चर्य्य कर्म्म प्रथम किये हुए सच होते तो अब भी क्रूश परसे उतर कर सबको अपने शिष्य बना लेता और जो वह ईश्वरका पुत्र होता तो ईश्वर भी उसको बचा लेता जो वह त्रिकालदर्शी होता तो सिर्केमें पित्त मिले हुएको चीखके क्यों छोड़ता वह पहिले ही से जानता होता और जो वह करामाती होता तो पुकार २ के प्राण क्यों त्यागता? इससे जानना चाहिये कि चाहे कोई कितनी ही चतुराई करे परन्तु अन्तमें सच सच और झूठ झूठ हो जाता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समयके जङ्गली मनुष्योंमें कुछ अच्छा था न वह करामाती, न ईश्वरका पुत्र और न विद्वान् था क्योंकि जो ऐसा होता तो ऐसा वह दुःख क्यों भोगता? ॥ ८७॥

८८—और देखो बड़ा भूइंडोल हुआ कि परमेश्वरका एक दूत उतरा और आके कबरके द्वार परसे पत्थर लुढ़काके उस पर बैठा। वह यहां नहीं है जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है। जब वे उसके शिष्योंको सन्देश जाती थी देखो यीशु उनसे आमिला कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़के उसको प्रणाम किया। तब यीशुने कहा मत डरो जाके मेरे भाइयोंसे कहदो कि वे गालीलको जावें और वहां वे मुझे देखेंगे ग्यारह शिष्य गालीलको उस परवत पर गये जो यीशुने उन्हें बताया था। और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया पर कितनोंको सन्देह हुआ। यीशुने उन पास आ उनसे

कहा स्वर्गमें और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझको दिया गया है! और देखो मैं जगत्के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूं ॥ इं० म० प० २८। आ० २। ६। ९। १०। १६। १७। १८। २०॥

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है, प्रथम ईश्वरके पास दूतोंका होना उनको जहां तहां भेजना ऊपरसे उतरना क्या तहसीलदारी कलेक्टरीके समान ईश्वरको बना दिया? क्या उसी शरीरसे स्वर्गको गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियोंने उनके पग पकड़के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिनलों सड़ क्यों न गया और अपने मुखसे सबका अधिकारी बनना केवल दम्भकी बात है शिष्योंसे मिलना और उनसे सब बातें करनी असम्भव हैं क्योंकि जो ये बातें सच हों तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीरसे स्वर्ग भी क्यों नहीं जाते? यह मत्तीरचित इञ्जीलका विषय हो चुका अब मार्करचित इञ्जीलके विषयमें लिखा जाता है ॥ ८८ ॥

मार्करचित इञ्जील।

८९—यह क्या बढ़ई नहीं ॥ इं० मार्क० प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—असलमें यूसफ बढ़ई था इसलिये ईसा भी बढ़ई था कितने ही वर्ष तक बढ़ईका काम करता था पश्चात् पैगम्बर बनता २ ईश्वरका बेटा ही बन गया और जङ्गली लोगोंने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट कूट फूट फाट करना उसका काम है ॥ ८९ ॥

लूकरचित इञ्जील।

९०—यीशुने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है कोई उत्तम नहीं है अर्थात् ईश्वर ॥ लू० प० १८। आ० १९॥

समीक्षक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसाइयोंने पवित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहांसे बना दिये ॥ ९० ॥

९१—तब उसे हेरोदके पास भेजा। हेरोद यीशुको देखके अति

आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिनसे देखना चाहता था इसलिये कि उसके विषयमें बहुतसी बातें सुनी थीं और उसका कुछ आश्चर्य्य कर्म्म देखनेकी उसको आशा हुई उसने उससे बहुत बातें पूछीं परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया ॥ लूक० प० २३ । आ० ८ । ९ ॥

समीक्षक—यह बात मत्तीरचितमें नहीं है इसलिये ये साक्षी बिगड़ गये । क्योंकि साक्षी एकसे होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो (हेरोदको) उत्तर देता और करामात भी दिखलाता इससे विदित होता है कि ईसामें विद्या और करामात कुछ भी न थी ॥ ६१ ॥

योहनरचित सुसमाचार

६२—आदिमें वचन था और वचन ईश्वरके संग था और वचन ईश्वर था । वह आदिमें ईश्वरके संग था । सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया है कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया । उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्योंका उजियाला था ॥ प० १ । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

समीक्षक—आदिमें वचन विना वक्ताके नहीं हो सकता और जो वचन ईश्वरके संग था तो यह कहना व्यर्थ हुआ और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदिमें ईश्वरके संग था तो पूर्व वचन वा ईश्वर था वह नहीं घट सकता, वचनके द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती जबतक उसका कारण न हो और वचनके विना भी चुपचाप रह कर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है, जीवन किसमें वा क्या था इस वचनसे जीव अनादि मानोगे, जो अनादि है तो आदमके नथुनोंमें श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उजियाला है पश्वादिका नहीं ॥ ६२ ॥

६३—और वियारीके समयमें जब शैतान शिमोनके पुत्र यिहूदा

इस्करियोतिके मनमें उसे पकड़वानेका मत डाल चुका था ॥ यो० प० १३। आ० २॥

समीक्षक—यह बात सच नहीं क्योंकि जब कोई ईसाइयोंसे पूछेगा कि शैतान सबको बहकाता है तो शैतानको कौन बहकाता है, जो कहो शैतान आपसे आप बहकता है तो मनुष्य भी आपसे आप बहक सकते हैं पुनः शैतानका क्या काम और यदि शैतानका बनाने और बहकानेवाला परमेश्वर है तो वही शैतानका शैतान ईसाइयोंका ईश्वर ठहरा परमेश्वर ही ने सबको उसके द्वारा बहकाया, भला ऐसे काम ईश्वरके हो सकते हैं ? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों-का और ईसा ईश्वरका बेटा जिन्होंने बनाये वे शैतान हों तो हों किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वरका बेटा हो सकता है ॥ ६३ ॥

६४—तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और मुझपर विश्वास करो मेरे पिताके घरमें बहुतसे रहनेके स्थान हैं नहीं तो मैं तुमसे कहता मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूं। और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं तहां तुम भी रहो। यीशुने उससे कहा मैं ही मार्ग औ सत्य औ जीवन हूं। विना मेरे द्वारासे कोई पिताके पास नहीं पहुंचता है। जो तुम मुझे जानते तो मेरे पिताको भी जानते ॥ यो० प० १४। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७॥

समीक्षक—अब देखिये ये ईसाके वचन क्या पोपलीलासे कमती हैं, जो ऐसा प्रपञ्च न रचता तो उसके मतमें कौन फँसता क्या ईसाने अपने पिताको ठेकेमें लेलिया है और जो वह ईसाके वश्य है तो परा-धीन होनेसे वह ईश्वर ही नहीं क्योंकि ईश्वर किसीकी सिफारिश नहीं सुनता, क्या ईसाके पहिले कोई भी ईश्वरको नहीं प्राप्त हुआ होगा, ऐसा स्थान आदिका प्रलोभ न देता और जो अपने मुखसे आप मार्ग सत्य और जीवन बनता है वह सब प्रकारसे दम्भी कहाता है इससे यह बात

सत्य कभी नहीं हो सकती॥ ६४॥

६५—मैं तुमसे सच २ कहता हूं जो मुझ पर विश्वास करे जो काम मैं करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम करेगा॥ यो० प० १४। आ० १२॥

समीक्षक—अब देखिये जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि काम क्यों नहीं कर सकते और जो विश्वाससे भी आश्चर्य्य काम नहीं कर सकते तो ईसाने भी आश्चर्य कर्म नहीं किये थे ऐसा निश्चित जानना चाहिये क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य्य काम करोगे तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता तो किसकी हियेकी आंख फूट गई है वह ईसाको मुर्दे जिलाने आदिका कामकर्त्ता मान लेवे॥ ६५॥

६६—जो अद्वैत सत्य ईश्वर है॥ यो० प० १७। आ० ३॥

समीक्षक—जब अद्वैत एक ईश्वर है तो ईसाइयोंका तीन कहना सर्वथा मिथ्या है॥ ६६॥

इसी प्रकार बहुत ठिकाने इञ्जीलमें अन्यथा बातें भरी हैं॥

योहनके प्रकाशित वाक्य।

अब योहनकी अद्भुत बातें सुनोः—

६७—और अपने २ शिर पर सोनेके मुकुट दिये हुए थे। और सात अग्निदीपक सिंहासनके आगे जलते थे जो ईश्वरके सातों आत्मा हैं। और सिंहासनके आगे कांचका समुद्र है और सिंहासनके आस पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रोंसे भरे हैं॥ यो० प्र० प० ४। आ० ४। ५। ६॥

समीक्षक—अब देखिये एक नगरके तुल्य ईसाइयोंका स्वर्ग है और इनका ईश्वर भी दीपकके समान अग्नि है और सोनेका मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे पीछे नेत्रोंका होना असम्भावित है इन बातोंको कौन मान सकता है? और वहां सिंहादि चार पशु लिखे हैं॥ ६७॥

९८—और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारेके दहिने हाथमें एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापोंसे उस पर छाप दी हुई थी। यह पुस्तकें खोलने और उसकी छापें तोड़नेके योग्य कौन है। और न स्वर्गमें न पृथिवी पर न पृथिवीके नीचे कोई वह पुस्तक खोलने अथवा उसे देखने सकता था। और मैं बहुत रोने लगा इसलिये कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखनेके योग्य कोई नहीं मिला॥ यो० प्र० प० ५ आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयोंके स्वर्गमें सिंहासनों और मनुष्योंका ठाठ और पुस्तक कई छापोंसे बन्ध किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला, योहनका रोना और पश्चात् एक प्राचीनने कहा कि वही ईसा खोलने वाला है, प्रयोजन यह है कि जिसका विवाह उसका गीत देखो! ईसा ही के ऊपर सब माहात्म्य झुकाये जाते हैं परन्तु वे बातें केवल कथनमात्र हैं॥९८॥

९९—और मैंने दृष्टि की और देखो सिंहासनके और चारों प्राणियोंके बीचमें और प्राचीनोंके बीचमें एक मेम्ना जैसा बध किया हुआ खड़ा है ? जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं जो सारी पृथिवीमें भेजे हुए ईश्वरके सातों आत्मा हैं॥ यो० प्र० प० ५। आ० ६॥

समीक्षक—अब देखिये! इस योहनके स्वप्नका मनोव्यापार उस स्वर्गके बीचमें सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसाके दो नेत्र थे और सींगका नाम भी न था और स्वर्गमें जाके सात सींग और सात नेत्रवाला हुआ! और वे सातों ईश्वरके आत्मा ईसाके सींग और नेत्र बन गये थे! हाय! ऐसी बातोंको ईसाइयोंने क्यों मान लिया? भला कुछ तो बुद्धि लाते॥ ९९॥

१००—और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन मेम्नेके आगे गिर पड़े और हरएकके पास बीण थी और धूपसे भरे हुए सोनेके पियाले जो पवित्र लोगोंकी प्रार्थनायें हैं॥

यो॰ प्र॰ प॰ ५। आ॰ ८॥

समीक्षक—भला जब ईसा स्वर्गमें न होगा तब ये विचारे धूप दीप नैवेद्य आर्ति आदि पूजा किसकी करते होंगे? और यहां प्रोटस्टेंट ईसाई लोग बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) को खण्डन करते हैं और इनका स्वर्ग बुतपरस्तीका घर बन रहा है॥ १००॥

१०१—और जब मेम्ने छापोंमेंसे एकको खोला तब मैंने दृष्टि की चारों प्राणियोंमेंसे एकको जैसे मेघ गर्जनेके शब्दको यह कहते सुना कि आ और देख और मैंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उस पास धनुष है और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करनेको निकला। और जब उसने दूसरी छाप खोली। दूसरा घोड़ा जो लाल था निकला उसको यह दिया गया कि पृथिवी परसे मेल उठा देवे। और जब उसने तीसरी छाप खोली देखो एक काला घोड़ा है। और जब उनसे चौथी छाप खोली और देखो एक पीलासा घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उसका नाम मृत्यु है इत्यादि॥ यो॰ प्र॰ प॰ ६। आ॰ १। २। ३। ४। ५। ७। ८॥

समीक्षक—अब देखिये यह पुराणोंसे भी अधिक मिथ्या लीला है वा नहीं? भला पुस्तकोंके बन्धनोंके छापेके भीतर घोड़ा सवार क्योंकर रह सके होंगे? यह स्वप्नेका बरड़ाना जिन्होंने इसको भी सत्य माना है। उनमें अविद्या जितनी कहें उतनी ही थोड़ी है॥१०१॥

१०२—और वे बड़े शब्दसे पुकारते थे कि हे स्वामी पवित्र और सत्य कबलों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवीके निवासियोंसे हमारे लोहूका पलटा नहीं लेता है। और हरएकको उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जबलों तुम्हारे सङ्गी दास भी और तुम्हारे भाई जो तुम्हारी नाईं बध किये जाने पर हैं पूरे न हों तबलों और थोड़ी देर विश्राम करो॥ यो॰ प्र॰ प॰ ६। आ॰ १०। ११॥

समीक्षक—जो कोई ईसाई होंगे वे दौड़े सुपुर्द होकर ऐसा न्याय

करानेके लिये रोया करेंगे, जो वेदमार्गका स्वीकार करेगा उसके न्याय होनेमें कुछ भी देर न होगी ईसाइयोंसे पूछना चाहिये क्या ईश्वरकी कचहरी आजकल बन्द है? और न्यायका काम भी नहीं होता न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं? तो कुछ भी ठीक २ उत्तर न दे सकेंगे और इनका ईश्वर बहक भी जाता है क्योंकि इनके कहनेसे झट इनके शत्रुसे पलटा लेने लगता है और दंशिले स्वभाववाले हैं कि मरे पीछे स्ववैर लिया करते हैं शान्ति कुछ भी नहीं और जहां शान्ति नहीं वहां दुःखका क्या पारावार होगा॥ १०२॥

१०३—और जैसे बड़ी बयारसे हिलाए जाने पर गूलरके वृक्षसे उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं तैसे आकाशके तारे पृथिवी पर गिर पड़े और आकाश पत्रकी नाईं जो लपेटा जाता है अलग हो गया॥ यो० प्र० प० ६। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये योहन भविष्यद्वक्ताने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड बण्ड कथा गाई, भला तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादिका आकर्षण उनको इधर उधर क्यों आने जाने देगा॥ और क्या आकाशको चटाईके समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके इसलिये योहन आदि सब जङ्गली मनुष्य थे उनको इन बातोंकी क्या खबर?॥ १०३॥

१०४—मैंने उनकी संख्या सुनी इस्राएलके सन्तानोंके समस्त कुलमेंसे एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई यिहूदाके कुलमेंसे बारह सहस्र पर छाप दी गई॥ यो० प्र० प० ७। आ० ४। ५॥

समीक्षक—क्या जो बाइबलमें ईश्वर लिखा है वह इस्राएल आदि कुलोंका स्वामी है वा सब संसारका? ऐसा न होता तो उन्हीं जङ्गलियोंका साथ क्यों देता? और उन्हींका सहाय करता था दूसरेका नाम निशान भी नहीं लेता इससे वह ईश्वर नहीं और इस्राएल कुलादिके मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहनकी मिथ्या कल्पना

है॥ १०४॥

१०५—इस कारण वे ईश्वरके सिंहासनके आगे हैं और उसके मन्दिरमें रात और दिन उसकी सेवा करते हैं॥ यो० प्र० प० ७। आ० १५॥

समीक्षक—क्या यह महाबुत्परस्ती नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयोंका ईश्वर रातमें सोता भी नहीं है यदि सोता है तो रातमें पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी नींद भी उड़जाती होगी और जो रात दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति रोगी होगा॥ १०५॥

१०६—और दूसरा दूत आके वेदीके निकट खड़ा हुआ जिस पास सोनेकी धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया और धूपका धूआं पवित्र लोगोंकी प्रार्थनाओंके सङ्ग दूतके हाथमेंसे ईश्वरके आगे चढ़ गया। और दूतने वह धूपदानी लेके उसमें वेदीकी आग भरके उसे पृथ्वी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजुलियां और भूइंडोल हुए॥ यो० प्र० प० ८। आ० ३। ४। ५॥

समीक्षक—अब देखिये स्वर्ग तक वेदी धूप दीप नैवेद्य तुरहीके शब्द होते हैं क्या वैरागियोंके मन्दिरसे ईसाइयोंका स्वर्ग कम है? कुछ धूम धाम अधिक ही है॥ १०६॥

१०७—पहिले दूतने तुरही फूंकी और लोहूसे मिले हुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवीकी एक तिहाई जलगई॥ यो० प्र० प० ८। आ० ७॥

समीक्षक—वाहरे ईसाइयोंके भविष्यद्वक्ता! ईश्वर, ईश्वरके दूत तुरहीका शब्द और प्रलयकी लीला केवल लड़कोंहीका खेल दीखता है॥ १०७॥

१०८—और पांचवें दूतने तुरही फूंकी और मैंने एक तारको देखा जो स्वर्गमेंसे पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुण्डके कूपकी कुञ्जी उसको दीगई और उसने अथाह कुण्डका कूप खोला और

कूपमेंसे बड़ी भट्ठीके धूएंकी नाईं धूआं उठा और उस धूएंमेंसे टिड्डियां पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवीके बीछुओंको अधिकार होता है वैसा उन्हें अधिकार दिया गया और उनसे कहा गया कि उन मनुष्योंको जिनके माथे पर ईश्वरकी छाप नहीं है पांच मास उन्हें पीड़ा दी जाय॥ यो० प्र० प० ९। आ० १। २। ३। ४। ५॥

समीक्षक—क्या तुरहीका शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्गमें गिरे होंगे? वहां तो नहीं गिरे भला वह कूप वा टिड्डियां भी प्रलयके लिये ईश्वरने पाली होंगी और छापको देख बांच भी लेती होंगी कि छापवालोंको मत काटो? यह केवल भोले मनुष्योंको डरपाके ईसाई बनालेनेका धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे तो तुमको टिड्डियां काटेंगी, ऐसी बातें विद्याहीन देशमें चल सकती हैं आर्य्यावर्त्तमें नहीं क्या वह प्रलयकी बात हो सकती है?॥ १०८॥

१०९—और घुड़चढ़ोंकी सेनाओंकी संख्या बीस करोड़ थी॥ यो० प्र० प० ९। आ० १६॥

समीक्षक—भला इतने घोड़े स्वर्गमें कहां ठहरते कहां चरते और कहां रहते और कितनी लीद करते थे? और उसका दुर्गन्ध भी स्वर्गमें कितना हुआ होगा? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मतके लिये हम सब आर्य्योंने तिलाञ्जलि दे दी है ऐसा बखेड़ा ईसाइयोंके शिर परसे भी सर्वशक्तिमानकी कृपासे दूर होजाय तो बहुत अच्छा हो॥ १०९॥

११०—और मैंने दूसरे पराक्रमी दूतको स्वर्गसे उतरते देखा जो मेघको ओढ़े था और उसके शिरपर मेघ, धनुष था और उसका मुंह सूर्य्यकी नाईं और उसके पांव आगके खम्भोंके ऐसे थे। और उसने अपना दहिना पांव समुद्र पर और बांयां पृथिवी पर रक्खा॥ यो० प्र० प० १०। आ० १। २। ३॥

समीक्षक—अब देखिये इन दूतोंकी कथा जो पुराणों वा भांटोंकी कथाओंसे भी बढ़कर है॥ ११०॥

१११—और लग्गीके समान एक नर्कट मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ ईश्वरके मन्दिरको और वेदी और उसमेंके भजन करने हारोंको नाप॥ यो० प्र० प० ११। आ० १॥

समीक्षक—यहां तो क्या परन्तु ईसाइयोंके तो स्वर्गमें भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं अच्छा है उनका जैसा स्वर्ग है वैसी ही बातें हैं इसलिये यहां प्रभुभोजनमें ईसाके शरीरावयव मांस लोहूकी भावना करके खाते पीते हैं और गिर्जामें भी क्रुश आदिका आकार बनाना आदि भी बुत्परस्ती है॥ १११॥

११२—और स्वर्गमें ईश्वरका मन्दिर खोला गया और उसके नियमका सन्दूक उसके मन्दिरमें दिखाई दिया॥ यो० प्र० प० ११। आ० १९॥

समीक्षक—स्वर्गमें जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा कभी २ खोला जाता होगा क्या परमेश्वरका भी कोई मन्दिर हो सकता है ? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हां ईसाइयोंका जो परमेश्वर आकारवाला है उसका चाहें स्वर्गमें हो चाहें भूमिमें हो और जैसी लीला टंटन पूं पूं की यहां होती है वैसी ही ईसाइयोंके स्वर्गमें भी; और नियमका सन्दूक भी कभी २ ईसाई लोग देखते होंगे उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्योंको लुभानेकी हैं॥ ११२॥

११३—और एक बड़ा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य्य पहिने है और चांद उसके पांओं तले है और उसके शिर पर बारह तारोंका मुकुट है। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसवकी पीड़ा उसे लगी है और वह जन्नेको पीड़ित है। और दूसरा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया और देखो एक बड़ा लाल अजगर है जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों पर सात राजमुकुट हैं। और उसकी पूंछने आकाशके तारोंकी एक तिहाईको

खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला ॥ यो० प्र० प० १२ । आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये लम्बे चौड़े गपोड़े, इनके स्वर्गमें भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है उसका दुःख कोई नहीं सुनता न मिटा सकता है और उस अजगरकी पूंछ कितनी बड़ी थी जिसने तारोंको एक तिहाई पृथिवी पर डाला, भला पृथिवी तो छोटी है और तारे भी बड़े २ लोक हैं इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता किन्तु यहां यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारोंकी तिहाई इस बातके लिखने वालेके घर पर गिरे होंगे और जिस अजगरकी पूंछ इतनी बड़ी थी जिससे सब तारोंकी तिहाई लपेट कर भूमि पर गिरा दी वह अजगर भी उसीके घरमें रहता होगा ॥ ११३ ॥

११४—और स्वर्गमें युद्ध हुआ मीखायेल और उसके दूत अजगरसे लड़े और अजगर और उसके दूत लड़े ॥ यो० प्र० प० १२ । आ० ७ ॥

समीक्षक—जो कोई ईसाइयोंके स्वर्गमें जाता होगा वह भी लड़ाईमें दुःख पाता होगा ऐसे स्वर्गकी यहांसे आश छोड़ हाथ जोड़ बैठ रहो जहां शान्तिभङ्ग और उपद्रव मचा रहे वह ईसाइयोंके योग्य है ॥ ११४ ॥

११५—और वह बड़ा अजगर गिराया गया हां वह प्राचीन सांप जो दियाबल और शैतान कहावता है जो सारे संसारका भरमानेहारा है ॥ यो० प्र० प० १२ । आ० ९ ॥

समीक्षक—क्या जब वह शैतान स्वर्गमें था तब लोगोंको नहीं भरमाता था ? और उसको जन्म भर बन्दीमें थिरा अथवा मार क्यों न डाला ? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया ? जो सब संसारको भरमानेवाला शैतान है तो शैतानको भरवानेवाला कौन है ? यदि शैतान स्वयं भर्मा है तो शैतानके विना भरमनेहारे भर्मेंगे और जो उसको भरमानेहारा परमेश्वर है तो वह ईश्वर ही नहीं ठहरा। विदित तो यह होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर भी शैतानसे डरता होगा

क्योंकि जो शैतानसे प्रबल है तो ईश्वरने उसे अपराध करते समय ही दण्ड क्यों न दिया? जगत्‌में शैतानका जितना राज्य है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयोंके ईश्वरका राज्य नहीं इसीलिये ईसाइयोंका ईश्वर उसे हटा नहीं सकता होगा इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समयके राज्याधिकारी ईसाई डाकू चोर आदिको शीघ्र दण्ड देते हैं वैसा भी ईसाइयोंका ईश्वर नहीं, पुनः कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है जो वैदिकमतको छोड़ कपोलकल्पित ईसाइयोंका मत स्वीकार करे? ।११५।

११६—हाय पृथिवी और समुद्रके निवासियो! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है॥ यो० प्र० प० १२। आ० १२॥

समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहींका रक्षक और स्वामी है? पृथिवी, मनुष्यादि प्राणियोंका रक्षक और स्वामी नहीं है? यदि भूमिका राजा है तो शैतानको क्यों न मारसका? ईश्वर देखता रहता और शैतान बहकाता फिरता है तो भी उसको वर्जता नहीं, विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है॥ ११६॥

११७—और बयालीस मास लों युद्ध करनेका अधिकार उसे दिया गया। और उसने ईश्वरके विरुद्ध निन्दा करनेको अपना मुंह खोला कि उसके नामकी और उसके तम्बूकी और स्वर्गमें वास करनेहारोंकी निन्दा करे। और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगोंसे युद्ध करे और उन पर जय करे और हरएक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया॥ यो० प्र० प० १३। आ० ५। ६। ७॥

समीक्षक—भला जो पृथिवीके लोगोंको बहकानेके लिये शैतान और पशु आदिको भेजे और पवित्र मनुष्योंसे युद्ध करावे वह काम डाकुओंके सर्दारके समान है वा नहीं? ऐसा काम ईश्वरके भक्तोंका नहीं हो सकता॥ ११७॥

११८—और मैंने दृष्टिकी और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर

खड़ा है और उसके सङ्ग एक लाख चवालीस सहस्र जन थे जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिताका नाम लिखा है ॥ यो० प्र० प० १४। आ० १॥

समीक्षक—अब देखिये जहां ईसाका बाप रहता था वहीं उसी सियोन पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता था परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्योंकी गणना क्योंकर की? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्गके वासी हुए। शेष करोड़ों ईसाइयोंके शिर पर न मोहर लगी? क्या ये सब नरकमें गये? ईसाइयोंको चाहिये कि सियोन पर्वत पर जाके देखें कि ईसाका बाप और उसकी सेना वहां है वा नहीं? जो हो तो यह लेख ठीक है नहीं तो मिथ्या, यदि कहीं से वहां आया तो कहांसे आया? जो कहो स्वर्गसे तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर नीचे उड़कर आया जाया करें? यदि वह आया जाया करता है तो एक जिलेके न्यायाधीशके समान हुआ और वह एक दो वा तीन हो तो नहीं बन सकेगा किन्तु न्यूनसे न्यून एक २ भूगोलमें एक २ ईश्वर चाहिये क्योंकि एक दो तीन अनेक ब्रह्माण्डोंका न्याय करने और सर्वत्र युगपद् घूमनेमें समर्थ कभी नहीं हो सकते ॥ ११८॥

११९—आत्मा कहता है हां कि वे अपने परिश्रमसे विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य उनके संग हो लेते हैं॥ यो० प्र० प० १४। आ० १३॥

समीक्षक—देखिये ईसाइयोंका ईश्वर तो कहता है उनके कर्म उनके संग रहेंगे अर्थात् कर्मानुसार फल सबको दिये जायंगे और यह लोग कहते हैं कि ईसा पापोंको लेलेगा और क्षमा भी किये जायंगे यहां बुद्धिमान विचारें कि ईश्वरका वचन सच्चा वा ईसाइयोंका? एक बातमें दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते इनमेंसे एक झूठा अवश्य होगा हमको क्या, चाहें ईसाइयोंका ईश्वर झूठा हो वा ईसाई लोग॥ ११९॥

१२०—और उसे ईश्वरके कोपके बड़े रसके कुण्डमें डाला। और

रसके कुण्डका रौन्दन नगरके बाहर किया गया और रसके कुण्डमें से घोड़ोंकी लगाम तक लोहू एकसौ कोश तक बह निकला ॥ यो० प्र० प० १४। आ० १९। २० ॥

समीक्षक—अब देखिये इनके गपोड़े पुराणोंसे भी बढ़कर हैं वा नहीं! ईसाइयोंका ईश्वर कोप करते समय बहुत दुःखित होजाता होगा और जो उसके कोपके कुण्ड भरे हैं क्या उसका कोप जल है? वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिसके कुण्ड भरे हैं? और सौ कोस तक रुधिरका बहना असम्भव है क्योंकि रुधिर वायु लगनेसे झट जमजाता है पुनः क्योंकर बह सकता है? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं ॥ १२० ॥

१२१—और देखो स्वर्गमें साक्षीके तंबूका मन्दिर खोला गया॥ यो० प्र० प० १५। आ० ५ ॥

समीक्षक—जो ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियोंका क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि मनुष्यवत् अल्पज्ञ है वह ईश्वरताका क्या काम कर सकता है? नहिं नहिं नहिं और इसी प्रकरणमें दूतोंकी बड़ी २ असंभव बातें लिखी हैं उनको सत्य कोई नहीं मान सकता कहांतक लिखें इस प्रकरणमें सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं ॥ १२१ ॥

१२२—और ईश्वरने उसके कुकर्मोंको स्मरण किया है। जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मोंके अनुसार दूना उसे दे देओ॥ यो० प्र० प० १८। आ० ५। ६ ॥

समीक्षक—देखो प्रत्यक्ष ईसाइयोंका ईश्वर अन्यायकारी है क्योंकि न्याय उसीको कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना उससे अधिक न्यून देना अन्याय है जो अन्यायकारीकी उपासना करते हैं वे अन्यायकारी क्यों न हों॥ १२२ ॥

१२३—क्योंकि मेम्नेका विवाह आपहुंचा है और उसकी स्त्रीने अपनेको तैयार किया है ॥ यो० प्र० प० १९। आ० ७॥

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयोंके स्वर्गमें विवाह भी होते हैं! क्योंकि ईसाका विवाह ईश्वरने वहीं किया, पूछना चाहिये कि उसके श्वशुर सासु शालादि कौन थे और लड़के वाले कितने हुए? और वीर्यके नाश होनेसे बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदिके भी न्यून होनेसे अबतक ईसाने वहां शरीर त्याग किया होगा क्योंकि संयोगजन्य पदार्थका वियोग अवश्य होता है अबतक ईसाइयोंने उसके विश्वासमें धोखा खाया और न जाने कबतक धोखेमें रहेंगे॥ १२३॥

१२४—और उसने अजगरको अर्थात् प्राचीन सांपको जो दियाबल और शैतान है पकड़के उसे सहस्र वर्षलों बांध रक्खा और उसको अथाह कुण्डमें डाला और बन्द करके उसे छापदी जिसते वह जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों तबलों फिर देशोंके लोगोंको न भरमावे॥ यो० प्र० प० २०। आ० २। ३॥

समीक्षक—देखो मरूं मरूं करके शैतानको पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द किया फिर भी छूटेगा क्या फिर न भरमावेगा? ऐसे दुष्टको तो बन्दीगृहमें ही रखना था मारे विना छोड़ना ही नहीं। परन्तु यह शैतानका होना ईसाइयोंका भ्रममात्र है वास्तवमें कुछ भी नहीं केवल लोगोंको डराके अपने जालमें लानेका उपाय रचा है। जैसे किसी धूर्तने किन्हीं भोले मनुष्योंसे कहा कि चलो तुमको देवताका दर्शन कराऊं किसी एकान्त देशमें लेजाके एक मनुष्यको चतुर्भुज बनाकर रक्खा झाड़ीमें खड़ा करके कहा कि आंख मीच लो जब मैं कहूं तब खोलना और फिर जब कहूं तभी मीच लो जो न मीचेगा वह अन्धा हो जायगा। वैसी इन मत वालोंकी बातें हैं कि जो हमारा मजहब न मानेगा वह शैतानका बहकाया हुआ है जब वह सामने आया तब कहा देखो! और पुनः शीघ्र कहा कि मीचलो जब फिर झाड़ीमें छिप गया तब कहा खोलो! देखो नारायणको! सबने दर्शन

किया। वैसी लीला मजहबियोंकी है इसलिये इनकी मायामें किसीको न फँसना चाहिये ॥ १२४ ॥

१२५—जिसके सन्मुखसे पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली। और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकोंको ईश्वरके आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवनका पुस्तक खोला गया और पुस्तकोंमें लिखी हुई बातोंसे मृतकोंका विचार उनके कर्मोंके अनुसार किया गया ॥ यो० प्र० प० २० । आ० ११ । १२ ॥

समीक्षक—यह देखो लड़कपनकी बात भला पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे। जिनके सामनेसे भगे और उसका सिंहासन और वह कहां ठहरा? और मुर्दे परमेश्वरके सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा! क्या यहां की कचहरी और दूकानके समान ईश्वरका व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवोंका हाल ईश्वरने लिखा वा उसके गुमाश्तोंने? ऐसी २ बातोंसे अनीश्वरका ईश्वर और ईश्वरका अनीश्वर ईसाई आदि मत वालोंने बना दिया ॥ १२५ ॥

१२६—उनमेंसे एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिनको अर्थात् मेम्नेकी स्त्री को तुझे दिखाऊंगा। यो० प्र० प० २१ । आ० ९ ॥

समीक्षक—भला ईसाने स्वर्गमें दुलहिन अर्थात् स्त्री अच्छी पाई मौज करता होगा, जो २ ईसाई वहां जाते होंगे उनको भी स्त्रियां मिलती होंगी और लड़के वाले होते होंगे और बहुत भीड़के हो जानेसे रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्गको दूरसे हाथ ही जोरना अच्छा है ॥ १२६ ॥

१२७—और उसने उस नलसे नगरको नापा कि साढ़े सातसौ कोशका है उसकी लम्बाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान है। और उसने उसकी भीतको मनुष्य अर्थात् दूतके नापसे नापा कि

एकसौ चवालीस हाथकी है और उसकी भीतकी जुड़ाई सूर्य्यकान्तकी थी और नगर निर्मल सोनेका था जो निर्मल कांचके समान था और नगरके भीतकी नेवें हरएक बहुमूल्य पत्थरसे सँवारी हुई थीं पहिली नेव सूर्य्यकान्तकी थी, दूसरी नीलमणिकी, तीसरी लालड़ीकी, चौथी मरकतकी, पांचवीं गोमेदककी. छठवीं माणिक्यकी, सातवीं पीतमणिकी, आठवीं पेरोजकी, नवीं पुखराजकी, दशवीं लहसनियेकी, एग्यारहवीं धूम्रकान्तकी, बारहवीं मर्टोषकी और बारह फाटक बारह मोती थे एक २ मोतीसे एक २ फाटक बना था और नगरकी सड़क स्वच्छ कांचके ऐसे निर्मल सोनेकी थी ॥ यो० प्र० प० २१। आ० १६। १७। १८। १९। २०। २१॥

समीक्षक—सुनो ईसाइयोंके स्वर्गका वर्णन! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहरमें कैसे समा सकेंगे? क्योंकि उसमें मनुष्योंका आगम होता है और उससे निकलते नहीं और जो यह बहुमूल्य रत्नोंकी बनी हुई नगरी मानी है, और सर्व सोनेकी है इत्यादि लेख केवल भोले २ मनुष्योंको बहकाकर फँसानेकी लीला है। भला लम्बाई चौड़ाई तो उस नगरकी लिखी सो हो सकती परन्तु ऊंचाई साढ़े सातसौ कोश क्योंकर हो सकती है? यह सर्वथा मिथ्या कपोलकल्पनाकी बात है और इतने बड़े मोती कहांसे आये होंगे? इस लेखके लिखने वालेके घरके घड़ेमेंसे यह गपोड़ा पुराणका भी बाप है॥ १२७॥

१२८—और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलनेहारा उसमें किसी रीतिसे प्रवेश न करेगा॥ यो० प्र० प० २०। आ० २७॥

समीक्षक—जो ऐसी बात है तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्गमें ईसाई होनेसे जा सकते हैं? यह ठीक बात नहीं है यदि ऐसा है तो योहन्ना स्वप्नेकी मिथ्या बातोंका करनेहारा स्वर्गमें प्रवेश कभी न कर सका होगा और ईसा भी स्वर्गमें न गया होगा

क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्गको प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियोंके पापके भारसे युक्त है वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है ? ॥ १२८ ॥

१२९—और अब कोई श्राप न होगा और ईश्वरका और मेम्नेका सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे और ईश्वरका मुंह देखेंगे और उसका नाम उसके माथे पर होगा और वहां रात न होगी और उन्हें दीपकका अथवा सूर्य्यकी ज्योतिका प्रयोजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे ॥ यो० प्र० प० २२। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—देखिये यही ईसाइयोंका स्वर्गवास ! क्या ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे ? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे ? अब यह तो कहिये तुम्हारे ईश्वरका मुंह यूरोपियनके सदृश गोरा वा अफ्रीका वालोंके सदृश काला अथवा अन्य देशवालोंके समान है ? यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है क्योंकि जहां छोटाई बड़ाई है और उसी एक नगरमें रहना अवश्य है तो वहां दुःख क्यों न होता होगा ? जो मुखवाला है वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता ॥ १२९ ॥

१३०—देख मैं शीघ्र आता हूं और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हरएकको जैसा उसका कार्य्य ठहरेगा वैसा फल देऊंगा ॥ यो० प्र० प० २२ ॥ आ० १२ ॥

समीक्षक—जब यही बात है कि कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापोंकी क्षमा कभी नहीं होती और जो क्षमा होती है तो इंजीलकी बातें झूठी। यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी इंजीलमें लिखा है तो पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् "हल्फदरोगी" हुई तो झूठ है इसका मानना छोड़ देओ। अब कहांतक लिखें इनकी बाइबलमें लाखों बातें खण्डनीय हैं यह तो थोड़ासा चिह्नमात्र ईसाइयोंकी बाइबल पुस्तकका दिखलाया है इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे थोड़ीसी बातोंको छोड़ शेष

सब झूठ भरा है, जैसे झूठके संगसे सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही बाइबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदोंके स्वीकारमें गृहीत होता ही है ॥ १३० ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते कृश्चीनमतविषये त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥१३॥

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चवदहवां समुल्लास मुसलमानोंके मतविषयमें लिखा है सो केवल कुरानके अभिप्रायसे, अन्य ग्रन्थके मतसे नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा २ विश्वास रखते हैं, यद्यपि फिरके होनेके कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषयमें विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य हैं जो कुरान अर्बी भाषामें है उस पर मौलवियोंने उर्दूमें अर्थ लिखा है उस अर्थका देवनागरी अक्षर और आर्य्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्बीके बड़े २ विद्वानोंसे शुद्ध करवाके लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबोंके तर्जुमोंका पहिले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे क्योंकि यह लेख केवल मनुष्योंकी उन्नति और सत्यासत्यके निर्णयके लिये सब मतोंके विषयोंका थोड़ा २ ज्ञान होवे इससे मनुष्योंको परस्पर विचार करनेका समय मिले और एक दूसरेके दोषोंका खण्डन कर गुणोंका ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई वा भलाई लगानेका प्रयोजन है किन्तु जो २ भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सबको विदित होवे न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्यको रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनोंकी रीति है कि अपने वा पराये दोषोंको दोष और गुणोंको गुण जान कर गुणोंको ग्रहण और दोषोंका त्याग करें और हठियोंका हठ दुराग्रह न्यून करें करावें क्योंकि पक्षपातसे क्या २ अनर्थ जगत्में न हुए और न होते हैं। सचतो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभङ्ग जीव-

नमें पराई हानि करके लाभसे स्वयं रिक्त रहना और अन्यको रखना मनुष्यपनसे वहिः है इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ. दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध घटानेके लिये किया गया है न कि इनको बढ़ानेके अर्थ क्योंकि एक दूसरेकी हानि करनेसे पृथक् रह परस्परको लाभ पहुंचाना हमारा मुख्यकर्म है। अब यह चौदहवें समुल्लासमें मुसलमानोंका मतविषय सब सज्जनोंके सामने निवेदन करता हूं विचार कर इष्टका ग्रहण अनिष्टका परित्याग कीजिये ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

इत्यनुभूमिका ॥

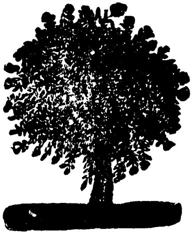

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं समीक्षिष्यामहे

इसके आगे मुसलमानोंके मतविषयमें लिखेंगे ॥

१—आरंभ साथ नाम अल्लाहके क्षमा करनेवाला दयालु ॥ मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदाका कहा है परन्तु इस वचनसे विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वरका बनाया होता तो "आरंभ साथ नाम अल्लाहके" ऐसा न कहता किन्तु आरंभ वास्ते उपदेश मनुष्योंके" ऐसा कहता! यदि मनुष्योंको शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पापका आरंभ भी खुदाके नामसे होकर उसका नाम भी दूषित होजायगा। जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टिमें मनुष्योंके सुखार्थ अन्य प्राणियोंको मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मरवाके मांस खानेकी आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वरके बनाये हुए नहीं हैं? और यह भी कहना था कि परमेश्वरके नाम पर अच्छी बातोंका आरंभ" बुरी बातोंका नहीं इस कथनमें गोलमाल है, क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्मका भी आरंभ परमेश्वरके नाम पर किया जाय? इसीसे देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदिके गले काटनेमें भी "बिसमिल्लाह" इस वचनको पढ़ते हैं जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयोंका आरंभ भी परमेश्वरके नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानोंका "खुदा" दयालु भी न रहेगा क्योंकि उनकी दया

उन पशुओं पर न रही ! और जो मुसलमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचनका प्रकट होना व्यर्थ है यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ और करते हैं तो सूधा अर्थ क्या है ? इत्यादि ॥ १ ॥

२—सब स्तुति परमेश्वरके वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसारका । क्षमा करने वाला दयालु है ॥ मं० १ । सि० १ । सूरतुल्फातिहा आ० १ । २ ॥

समीक्षक—जो कुरानका खुदा संसारका पालन करनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और पशु आदिको भी मुसलमानोंके हाथसे मरवानेका हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि "काफिरोंको क़तल करो" अर्थात् जो कुरान और पैगम्बरको न मानें वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिये कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता ॥ २ ॥

३—मालिक दिन न्यायका ॥ तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं ॥ दिखा हमको सीधा रास्ता ॥ मं० १ । सि० १ । सू० १ । आ० ३ । ४ । ५ ॥

समीक्षक—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इससे तो अंधेर विदित होता है ! उसीकी भक्ति करना और उसीसे सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बातका भी सहाय चाहना ? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरेका भी ? सूधे मार्गको मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराईकी ओरका तो नहीं चाहते ? यदि भलाई सबकी एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरोंकी भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं ॥ ३ ॥

४—उन लोगोंका रास्ता कि जिनपर तूने निआमत की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोधकी दृष्टि की और न गुमराहोंका मार्ग हमको दिखा ॥ मं० १ ।

सि० । १ । सू० । आ० ६ । ७ ॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर निआमत अर्थात् फ़जल वा दया करने और किन्हीं पर न करनेसे खुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि विना पाप पुण्य सुख दुःख देना केवल अन्यायकी बात है और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभावसे बहिः है । वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्य पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता। और इस सूरतकी टिप्पन "यह सूरः अल्लाह साहेबने मनुष्यों-के मुखसे कहलाई कि सदा इस प्रकारसे कहा करें" जो यह बात है तो "अलिफ बे" आदि अक्षर खुदा ही ने पढ़ाये होंगे, जो कहो कि विना अक्षर ज्ञानके इस सूरःको कैसे पढ़ सके क्या कण्ठ ही से बुलाए और बोलते गये ? जो ऐसा है तो सब कुरान ही कंठसे पढ़ाया होगा इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तकमें पक्षपातकी बातें, पाई जायँ वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता, जैसा कि अरबी भाषामें उतार-नेसे अरबवालोंको इसका पढ़ना सुगम अन्य भाषा बोलनेवालोंको कठिन होना है इससे खुदामें पक्षपात आता है और जैसे परमेश्वरने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टिसे सब देशभाषाओंसे विलक्षण संस्कृत भाषा कि जो सब देशवालोंके लिये एकसे परिश्रमसे विदित होती है उसीमें वेदोंका प्रकाश किया है, करता तो यह दोष नहीं होता ॥ ४ ॥

५—यह पुस्तक कि जिसमें सन्देह नहीं परहेजगारोंको मार्ग दिखलाती है ॥ जो ईमान लाते हैं साथ गैब (परोक्ष) के नमाज पढ़ते और उस वस्तुसे जो हमने दी खर्च करते हैं ॥ और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो रखते हैं तेरी ओर वा मुझसे, पहिले उतारी गई और विश्वास क़यामत पर रखते हैं ॥ ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पानेवाले हैं ॥ निश्चय जो

काफिर हुए और उनपर तेरा डराना न डराना समान है वे ईमान न लावेंगे ॥ अल्लाह ने उनके दिलों कानों पर मोहर करदी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अजाब है ॥ मं० १। सि० १। सूरत २। आ० १।२।३।४।५।६ ॥

समीक्षक—क्या अपने ही मुखसे अपनी किताबकी प्रशंसा करना खुदाकी दम्भकी बात नहीं ? जब परहेज़गार अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्गमें हैं और जो झूठे मार्ग पर हैं उनको यह कुरान मार्ग ही नहीं दिखला सकता फिर किस कामका रहा ? क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थके विना खुदा अपने ही खज़ानेसे खर्च करनेको देता है ? जो देता है तो सबको क्यों नहीं देता ? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं और जो बाइबल इञ्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इञ्जील आदि पर ईमान जैसा कुरान पर है वैसा क्यों नहीं लाते ? और जो लाते हैं तो कुरान * का होना किसलिये ? जो कहें कि कुरानमें अधिक बातें हैं तो पहिली किताबमें लिखना खुदा भूल गया होगा ! और जो नहीं भूला तो कुरानका बनाना निष्प्रयोजन है। और हम देखते हैं तो बाइबल और कुरानकी बातें कोई कोई न मिलती होंगी नहीं तो सब मिलती हैं एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों न बनाया ? क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिये अन्य पर नहीं ? ॥ १।२।३ ॥ क्या ईसाई और मुसलमान ही खुदाकी शिक्षा पर हैं उनमें कोई भी पापी नहीं है ? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें तो बड़े अन्याय और अन्धेरकी बात नहीं है ? ॥ ४ ॥ और क्या जो लोग मुसलमानी मतको न मानें उन्हींको काफिर कहना यह एकतर्फी डिगरी नहीं है ? ॥ जो परमेश्वर ही ने उनके

---

* वास्तवमें यह शब्द "कुरआन" है परन्तु भाषामें लोगोंके बोलनेमें "कुरान आता है इसलिये ऐसा ही लिखा है।

अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसीसे वे पाप करते हैं तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष खुदा ही का है फिर उन पर सुख दुःख वा पाप पुण्य नहीं हो सकता पुनः उसको सजा क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रतासे नहीं किया ॥ ५ ॥

६—उनके दिलोंमें रोग है अल्लाहने उनका रोग बढ़ा दिया ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६॥

समीक्षक—भला विना अपराध खुदाने उनका रोग बढ़ाया दया न आई उन विचारोंको बड़ा दुःख हुआ होगा! क्या यह शैतानसे बढ़ कर शैतानपनका काम नहीं है? किसीके मन पर मोहर लगाना, किसीका रोग बढ़ाना यह खुदाका काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोगका बढ़ाना अपने पापोंसे है ॥ ६ ॥

७—जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमानकी छतको बनाया ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० २१॥

समीक्षक—भला आसमान छत किसीकी हो सकती है? यह अविद्याकी बात है आकाशका छतके समान मानना हंसीकी बात है यदि किसी प्रकारकी पृथिवीको आसमान मानते हो तो उनके घरकी बात है ॥ ७ ॥

८—जो तुम उस वस्तुसे सन्देहमें हो जो हमने अपने पैगम्बरके ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी लोगोंको पुकारो अल्लाहके विना तुम सच्चे हो जो तुम ॥ और कभी न करोगे तो उस आगसे डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफिरोंके वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० २२। २३॥

समीक्षक—भला यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाहके समयमें मौलवी फैजीने विना नुक़्तेका कुरान नहीं बना लिया था! वह कौनसी दोजखकी आग है? क्या इस आगसे न डरना चाहिये? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है।

जैसे कुरानमें लिखा है कि काफिरोंके वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं तो वैसे पुराणोंमें लिखा है कि म्लेच्छोंके लिये घोर नरक बना है ! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय ? अपने २ वचनसे दोनों स्वर्गगामी और दूसरेके मतसे दोनों नरकगामी होते हैं इसलिये इन सबका झगड़ा झूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतोंमें दुःख पावेंगे ॥ ८ ॥

९—और आनन्दका सन्देसा दे उन लोगोंको कि ईमान लाए और काम किए अच्छे यह कि उनके वास्ते बिहिश्तें हैं जिनके नीचेसे चलती हैं नहरें जब उसमेंसे मेवोंके भोजन दिये जायेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु हैं जो हम पहिले इससे दिये गये थे और उनके लिये पवित्र बीबियां सदैव वहां रहनेवाली हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २४ ॥

समीक्षक—भला यह कुरानका बहिश्त संसारसे कौनसी उत्तम बात वाला है ? क्योंकि जो पदार्थ संसारमें हैं वे ही मुसलमानोंके स्वर्गमें हैं और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्गमें नहीं किन्तु यहांकी स्त्रियां सदा नहीं रहतीं और वहां बीबियां अर्थात् उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं तो जबतक क़यामतकी रात न आवेगी तबतक उन बिचारियोंके दिन कैसे कटते होंगे ? हां जो खुदाकी उन पर कृपा होती होगी ! और खुदा ही के आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है ! क्योंकि यह मुसलमानोंका स्वर्ग गोकुलिये गुसाइयोंके गोलोक और मन्दिरके सदृश दीखता है क्योंकि वहां स्त्रियोंका मान्य बहुत, पुरुषोंका नहीं, वैसे ही खुदाके घरमें स्त्रियोंका मान्य अधिक और उनपर खुदाका प्रेम भी बहुत है उन पुरुषोंपर नहीं, क्योंकि बीबियोंको खुदाने बहिश्तमें सदा रक्खा और पुरुषोंको नहीं, वे बीबियां बिना खुदाकी मर्जी स्वर्गमें कैसे ठहर सकतीं ? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियोंमें फँस जाय ! ॥९॥

१०—आदमको सारे नाम सिखाये फिर फ़रिश्तोंके सामने करके

कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उनके नाम बताओ ॥ कहा हे आदम ! उनके नाम बता दे तब उसने बता दिये तो खुदाने फ़रिश्तोंसे कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी और आसमानकी छिपी वस्तुओंको और प्रकट छिपे कर्मोंको जानता हूं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २६ । ३१ ॥

समीक्षक—भला ऐसे फ़रिश्तोंको धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदाका काम हो सकता है ? यह तो एक दम्भकी बात है, इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातोंसे ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है ?, हां जंगली लोगोंमें कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे चल सकता है, सभ्यजनोंमें नहीं ॥१०॥

११—जब हमने फ़रिश्तोंसे कहा कि बाबा आदमको दण्डवत् करो देखा सभीने दण्डवत् किया परन्तु शैतानने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ३२ ॥

समीक्षक—इससे खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमानकी पूरी बातें नहीं जानता जो जानता हो तो शैतानको पैदा ही क्यों किया और खुदामें कुछ तेज नहीं है क्योंकि शैतानने खुदाका हुक्म ही न माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका ! और देखिये एक शैतान काफ़िरने खुदाका भी छक्का छुड़ा दिया तो मुसलमानोंके कथनानुसार भिन्न जहां क्रोड़ों काफ़िर हैं वहां मुसलमानोंके खुदा और मुसलमानोंकी क्या चल सकती है ? कभी २ खुदा भी किसीका रोग बढ़ा देता, किसीको गुमराह कर देता है, खुदाने ये बातें शैतानसे सीखी होंगी और शैतानने खुदासे, क्योंकि विना खुदाके शैतानका उस्ताद और कोई नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

१२—हमने कहा कि जो आदम तू और तेरी जोरू बहिश्तमें रहकर आनन्दमें जहां चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्षके कि पापी हो जाओगे। शैतानने उनको डिगाया कि और उनको बहि-

श्तके आनन्दसे खोदिया तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारेमें कोई परस्पर शत्रु है तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है आदम अपने मालिककी कुछ बातें सीख कर पृथिवी पर आगया ॥ मं० १। सू० २। आ० ३३। ३४। ३५॥

समीक्षक—अब देखिये खुदाकी अल्पज्ञता अभी तो स्वर्गमें रहनेका आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देरमें कहा कि निकलो जो भविष्यत् बातोंको जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकानेवाले शैतानको दण्ड देनेसे असमर्थ भी दीख पड़ता है और वह वृक्ष किसके लिये उत्पन्न किया था? क्या अपने लिये या दूसरेके लिये जो दूसरेके लिये तो क्यों रोका? इसलिये ऐसी बातें न खुदाकी और न उसके बनाये पुस्तकमें हो सकती हैं आदम साहेब खुदासे कितनी बातें सीख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उससे कैसे उतर आये? अथवा पक्षीके तुल्य आये अथवा जैसे ऊपरसे पत्थर गिर पड़े? इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहेब मट्टीसे बनाये गये तो इनके स्वर्गमें भी मट्टी होगी? और जितने वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे क्योंकि मट्टीके शरीर विना इन्द्रिय भाग नहीं हो सकता जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये यदि मृत्यु होता है तो वे वहांसे कहां जाते हैं? और मृत्यु नहीं होता तो उनका जन्म भी नहीं हुआ जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है यदि ऐसा है तो कुरानमें लिखा है कि बीवियां सदैव बहिश्तमें रहती हैं सो झूठा हो जायगा क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा जब ऐसा है तो बहिश्तमें जानेवालोंका भी मृत्यु अवश्य होगा ॥ १२ ॥

१३—उस दिनसे डरो कि जब कोई जीव किसी जीवसे भरोसा न रक्खेगा न उसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे ॥ मं० १। सि० १। सू० २।

आ० ४६ ॥

समीक्षक—क्या वर्तमान दिनोंमें न डरें ? बुराई करनेमें सब दिन डरना चाहिये जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी तो फिर पैगम्बर की गवाही वा सिफ़ारिशसे खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी ? क्या खुदा बहिश्तवालों ही का सहायक है दोज़खवालोंका नहीं यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है॥ १३ ॥

१४—हमने मूसाको किताब और मोजिजे दिये॥ हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछेसे उनको और शिक्षा ईमानदारोंको॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५०। ६१॥

समीक्षक—जो मूसाको किताब दी तो कुरानका होना निरर्थक है और उसको आश्चर्यशक्ति दी यह बाइबल और कुरानमें भी लिखा है परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता जो अब नहीं तो पहिले भी न था, जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी अविद्वानोंके सामने विद्वान् बन जाते हैं वैसे उस समय भी कपट किया होगा क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता ? और नहीं कर सकते जो मूसाको किताब दी थी तो पुनः कुरानका देना क्या आवश्यक था क्योंकि जो भलाई बुराई करने न करनेका उपदेश सर्वत्र एकसा हो तो पुनः भिन्न २ पुस्तक करनेसे पुनरुक्त दोष होता है क्या मूसाजी आदिको दी हुई पुस्तकोंमें खुदा भूल गया था ? खुदाने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देनेके लिये कहा था तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया जो ऐसी बातें करता है और जिसमें ऐसी बातें हैं वह न खुदा और न यह पुस्तक खुदाका बनाया हो सकता है॥ १४ ॥

१५—इस तरह खुदा मुर्दोंको जिलाता है और तुमको॥ अपनी निशानियां दिखलाता है कि तुम समझो॥ मं० १। सि० १। सू० २

आ० ६७ ॥

समीक्षक—क्या मुर्दोंको खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता ? क्या क़यामतकी रात तक क़बरोंमें पड़े रहेंगे ? आजकल दौरासुपुर्द हैं ? क्या इतनी ही ईश्वरकी निशानियां हैं ? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियां नहीं हैं ? क्या संसारमें जो विविध रचना विशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैं ? ॥ १५ ॥

१६—वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठमें वास करनेवाले हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७५ ॥

समीक्षक—कोई भी जीव अनन्त पाप करनेका सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सदैव स्वर्ग नरकमें नहीं रह सकते और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् होजावे क़यामतकी रात न्याय होगा तो मनुष्योंके पाप पुण्य बराबर होना उचित है जो कर्म अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और सृष्टि हुए सात आठ हज़ार वर्षोंसे इधर ही बतलाते हैं क्या इसके पूर्व खुदा निकम्मा बैठा था ? और क़यामतके पीछे भी निकम्मा रहेगा ? ये बातें सब लड़कोंके समान हैं क्योंकि परमेश्वरके काम सदैव वर्त्तमान रहते हैं और जितने जिसके पास पुण्य हैं उतना ही उसको फल देता है इसलिये कुरानकी यह बात सच्ची नहीं ॥ १६ ॥

१७—जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपसके और किसी अपने आपसके घरोंसे न निकलना फिर प्रतिज्ञाकी तुमने इसके तुम ही साक्षी हो ॥ फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपसको मार डालते हो एक फिरकेको आपमेंसे घरों उनकेसे निकाल देते हो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७७ । ७८ ॥

समीक्षक—भला प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञोंकी बात है वा परमात्माकी ? जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कड़ाकूट संसारी मनुष्यके समान क्यों करेगा ? भला यह कौनसी भली बात है कि आपसका लोहू न बहाना अपने मत वालोंको घरसे न निकालना

अर्थात् दूसरे मत वालोंका लोहू बहाना और घरसे निकाल देना? यह मिथ्या मूर्खता और पक्षपातकी बात है। क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञासे विरुद्ध करेंगे? इससे विदित होता है कि मुसलमानोंका खुदा भी ईसाइयोंकी बहुतसी उपमा रखता है और यह कुरान स्वतन्त्र नहीं बन सकता क्योंकि इसमेंसे थोड़ीसी बातोंको छोड़कर बाकी सब बातें बाइबलकी हैं॥ १७॥

१८—ये वे लोग हैं जिन्होंने आखरतके बदले जिन्दगी यहांकी मोल लेली उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ७६॥

समीक्षक—भला ऐसी ईर्ष्याद्वेषकी बातें कभी ईश्वरकी ओरसे हो सकती हैं? जिन लोगोंके पास हलके किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि ये पापी हैं और पापोंका दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा जो सज़ा देकर हलके किये जावेंगे तो जिनका बयान इस आयतमें है ये भी सज़ा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे तो भी अन्याय होगा। जो पापोंसे हलके किये जाने वालोंसे प्रयोजन धर्म्मात्माओंका है तो उनके पाप तो आपही हलके हैं खुदा क्या करेगा? इससे यह लेख विद्वानका नहीं। और वास्तवमें धर्मात्माओंको सुख और अधर्मियोंको दुःख उनके कर्म्योंके अनुसार सदैव होना चाहिये॥ १८॥

१९—निश्चय हमने मूसाको किताब दी और उसके पीछे हम पैग़म्बरको लाये और मरियमके पुत्र ईसाको प्रकट मौजिजे अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उसके साथ रूहुल्कुदस * के जब तुम्हारे पास उस वस्तु सहित पैग़म्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं फिर तुमने अभिमान किया एक मतको झुठलाया और एकको

* रूहुल्कुदस कहते हैं जबरईलको जो हरदम मसीहके साथ रहता था।

मार डालते हो॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८०॥

समीक्षक—जब कुरानमें साक्षी है कि मूसाको किताब दी तो उसको मानना मुसलमानोंको आवश्यक हुआ और जो २ उस पुस्तकमें दोष हैं वे भी मुसलमानोंके मतमें आगिरे और "मौज़िजे" अर्थात् दैवी-शक्तिकी बातें सब अन्यथा हैं भोले भाले मनुष्योंको बहकानेके लिये झूठ मूठ चलाली हैं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्यासे विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं जो उस समय "मौज़िजे" थे तो इस समय क्यों नहीं? जो इस समय नहीं तो उस समय भी न थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं॥ १९॥

२०—और इससे पहिले काफ़िरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पहिचाना था जब उनके पास वह आया झट काफ़िर होगए काफ़िरों पर लानत है अल्लाहकी॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८२॥

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत वालोंको काफ़िर कहते हो वैसे वे तुमको काफ़िर नहीं कहते हैं? और उनके मतके ईश्वरकी ओर से धिक्कार देते हैं फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा? जो विचार करके देखते हैं तो सब मत वालोंमें झूठ पाया जाता है और जो सच है सो सबमें एकसा, ये सब लड़ाइयां मूर्खताकी हैं॥ २०॥

२१—आनन्दका सन्देशा ईमानदारोंको अल्लाह, फ़रिश्तों पैग़म्बरों जिबरईल और मीकाइलका जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफ़िरोंका शत्रु है॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९०॥

समीक्षक—जब मुसलमान कहते हैं कि खुदा लाशरीक है फिर यह फ़ौजकी फ़ौज शरीक कहांसे करदी? क्या जो औरोंका शत्रु वह खुदाका भी शत्रु है? यदि ऐसा है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसीका शत्रु नहीं हो सकता॥ २१॥

२२—और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करने वालोंके॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० ५४॥

समीक्षक—भला यह खुदाका उपदेश सबको पापी बनानेवाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होनेका आश्रय मनुष्योंको मिलता है तब पापोंसे कोई भी नहीं डरता इसलिये ऐसा कहनेवाला खुदा और यह खुदाका बनायाहुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करनेमें अन्यायकारी हो सकता है॥ २२॥

२३—जब मूसाने अपनी कौमके लिये पानी मांगा हमने कहा कि अपना असा (दण्ड) पत्थर पर मार उसमेंसे बारह चश्मे बह निकले। मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५६॥

समीक्षक—अब देखिये इन असम्भव बातोंके तुल्य दूसरा कोई कहेगा? एक पत्थरकी शिलामें डण्डा मारनेसे बारह झरनोंका निकलना सर्वथा असम्भव है, हां उस पत्थरको भीतरसे पोला कर उसमें पानी भर बारह छिद्र करनेसे सम्भव है, अन्यथा नहीं॥ २३॥

२४—और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनीके॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६७॥

समीक्षक—क्या जो मुख्य और दया करनेके योग्य न हो उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा? और बुरे कर्म कौन छोड़ेगा? क्योंकि खुदाकी प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं कर्मफल पर नहीं इससे सबको अनास्था होकर कर्मोच्छेदप्रसङ्ग होगा॥ २४॥

२५—ऐसा न हो कि काफिर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमानसे फेर देवें क्योंकि उनमेंसे ईमानवालोंके बहुतसे दोस्त हैं॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०१॥

समीक्षक—अब देखिये खुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमानको काफिर लोग न डिगा देवें क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बातें खुदाकी नहीं होसकती है॥ २५॥

२६—तुम जिधर मुंह करो उधर ही मुंह अल्लाहका है ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०७॥

समीक्षक—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान किबलेकी ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें कि हमको किबलेकी ओर मुंह करनेका हुक्म है तो यह भी हुक्म है कि चाहे जिधरको ओर मुख करो, क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी? और जो अल्लाहका मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिये यह संगत नहीं ॥ २६ ॥

२७—जो आसमान और भूमिका उत्पन्न करने वाला है जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होजा बस होजाता है ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०६ ॥

समीक्षक—भला खुदाने हुक्म दिया कि होजा तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया? किस कारणसे बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टिके पूर्व सिवाय खुदाके कोई भी दूसरी वस्तु न थी तो यह संसार कहांसे आया? विना कारणके कोई भी कार्य्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारणके विना कहांसे हुआ यह बात केवल लड़कपनकी है।

पूर्वपक्षी—नहीं २ खुदाकी इच्छासे।

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हारी इच्छासे एक मक्खीकी टांग भी बन जासकती है? जो कहते हो कि खुदा कि इच्छासे यह सब कुछ जगत् बन गया।

पूर्वपक्षी—खुदा सर्वशक्तिमान् है इसलिये जो चाहे सो कर लेता है।

उत्तरपक्षी—सर्वशक्तिमानका क्या अर्थ है?

पूर्वपक्षी—जो चाहे सो करसके।

उत्तरपक्षी—क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है? अपने

आप मर सकता है ? मूर्ख रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है ?

पूर्वपक्षी—ऐसा कभी नहीं बन सकता।

उत्तरपक्षी—इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरोंके गुण, कर्म, स्वभावके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता जैसे संसारमें किसी वस्तुके बनने बनानेमें तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं:—एक बनानेवाला जैसे कुम्हार, दूसरी घड़ा, बननेवाली मिट्टी और तीसरा उसका साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है, जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधनसे घड़ा बनता है और बननेवाले घड़ेके पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं वैसे ही जगत्के बननेसे पूर्व जगत्का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं इसलिये यह कुरानकी बात सर्वथा असम्भव है ॥ २७ ॥

२८—जब हमने लोगोंके लिये काबेको पवित्र स्थान सुख देनेवाला बनाया तुम नमाज़के लिये इबराहीमके स्थानको पकड़ो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ११७ ॥

समीक्षक—क्या काबेके पहिले पवित्र स्थान खुदाने कोई भी न बनाया था ? जो बनाया था तो काबेके बनानेकी कुछ आवश्यकता न थी, जो नहीं बनाया था तो विचारे पूर्वोत्पन्नोंको पवित्र स्थानके विना ही रक्खा था ? पहिले ईश्वरको पवित्र स्थान बनानेका स्मरण न रहा होगा ॥ २८ ॥

२९—वो कौन मनुष्य हैं जो इबराहीमके दीनसे फिर जावें परन्तु जिसने अपनी जानको मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनियांमें उसीको पसन्द किया और निश्चय आखरतमें वो ही नेक है ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १२२ ॥

समीक्षक—यह कैसे सम्भव है कि इबराहीमके दीनको नहीं मानते थे सब मूर्ख हैं ? इबराहीमको ही खुदाने पसन्द किया इसका क्या कारण है ? यदि धर्मात्मा होनेके कारणसे किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं ? यदि विना धर्मात्मा होनेके ही पसन्द किया तो

अन्याय हुआ । हां यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा होता है वही ईश्वरको प्रिय होता है अधर्मी नहीं ॥ २६ ॥

३०—निश्चय हम तेरे मुखको आसमानमें फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस किबलेको फेरेंगे कि पसन्द करे उसको बस अपना मुख मस्जिदुल्हरामकी ओर फेर जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लो ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १३५ ।

समीक्षक—क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? नहीं बड़ी ।

पूर्वपक्षी—हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं है किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्त्तोंको तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबलेको खुदा नहीं समझते।

उत्तरपक्षी—जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन २ मूर्त्तोंको ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वरकी भक्ति करते हैं यदि बुतोंके तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत्को क्यों न तोड़ा ?

पूर्वपक्षी—वाहजी ! हमारे तो किबलेकी ओर मुख फेरनेका कुरानमें हुक्म है और इनको वेदमें नहीं है फिर वे बुत्परस्त क्यों नहीं ? और हम क्यों ? क्योंकि हमको खुदाका हुक्म बजाना अवश्य है ।

उत्तरपक्षी—जैसे तुम्हारे लिये कुरानमें हुक्म है वैसे इनके लिये पुराणमें आज्ञा है । जैसे तुम कुरानको खुदाका कलाम समझते हो वैसे पुराणी पुराणोंको खुदाके अवतार व्यासजीका वचन समझते हैं तुममें और इनमें बुत्परस्तीका कुछ भिन्नभाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं क्योंकि जबतक कोई मनुष्य अपने घरमेंसे प्रविष्ट हुई बिल्लीको निकालने लगे तबतक उसके घरमें ऊंट प्रविष्ट होजाय वैसे ही मुहम्मद साहेबने छोटे बुत्को मुसलमानोंके मतसे निकाला परन्तु बड़े बुत् ! जो कि पहाड़ सदृश मक्केकी मस्जिद है वह सब मुसलमानोंके मतमें प्रविष्ट करादी क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? हां जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुत्परस्ती आदि बुराइयोंसे बच सको अन्यथा नहीं, तुमको जबतक अपनी

बड़ी बुत्परस्तीको न निकाल दो तबतक दूसरे छोटे बुत्परस्तोंके खण्डनसे लज्जित होके निवृत्त रहना चाहिये और अपनेको बुत्परस्तीसे पृथक् करके पवित्र करना चाहिये ॥ ३० ॥

३१—जो लोग अल्लाहके मार्गमें मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं ॥ मं० १ । सि० । २ । सू० २ । आ० १४४ ॥

समीक्षक—भला ईश्वरके मार्गमें मरने मारनेकी क्या आवश्यकता है ? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करनेके लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे अपना विजय होगा मारनेसे न डरेंगे लूट मार करानेसे ऐश्वर्य्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजनके लिये यह विपरीत व्यवहार किया है ॥ ३१ ॥

३२—और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देनेवाला है। शैतानके पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है उसके बिना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जताकी आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १५१ । १५४ । १५५ ॥

समीक्षक—क्या कठोर दुःख देनेवाला दयालु खुदा पापियों, पुण्यात्माओं पर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है जो ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा तो फिर बीचमें मुहम्मद साहेब और कुरानको मानना आवश्यक न रहा। और जो सबको बुराई करानेवाला मनुष्यमात्रका शत्रु शैतान है उसको खुदाने उत्पन्न ही क्यों किया ? क्या वह भविष्यत्की बात नहीं जानता था जो कहो कि जानता था परन्तु परीक्षाके लिये बनाया तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञका काम है सर्वज्ञ तो सब

जीवोंके अच्छे बुरे कर्मोंको सदासे ठीक २ जानता है और शैतान सबको बहकाता है तो शैतानको किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप बहकता है तो अन्य भी आपसे आप बहक सकते हैं बीचमें शैतानका क्या काम? और जो खुदा ही ने शैतानको बहकाया तो खुदा शैतानका भी शैतान ठहरेगा ऐसी बात ईश्वरकी नहीं हो सकती और जो कोई बहकाता है वह कुसंग तथा अविद्यासे भ्रान्त होता है ॥ ३२ ॥

३३—तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअरका हराम है और अल्लाहके विना जिस पर कुछ पुकारा जावे ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५६ ॥

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आपसे आप मरे वा किसीके मारनेसे दोनों बराबर हैं, हां इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपनमें कुछ भेद नहीं और एक सूअरका निषेध किया तो क्या मनुष्यका मांस खाना उचित है? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वरके नाम पर शत्रु आदिको अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी? इससे ईश्वरका नाम कलंकित हो जाता है, हां ईश्वरने विना पूर्वजन्मके अपराधके मुसलमानोंके हाथसे दारुण दुःख क्यों दिलाया? क्या उन पर दयालु नहीं है? उनको पुत्रवत् नहीं मानता? जिस वस्तुसे अधिक उपकार होवे उन गाय आदिके मारनेका निषेध न करना जानो हत्या कराकर खुदा जगत्का हानिकारक है हिंसारूप पापसे कलंकित भी हो जाता है ऐसी बातें खुदा और खुदाके पुस्तककी कभी नहीं हो सकतीं ॥ ३३ ॥

३४—रोज़ेकी बात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियोंसे वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उनके लिये पर्दा हो अल्लाहने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार बस फिर अल्लाहने क्षमा किया तुमको बस उनसे मिलो और ढूंढो जो अल्लाहने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् संतान खाओ पिओ यहां-

तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागेसे सुपेद तागा वा रातसे जब दिन निकले ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १७२ ॥

समीक्षक—यहां यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानोंका मत चला वा उसके पहिले किसी न किसी पौराणिकको पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने भरका होता है उसकी विधि क्या ? वह शास्त्रविधि जो कि मध्याह्नमें चन्द्रकी कला घटने बढ़नेके अनुसार ग्रासोंको घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिनमें खाना लिखा है उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमाका दर्शन करके खाना उसको इन मुसलमान लोगोंने इस प्रकारका कर लिया परन्तु व्रतमें स्त्रीसमागमका त्याग है यह एक बात खुदाने बढ़कर कह दी कि तुम स्त्रियोंका भी समागम भले ही किया करो और रातमें चाहे अनेक वार खाओ, भला यह व्रत क्या हुआ ? दिनको न खाया रातको खाते रहे, यह सृष्टिक्रम विपरीत है कि दिनमें न खाना रातमें खाना ॥ ३४ ॥

३५—अल्लाहके मार्गमें लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं ॥ मार डालो तुम उनको जहां पाओ ॥ क़तलसे कुफ्र बुरा है ॥ यहांतक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाहका ॥ उन्होंने जितनी ज़ियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उनके साथ करो ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १७४। १७५। १७६। १७८। १७९।

समीक्षक—जो क़ुरानमें ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करते और विना अपराधियोंको मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमानके मतका ग्रहण न करना है उसको कुफ्र कहते हैं अर्थात् कुफ्रसे क़तलको मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं अर्थात् जो हमारे दीनको न मानेगा उसको हम क़तल करेंगे सो करते ही आये मजहब पर लड़ते २ आप ही राज्य आदिसे नष्ट होगये और उनका मत अन्य मत वालों पर अतिकठोर रहता है क्या चोरीका बदला चोरी है ? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि करें क्या हम भी चोरी करें ? यह सर्वथा

अ‌न्याकी बात , क्या कोई अज्ञानी हमको गालियें दे क्या हम भी उसको गाली देवें ? यह बात न ईश्वरकी और न ईश्वरके भक्त विद्वानकी और न ईश्वरोक्त पुस्तककी हो सकती यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्योंकी है ॥ ३५ ॥

३६—अल्लाह झगड़ेको मित्र नहीं रखता ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इसलाममें प्रवेश करो ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १९० । १९३ ॥

समीक्षक—जो झगड़ा करनेको खुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानोंको झगड़ा करनेमें प्रेरणा करता ? और झगड़ालू मुसलमानोंसे मित्रता क्यों करता है ? क्या मुसलमानोंके मतमें मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है सब संसारका ईश्वर नहीं इससे यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वरकृत और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है ॥ ३६ ॥

३७—खुदा जिसको चाहे अनन्त रिजक देवे ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९७ ॥

समीक्षक—क्या विना पाप पुण्यके खुदा ऐसे ही रिज़क देता है ? फिर भलाई बुराईका करना एकसा ही हुआ क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है इससे धर्मसे विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई २ इस कुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं ॥ ३७ ॥

३८—प्रश्न करते हैं तुझसे रजस्वलाको कह वो अपवित्र है पृथक् रहो ऋतु समयमें उनके समीप मत आओ जबतक कि वे पवित्र न हों जब नहा लेवें उनके पास उस स्थानसे जाओ खुदाने आज्ञा दी ॥ तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेतमें । तुमको अल्लाह लग्व (बेकार, व्यर्थ) शपथमें नहीं पकड़ता ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० २०५ । २०६। २०८ ॥

समीक्षक—जो यह रजस्वलाका स्पर्श सङ्ग न करना लिखा है

वह अच्छी बात है परन्तु जो यह स्त्रियोंको खेतीके तुल्य लिखा और जैसा जिस तरहसे चाहो जाओ यह मनुष्योंको विषयी करनेका कारण है। जो खुदा बेकारी शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब झूठ बोलेंगे शपथ तोड़ेंगे। इससे खुदा झूठका प्रवर्त्तक होगा ॥ ३८ ॥

३९—वो कौन मनुष्य है जो अल्लाहको उधार देवे अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उसको उसके वास्ते ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० २२७ ॥

समीक्षक—भला खुदाको क़र्ज (उधार) * लेनेसे क्या प्रयोजन? जिसने सारे संसारको बनाया वह मनुष्यसे क़र्ज लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है। क्या उसका ख़ज़ाना खाली होगया था? क्या वह हुंडी पुड़ियां व्यापारादिमें मग्न होनेसे टोटेमें फंस गया था जो उधार लेने लगा? और एकका दो दो देना स्वीकार करता है क्या यह साहूकारोंका काम है? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियोंका खर्च अधिक करनेवाले और आय न्यून होनेवालोंको करना पड़ता है ईश्वरको नहीं ॥ ३९ ॥

४०—उनमेंसे कोई ईमान न लाया और कोई काफ़िर हुआ जो अल्लाह चाहता न लड़ते जो चाहता है अल्लाह करता है ॥ मं० १ सि० ३ । सू० २ । आ० २३५ ॥

समीक्षक—क्या जितनी लड़ाई होती हैं वह ईश्वर ही की इच्छासे? क्या वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं क्योंकि भले मनुष्योंका यह कर्म नहीं कि

---

*इसी आयतके भाष्यमें तफसीरहुसेनीमें लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहेबके पास आया उससे कहा कि ऐ रसूलल्लाह खुदा क़र्ज क्यों मांगता है? उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बहिश्तमें ले जानेके लिये उसने कहा जो आप ज़मानत लें तो मैं दूं मुहम्मद साहेबने उसकी जमानत लेली खुदाका भरोसा न हुआ उसके दूतका हुआ ॥

शान्तिभङ्ग करके लड़ाई करावें इससे विदित होता है कि यह कुरान न ईश्वरका बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान्का रचित है ॥४०॥

४१—जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसीके लिये है ॥ चाहें उसकी कुरसीने आसमान और पृथिवीको समा लिया है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू २ । आ० । २३७ ॥

समीक्षक—जो आकाश भूमिमें पदार्थ हैं वे सब जीवोंके लिये परमात्माने उत्पन्न किये हैं अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है उसको किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं जब उसकी कुर्सी है तो वह एक-देशी है जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥ ४१ ॥

४२—अल्लाह सूर्य्यको पूर्वसे लाता है बस तू पश्चिमसे लेआ बस जो काफ़िर हैरान हुआ था निश्चय अल्लाह पापियोंको मार्ग नहीं दिख-लाता ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४० ॥

समीक्षक—देखिये यह अविद्याकी बात ! सूर्य्य न पूर्वसे पश्चिम और न पश्चिमसे पूर्व कभी आता जाता है वह तो अपनी परिधिमें घूमता रहता है इससे निश्चित जाना जाता है कि कुरानके कर्त्ताको न खगोल और न भूगोल विद्या आती थी जो पापियोंको मार्ग नहीं बत-लाता तो पुण्यात्माओंके लिये भी मुसलमानोंके खुदाकी आवश्यकता नहीं क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म मार्गमें ही होते हैं, मार्ग तो धर्मसे भूले हुए मनुष्योंको बतलाना होता है सो कर्त्तव्यके न करनेसे कुरानके कर्त्ताकी बड़ी भूल है ॥ ४२ ॥

४३—कहा चार जानवरोंसे ले उनकी सूरत पहिचान रख फिर हर पहाड़ पर उनमेंसे एक एक टुकड़ा रख दे फिर उनको बुला दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४२ ॥

समीक्षक—वाह २ देखोजी मुसलमानोंका खुदा भानमतीके समान खेल कर रहा है ! क्या ऐसी ही बातोंसे खुदाकी खुदाई है ? बुद्धिमान् लोग ऐसे खुदाको तिलाञ्जलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फँसेंगे

इससे खुदा की बड़ाई के बदले बुराई उसके पल्ले पड़ेगी ॥ ४३ ॥

४४—जिसको चाहे नीति देता है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २५१ ॥

समीक्षक—जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा यह बात ईश्वरताकी नहीं । किन्तु जो पक्षपात छोड़ सबको नीतिका उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

४५——वह कि जिसको चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ आ० २६६ ॥

समीक्षक—क्या क्षमाके योग्य पर क्षमा न करना अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजाके तुल्य यह कर्म नहीं है ? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता तो जीवको पाप पुण्य न लगाना चाहिये जब ईश्वरने उसको वैसा ही किया तो जीवको दुःख सुख भी होना न चाहिये, जैसे सेनापतिकी आज्ञासे किसी भृत्यने किसीको मारा वा रक्षाकी उसका फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं ॥ ४५ ॥

४६—कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारोंको खबर दूं कि अल्लाहकी ओरसे बहिश्तें हैं जिनमें नहरें चलती है उन्हींमें सदैव रहनेवाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाहकी प्रसन्नतासे अल्लाह उनको देखनेवाला है साथ बन्दोंके ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० ११ ॥

समीक्षक—भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण ? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वरका किया पुस्तक मान सकता है ? यह पक्षपात क्यों करता है ? जो बीबियां बहिश्तमें सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई है ? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं और जो क़यामतकी रातसे पहिले ही वहां बीबियोंको बुला लिया तो उनके खाविन्दोंको

क्यों न बुला लिया ?' और क़यामतकी रातमें सबका न्याय होगा इस नियमको क्यों तोड़ा ? यदि वहीं जन्मी हैं तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं ? जो उनके लिये पुरुष भी हैं तो यहांसे बहिश्तमें जानेवाले मुसलमानोंको खुदा बीबियां कहांसे देगा ? और जैसे बीबियां बहिश्तमें सदा रहने वाली बनाई वैसे पुरुषोंको वहां सदा रहनेवाले क्यों नहीं बनाया ? इसलिये मुसलमानोंका खुदा अन्यायकारी, बेसमझ है ॥ ४६ ॥

४७—निश्चय अल्लाहकी ओरसे दीन इसलाम है ॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १६ ॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरोंका नहीं ? क्या तेरहसौ वर्षोंके पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं ? इसलिये कुरान ईश्वरका बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपातीका बनाया है ॥ ४७ ॥

४८—प्रत्येक जीवको पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे ॥ कह या अल्लाह तू ही मुल्कका मालिक है जिसको चाहे देता है जिसको चाहे छीनता है जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है सब कुछ तेरे ही हाथमें है प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान है ॥ रातको दिनमें और दिनको रातमें पैठाता है और मृतकको जीवितसे जीवितको मृतकसे निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अन्न देता है ॥ मुसलमानोंको उचित है कि काफ़िरोंको मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानोंके जो कोई यह करे बस वह अल्लाहकी ओरसे नहीं। कह जो तुम चाहते हो अल्लाहको तो पक्ष करो मेरा अल्लाह चाहेगा तुमको और तुम्हारे पापको क्षमा करेगा निश्चय करुणामय है ॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २१। २२। २३। २४। २७ ॥

समीक्षक—जब प्रत्येक जीवको कर्मोंका पूरा २ फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा, जब विना उत्तम कर्मोंके

राज्य देगा तो भी अन्यायकारी होजायगा भला जीवितसे मृतक और मृतकसे जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वरकी व्यवस्था अच्छेद्य अभेद्य है कभी अदल बदल नहीं हो सकती। अब देखिये पक्षपातकी बातें कि जो मुसलमानके मज़हबमें नहीं हैं उनको काफिर ठहराना उनमें श्रेष्ठोंसे भी मित्रता न रखने और मुसलमानोंमें दुष्टोंसे भी मित्रता रखनेके लिये उपदेश करना ईश्वरको ईश्वरतासे बहिः कर देता है इससे यह कुरान, कुरानका खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्याके भरे हुए हैं इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरेमें हैं और देखिये मुहम्मद साहेबकी लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसकी क्षमा भी करेगा इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मदसाहेबका अन्तःकरण शुद्ध नहीं था इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करनेकेलिये मुहम्मद साहेबने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है ॥४८॥

४९—जिस समय कहा फ़रिश्तोंने कि ऐ मर्य्यम तुझको अल्लाहने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत्की स्त्रियोंके ॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ३५ ॥

समीक्षक—भला जब आजकल खुदाके फ़रिश्ते और खुदा किसीसे बातें करनेको नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे? जो कहो कि पहिलेके मनुष्य पुण्यात्मा थे अबके नहीं तो यह बात मिथ्या है किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानोंका मत चला था उस समय उन देशोंमें जङ्गली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये अब विद्वान अधिक हैं इसीलिये नहीं चल सकता किन्तु जो २ ऐसे पोकल मज़हब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं वृद्धिकी तो कथा ही क्या है ॥ ४९ ॥

५०—उसको कहता है कि हो बस होजाता है। क़ाफिरोंने धोका दिया, ईश्वरने धोका दिया, ईश्वर बहुत मकर करनेवाला है ॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ३९। ४६ ॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग खुदाके सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो खुदाने किससे कहा ? और उसके कहनेसे कौन होगया ? इसका उत्तर मुसलमान सात जन्ममें भी नहीं दे सकेंगे क्योंकि विना उपादान कारणके कार्य कभी नहीं हो सकता विना कारणके कार्य्य कहना जानो अपने मा बापके विना मेरा शरीर होगया ऐसी बात है। जो धोखा खाता अर्थात् छल और दंभ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता ॥५०॥

५१—क्या तुमको यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुमको तीन हज़ार फ़रिश्तोंके साथ सहाय देवे ॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० ११० ॥

समीक्षक—जो मुसलमानोंको तीन हज़ार फ़रिश्तोंके साथ सहाय देता था तो अब मुसलमानोंकी बादशाही बहुत सी नष्ट होगई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता ? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खोंको फँसानेके लिये महा अन्यायकी बात है ॥ ५१ ॥

५२—और काफिरों पर हमको सहाय कर ॥ अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़ है जो तुम अल्लाहके मार्गमें मारे जाओ वा मरजाओ अल्लाहकी दया बहुत अच्छी है ॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १३०। १३३। १४० ॥

समीक्षक—अब देखिये मुसलमानोंकी भूल कि जो अपने मतसे भिन्न हैं उनके मारनेके लिये खुदाकी प्रार्थना करते हैं क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे ? यदि मुसलमानोंका कारसाज़ अल्लाह ही है तो फिर मुसलमानोंके कार्य्य नष्ट क्यों होते हैं ? और खुदा भी मुसलमानोंके साथ मोहसे फँसा हुआ दीख पड़ता है जो ऐसा पक्षपाती खुदा है तो धर्मात्मा पुरुषोंका उपासनीय कभी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥

५३—और अल्लाह तुमको परोक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरोंसे जिसको चाहे पसन्द करे बस अल्लाह और उसके रसूलके

साथ ईमान लाओ॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १५६॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग सिवाय खुदाके किसीके साथ ईमान नहीं लाते और न किसीको खुदाका साझी मानते हैं तो पैग़म्बर साहेबको क्यों ईमानमें खुदाके साथ शरीक किया? अल्लाहने पैग़म्बरके साथ ईमान लाना लिखा इसीसे पैग़म्बर भी शरीक होगया पुनः लाशरीक कहना ठीक न हुआ यदि इसका अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहेबके पैग़म्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मोहम्मद साहेबके होनेकी क्या आवश्यकता है? यदि खुदा उसको पैग़म्बर किये विना अपना अभीष्ट कार्य्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ॥ ५३॥

५४—ऐ ईमानवालो! संतोष करो परस्पर थामे रक्खो और लड़ाईमें लगे रहो अल्लाहसे डरो कि तुम छुटकारा पाओ॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १७८॥

समीक्षक—यह कुरानका खुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज़ थे, जो लड़ाईकी आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करनेवाला होता है क्या नाममात्र खुदासे डरनेसे छुटकारा पाया जाता है? वा अधर्म्मयुक्त लड़ाई आदिसे डरनेसे, जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और जो द्वितीय पक्ष है तो ठीक है॥ ५४॥

५५—ये अल्लाहकी हदें हैं जो अल्लाह और उसके रसूलका कहा मानेगा वह बहिश्तमें पहुंचेगा जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है॥ जो अल्लाहकी और उसके रसूलकी आज्ञा भङ्ग करेगा और उसकी हदोंसे बाहर होजायगा वह सदैव रहने वाली आगमें जलाया जायगा और उसके लिये खराब करनेवाला दुःख है॥ मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३। १४॥

समीक्षक—खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैग़म्बरको अपना शरीक कर लिया है और खुदा कुरान ही में लिखा है और देखो खुदा पैग़म्बर साहेबके साथ कैसा फँसा है कि जिसने बहिश्तमें रसूलका साझा कर

दिया है। किसी एक बातमें भी मुसलमानोंका खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है ऐसी २ बातें ईश्वरोक्त पुस्तकमें नहीं हो सकतीं ॥ ५५ ॥

५६—और एक त्रसरेणुकी बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसका दुगुण करेगा उसको ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ३७ ॥

समीक्षक—जो एक त्रसरेणु भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्यको द्विगुण क्यों देता? और मुसलमानोंका पक्षपात क्यों करता है? वास्तवमें द्विगुण वा न्यून फल कर्मोंका देवे तो खुदा अन्यायी हो जावे ॥ ५६ ॥

५७—जब तेरे पाससे बाहर निकलते हैं तो तेरे कहनेके सिवाय (विपरीत) सोचते हैं अल्लाह उनकी सलाहको लिखता है॥ अल्लाहने उनकी कमाई वस्तुके कारणसे उनको उलटा किया क्या तुम चाहते हो कि अल्लाहके गुमराह किये हुए को मार्ग पर लाओ बस जिसको अल्लाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८०। ८७ ॥

समीक्षक—जो अल्लाह बातोंको लिख बही खाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं? जो सर्वज्ञ है तो लिखनेका क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सबको बहकानेसे दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीवोंको गुमराह करता है तो खुदा और शैतानमें क्या भेद रहा? हां इतना भेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शैतान वह छोटा शैतान क्योंकि मुसलमानों ही का कौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है तो इस प्रतिज्ञासे खुदाको भी शैतान बना दिया ॥ ५७ ॥

५८—और अपने हाथोंको न रोकें तो उनको पकड़ लो और जहां पाओ मारडालो ॥ मुसलमानको मुसलमानका मारना योग्य नहीं जो कोई अनजानसे मारडाले बस एक गर्दन मुसलमानका छोड़ना है और खून बहा उनलोगोंकी ओरसे हुई जो उस कौमसे होवे और तुम्हारे

लिये जो दान कर देवे जो दुश्मनकी कौमसे हैं ।। और जो कोई मुसलमानको जानकर मारडाले वह सदैव काल दोजखमें रहेगा उस पर अल्लाहका क्रोध और लानत है ।। मं० १ । सि० ४ । सू० ४ । आ० ९० । ९१ । ९२ ।।

समीक्षक—अब देखिये महापक्षपातकी बात है कि जो मुसलमान न हो उसको जहां पाओ मारडालो और मुसलमानोंको न मारना भूलसे मुसलमानोंको मारनेमें प्रायश्चित्त और अन्यको मारनेसे बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेशको कूपमें डालना चाहिये ऐसे २ पुस्तक ऐसे २ पैगम्बर ऐसे २ खुदा और ऐसे २ मतसे सिवाय हानिके लाभ कुछ भी नहीं ऐसोंका न होना अच्छा और ऐसे प्रमादिक मतोंसे बुद्धिमानोंको अलग रहकर वेदोक्त सब बातोंको मानना चाहिये क्योंकि उसमें असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है और जो मुसलमानको मारे उसको दोज़ख मिले और दूसरे मत वाले कहते हैं कि मुसलमानको मारे तो स्वर्ग मिले अब कहो इन दोनों मतोंमेंसे किसको मानें किसको छोड़ें किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतोंको छोड़कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्योंके लिये है कि जिसमें आर्य्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंके मार्गमें चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टोंके मार्गसे अलग रहना लिखा है सर्वोत्तम है ।। ५८ ।।

५९—और शिक्षा प्रकट होनेके पीछे जिसने रसूलसे विरोध किया और मुसलमानोंसे विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उसको दोज़खमें भेजेंगे ।। मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० ११३ ।।

समीक्षक—अब देखिये खुदा और रसूलकी पक्षपातकी बातें, मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो खुदाके नामसे ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे आनन्द भोग न होगा इसीसे विदित होता है कि वे अपने मतलब करनेमें पूरे थे और अन्यके प्रयोजन बिगाड़नेमें, इससे ये अनाप्त थे इनकी बातका प्रमाण आप्त विद्वानोंके सामने कभी नहीं हो सकता ।। ५९ ।।

६०—जो अल्लाह फ़रिश्तों किताबों रसूल और क़यामतके साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है॥ निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफिर हुए फिर फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्रमें अधिक बढ़े अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३४। १३५॥

समीक्षक—क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है? क्या लाशरीक कहते जाना और उसके साथ बहुतसे शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन बार क्षमाके पश्चात् खुदा क्षमा नहीं करता? और तीन बार कुफ्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी बारसे आगे नहीं दिखलाता, यदि चार चार बार भी कुफ्र सब लोग करें तो कुफ्र बहुत ही बढ़जाये॥ ६०॥

६१—निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफिरोंको जमा करेगा दोज़ख़में॥ निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाहको और उनको वह धोखा देता है॥ ऐ ईमानवालो मुसलमानोंको छोड़ काफिरोंको मित्र मत बनाओ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३८। १४१। १४३॥

समीक्षक—मुसलमानोंके बहिश्त और अन्य लोगोंके दोज़ख़में जानेका क्या प्रमाण? वाहजी वाह! जो बुरे लोगोंके धोखेमें आता और अन्यको धोखा देता है ऐसा खुदा हमसे अलग रहे किन्तु जो धोखेबाज़ है उनसे जाकर मेल करें और वे उससे मेल करें क्योंकि—

(यादृशी शीतला देवी तादृशी खरवाहनः)

जैसेको तैसा मिले तभी निर्वाह होता है जिसका खुदा धोखेबाज़ है उसके उपासक लोग धोखेबाज़ क्यों न हों? क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्नसे शत्रुता करना किसीको उचित हो सकता है॥ ६१॥

६२—ऐ लोगो निश्चय तुम्हारे पास सत्यके साथ खुदाकी ओरसे

पैगम्बर आया बस तुम उनपर ईमान लाओ ॥ अल्लाह माबूद अकेला है ॥ मं० १ । सि० ६ । सू० ४ । आ० १६७ । १६८ ॥

समीक्षक—क्या जब पैगम्बर पर ईमान लाना लिखा तो ईमानमें पैग़म्बर ख़ुदाका शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं ? जब अल्लाह एकदेशी है व्यापक नहीं तभी तो उसके पाससे पैगम्बर आते जाते हैं तो वह ईश्वर भी नहीं होसकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं कहीं एकदेशी इससे विदित होता है कि कुरान एकका बनाया नहीं किन्तु बहुतोंने बनाया है ॥ ६२ ॥

६३—तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू सूअरका मांस, जिस पर अल्लाहके विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे, लाठी मारे, ऊपरसे गिर पड़े, सींग मारे और दरदका खाया हुआ ॥ मं० २। सि० ६ । सू० ५ । आ० ३ ॥

समीक्षक—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं अन्य बहुतसे पशु तथा तिर्य्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानोंको हलाल होंगे ? इस वास्ते यह मनुष्योंकी कल्पना है ईश्वरकी नहीं इससे इसका प्रमाण भी नहीं ॥६३॥

६४—और अल्लाहको अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तोंमें भेजूंगा ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ५। आ० १० ॥

समीक्षक—वाहजी ! मुसलमानोंके ख़ुदाके घरमें कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता ? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ाके तुमको स्वर्गमें भेजूंगा ? यहां विदित होता है कि ख़ुदाके नामसे मुहम्मद साहेबने अपना मतलब साधा है ॥ ६४ ॥

६५—जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है ॥ जो कुछ किसीको भी न दिया वह तुम्हें दिया ॥ मं० २ । सि० ६। सू० ५ । आ० १६ । १८ ॥

समीक्षक—जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे ही

मुसलमानोंका खुदा भी शैतानका काम करता है? जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोज़खमें खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन है जैसी सेना सेनापतिके आधीन रक्षा करती और किसीको मारती है उसकी भलाई बुराई सेनापतिको होती है सेना पर नहीं॥ ६५॥

६६—आज्ञा मानो अल्लाहकी और आज्ञा मानो रसूलकी॥ मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ८६॥

समीक्षक—देखिये यह बात खुदाके शरीक होनेकी है, फिर खुदाको "लाशरीक" मानना व्यर्थ है॥ ६६॥

६७—अल्लाहने माफ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा॥ मं० २ सि० ७। सू० ५। आ०६२॥

समीक्षक—किये हुए पापोंका क्षमा करना जानो पापोंको करनेकी आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करनेकी बात जिस पुस्तकमें हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वानका बनाया है किन्तु पापवर्द्धक है, हां आगामी पाप छुड़वानेके लिये किसीसे प्रार्थना और स्वयं छोड़नेके लिये पुरुषार्थ पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे छोड़े नहीं तो भी कुछ नहीं हो सकता॥ ६७॥

६८—और उस मनुष्यसे अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है॥ मं० २। सि० ७। सू० ६। आ०॥ ६४॥

समीक्षक—इस बातसे सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास खुदाकी ओरसे आयतें आती हैं तब किसी दूसरेने भी मुहम्मद साहेबके तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं मुझको भी पैग़म्बर मानो इसको हटाने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये मुहम्मद साहेबने यह उपाय किया होगा॥ ६८॥

६९—अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया फिर तुम्हारी सूरतें बनाईं फिर हमने फ़रिश्तोंसे कहा कि आदमको सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करनेवालोंमेंसे न हुआ ॥ कहा जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिजदा न किया, कहा मैं उससे अच्छा हूं तूने मुझको आगसे और उसको मिट्टीसे उत्पन्न किया ॥ कहा बस उसमेंसे उतर यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे ॥ कहा उस दिन तक ढील दे कि कबरोंमेंसे उठाये जावें ॥ कहा निश्चय तू ढील दिये गयोंसे है ॥ कहा बस इसकी कसम है कि तूने मुझको गुमराह किया अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा ॥ और प्रायः तू उनको धन्यवाद करनेवाला न पावेगा कहा उससे दुर्दशाके साथ निकल अवश्य जो कोई उनमेंसे तेरा पक्ष करेगा तुम सबसे दोज़खको भरूंगा ॥ मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १७॥

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनो खुदा और शैतानके झगड़ेको एक फ़रिश्ता जैसा कि चपरासी हो, था, वह भी खुदासे न दबा और खुदा उसके आत्माको पवित्र भी न कर सका, फिर ऐसे बागीको जो पापी बनाकर गदर करनेवाला था उसको खुदाने छोड़ दिया। खुदाकी यह बड़ी भूल है। शैतान तो सबको बहकाने वाला और खुदा शैतानको बहकाने वाला होनेसे यह सिद्ध होता है कि शैतानका भी शैतान खुदा है क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया इससे खुदामें पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयोंका चलानेवाला मूलकारण खुदा हुआ। ऐसा खुदा मुसलमानों ही का हो सकता है अन्य श्रेष्ठ विद्वानोंका नहीं और फरिश्तोंसे मनुष्यवत् वार्तालाप करनेसे देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानोंका खुदा है इसीसे विद्वान् लोग इसलामके मजहबको प्रसन्न नहीं करते ॥ ६९ ॥

७०—निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथिवीको छः दिनमें उत्पन्न किया फिर करार पकड़ा अर्श पर।

दीनतासे अपने मालिकको पुकारो ॥ मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ५३। ५४॥

समीक्षक—भला जो छः दिनमें जगत्को बनावे (अर्श) अर्थात् ऊपरके प्रकाशमें सिंहासन पर आराम करे वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी हो सकता है? इसके न होनेसे वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बधिर है जो पुकारनेसे सुनता है? वे सब बातें अनीश्वरकृत हैं इससे कुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता यदि छः दिनोंमें जगत् बनाया सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अबतक सोता है वा जागता है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता फिरता है॥ ७०॥

७१—मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते॥ मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ७३॥

समीक्षक—यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानोंमें जिहाद करना और काफ़िरोंको मारना भी लिखा है अब कहो पूर्वापर विरुद्ध नहीं है? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और सबल हुए होंगे तब झगड़ा मचाया होगा इसीसे ये बातें परस्पर विरुद्ध होनेसे दोनों सत्य नहीं हैं॥ ७१॥

७२—बस एक ही वार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष॥ मं० २। सि० ६। सू० ७। आ० १०५॥

समीक्षक—अब इसके लिखनेसे विदित होता है कि ऐसी झूठी बातोंको खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे क्योंकि जैसे आंखसे देखनेको और कानसे सुननेको अन्यथा कोई नहीं कर सकता इसीसे ये इन्द्रजालकी बातें हैं॥ ७२॥

७३—बस हमने उस पर मेहका तूफान भेजा टीड़ी, चिचड़ी

और मैंडक और लोहू ॥ बस उनसे हमने बदला लिया और उनको डुबोदिया दरियावमें ॥ और हमने बनी इसराईलको दरियावसे पार उतार दिया ॥ निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें हैं और उनका कार्य्य भी झूठा है ॥ मं० २। सि० ६। सू० ७। आ० १३०। १३३। १३७। १३८॥

समीक्षक—अब देखिये जैसा कोई पाखण्डी किसीको डरपावे कि हम तुझ पर सर्पोंको मारनेके लिये भेजेंगे ऐसी यह भी बात है भला जो ऐसा पक्षपाती कि एक जातीको डुबा दे और दूसरेको पार उतारे वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं ? जो दूसरे मतोंको कि जिसमें हज़ारों क्रोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपनेको सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है ? क्योंकि किसी मतमें सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते यह इकतर्फी डिगरी करना महामूर्खोंका मत है क्या तौरेत ज़बूरका दीन, जो कि उनका था, झूठा होगया ? वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा और जो वह अन्य मजहब था तो कौनसा था कहो जिसका नाम कुरानमें हो ॥७३॥

७४—बस तुझको अलबत्ता देख सकेगा जब प्रकाश किया उसके मालिकने पहाड़की ओर उसको परमाणु २ किया गिर पड़ा मूसा बेहोश ॥ मं० २। सि० ६। सू० ७। आ० १४२॥

समीक्षक—जो देखनेमें आता है वह व्यापक नहीं हो सकता और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसीको क्यों नहीं दिखलाता ? सर्वथा विरुद्ध होनेसे यह बात मानने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥

७५—और अपने मालिकको दीनता डरसे मनमें याद कर धीमी आवाजसे सुबहको और शामको ॥ मं २। सि० ६। सू० ७। आ० २०४॥

समीक्षक—कहीं २ कुरानमें लिखा है कि बड़ी आवाजसे अपने मालिकको पुकार और कहीं २ धीरे २ ईश्वरका स्मरण कर, अब

कहिये कौनसी बात सच्ची ? और कौनसी बात झूठी ? जो एक दूसरी बातसे विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीतके समान होती है यदि कोई बात भ्रमसे विरुद्ध निकल जाय उसको मान ले तो कुछ चिन्ता नहीं ॥ ७५ ॥

७६—प्रश्न करते हैं तुझको लूटोंसे कह लूटें वास्ते अल्लाहके और रसूलके और डरो अल्लाहसे ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १ ॥

समीक्षक—जो लूट मचावें, डाकूके कर्म करें करावें और खुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्यकी बात है और अल्लाहका डर बतलाते और डांकादि बुरे काम भी करते जायें और "उत्तम मत हमारा है" कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़के सत्य वेद-मतका ग्रहण न करें इससे अधिक कोई बुराई दूसरी होगी ? ॥ ७६ ॥

७७—और काटे जड़ काफ़िरोंकी ॥ मैं तुमको सहाय दूंगा साथ सहस्र फ़रिश्तोंके पीछे २ आनेवाले ॥ अवश्य मैं काफ़िरोंके दिलोंमें भय डालूंगा बस मारो ऊपर गर्दनोंके मारो उनमेंसे प्रत्येक पोरी (संधी) पर ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२ ॥

समीक्षक—वाहजी वाह ! कैसा खुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन. जो मुसलमानी मतसे भिन्न काफ़िरोंकी जड़ कटवावे और खुदा आज्ञा देवे उनकी गर्दन मारो और हाथ पगके जोड़ोंको काटनेका सहाय और सम्मति देवे ऐसा खुदा लंकेशसे क्या कुछ कम है ? यह सब प्रपञ्च कुरानके कर्त्ताका है खुदाका नहीं, यदि खुदाका हो तो ऐसा खुदा हमसे दूर और हम उससे दूर रहें ॥ ७७ ॥

७८—अल्लाह मुसलमानोंके साथ है ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो वास्ते अल्लाहके और वास्ते रसूलके ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाहकी रसूलकी और मत चोरी करो अमानत अपनीको ॥ और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करने वालोंका है ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १९। २४। २७। ३० ॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानोंका पक्षपाती है? जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भरका है। क्या खुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता? बधिर है? और उसके साथ रसूलको शरीक करना बहुत बुरी बात नहीं है? अल्लाहका कौनसा खज़ाना भरा है जो चोरी करेगा? क्या रसूल और अपने अमानतकी चोरी छोड़कर अन्य सबकी चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियोंका हो सकता है। भला जो मकर करता और जो मकर करनेवालेका संगी है वह खुदा कपटी छली और अधर्मी क्यों नहीं? इसलिये यह कुरान खुदाका बनाया हुआ नहीं है किसी कपटी छलीका बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं॥७८॥

७९—और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफ़िरोंका और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाहके॥ और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तुसे निश्चय वास्ते अल्लाहके है पांचवां हिस्सा उसका और वास्ते रसूलके॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९। ४१॥

समीक्षक—ऐसे अन्यायसे लड़ने लड़ाने वाला मुसलमानोंके खुदासे भिन्न शान्तिभङ्गकर्त्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिये मज़हब कि अल्लाह और रसूलके वास्ते सब जगत्‌को लूटना लुटवाना लुटेरोंका काम नहीं है? और लूटके मालमें खुदाका हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे लुटेरोंका पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाईमें बट्टा लगाता है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसारमें ऐसी उपाधि और शान्तिभङ्ग करके मनुष्योंको दुःख देनेके लिये कहांसे आया? जो ऐसे २ मत जगत्‌में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्दमें बना रहता॥ ७९॥

८०—और कभी देखे जब काफिरोंको फ़रिश्ते कब्ज करते हैं मारते हैं मुख उनके और पीठें उनकी और कहते चखो अजाब चलनेका॥ हमने उनके पापसे उनको मारा और हमने फिराआनकी

कौमको डुबो दिया ॥ और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ८ । आ० ५० । ५४ । ५६ ॥

समीक्षक—क्योंजी आजकल रूसने रूम आदि और इङ्गलेण्डने मिश्रकी दुर्दशा कर डाली फ़रिश्ते कहां सो गये ? और अपने सेवकोंके शत्रुओंको खुदा पूर्व मारता डुबाता था यह बात सच्ची हो तो आज-कल भी ऐसा करे, जिससे ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। अब देखिये यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्नमतवालोंके लिये दुःखदायक कर्म करो ऐसी आज्ञा विद्वान और धार्मिक दयालुकी नहीं हो सकती, फिर लिखते हैं कि खुदा दयालु और न्यायकारी है ऐसी बातोंसे मुसलमानोंके खुदासे न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं ॥ ८० ॥

८१—ऐ नबी किफ़ायत है तुझको अल्लाह और उनको जिन्होंने मुसलमानोंसे तेरा पक्ष किया ॥ ऐ नबी रग़बत अर्थात् चाह चस्का दे मुसलमानोंको ऊपर लड़ाईके, जो हों तुममेंसे २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय कर दो सौका ॥ बस खाओ उस वस्तुसे कि लूटा है तुमने हलाल पवित्र और डरो अल्लाहसे वह क्षमा करने वाला दयालु है ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ८ । आ० ६३ । ६४ । ६८ ॥

समीक्षक—भला यह कौनसी न्याय, विद्वत्ता और धर्मकी बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे उसीका पक्ष और लाभ पहुंचावे ? और जो प्रजामें शांतिभङ्ग करके लड़ाई करे करावे और लूट मारके पदार्थोंको हलाल बतलावे और फिर उसीका नाम क्षमावान् दयालु लिखे यह बात खुदाकी तो क्या किन्तु किसी भले आदमीकी भी नहीं हो सकती ऐसी २ बातोंसे कुरान ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥

८२—सदा रहेंगे बीच उसके अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत पकड़ो बापों अपनेको और भाइयों अपनेको मित्र जो दोस्त रक्खें कुफ़्रको ऊपर ईमानके ॥ फिर उतारे

अल्लाहने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपनेके और ऊपर मुसलमानोंके और उतारे लश्कर नहीं देखा तुमने उनको और अज़ाब किया उन लोगोंको और यही सज़ा है काफिरोंको ॥ फिर फिर आवेगा अल्लाह पीछे उसके ऊपर ॥ और लड़ाई करो उन लोगोंसे जो ईमान नहीं लाते ॥ मं० २। सि० १०। सू० ६। आ० २१। २२। २५। २६। २८ ॥

समीक्षक—भला जो बहिश्तवालोंके समीप अल्लाह रहता है तो सर्वव्यापक क्योंकर हो सकता है ? जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टि-कर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने मा, बाप, भाई और मित्रको छुड़वाना केवल अन्यायकी बात है, हां जो वे बुरा उप-देश करें, न मानना परन्तु उनकी सेवा सदा करनी चाहिये। जो पहिले खुदा मुसलमानों पर बड़ा सन्तोषी था और उनके सहायके लिये लश्कर उतारता था सच होता तो अब ऐसा क्यों नहीं करता ? और जो प्रथम काफिरोंको दण्ड देता और पुनः उसके ऊपर आता था तो अब कहां गया ? क्या विना लड़ाईके ईमान खुदा नहीं बना सकता ? ऐसे खुदाको हमारी ओरसे सदा तिलाञ्जलि है, खुदा क्या है एक खिलाड़ी है ? ॥ ८२ ॥

८३—और हम बाट देखने वाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुंचावे तुमको अल्लाह अज़ाब अपने पाससे वा हमारे हाथोंसे ॥ मं० २। सि० १०। सू० ६। आ० ५२ ॥

समीक्षक—क्या मुसलमान ही ईश्वरकी पुलिस बन गये हैं कि अपने हाथ वा मुसलमानोंके हाथसे अन्य किसी मत वालोंको पकड़ा देता है ? क्या दूसरे क्रोड़ों मनुष्य ईश्वरको अप्रिय हैं ? मुसलमानोंमें पापी भी प्रिय हैं यदि ऐसा है तो अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजाकी सी व्यवस्था दीखती है आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान मुसलमान हैं वे भी इस निर्मूल अयुक्त मतको मानते हैं ॥ ८३ ॥

८४—प्रतिज्ञा की है अल्लाहने ईमान वालोंसे और ईमानवालियोंसे

बहिश्तें चलती हैं नीचे उनकेसे नहरें सदैव रहनेवाली बीच उसके और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदनके और प्रसन्नता अल्लाहकी ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा॥ बस ठट्ठा करते हैं उनसे ठट्ठा किया अल्लाहने उनसे॥ मं० २। सि० १०। सू० ६। आ० ७२। ८०॥

समीक्षक—यह खुदाके नामसे स्त्री पुरुषोंको अपने मतलबके लिये लोभ देना है क्योंकि जो ऐसा प्रलोभ न देते तो कोई मुहम्मद साहेबके जालमें न फंसता ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं। मनुष्य लोग तो आपसमें ठट्ठा किया ही करते हैं परन्तु खुदाको किसीसे ठट्ठा करना उचित नहीं है यह कुरान क्या है बड़ा खेल है॥ ८४॥

८५—परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपनेके तथा जान अपनीके और इन्हीं लोगोंके लिये भलाई है॥ और मोहर रक्खी अल्लाहने ऊपर दिलों उनकेके बस वे नहीं जानते॥ मं० २ सि० १० सू० ६ आ० ८६। ६२॥

समीक्षक—अब देखिये मतलबसिन्धुकी बात कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेबके साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्यासे भरी हुई नहीं है? जब खुदाने मोहर ही लगा दी तो उनका अपराध पाप करनेमें कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन विचारोंको भलाईसे दिलों पर मोहर लगाकर रोक दिये यह कितना बड़ा अन्याय है!!!॥ ८५॥

८६—ले माल उनकेसे खैरात कि पवित्र करे तू उनको अर्थात् बाहरी और शुद्ध कर तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्तमें॥ निश्चय अल्लाहने मोल ली है मुसलमानोंसे जानें उनकी और माल उनके बदले कि वास्ते उनके बहिश्त है लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाहके बस मारेंगे और मर जावेंगे॥ मं० २। सि० ११। सू० ६। आ० १०२। ११०॥

समीक्षक—वाहजी वाह! मुहम्मद साहेब आपने तो गोकुलिये

गुसाइयोंकी बराबरी करली क्योंकि उनका माल लेना और उनको पवित्र करना यही बात तो गुसाइयोंकी है। वाह खुदाजी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानोंके हाथसे अन्य गरीबोंके प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथोंको मरवाकर उन निर्दयी मनुष्योंको स्वर्ग देनेसे दया और न्यायसे मुसलमानोंका खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाईमें बट्टा लगाके बुद्धिमान् धार्मिकोंमें घृणित हो गया ॥ ८६ ॥

८७—ऐ लोगो जो ईमान लाये हो लड़ो उन लोगोंसे कि पास तुम्हारे हैं काफिरोंसे और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दृढ़ता ॥ क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओंमें डाले जाते हैं हरवर्षके एक वार वा दो वार फिर वे नहीं तोबः करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं ॥ मं० २। सि० ११। सू० ६। आ० १२२। १२५ ॥

समीक्षक—देखिये ये भी एक विश्वासघातकी बातें खुदा मुसलमानोंको सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों या किसीके नोकर हों जब अवसर पावें तभी लड़ाई वा घात करें ऐसी बातें मुसलमानोंसे बहुत बन गई हैं इसी कुरानके लेखसे अब तो मुसलमान समझके कुरानोक्त बुराइयोंको छोड़ दें तो बहुत अच्छा है ॥ ८७ ॥

८८—निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवीको बीच छः दिनके फिर क़रार पकड़ा ऊपर अर्शके तदबीर करता है कामकी ॥ मं० ३ सि० ११ सू० १० आ० ३ ॥

समीक्षक—आसमान आकाश एक और विना बना अनादि है उनका बनाना लिखनेसे निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्त्ता पदार्थविद्याको नहीं जानता था? क्या परमेश्वरके सामने छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो "हो मेरे हुक्मसे और होगया" जब कुरानमें ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते, इससे छः दिन लगना झूठ है जो वह व्यापक होता तो ऊपर आकाशके क्यों ठहरता? और जब कामकी तदबीर करता है तो ठीक तुम्हारा खुदा मनुष्यके समान है

क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह बैठा २ क्या तदबीर करेगा? इससे विदित होता है कि ईश्वरको न जाननेवाले जङ्गली लोगोंने यह पुस्तक बनाया होगा॥ ८८ ॥

८९—शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानोंके॥ मं० ३। सि० ११। सू० १। आ० ५५॥

समीक्षक—क्या यह खुदा मुसलमानों ही का है? दूसरोंका नहीं और पक्षपाती है। जो मुसलमानों ही पर दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं, यदि मुसलमान ईमानदारोंको कहते हैं तो उनके लिये शिक्षाकी आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानोंसे भिन्नोंको उपदेश नहीं करता तो खुदाकी विद्या ही व्यर्थ है॥ ८९ ॥

९०—परीक्षा लेवे तुमको कौन तुममेंसे अच्छा है कर्मोंमें जो कहे तू अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्युके॥ मं० ३ सि० ११। सू० ११। आ० ७॥

समीक्षक—जब कर्मोंकी परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं और जो मृत्यु पीछे उठाता है तो दौड़ासुपुर्द रखता है और अपने नियम जो कि मरे हुए न जीवें उसको तोड़ता है यह खुदाको बट्टा लगाना है॥९०॥

९१—और कहा गया ऐ पृथिवी अपना पानी निगलजा और ऐ आसमान बस कर और पानी सूख गया॥ और ऐ कौम यह है निशानी ऊंटनी अल्लाहकी वास्ते तुम्हारे बस छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अल्लाहके खाती फिरे मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ४३। ६३ ॥

समीक्षक—क्या लड़कपनकी बात है! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं? वाहजी वाह! खुदाके ऊंटनी भी है तो ऊंट भी होगा? तो हाथी, घोड़े, गधे आदि भी होंगे? और खुदाका ऊंटनीसे खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर चढ़ना भी है जो ऐसी बातें हैं तो नवाबीकी सी घसड़ पसड़ खुदाके घरमें भी हुई॥९१॥

९२—और सदैव रहनेवाले बीच उसके जबतक कि रहें आसमान

और पृथिवी और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्तके सदा रहनेवाले हैं जबतक रहें आसमान और पृथिवी ॥ मं० ३। सि० १२। सू० ११। आ० १०५। १०६॥

समीक्षक—जब दोज़ख़ और बहिश्तमें क़यामतके पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसलिये रहेगी? और जब दोज़ख़ और बहिश्तके रहनेकी आसमान पृथिवीके रहने तक अवधि हुई तो सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख़में यह बात झूठी हुई ऐसा कथन अविद्वानोंका होता है ईश्वर वा विद्वानोंका नहीं ॥ ६२॥

६३—जब यूसुफने अपने बापसे कहा कि ऐ बाप मेरे, मैंने एक स्वप्नमें देखा ॥ मं० ३। सि० १२। सू०। १२। आ० ४ से ५६ तक ॥

समीक्षक—इस प्रकरणमें पिता पुत्रका संवादरूप किस्सा कहानी भरी है इसलिये कुरान ईश्वरका बनाया नहीं किसी मनुष्यने मनुष्योंका इतिहास लिख दिया है ॥ ६३॥

६४—अल्लाह वह है कि जिसने खड़ा किया आसमानको विना खम्भेके देखते हो तुम उसको फिर ठहरा ऊपर अर्शके आज्ञा वर्त्तनेवाला किया सूरज और चांदको ॥ और वही है जिसने बिछाया पृथिवीको ॥ उतारा आसमानसे पानी बस बहे नाले साथ अन्दाज अपनेके अल्लाह खोलता है भोजनको वास्ते जिसके चाहे और तङ्ग करता है॥ मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २।३। १७। २६॥

समीक्षक—मुसलमानोंका खुदा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था जो जानता तो गुरुत्व न होनेसे आसमानको खम्भे लगानेकी कथा कहानी कुछ भी न लिखता यदि खुदा अर्शरूप एक स्थानमें रहता है तो वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक नहीं हो सकता। और जो खुदा मेघविद्या जानता तो आकाशसे पानी उतारा लिख पुनः यह क्यों न लिखा कि पृथिवीसे पानी ऊपर चढ़ाया इससे निश्चय हुआ कि कुरानका बनानेवाला मेघकी विद्याको भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कामोंके सुख दुःख देता है तो पक्षपाती अन्यायकारी

निरक्षरभट्ट है ॥ ६४ ॥

६५—कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्यको रुजू करता है ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतानमें क्या भेद हुआ ? जब कि शैतान दूसरोंको गुमराह अर्थात् बहकानेसे बुरा कहता है तो खुदा भी वैसा ही काम करनेसे बुरा शैतान क्यों नहीं ? और बहकानेके पापसे दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये ? ॥६५॥

६६—इसी प्रकार उतारा हमने इस कुरानको अर्बी जो पक्ष करेगा तू उनकी इच्छाका पीछे इसकें कि आई तेरे पास विद्यासे ॥ बस सिवाय इसके नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम पहुंचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७॥

समीक्षक—कुरान किधरकी ओरसे उतारा ? क्या खुदा ऊपर रहता है ? जो यह बात सच है तो वह एकदेशी होनेसे ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है, पैग़ाम पहुंचाना हल्कारेका काम है और हल्कारेकी आवश्यकता उसीको होती है जो मनुष्यवत् एकदेशी हो और हिसाब लेना देना भी मनुष्यका काम है ईश्वरका नहीं क्योंकि वह सर्वज्ञ है यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्यका बनाया कुरान है ॥ ६६ ॥

६७—और किया सूर्य चन्द्रको सदैव फिरनेवाले ॥ निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करनेवाला है ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३। ३४॥

समीक्षक—क्या चन्द्र सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती ? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षोंका दिन रात होवे। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करनेवाला है तो कुरानसे शिक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करनेका है तो उनमें पुण्यात्मा कभी न होगा और संसारमें पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं

इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तककी नहीं हो सकती ॥ ९७ ॥

९८—बस ठीक करूं मैं उसको और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनीसे बस गिरपड़ो वास्ते उसके सिज़दा करते हुए ॥ कहा ऐ रब मेरे इस कारण कि गुमराह किया तू ने मुझको अवश्य जीनत दूंगा मैं वास्ते उनके बीच पृथिवीके और गुमराह करूंगा ॥ मं० ३ । सि० १४। सू० १५ । आ० ३९ से ४६ तक ॥

समीक्षक—जो खुदाने अपनी रूह आदम साहबमें डाली तो वह भी खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करनेमें अपना शरीक क्यों किया ? जब शैतानको गुमराह करनेवाला खुदा ही है तो वह शैतानका भी शैतान बड़ा भाई गुरु क्यों नहीं ? क्योंकि तुम लोग बहकानेवालेको शैतान मानते हो तो खुदाने भी शैतानको बहकाया और प्रत्यक्ष शैतानने कहा कि मैं बहकाऊंगा फिर भी उसको दण्ड देकर क़ैद क्यों न किया ? और मार क्यों न डाला ? ॥ ९८ ॥

९९—और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मतके पैग़म्बर ॥ जब चाहते हैं हम उसको यह कहते हैं हम उसको हो बस हो जाती है ॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १६ । आ० ३५ । ३९ ॥

समीक्षक—जो सब कौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं तो सब लोग जो कि पैग़म्बरकी राय पर चलते हैं वे काफिर क्यों ? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैग़म्बरके ? यह सर्वथा पक्षपातकी बात है जो सब देशमें पैग़म्बर भेजे तो आर्य्यावर्त्तमें कौनसा भेजा इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं । जब खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा वह जड़ कभी नहीं सुन सकती, खुदाका हुक्म क्योंकर बन सकेगा ? और सिवाय खुदाके दूसरी चीज नहीं मानते तो सुना किसने ? और हो कौनसा गया ? यह सब अविद्याकी बातें हैं ऐसी बातोंको अनजान लोग मान लेते हैं ॥ ९९ ॥

१००—और नियत करते हैं वास्ते अल्लाहके बेटियां पवित्रता है

उसको और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें॥ क़सम अल्लाहकी अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर॥ मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५६। ६२॥

समीक्षक—अल्लाह बेटियोंसे क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्यको चाहियें, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं? इसका क्या कारण है? बताइये? कसम खाना झूठोंका काम है ख़ुदाकी बात नहीं क्योंकि बहुधा संसारमें ऐसा देखनेमें आता है कि जो झूठा होता है वही क़सम खाता है सच्चा सौगन्ध क्यों खावे १००॥

१०१—ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाहने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आंखों उनकीके और ये लोग वे हैं बेख़बर॥ और पूरा दिया जावेगा हर जीवको जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे॥ मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ११५। ११८॥

समीक्षक—जब ख़ुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे विचारे विना अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिया यह कितना बड़ा अपराध है? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उसको दिया जायगा न्यूनाधिक नहीं, भला उन्होंने स्वतन्त्रतासे पाप किये ही नहीं किन्तु ख़ुदाके करानेसे किये पुनः उनका अपराध ही न हुआ उनको फल न मिलना चाहिये इसका फल ख़ुदाको मिलना उचित है और जो पूरा दिया जाता है तो क्षमा किस बातकी की जाती है और जो क्षमा की जाती है तो न्याय उड़ जाता है ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वरका कभी नहीं हो सकता किन्तु निर्बुद्धि छोकरोंका होता है॥१०१॥

१०२—और किया हमने दोज़ख़को वास्ते काफ़िरोंके घेरने वाला स्थान॥ और हर आदमीको लगा दिया हमने उसको अमलनामा उसका बीच गर्दन उसकीके और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क़यामतके एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ॥ और बहुत मारे हमने कुरनूनसे पीछे नूहके॥ मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ७। १२। १६॥

समीक्षक—यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो कुरान, पैग़म्बर और कुरानके कहे खुदा सातवें आसमान और नमाज़ आदिको न मानें और उन्हींके लिये दोज़ख़ होवे तो यह बात केवल पक्षपातकी ठहरे क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्यके मानने वाले सब बुरे कभी हो सकते हैं ? यह बड़ी लड़कपनकी बात है कि प्रत्येककी गर्दनमें कर्मपुस्तक, हम तो किसी एककी भी गर्दनमें नहीं देखते। यदि इसका प्रयोजन कर्मोंका फल देना है तो फिर मनुष्योंके दिलों नेत्रों आदि पर मोहर रखना और पापोंका क्षमा करना क्या खेल मचाया है ? क़यामतकी रातको किताब निकालेगा खुदा तो आज कल वह किताब कहां है ? क्या साहूकारकी बही समान लिखता रहता है ? यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्व जन्म नहीं तो जीवोंके कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्मकी रेखा क्या लिखी ? और जो विना कर्मके लिखा तो उनपर अन्याय किया क्योंकि विना अच्छे बुरे कर्मोंके उनको दुःख सुख क्यों दिया ? जो कहो कि खुदाकी मरजी, तो भी उसने अन्याय किया, अन्याय उसको कहते हैं कि विना बुरे भले कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना और उसी समय कि खुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा ? जो खुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवोंको विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी होगया जो अन्यायकारी होता है वह खुदा ही नहीं हो सकता ॥ १०२ ।

१०३—और दिया हमने समूदको ऊंटनी प्रमाण ॥ और बहका जिसको बहका सके ॥ जिस दिन बुलावेंगे हम सब लोगोंको साथ पेशवाओं उनकेके बस जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच दाहने हाथ उसके के ॥ मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५७। ६२। ६६ ॥

समीक्षक—वाहजी जितनी खुदाकी आश्चर्य निशानी हैं उनमें से एक ऊंटनी भी खुदाके होनेमें प्रमाण अथवा परीक्षामें साधक है यदि खुदाने शैतानको बहकानेका हुक्म दिया तो खुदा ही शैतानका

सरदार और सब पाप करनेवाला ठहरा ऐसेको खुदा कहना केवल कम समझकी बात है। जब क़यामतको अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने करानेके लिये पैग़म्बर और उनके उपदेश माननेवालोंको खुदा बुलावेगा तो जबतक प्रलय न होगा तबतक सब दौरासुपुर्द रहेंगे और दौरासुपुर्द सबको दुःखदायक है जबतक न्याय न किया जाय। इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीशका उत्तम काम है यह तो पोपांबाईका न्याय ठहरा जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जबतक पचास वर्ष तकके चोर और साहूकार इकट्ठे न हों तबतक उनको दंड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया ऐसा न्यायका काम नहीं हो सकता न्याय तो वेद और मनुस्मृति देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने २ कर्मानुसार दंड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं दूसरा पैग़म्बरोंको गवाहीके तुल्य रखनेसे ईश्वरकी सर्वज्ञताकी हानि है, भला ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तकका उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है? कभी नहीं ॥ १०३ ॥

१०४—ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशः रहनेके, चलती हैं नीचे उनकेसे नहरें गहिना पहिराये जावेंगे बीच उसके कंगन सोनेके से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाहीकीसे और ताफ़्तेकीसे तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तोंके अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठानेकी ॥ मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३० ॥

समीक्षक—वाहजी वाह! क्या कुरानका स्वर्ग है जिसमें बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्दके लिये हैं भला कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे तो यहांसे वहां मुसलमानोंकी बहिश्तमें अधिक कुछ भी नहीं है सिवाय अन्यायके, वह यह है कि कर्म उनके अन्तवाले और फल उनके अनन्त और जो मीठा नित्य खावे तो थोड़े दिनमें विषके समान प्रतीत होता है जब सदा वे सुख भोगेंगे तो उनको सुख ही दुःखरूप होजायगा इसलिये महाकल्पपर्यन्त मुक्ति सुख भोगके पुन-

जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है ॥ १०४ ॥

१०५—और यह बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने और हमने उनके मारनेकी प्रतिज्ञा स्थापन की ॥ मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५७ ॥

समीक्षक—भला सब बस्ती भर पापी भी होसकती है। और पीछेसे प्रतिज्ञा करनेसे ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तो प्रतिज्ञाकी पहिले नहीं जानता था इससे दयाहीन भी ठहरा ॥ १०५ ॥

१०६—और वह जो लड़का बस थे मा बाप उसके ईमान वाले बस डरे हम यह कि पकड़ उनको सरकशीमें और कुफ्रमें ॥ यहांतक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य्यकी पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़के। कहा उनने ऐजुलकरनैन निश्चय याजूज माजूज फिसाद करनेवाले हैं बीच पृथिवीके॥ मं० ४। सि० १६। सू० १८। आ० ७८। ८४। ९२ ॥

समीक्षक—भला यह खुदाकी कितनी बेसमझ है! शङ्कासे डरा कि लड़कोंके मा बाप कहीं मेरे मार्गसे बहका कर उलटे न कर दिये जावें, यह कभी ईश्वरकी बात नहीं हो सकती। अब आगेकी अविद्याकी बात देखिये कि इस किताबका बनानेवाला सूर्य्यको एक झीलमें रात्रिको डूबा जानता है फिर प्रातःकाल निकलता है भला सूर्य्य तो पृथिवीसे बहुत बड़ा है वह नदी वा झील वा समुद्रमें कैसे डूब सकेगा इससे यह विदित हुआ कि कुरानके बनानेवालेको भूगोल खगोलकी विद्या नहीं थी जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिख देता? और इस पुस्तकके मानने वालोंको भी विद्या नहीं है जो होती तो ऐसी मिथ्या बातोंसे युक्त पुस्तकको क्यों मानते? अब देखिये खुदाका अन्याय आप ही पृथिवीको बनानेवाला राजा न्यायाधीश है और याजूज माजूजको पृथिवीमें फ़साद भी करने देता है वह ईश्वरताकी बातसे विरुद्ध है इससे ऐसी पुस्तकको जङ्गली लोग माना करते हैं

विद्वान नहीं ॥ १०६ ॥

१०७—और याद करो बीच किताबके मर्यमको जब जा पड़ी लोगों अपनेसे मकान पूर्वीमें ॥ बस पड़ा उनसे इधर पर्दा बस भेजा हमने रूह अपनीको अर्थात् फ़रिश्ता बस सूरत पकड़ी वास्ते उसके आदमी पुष्टकी ॥ कहने लगी निश्चय मैं शरण पकड़ती हूं रहमानकी तुझसे जो है तूं परहेज़गार ॥ कहने लगा सिवाय इसके नहीं कि मैं भेजा हुआ हूं मालिक तेरेकेसे तो कि दे जाऊं मैं तुझको लड़का पवित्र ॥ कहा कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का नहीं हाथ लगाया मुझको आदमीने नहीं मैं बुरा काम करनेवाली ॥ बस गर्भित होगई साथ उसके और जापड़ी साथ उसके मकान दूर अर्थात् जंगलमें ॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० १९ । आ० १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २१ ॥

समीक्षक—अब बुद्धिमान विचारलें कि फ़रिश्ते सब खुदाकी रूह हैं तो खुदासे अलग पदार्थ नहीं हो सकते दूसरा यह अन्याय कि वह मर्यम कुमारीके लड़का होना किसीका संग करना नहीं चाहती थी परन्तु खुदाके हुक्मसे फ़रिश्तेने उसको गर्भवती किया यह न्यायसे विरुद्ध बात है। यहां अन्य भी असभ्यताकी बातें बहुत लिखी हैं उनको लिखना उचित नहीं समझा ॥ १०७ ॥

१०८—क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानोंको ऊपर काफ़िरोंके बहकाते हैं उनको बहकाने कर मं० ४ । सि० १६ । सू० १९ । आ० ८१ ॥

समीक्षक—जब खुदा ही शैतानोंको बहकानेके लिये भेजता है तो बहकाने वालोंका कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता और न शैतानोंको क्योंकि यह खुदाके हुक्मसे सब होता है इसका फल खुदाको होना चाहिये, जो सच्चा न्यायकारी है तो उसका फल दोज़ख आपही भोगे और जो न्यायको छोड़के अन्यायको करे तो अन्यायकारी हुआ अन्यायकारी ही पापी कहाता है ॥ १०८ ॥

१०९—और निश्चय क्षमा करनेवाला हूं वास्ते उस मनुष्यके तोबाः

की और ईमान लाया कर्म किये अच्छे फिर मार्ग पाया ॥ मं० ४। सि० १६। सू० २०। आ० ७८॥

समीक्षक—जो तोबा:से पाप क्षमा करनेकी बात कुरानमें है यह सबको पापी करनेवाली है क्योंकि पापियोंको इससे पाप करनेका साहस बहुत बढ़ जाता है इससे यह पुस्तक और इसका बनानेवाला पापियोंको पाप करानेमें हौंसला बढ़ानेवाले हैं इससे यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इसमें कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता ॥ १०६ ॥

११०—और किये हमने बीच पृथिवीके पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे ॥ मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ३०॥

समीक्षक—यदि कुरानका बनानेवाला पृथिवीका घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ोंके धरनेसे पृथिवी नहीं हिलती शङ्का हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती इतने कहने पर भी भूकम्पमें क्यों डिग जाती है ॥ ११० ॥

१११—और शिक्षा दी हमने उस औरतको और रक्षाकी उसने अपने गुह्य अंगोंकी बस फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनीको ॥ मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ८८॥

समीक्षक—ऐसी अश्लील बातें खुदाकी पुस्तकमें खुदाकी क्या और सभ्य मनुष्यकी भी नहीं होतीं. जब कि मनुष्योंमें ऐसी बातोंका लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वरके सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी बातोंसे कुरान दूषित होता है यदि अच्छी बात होती तो अतिप्रशंसा होती जैसे वेदोंकी ॥ १११ ॥

११२—क्या नहीं देखा तूने कि अल्लाहको सिजदा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवीके हैं सूर्य्य और चन्द्र तारे और पहाड़ वृक्ष और जानवर ॥ पहिनाये जायेंगे बीच उसके कङ्गन सोनेसे और मोती और पहिनावा उनका बीच उसके रेशमी है ॥ और पवित्र रख घर मेरेको वास्ते गिर्द फिरनेवालोंके और खड़े रहनेवालोंके ॥

फिर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर क़दीमके ॥ तो कि नाम अल्लाहका याद करें ॥ मं० ४ । सि० १७ । सू० २२ । आ० १९ । २३ । २५ । २८ । ३३ ॥

समीक्षक—भला जो जड़ वस्तु है परमेश्वरको जान ही नहीं सकते फिर वे उसकी भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इससे यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किसी भ्रान्तका बनाया हुआ दीखता है वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है जहां सोने मोतीके गहने और रेशमी कपड़े पहिरनेको मिलें यह बहिश्त यहांके राजाओंके घरसे अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेश्वरका घर है तो वह उसी घरमें रहता भी होगा फिर बुतपरस्ती क्यों न हुई? और दूसरे बुतपरस्तोंका खण्डन क्यों करते हैं? जब खुदा भेट लेता अपने घरकी परिक्रमा करनेकी आज्ञा देता है और पशुओंको मरवाके खिलाता है तो यह खुदा मन्दिर वाले और भैरव, दुर्गाके सदृश हुआ और महाबुतपरस्तीका चलाने वाला हुआ क्योंकि मूर्त्तियोंसे मस्जिद बड़ा बुत है इससे खुदा और मुसलमान बड़े बुतपरस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुतपरस्त हैं ॥ ११२ ॥

११३—फिर निश्चय तुम दिन क़यामतके उठाये जाओगे ॥ मं० ४ । सि० १८ । सू० २३ । आ० १६ ॥

समीक्षक—क़यामत तक मुर्दे क़बरमें रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हींमें रहेंगे तो सड़े हुये दुर्गन्धरूप शरीरमें रह कर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे? यह न्याय अन्याय है और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करनेसे खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे ॥ ११३ ॥

११४—उस दिनकी गवाही देवेंगे ऊपर उनके ज़बानें उनकी और हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तुके कि थे करते ॥ अल्लाह नूर है आसमानोंका और पृथिवीका नूर उसके कि मानिन्द ताककी है बीच उसके दीप हो और बीच दीप कंदील शीशोंके हैं वह कंदील मानो

कि तारा है चमकता रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतूनके से न पूर्वकी ओर है न पश्चिमकी समीप है तेल उसका रोशन हो जावे जो न लँगे ऊपर रोशनीके मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपनेके जिसको चाहता है॥ मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २३। ३४॥

समीक्षक—हाथ पग आदि जड़ होनेसे गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होनेसे मिथ्या है क्या खुदा आग बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वरमें नहीं घट सकता हां किसी साकार वस्तुमें घट सकता है॥ ११४॥

११५—और अल्लाहने उत्पन्न किया हर जानवरको पानीसे बस कोई उनमेंसे वह है कि जो चलता है पेट अपनेके॥ और जो कोई आज्ञा पालन करे अल्लाहकी रसूल उसकेकी॥ कह आज्ञा पालन करो खुदाकी रसूल उसकेकी॥ और आज्ञा पालन करो रसूलकी ताकि दया किये जाओ॥ मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४४। ५१। ५३। ५५॥

समीक्षक—यह कौनसी फ़िलासफ़ी है कि जिन जानवरोंके शरीरमें सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानीसे उत्पन्न किया? यह केवल अविद्याकी बात है जब अल्लाहके साथ पैग़म्बरकी आज्ञा पालन करना होता है तो खुदाका शरीक होगया वा नहीं? यदि ऐसा है तो क्यों खुदाको लाशरीक कुरानमें लिखा और कहते हो?॥ ११५॥

११६—और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदलीके और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते बस मत कहा मान काफ़िरोंका और झगड़ा कर उससे साथ झगड़ा बढ़ा॥ और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उनकीको भलाइयोंसे॥ और जो कोई तोबाः करे और कर्म करे अच्छे बस निश्चय आता है तर्फ़ अल्लाहकी॥ मं० ४ सि० १९। सू० २५। आ० २४। ४९। ६७। ६८॥

समीक्षक—यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बदलोंके साथ फट जावे यदि आकाश कोई मूर्तिमान पदार्थ हो तो फट

सकता है। यह मुसलमानोंका कुरान शांतिभङ्ग कर गदर झगड़ा मचाने वाला है इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इसको नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्यका अदला बदला हो जाय! क्या यह तिल और उड़दकीसो बात जो पलटा हो जावे? जो तोबाः करनेसे पाप छूटे और ईश्वर मिले तो कोई भी पाप करनेसे न डरे इसलिये ये सब बातें विद्यासे विरुद्ध हैं॥ ११६॥

११७—वही की हमने तर्फ़ मूसाकी यह कि ले चल रातको बन्दों मेरेको निश्चय तुम पीछा किये जाओगे॥ बस भेजे लोग फिरोनने बीच नगरोंके जमा करनेवाले॥ और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुझको है बस वही मार्ग दिखलाता है॥ और वह जो खिलाता है मुझको पिलाता है मुझको और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे अपराध मेरा दिन क़यामतके॥ मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५०। ५१। ७६। ७७। ८०॥

समीक्षक—जब खुदाने मूसाकी ओर वही भेजी पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहेबकी ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वरकी बात सदा एकसी और बेभूल होती है। और उसके पीछे कुरान तक पुस्तकोंका भेजना पहिली पुस्तकको अपूर्ण भूलयुक्त माना जाएगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं तो वह कुरान झूठा होगा। चारोंका जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं उनका सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता यदि खुदाने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं तो वे मर भी जायंगे अर्थात् उनका कभी अभाव भी होगा? जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियोंको खिलाता पिलाता है तो किसीको रोग होना न चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिये, पक्षपातसे एकको उत्तम और दूसरेको निकृष्ट जैसा कि राजा और कङ्गलेको श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है तो रोग ही न होना चाहिये परन्तु मुसलमान आदिको भी रोग होते हैं, यदि खुदा ही रोग छुड़ाकर आराम करने वाला है,

तो मुसलमानोंके शरीरमें रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुदा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है तो मुसलमानोंके शरीरमें रोग क्यों रहते हैं। यदि वही मारता और जिलाता है तो उसी खुदाको पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तरके कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उसका कुछ भी अपराध नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय क़यामतकी रातमें करता है तो खुदा पाप बढ़ाने वाला होकर पापयुक्त होगा यदि क्षमा नहीं करता तो यह कुरानकी बात झूठी होनेसे बच नहीं सकती है॥ ११७॥

११८—नहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चोंसे॥ कहा यह ऊंटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक वार॥ मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५०। १५१॥

समीक्षक—भला इस बातको कोई मान सकता है कि पत्थरसे ऊंटनी निकले वे लोग जङ्गली थे कि जिन्होंने इस बातको मान लिया और ऊंटनीकी निशानी देनी केवल जङ्गली व्यवहार है ईश्वरकृत नहीं यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होतीं॥ ११८॥

११९—ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूं ग़ालिब। और डाल दे असा अपना बस जब कि देखा उसको हिलता था मानो कि वह सांप है ऐ मूसा मत डर निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर॥ अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़ेका। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर॥ मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९। १०। २६। ३१॥

समीक्षक—और भी देखिये अपने मुख आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है, अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुषका भी काम नहीं तो खुदाका क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजालका लटका दिखला जङ्गली मनुष्योंको वश कर आप जंगलस्थ खुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वरके पुस्तकमें कभी नहीं हो सकती यदि वह बड़े

अर्श अर्थात् सातवें आसमानका मालिक है तो वह एकदेशी होनेसे ईश्वर नहीं हो सकता है, यदि सरकशी करना बुरा है तो खुदा और मुहम्मद साहेबने अपनी स्तुतिसे पुस्तक क्यों भर दिये? मुहम्मद साहेबने अनेकोंको मारे इससे सरकशी हुई वा नहीं? यह कुरान पुनरुक्त और पूर्वापर विरुद्ध बातोंसे भरा हुआ है ॥ ११९ ॥

१२०—और देखेगा तू पहाड़ोंको अनुमान करता है उनको जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलोंकी कारीगरी अल्लाह कि जिसने दृढ़ किया हर वस्तुको निश्चय वह खबरदार है उस वस्तुके कि करते हो ॥ मं० ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८८ ॥

समीक्षक—बदलोंके समान पहाड़का चलना कुरान बनानेवालोंके देशमें होता होगा अन्यत्र नहीं और खुदाकी खबरदारी शैतान बागीको न पकड़ने और न दंड देनेसे ही विदित होती है जिसने एक बागीको भी अबतक न पकड़ पाया न दंड दिया इससे अधिक असावधानी क्या होगी? ॥ १२० ॥

१२१—बस दुष्ट मारा उसको मूसाने बस पूरी की आयु उसकी कहा ऐ रब मेरे निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनीको बस क्षमा कर मुझको बस क्षमा कर दिया उसको निश्चय वह क्षमा करनेवाला दयालु है ॥ और मालिक तेरा उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है ॥ मं० ५। सि० २०। सू० २८। आ० १४॥ १५। ६६ ॥

समीक्षक—अब अन्य भी देखिये मुसलमान और ईसाइयोंके पैगम्बर और खुदा कि मूसा पैगम्बर मनुष्यकी हत्या किया करे और खुदा क्षमा किया करे ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं? क्या अपनी इच्छा ही से जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है? क्या उसने अपनी इच्छा ही से एकको राजा दूसरेको कङ्गाल और एकको विद्वान् और दूसरेको मूर्ख आदि किया है? यदि ऐसा है तो न कुरान सत्य और न न्यायकारी होनेसे खुदा ही हो सकता है ॥ १२१ ॥

१२२—और आज्ञा दी हमने मनुष्यको साथ मा बापके भलाई करना और जो झगड़ा करें तुझसे दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तुको कि नहीं वास्ते तेरे साथ उसके ज्ञान बस मत कहा मान उन दोनोंका तर्फ मेरी है॥ और अवश्य भेजा हमने नूहको तर्फ कौम उसके कि बस रहा बीच उनके हज़ार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम॥ मं० ५। सि० २०—२१। सू० २९। आ० ७। १३॥

समीक्षक—माता पिताकी सेवा करना अच्छा ही है जो खुदाके साथ शरीक करनेके लिये कहे तो उनका कहा न मानना यह भी ठीक है परन्तु यदि माता पिता मिथ्याभाषणादि करनेकी आज्ञा देवे तो क्या मान लेना चाहिये? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है। क्या नूह आदि पैग़म्बरों ही को खुदा संसारमें भेजता है? तो अन्य जीवोंको कौन भेजता है? यदि सबको वही भेजता है तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं? और प्रथम मनुष्योंकी हज़ार वर्षकी आयु होती थी तो अब क्यों नहीं होती? इसलिये यह बात ठीक नहीं १२२

१२३—अल्लाह पहिली बार करता है उत्पत्ति फिर दूसरी बार करेगा उसको फिर उसीकी ओर फेर जाओगे॥ और जिस दिन वर्षा अर्थात् खड़ी होगी क़यामत निराश होंगे पापी॥ बस जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग़के सिंगार किये जावेंगे॥ और जो भेजदें हम एक बाव बस देखे उस खेतीको पीली हुई॥ इसी प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगोंके कि नहीं जानते॥ मं० ५। सि० २१। सू० ३०। आ० १०। ११। १४। ५०। ५८॥

समीक्षक—यदि अल्लाह दो बार उत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्तिकी आदि और दूसरी बारके अन्तमें निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो बार उत्पत्तिके पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा यदि न्याय करनेके दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है परन्तु इसका प्रयोजन यह तो कहीं

नहीं है कि मुसलमानोंके सिवाय सब पापी समझ कर निराश किये जायं ? क्योंकि कुरानमें कई स्थानोंमें पापियोंसे औरोंका ही प्रयोजन है। यदि बगीचेमें रखना और शृङ्गार पहिराना ही मुसलमानोंका स्वर्ग है तो इस संसारके तुल्य हुआ और वहां माली और सुनार भी होंगे अथवा खुदा ही माली और सुनार आदिका काम करता होगा यदि किसीको कम गहना मिलता होगा तो चोरी भी होती होगी और बहिश्तसे चोरी करनेवालोंको दोज़खमें भी डालता होगा, यदि ऐसा होता होगा तो सदा बहिश्तमें रहेंगे यह बात झूठ हो जायगी, जो किसानोंकी खेती पर भी खुदाकी दृष्टि है सो यह विद्या खेती करनेके अनुभव ही से होती है और यदि मानाजाय कि खुदाने अपनी विद्यासे सब बात जानली हैं तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अल्लाहने जीवोंके दिलों पर मोहर लगा पाप कराया तो उस पापका भागी वही होवे जीव नहीं हो सकते जैसे जय पराजय सेनाधीशका होता है वैसे ये सब पाप खुदा ही को प्राप्त होवें ॥ १२३ ॥

१२४—ये आयतें हैं किताब हिक्मतवालेकी। उत्पन्न किया आसमानोंको विना सुतून अर्थात् खंभेके देखते हो तुम उसको और डाले बीच पृथिवीके पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे॥ क्यों नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रातको बीच दिनके और प्रवेश कराता है कि दिनको बीच रातके॥ क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दर्य्याके साथ निआमतों अल्लाहके तो कि दिखलावे तुमको निशानियां अपनी ॥ मं० ५। सि० २१। सू० ३१। आ० १। ९। २८। ३०॥

समीक्षक—वाहजी वाह! हिक्मतवाली किताब! कि जिसमें सर्वथा विद्यासे विरुद्ध आकाशकी उत्पत्ति और उसमें खंभे लगानेकी शंका और पृथिवीको स्थिर रखनेके लिये पहाड़ रखना! थोड़ी सी विद्या वाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता और हिक्मत देखो कि जहां दिन है वहां रात नहीं और जहां रात है वहां

दिन नहीं उसको एक दूसरेमें प्रवेश कराना लिखता है यह बड़े अविद्वानों ी बात है इसलिये यह कुरान विद्याकी पुस्तक नहीं हो सकती क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका मनुष्य और क्रिया कौशलादिसे चलती है वा खुदाकी कृपासे यदि लोहे वा पत्थरोंकी नौका बनाकर समुद्रमें चलावें तो खुदाकी निशानी डूब जाय वा नहीं इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वरका बनाया हुआ हो सकता है ॥ १२४ ॥

१२५—तद्वीर करता है कामकी आसमानसे तर्फ पृथिवीकी फिर चढ़जाता है तर्फ उसकी बीच एक दिनके कि है अवधि उसको सहस्र वर्ष उन वर्षोंसे कि गिनते हो तुम ॥ यह है जाननेवाला गैबका और प्रत्यक्षका ग़ालिब दयालु फिर पुष्ट किया उसको और फूंका बीच उसके रूह अपनीसे कह कब्ज करेगा तुमको फ़रिश्ता मौतका वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे ॥ और जो चाहते हम अवश्य देते हम हरएक जीवको शिक्षा उसकी परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओरसे कि अवश्य भरूंगा मैं दोज़खको जिनोंसे और आदमियोंसे इकट्ठे ॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३२ । आ० ४ । ५ । ७ । ६ । ११ ॥

समीक्षक—अब ठीक सिद्ध होगया कि मुसलमानोंका खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है क्योंकि जो व्यापक होता तो एक देशसे प्रबन्ध करना और उतरना चढ़ना नहीं हो सकता यदि खुदा फ़रिश्तेको भेजता है तो भी आप एकदेशी होगया । आप आसमान पर टंगा बैठा है। और फ़रिश्तोंको दौड़ाता है। यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़दें वा किसी मुर्देको छोड़ जायं तो खुदाको क्या मालूम हो सकता है ? मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो सो तो है ही नहीं होता तो फरिश्तोंके भेजने तथा कई लोगोंकी कई प्रकारसे परीक्षा लेनेका क्या काम था ? और एक हज़ार वर्षोंमें तथा आने जाने प्रबन्ध करनेसे सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौतका फ़रिश्ता है तो उस फरिश्तेका मारने वाला कौनसा मृत्यु है ? यदि

वह नित्य है तो अमरपनमें खुदाके बराबर शरीक हुआ, एक फरिश्ता एक समयमें दोज़ख भरनेके लिये जीवोंको शिक्षा नहीं कर सकती और उनको विना पाप किये अपनी मर्जीसे दोज़ख भरके उनको दुःख देकर तमाशा देखता है तो वह खुदा पापी अन्यायकारी और दयाहीन है। ऐसी बातें जिस पुस्तकमें हों न वह विद्वान् और ईश्वरकृत और जो दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता ॥१२५॥

१२६—कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुमको जो भागो तुम मृत्यु वा क़तलसे ॥ ऐ बीबियो नबीकी जो कोई आवे तुममेंसे निर्लज्जता प्रत्यक्षके दुगुणा किया जावेगा वास्ते उसके अज़ाब और है यह ऊपर अल्लाहके सहल ॥ मं० ५ सि० २१। सू० ३३। आ० १६। ३०॥

समीक्षक—यह मुहम्मद साहेबने इसलिये लिखा लिखवाया होगा कि लड़ाईमें कोई न भागे हमारा विजय होवे मरनेसे भी न डरे ऐश्वर्य बढ़े मज़हब बढ़ा लेवें? और यदि बीबी निर्लज्जतासे न आवे तो क्या पैग़म्बर साहेब निर्लज्ज होकर आवें? बीबियोंपर अज़ाब हो, और पैग़म्बर साहेब पर अज़ाब न होवे यह किस घरका न्याय है ॥१२६॥

१२७—और अटकी रहो बीच घरों अपनेके आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूलकी सिवाय इसके नहीं ॥ बस जब अदा करली जैदने हाजित उससे ब्याह दिया हमने तुमसे उसको ताकि न होवे ऊपर ईमानवालोंके तंगी बीच बीबियोंसे लेपालकों उनके के जब अदा करलें उनसे हाजित और है आज्ञा खुदाकी कीगई ॥ नहीं है ऊपर नबीके कुछ तंगी बीच वस्तुके ॥ नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्दोंका और हलालकी स्त्री ईमानवाली जो देवे विना मिहरके जान अपनी वास्ते नबीके ॥ ढील देवे तू जिसको चाहे उनमेंसे और जगह देवे तर्फ अपनी जिसको चाहे नहीं पाप ऊपर तेरे ॥ ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरोंमें पैग़म्बरके ॥ मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३। ३७। ३८। ४०। ४७। ४८। ५०॥

समीक्षक—यह बड़े अन्यायकी बात है कि स्त्री घरमें कैदके समान

रहे और पुरुष खुले रहें, क्या स्त्रियोंका चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देशमें भ्रमण करना, सृष्टिके अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा ? इसी अपराधसे मुसलमानोंके लड़के विशेषकर सयलानी और विषयी होते हैं अल्लाह और रसूलकी एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न २ विरुद्ध ? यदि एक है तो दोनोंकी आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न २ विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी ! एक खुदा दूसरा शैतान हो जायगा। और शरीक भी होगा ! वाह कुरानका खुदा और पैग़म्बर तथा कुरानको ! जिसे दूसरेका मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे यदि न होते तो (लेपालक) बेटेकी स्त्रीको जो पुत्रकी स्त्री थी अपनी स्त्री क्यों कर लेते ? और फिर ऐसी बातें करनेवालेका खुदा भी पक्षपाती बना और अन्यायको न्याय ठहराया। मनुष्योंमें जो जंगली भी होगा वह भी बेटेकी स्त्रीको छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्यायकी बात है कि नबीको विषयासक्तिकी लीला करनेमें कुछ भी अटकाव नहीं होता ! यदि नबी किसीका बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किसका था ? और क्यों लिखा ? यह उसी मतलबकी बात है कि जिससे बेटेकी स्त्रीको भी घरमे डालनेसे पैग़म्बर साहेब न बचे अन्यसे क्योंकर बचे होंगे ? ऐसी चतुराईसे भी बुरी बातमें निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबीसे प्रसन्न होकर निकाह करना चाहे तो भी हलाल है ! और यह महा अधर्मकी बात है कि नबी तो जिस स्त्रीको चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेबकी स्त्री लोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड़ सकें ! जैसे पैग़म्बरके घरोंमें अन्य कोई व्यभिचार दृष्टिसे प्रवेश न करें तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसीके घरमें प्रवेश न करें क्या नबी जिस किसीके घरमें चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें ? भला कौन ऐसा हृदयका अन्धा है कि जो इस कुरानको ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेबको

पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वरको परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातोंसे युक्त इस मतको अर्बदेशनिवासी आदि मनुष्योंने मान लिया ! ॥ १२७ ॥

१२८—नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूलको यह कि निकाह करो बीबियों उसकीको पीछे उसके कभी निश्चय यह है समीप अल्लाहके बड़ा पाप ॥ निश्चय जो लोग कि दुःख देते हैं अल्लाहको और रसूल उसके को लानतकी है उनको अल्लाहने ॥ और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानोंको और मुसलमान औरतोंको विना इसके बुरा किया है उन्होंने बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप ॥ लानत मारे जहां पाये जावें पकड़े जावें क़तल किये जावें खूब मारा जाना ॥ ऐ रब हमारे दे उनको द्विगुण अज़ाबसे और लाननसे बड़ी लानत कर ॥ मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५०। ५४। ५५। ५८। ६५॥

समीक्षक—वाह क्या खुदा अपनी खुदाईको धर्मके साथ दिखला रहा है ? जैसे रसूलको दुःख देनेका निषेध करना तो ठीक है परन्तु दूसरेको दुःख देनेमें रसूलको भी रोकना योग्य था सो क्यों न रोका ? क्या किसीके दुःख देनेसे अल्लाह भी दुखी हो जाता है यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता ? क्या अल्लाह और रसूलको दुःख देनेका निषेध करनेसे यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिसको चाहें दुःख देवें ? अन्य सबको दुःख देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानोंकी स्त्रियोंको दुःख देना बुरा है तो इनसे अन्य मनुष्योंको दुःख देना भी अवश्य बुरा है ॥ जो ऐसा न मानें तो उसकी यह बात भी पक्षपातकी है, वाह ग़दर मचानेवाले खुदा और नबी जैसे ये निर्दयी संसारमें हैं वैसे और बहुत थोड़े होंगे जैसा यह कि अन्य लोग जहां पाये जावें मारे जावें पकड़े जावें लिखा है वैसी ही मुसलमानों पर कोई आज्ञा देवे तो मुसलमानोंको यह बात बुरी लगेगी या नहीं ? वाह क्या हिंसक पैग़म्बर आदि हैं कि जो परमेश्वरसे प्रार्थना

करके अपनेसे दूसरोंको दुगुण दुःख देनेके लिये प्रार्थना करना लिखा है यह भी पक्षपात मतलबसिन्धुपन और महा अधर्मकी बात है इससे अबतक भी मुसलमान लोगोंमेंसे बहुतसे शठ लोग ऐसा ही कर्म करनेमें नहीं डरते यह ठीक है कि शिक्षाके विना मनुष्य पशुके समान रहता है ॥ १२८ ॥

१२९—और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओंको बस उठाती हैं बादलोंको बस हांक लेते हैं तर्फ़ शहर मुर्देकी बस जीवित किया हमने साथ उसके पृथिवीको पीछे मृत्यु उसकीके इसी प्रकार क़बरोंमेंसे निकलना है ॥ जिसने उतारा बीच घर सदा रहनेके दया अपनीसे नहीं लगती हमको बीच उसके मेहनत और नहीं लगती बीच उसके मांदगी ॥ मं० ५ । सि० २२ । सू० ३५ । आ० ६ । ३५ ॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी खुदाकी है भेजता है वायुको वह उठाता फिरता है बद्लोंको और खुदा उससे मुर्दोंको जिलाता फिरता है यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वरका काम निरन्तर एकसा होता रहता है जो घर होंगे वे विना बनावटके नहीं हो सकते और जो बनावटका है वह सदा नहीं रह सकता जिसके शरीर है वह परिश्रमके विना दुखी होता और शरीर वाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता जो एक स्त्रीसे समागम करता है वह विना रोगके नहीं बचता तो जो बहुत स्त्रियोंसे विषयभोग करता है उसकी क्या ही दुर्दशा होती होगी इसलिये मुसलमानोंका रहना बहिश्तमें भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता ॥ १२९ ॥

१३०—क़सम है कुरान दृढ़की निश्चय तू भेजे हुओंसे है ॥ ऊपर मार्ग सीधेके उतारा है ग़ालिब दयावान्ने ॥ मं० ५ । सि० २३ । सू० ३६ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब देखिये यह कुरान खुदाका बनाया होता तो वह इसकी सौगन्ध क्यों खाता ? यदि नबी खुदाका भेजा होता तो (लेपालक) बेटेकी स्त्री पर मोहित क्यों होता ? यह कथनमात्र है कि कुरा-

नके माननेवाले सीधे मार्ग पर हैं क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपात रहित न्याय धर्मका आचरण करना आदि है और इससे विपरीतका त्याग करना सो न कुरानमें न मुसलमानोंमें और न इनके खुदामें ऐसा स्वभाव है यदि सब पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहेब होते तो सबसे अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते ? इसलिये जैसी कूंजड़ी अपने बेरोंको खट्टा नहीं बतलाती वैसी यह बात भी है ॥ १३० ॥

१३१—और फूंका जावेगा बीच सूरके बस नागहां वह क़बरोंमेंसे मालिक अपनेकी दौड़ेंगे ॥ और गवाही देवेंगे पांव उनके साथ उस वस्तुके कमाते थे सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तुका यह कि कहता वास्ते उनके कि हो जा बस हो जाता है ॥ मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ४८। ६१। ७८॥

समीक्षक—अब सुनिये ऊटपटांग बातें पग कभी गवाही दे सकते हैं ? खुदाके सिवाय उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी ? किसने सुना ? और कौन बन गया ? यदि न थी तो यह बात झूठी और जो थी तो वह बात जो सिवाय खुदाके कुछ चीज़ नहीं थी और खुदाने सब कुछ बना दिया वह झूठी ॥ १३१ ॥

१३२—फिराया जावेगा उनके ऊपर पियाला शराब शुद्धका ॥ सपेद मज़ा देने वाली वास्ते पीने वालोंके ॥ समीप उनके बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियां सुन्दर आंखों वालियां ॥ मानों कि ये अण्डे हैं छिपाये हुए ॥ क्या बस हम नहीं मरेंगे ॥ और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरोंसे था ॥ जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको ॥ परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहने वालोंमें है ॥ फिर मारा हमने औरोंको ॥ मं० ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४३। ४४। ४६। ४७। ५६। १२६। १२७। १२८। १२९ ॥

समीक्षक—क्योंजी यहां तो मुसलमान लोग शराबको बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्गमें तो नदियांकी नदियां बहती हैं इतना

अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीना छुड़ाया परन्तु यहांके बदले वहां उनके स्वर्गमें बड़ी ख़राबी है! मारे स्त्रियोंके वहां किसीका चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े २ रोग भी होते होंगे! यदि शरीरवाले होते होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे। फिर उनका स्वर्गमें जाना व्यर्थ है॥ यदि लूतको पैगम्बर मानते हो तो जो बाइबलमें लिखा है कि उससे उसकी लड़कियोंने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस बातको भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो तो ऐसेको पैग़म्बर मानना व्यर्थ है और जो ऐसे और ऐसोंके संगियोंको खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुढ़ियाकी कहानी कहने वाला और पक्षपातसे दूसरोंको मारनेवाला खुदा कभी नहीं हो सकता ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घरमें रह सकता है अन्यत्र नहीं॥ १३२॥

१३३—बहिश्तें हैं सदा रहनेकी खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके॥ तकिये किये हुए बीच उनके मंगावेंगे बीच इसके मेवे और पीनेकी वस्तु॥ और समीप होंगी उनके नीचे रखनेवालियां दृष्टि और दूसरोंसे सवायु॥ बस सिजदा किया फ़रिस्तोंने सबने॥ परन्तु शैतानने न माना, अभिमान किया और था काफ़िरोंसे॥ ऐ शैतान किस वस्तुने रोका तुझको यह कि सिजदा करे वास्ते उस वस्तुके कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपनेके क्या अभिमान किया तूने वा था बड़े अधिकार वालोंसे॥ कहा कि मैं अच्छा हूं उस वस्तुसे उत्पन्न किया तूने मुझको आगसे उसको मिट्टीसे॥ कहा बस निकल इन आसमानोंमेंसे बस निश्चय तू चलाया गया है॥ निश्चय ऊपर तेरे लानत है मेरी दिन जज़ा तक॥ कहा ऐ मालिक मेरे ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे॥ कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयोंसे है॥ उस दिन समय ज्ञात तक॥ कहा कि बस क़सम है प्रतिष्ठा तेरी कि अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे॥ मं० ३। सि० २३। सू० ३८। आ० ४२। ४४। ४५। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७।

६८। ६९। ७०। ७१। ७२॥

समीक्षक—यदि वहां जैसे कि कुरानमें बाग बगीचे नहरें मकानादि लिखे हैं वैसे हैं तो वे न सदासे थे न सदा रह सकते हैं क्योंकि जो संयोगसे पदार्थ होता है वह संयोगके पूर्व न था अवश्य भावी वियोगके अन्तमें न रहेगा, जब वह बहिश्त ही न रहेगी तो उसमें रहनेवाले सदा क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि लिखा है कि गादी तकिये मेवे और पीनेके पदार्थ वहां मिलेंगे इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानोंका मज़हब चला उस समय अर्ब देश विशेष धनाढ्य न था इसलिये मुहम्मद साहेबने तकिये आदिकी कथा सुनाकर ग़रीबोंको अपने मतमें फँसा लिया और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां? ये स्त्रियां वहां कहांसे आई हैं? अथवा बहिश्तकी रहने वाली हैं यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहींकी रहने वाली हैं तो क़यामतके पूर्व क्या करती थीं क्या निकम्मी अपनी उमरको बहा रही थीं? अब देखिये खुदाका तेज कि जिसका हुक्म अन्य सब फ़रिश्तोंने माना और आदम साहेबको नमस्कार किया और शैतानने न माना खुदाने शैतानसे पूछा कहा कि मैंने उसको अपने दोनों हाथोंसे बनाया तू अभिमान मत कर इससे सिद्ध होता है कि कुरानका खुदा दो हाथ वाला मनुष्य था इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान कभी नहीं हो सकता और शैतानने सत्य कहा कि मैं आदमसे उत्तम हूं इसपर खुदाने गुस्सा क्यों किया? क्या आसमान ही में खुदाका घर है? पृथिवीमें नहीं? तो काबेको खुदाका घर प्रथम क्यों लिखा? भला परमेश्वर अपनेमेंसे वा सृष्टिमेंसे अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब परमेश्वरकी है इससे विदित हुआ कि कुरानका खुदा बहिश्तका ज़िम्मेदार था खुदाने उसको लानत धिक्कार दिया और कैद कर लिया और शैतानने कहा कि हे मालिक! मुझको क़यामत तक छोड़ दे खुदाने खुशामदसे क़यामतके दिन तक छोड़ दिया जब शैतान छूटा तो खुदासे कहता है कि अब मैं खूब बहकाऊंगा और ग़दर मचाऊंगा

तब खुदाने कहा कि जितनेको तूं बहकावेगा मैं उनको दोज़खमें डाल दूंगा और तुझको भी। अब सज्जन लोगो! विचारिये कि शैतानको बहकानेवाला खुदा है वा आपसे वह बहका? यदि खुदाने बहकाया तो वह शैतानका शैतान ठहरा यदि शैतान स्वयं बहका तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे शैतानकी जरूरत नहीं और जिससे इस शैतान बाग़ीको खुदाने खुला छोड़ दिया इससे विदित हुआ कि वह भी शैतानका शरीक अधर्म करानेमें हुआ यदि स्वयं चोरी कराके दण्डदेवे तो उसके अन्यायका कुछ भी पारावार नहीं॥ १३३॥

१३४—अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे निश्चय वह है क्षमा करनेवाला दयालु॥ और पृथिवी सारी मूठीमें है उसकी दिन क़यामतके और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दहिने हाथ उसकेके॥ और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपनेके और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरोंको और गवाहोंको और फैसल किया जावेगा॥ मं० ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५४। ६८। ७७॥

समीक्षक—यदि समग्र पापोंको खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसारको पापी बनाता है और दयाहीन है क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करनेसे वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्माओंको दुःख पहुंचावेगा यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे तो अपराध ही अपराध जगत्में छा जावे। क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाशवाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं? और कौन लिखता है? यदि पैग़म्बरों और गवाहोंके भरोसे खुदा न्याय करता है तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है, यदि वह अन्याय नहीं करता न्याय ही करता है तो कर्मोंके अनुसार करता होगा वे कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मोंके हो सकते हैं तो फिर क्षमा करना, दिलों पर ताला लगाना और शिक्षा न करना, शैतानसे बहकवाना, दौरासुपुर्द रखना केवल अन्याय है॥ १३४॥

१३५—उतारना किताबका अल्लाह ग़ालिब जाननेवालेकी ओरसे

है ॥ क्षमा करनेवाला पापोंका और स्वीकार करनेवाला तोवाः का ॥ मं० ६ । सि० २४ । सू० ४० । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाहके नामसे इस पुस्तकको मान लेवें कि जिसमें थोड़ासा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्यके साथ मिलकर बिगड़ासा है इसलिये कुरान और कुरानका खुदा और इसको माननेवाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने कराने वाले हैं ॥ क्योंकि पापका क्षमा करना अत्यन्त अधर्म है किन्तु इसीसे मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करनेमें कम डरते हैं ॥ १३५ ॥

१३६—बस नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिनके और डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका ॥ यहां तक कि जब जावेंगे उसके पास साक्षी देंगे ऊपर उनके कान उनके और आंख उनकी और चमड़े उनके उनके कर्मसे ॥ और कहेंगे वास्ते चमड़े अपनेके क्यों साक्षी दी तुमने ऊपर हमारे कहेंगे कि बुलाया है हमको अल्लाहने जिसने बुलाया हर वस्तुको ॥ अवश्य जिलानेवाला है मुर्दोंको ॥ मं० ६। सि० २४ । सू० ४१ । आ० १२ । २० । २१ । ३६ ॥

समीक्षक—वाहजी वाह मुसलमानो ! तुम्हारा खुदा जिसको तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो तो वह सात आसमानोंको दो दिनमें बना सका ? वस्तुतः जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्रमें सबको बना सकता है। भला कान, आंख और चमड़ेको ईश्वरने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे ? यदि साक्षी दिलावें तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाये ? और अपना पूर्वापर नियमविरुद्ध क्यों किया ? एक इससे भी बढ़कर मिथ्या बात यह है कि जब जीवों पर साक्षी दी तबसे जीव अपने २ चमड़ेसे पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी चमड़ा बोलेगा कि खुदाने दिलाई मैं क्या करूं भला यह बात कभी हो सकती है ? जैसे कोई कहे कि बन्ध्याके पुत्रका मुख मैंने देखा यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों ? जो बन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है इसी प्रका-

रकी यह भी मिथ्या बात है। यदि वह मुर्दोंको जिलाता है तो प्रथम मारा ही क्यों ? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं यदि नहीं हो सकता तो मुर्देपनको बुरा क्यों समझता है ? और क़यामतकी रात तक मृतक जीव किस मुसलमानके घरमें रहेंगे ? और खुदाने विना अपराध क्यों दौरासुपुर्द रक्खा ! शीघ्र न्याय क्यों न किया ? ऐसी २ बातोंसे ईश्वरतामें बट्टा लगता है ॥ १३६ ॥

१३७—वास्ते उसके कुंजियां हैं आसमानोंकी और पृथिवीको खोलता है भोजन जिसके वास्ते चाहता है और तङ्ग करता है ॥ उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिसको चाहे बेटियां और देता है जिसको चाहे बेटे ॥ वा मिला देता है उनको बेटे और बेटियां और करदेता है जिसको चाहे बांझ ॥ और नहीं है शक्ति किसी आदमीको कि बात करे उससे अल्लाह परन्तु जी में डालने कर वा पीछे परदे * के सेवा भेजे फ़रिश्ते पैग़ाम लानेवाला ॥ मं ६ । सि० २५ । सू० ४२ । आ० १० । ४७ । ४८ । ४९ ॥

समीक्षक—खुदाके पास कुंजियोंका भण्डार भरा होगा। क्योंकि सब ठिकानेके ताले खोलने होते होंगे ! यह लड़कपनकी बात है क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्मके ऐश्वर्य्य देता है ? और

---

* इस आयतके भाष्य "तफ़सीरहुसैनी" में लिखा है कि मुहम्मद साहेब दो परदोंमें थे और खुदाकी आवाज़ सुनी। एक परदा ज़रीका था दूसरा श्वेत मोतियोंका और दोनों परदोंके बीचमें सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था ? बुद्धिमान् लोग इस बातको विचारें कि यह खुदा है वा परदेकी ओट बात करनेवाली स्त्री ? इन लोगोंने तो ईश्वर ही की दुर्दशा कर डाली। कहां वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रंथोंमें प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा और कहां कुरानोक्त परदेकी ओट बात करनेवाला खुदा। सच तो यह है कि अरबके अविद्वान लोग थे उत्तम बात लाते किसके घरसे ॥

सङ्ग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये कुरान बनानेवालेकी चतुराई कि जिससे स्त्रीजन भी मोहित होके फँसे यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे खुदाको भी उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई, भला मनुष्योंको तो जिसको चाहे बेटे बेटियां खुदा देता है परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिनके बहुत बेटा बेटियां होती हैं कौन देता है? और स्त्रीपुरुषके समागम विना क्यों नहीं देता? किसीको अपनी इच्छासे बांझ रखके दुःख क्यों देता है? वाह क्या खुदा तेजस्वी है कि उसके सामने कोई बात ही नहीं कर सकता? परन्तु उसने पहिले कहा है कि परदा डालके बात कर सकता है वा फरिश्ते लोग खुदासे बात करते हैं अथवा पैग़म्बर, जो ऐसी बात है तो फ़रिश्ते और पैग़म्बर खूब अपना मतलब करते होंगे! यदि कोई कहे खुदा सर्वज्ञ सर्वव्यापक है तो परदेसे बात करना अथवा डाकके तुल्य खबर मङ्गाके जानना लिखना व्यर्थ है और जो ऐसा है तो वह खुदा ही नहीं किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा इसलिये यह कुरान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता॥ १३७॥

१३८—और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्षके मं० ६। सि० २५। सू० ४३। आ० ६२॥

समीक्षक—यदि ईसा भी भेजा हुआ खुदाका है तो उसके उपदेशसे विरुद्ध कुरान खुदाने क्यों बनाया? और कुरानसे विरुद्ध अंजील है इसलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं॥ १३८॥

१३९—पकड़ो उसको बस घसीटो उसको बीचों बीच दोज़खके॥ इसी प्रकार रहेंगे और ब्याह देंगे उनको साथ गोरियों अच्छी आंख वालियोंके॥ मं० ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४४। ५१॥

समीक्षक—वाह क्या खुदा न्यायकारी होकर प्राणियोंको पकड़ाता और घसीटवाता है? जब मुसलमानोंका खुदा ही ऐसा है तो उसके उपासक मुसलमान अनाथ निर्बलोंको पकड़ें घसीटें तो इसमें क्या

आश्चर्य है ? और वह संसारी मनुष्योंके समान विवाह भी कराता है जानो कि मुसलमानोंका पुरोहित ही है ॥१३९॥

१४०—बस जब तुम मिलो उन लोगोंसे कि काफ़िर हुए बस मारो गर्दन उनकी यहांतक कि जब चूर कर दो उनको बस दृढ़ करो क़ैद करना और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्तिमें बस्ती तेरीसे जिससे निकाल दिया तुझको मारा हमने उसको बस न कोई हुआ सहाय देनेवाला उनका ॥ तारीफ़ उस बहिश्तकी कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार बीच उसके नहरें हैं बिन बिगाड़े पानीकी और नहरें हैं दूधकी कि नहीं बदला मज़ा उनका और नहरें हैं शराबकी मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालोंके और शहद साफ किये गये कि और वास्ते उनके बीच उसके मेवे हैं प्रत्येक प्रकारसे दान मालिक उनकेसे ॥ मं० ६ । सि० २६ । सू० ४७ । आ० ४ । १३ । १५ ॥

समीक्षक—इसीसे यह कुरान ख़ुदा और मुसलमान ग़दर मचाने, सबको दुःख देने और अपना मतलब साधनेवाले दयाहीन हैं जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानोंको वैसा ही दुःख जैसा कि अन्यको देते हैं, हो वा नहीं ? और ख़ुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेबको निकाल दिया उनको ख़ुदाने मारा, भला जिसमें शुद्ध पानी, दूध मद्य और शहदकी नहरें हैं वह संसारसे अधिक हो सकता है ? और दूधकी नहरें कभी हो सकती हैं क्योंकि वह थोड़े समयमें बिगड़ जाता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग कुरानके मतको नहीं मानते ॥ १४० ॥

१४१—जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर ॥ और उड़ाए जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर ॥ बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े २ ॥ बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओरके ॥ और बाईं ओर वाले क्या हैं बाईं ओरके ॥ ऊपर पलङ्ग सोनेके तारोंसे बुने हुए हैं ॥ तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने सामने ॥ और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले ॥ साथ आबख़ोरोंके

और आफ़ताबोंके ॥ और प्यालोंके शराब साफसे ॥ नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे ॥ और मेवे उस किस्मसे कि पसन्द करें ॥ और गोश्त जानवर पक्षियोंके उस किस्मसे कि पसन्द करें ॥ और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आंखोंवाली ॥ मानिन्द मोतियों छिपाये हुओंकी और बिछौने बड़े ॥ निश्चय हमने उत्पन्न किया है औरतोंको एक प्रकारका उत्पन्न करना है ॥ बस किया है हमने उनको कुमारी ॥ सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां बस भरनेवाले हो उससे पेटोंको। बस कसम खाता हूं मैं साथ गिरने तारोंके ॥ मं० ७। सि० २७। सू० ५६। आ० ४। ५। ६। ८। ६ ।१५। १६। १७। १८। १६। २०। २१। २२। २३। २४। ३५। ३६। ३७। ३८। ५४। ७५॥

समीक्षक—अब देखिये कुरान बनानेवालेकी लीलाको भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी इससे यह सिद्ध होता है कि कुरान बनाने वाला पृथिवीको स्थिर जानता था। भला पहाड़ोंको क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनगे होजावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाहजी जो खुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते? जब वहां पलङ्ग सोनेके तारोंसे बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहां रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उनको रात्रिमें सोने भी नहीं देते होंगे क्या वे तकिये लगाकर निकम्मे बहिश्तमें बैठे ही रहते हैं? वा कुछ काम किया करते हैं यदि बैठे ही रहते होंगे तो उनको अन्न पचन न होनेसे वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मिहनत मज़दूरी यहां करते हैं वैसे ही वहां परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहांसे वहां बहिश्तमें विशेष क्या है? कुछ भी नहीं, यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उनके मा बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मलमूत्रादिके

बढ़नेसे रोग भी बहुतसे होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे गिलासोंमें पानी पीवेंगे और प्यालोंसे मद्य पीवेंगे न उनका शिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियोंके मांस भी खावेंगे तो अनेक प्रकारके दुःख, पक्षी, जानवर वहां होंगे हत्या होगी और हाड़ जहां तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयोंकी दुकाने भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्तकी प्रशंसा कि वह अरबदेशसे भी बढ़कर दीखती है !!! और जो मद्य मांस पी खाके उन्मत्त होते हैं इसलिये अच्छी २ स्त्रियां और लौंडे भी वहां अवश्य रहने चाहियें नहीं तो ऐसे नशेबाजोंके शिरमें गरमी चढ़के प्रमत्त होजावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषोंके बैठने सोनेके लिये बिछौने बड़े २ चाहियें जब खुदा कुमारियोंको बहिश्तमें उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कोंको भी उत्पन्न करता है भला कुमारियोंका तो विवाह जो यहां से उम्मेदवार होकर गये हैं उनके साथ खुदाने लिखा पर उन सदा रहनेवाले लड़कोंका भी किन्हीं कुमारियोंके साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारोंके साथ कुमारिवत् दे दिये जायेंगे ? इसकी व्यवस्था कुछ न लिखी यह खुदामें बड़ी भूल क्यों हुई ? यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रियां पतियोंको पाके बहिश्तमें रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियोंसे पुरुषका आयु दूना ढाईगुना चाहिये यह तो मुसलमानोंके बहिश्तकी कथा है। और नरकवाले सिहोड़ अर्थात् थोरके वृक्षोंको खाके पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोज़खमें होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पियेंगे इत्यादि दुःख दोज़खमें पावेंगे क़समका खाना प्रायः झूठोंका काम है सच्चोंका नहीं यदि खुदा ही क़सम खाता है तो वह भी झूठसे अलग नहीं हो सकता ॥ १४१ ॥

१४२—निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगोंको कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के ॥ मं० ७ । सि० २८ । सू० ६१ । आ० ४ ॥

समीक्षक—वाह ठीक है ऐसी २ बातोंका उपदेश करके बिचारे

अरब देशवासियोंको सबसे लड़ाके शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मज़हबका झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसेको कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते जो जातिमें विरोध बढ़ावे वही सबको दुःखदाता होता है॥ १४२॥

१४३—ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तुको कि हलाल किया है खुदाने तेरे लिये चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनीकी और अल्लाह क्षमा करनेवाला दयालु है॥ जल्दी है मालिक उसका जो वह तुमको छोड़ दे तो, यह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमान वालियां बिबीयां बदल दे सेवा करने वालियां तोबाः करने वालियां भक्ति करने वालियां रोज़ा रखनेवालियां पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई॥ मं० ७ सि० २८। सू० ३६। आ० १।५॥

समीक्षक—ध्यान देकर देखना चाहिये कि खुदा क्या हुआ मुहम्मद साहेबके घरका भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करनेवाला भृत्य ठहरा!! प्रथम आयत पर दो कहानियां हैं एक तो यह कि मुहम्मद साहेबको शहदका शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियां थीं उनमेंसे एकके घर पीनेमें देर लगी तो दूसरियोंको असह्य प्रतीत हुआ उनके कहने सुननेके पीछे मुहम्मद साहेब सौगन्द खा गये कि हम न पीयेंगे। दूसरी यह कि उनकी कई बीबियोंमेंसे एककी बारी थी उसके यहां रात्रिको गये तो वह न थी अपने बापके यहां गई थी। मुहम्मद साहेबने एक लौंडी अर्थात् दासीको बुलाकर पवित्र किया। जब बीबीको इसकी खबर मिली तो अप्रसन्न होगई तब मुहम्मद साहेबने सौगन्द खाई कि मैं ऐसा न करूंगा। और बीबीसे भी कह दिया कि तुम किसीसे यह बात मत कहना बीबीने स्वीकार किया कि न कहूंगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबीसे जा कहा। इस पर यह आयत खुदाने उतारी जिस वस्तुको हमने तेरे पर हलाल किया उसको तू हराम क्यों करता है? बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला कहीं खुदा भी किसीके घरका निमटेरा करता फिरता है? और मुहम्मद साहेबके तो आच-

रण इन बातोंसे प्रगट ही हैं क्योंकि जो अनेक स्त्रियोंको रक्खे वह ईश्वरका भक्त वा पैग़म्बर कैसे हो सके? और जो एक स्त्रीका पक्षपातसे अपमान करे और दूसरीका मान्य करे वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुतसी स्त्रियोंसे भी सन्तुष्ट न होकर बांदियोंके साथ फँसे उसको लज्जा, भय और धर्म कहांसे रहे? किसीने कहा है किः—

कामातुराणां न भयं न लज्जा।

जो कामी मनुष्य हैं उनको अधर्मसे भय वा लज्जा नहीं होती और इनका खुदा भी मुहम्मद साहेबकी स्त्रियों और पैग़म्बरके झगड़ेका फैसला करनेमें मानो सरपंच बना है अब बुद्धिमान् लोग विचारलें कि यह कुरान विद्वान वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धुका बनाया? स्पष्ट विदित हो जायगा और दूसरी आयतसे प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेबसे उसकी कोई बीबी अप्रसन्न होगई होगी उस पर खुदाने यह आयत उतार कर उसको धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुझे छोड़ देंगे तो उनको उनका खुदा तुझसे अच्छी बीबियां देगा कि जो पुरुषसे न मिली हों। जिस मनुष्यको तनिकसी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये खुदा बुदाके काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धिके, ऐसी २ बातोंसे ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था, केवल देशकाल देखकर अपने प्रयोजनके सिद्ध होनेके लिये खुदाकी तर्फसे मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग खुदा ही की तर्फ लगाते हैं उनको हम क्या सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेबके लिये बीबियां लानेवाला नाई ठहरा॥ १४३॥

१४४—हे नबी झगड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्रुओंसे और सख्ती कर ऊपर उनके॥ मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९॥

समीक्षक—देखिये मुसलमानोंके खुदाकी लीला अन्य मत वालोंसे

लड़नेके लिये पैग़म्बर और मुसलमानोंको उचकाता है इसलिये मुसलमान लोग उपद्रव करनेमें प्रवृत्त रहते हैं परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़के सबसे मित्रतासे वर्तें ॥ १४४ ॥

१४५—फट जावेगा आसमान बस वह उस दिन सुस्त होगा ॥ और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के और उठावेंगे तख्त मालिक तेरेका ऊपर अपने उस दिन आठ जन ॥ उस दिन सामने लाये जाओगे तुम न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई। बस जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपनेके बस कहेगा लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा ॥ और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बायें हाथ अपनेके बस कहेगा हाय न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना ॥ मं० ७। सि० २६। सू० ६६। आ० १६। १७। १८। १६। २५॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी और न्यायकी बात है भला आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्रके समान है जो फट जावे? यदि ऊपरके लोकको आसमान कहते हैं तो यह बात विद्यासे विरुद्ध है॥ अब कुरानका खुदा शरीरधारी होनेमें कुछ संदिग्ध न रहा क्योंकि तख्त पर बैठना आठ कहारोंसे उठवाना विना मूर्त्तिमान्के कुछ भी नहीं हो सकता! और सामने वा पीछे भी आना जाना मूर्त्तिमान् ही का हो सकता है जब वह मूर्त्तिमान् है तो एकदेशी होनेसे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवोंके सब कर्मोंको कभी नहीं जान सकता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि पुण्यात्माओंके दाहने हाथमें पत्र देना, बचवाना, बहिश्तमें भेजना और पापात्माओंके बायें हाथमें कर्मपत्रका देना नरकमें भेजना कर्मपत्र बांचके न्याय करना भला यह व्यवहार सर्वज्ञका हो सकता है! कदापि नहीं यह सब लीला लड़कपनकी है ॥ १४५ ॥

१४६—चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ़ उसकी वह अज़ाब होगा बीच उस दिनके कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष ॥ जब कि

निकलेंगे क़बरोंमेंसे दौड़ते हुए मानो कि वह बुतोंके स्थानोंकी ओर दौड़ते हैं ॥ मं० ७। सि० २६ । सू० ७० । आ० ४। ४२॥

समीक्षक—यदि पचास हज़ार वर्ष दिनका परिमाण है तो पचास हज़ार वर्षकी रात्रि क्यों नहीं ? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता क्या पचास हज़ार वर्षों तक खुदा फ़रिश्ते और कर्मपत्रवाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे यदि ऐसा है तो सब रोगी हो कर पुनः मर ही जायेंगे ॥ क्या क़बरोंसे निकल कर खुदाकी कचहरीकी ओर दौड़ेंगे ? उनके पास सम्मन क़बरोंमें क्योंकर पहुंचेगे ? और उन विचारोंको जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा हैं इतने समय तक सभीको क़बरोंमें दौरेसुपुर्द कैद क्यों रक्खा ? और आजकल खुदाकी कचहरी बन्द होगी और खुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे ? अथवा क्या काम करते होंगे ? अपने २ स्थानोंमें बैठे इधर उधर घूमते, सोते, नाच तमाशा देखते वा ऐश आराम करते होंगे ऐसा अंधेर किसीके राज्यमें न होगा ऐसी २ बातोंको सिवाय जङ्गलियोंके दूसरा कौन मानेगा ॥ १४६ ॥

१४७—निश्चय उत्पन्न किया तुमको कई प्रकारसे ॥ क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अल्लाहने सात आसमानोंको ऊपर तले॥ और किया चांदको बीच उसके प्रकाशक और किया सूर्यको दीपक ॥ मं० ७ । सि० २६ । सू० ७१ । आ० १४ । १५ । १६ ॥

समीक्षक—यदि जीवोंको खुदाने उत्पन्न किया है तो वे नित्य अमर कभी नहीं रह सकते ! फिर बहिश्तमें सदा क्योंकर रह सकेंगे जो उत्पन्न होता है वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है। आसमानको ऊपर तले कैसे बना सकता है ? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है, यदि दूसरी चीज़का नाम आकाश रखते हो तो भी उसका आकाश नाम रखना व्यर्थ है यदि ऊपर तले आसमानोंको बनाया है तो उन सबके बीचमें चांद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते जो बीचमें रक्खा जाय तो एक ऊपर और एक नीचेका पदार्थ प्रकाशित है दूस-

ऐसे लेकर सबमें अन्धकार रहना चाहिये ऐसा नहीं दीखता इसलिये यह बात सर्वथा मिथ्या है ॥ १४७ ॥

१४८—यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाहके हैं बस मत पुकारो साथ अल्लाहके किसीको मं० ७। सि० २९। सू० ७२। आ० १८ ॥

समीक्षक—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग "लाइलाह इल्लिलाः महम्मदर्रसूलल्लाः" इस कलमेमें खुदाके साथी मुहम्मद साहेबको क्यों पुकारते हैं ? यह बात कुरानसे विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरानकी बातको झूठ करते हैं। जब मसजिदें खुदाके घर हैं तो मुसलमान महाबुतपरस्त हुए क्योंकि जैसे पुराणी, जैनी छोटीसी मूर्तिको ईश्वरका घर माननेसे बुतपरस्त ठहरते हैं तो ये लोग क्यों नहीं ? ॥ १४८ ॥

१४९—इकट्ठा किया जावेगा सूर्य्य और चांद ॥ मं० ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९ ॥

समीक्षक—भला सूर्य्य चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं ? देखिये यह कितनी बेसमझकी बात है और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करनेमें क्या प्रयोजन था अन्य सब लोकोंको इकट्ठे न करनेमें क्या युक्ति है ऐसी २ असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं ? विना अविद्वानोंके अन्य किसी विद्वान्‌की भी नहीं होतीं ॥ १४९ ॥

१५०—और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले जब देखेगा तू उनको अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए ॥ और पहनाये जावेंगे कङ्कन चांदीके और पिलावेगा उनको रब उनको शराब पवित्र ॥ मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९। २१ ॥

समीक्षक—क्योंजी मोतीके वर्णसे लड़के किसलिये वहां रक्खे जाते हैं ? क्या जवान लोग सेवा वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं। क्या आश्चर्य्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कोंके साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही कुरानका वचन हो ! और बहिश्तमें स्वामी सेवकभाव होनेसे स्वामीको आनन्द और सेवकको परिश्रम होनेसे

दुःख तथा पक्षपात क्यों है ? और जब खुदा ही मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा फिर खुदाकी बड़ाई क्योंकर रह सकेगी ? और वहां बहिश्तमें स्त्री पुरुषका समागम और गर्भस्थित और लड़केवाले भी होते हैं वा नहीं ? यदि नहीं होते तो उनका विषय-सेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहांसे आये ? और विना खुदाकी सेवाके बहिश्तमें क्यों जन्मे ? यदि जन्मे तो उनको विना ईमान लाने और खुदाकी भक्ति करनेसे बहिश्त मुफ्त मिल गया किन्हीं विचारोंको ईमान लाने और किन्हींको विना धर्मके सुख मिल जाय इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौनसा होगा ? ॥ १५० ॥

१५१—बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार ॥ और प्याले हैं भरे हुए ॥ जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ बांधकर ॥ मं० ७। सि० ३० सू० ७८ आ० २६। ३४। ३८ ॥

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता तो सदा बहिश्तमें रहनेवाले हूरें फ़रिश्ते और मोतीके सदृश लड़कोंको कौन कर्मके अनुसार सदाके लिये बहिश्त मिला ? जब प्याले भर २ शराब पियेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे ? रूह नाम यहां एक फ़रिश्तेका है जो सब फ़रिश्तोंसे बड़ा है क्या खुदा रूह तथा अन्य फ़रिश्तोंको पंक्तिबद्ध खड़े करके पलटन बांधेगा ? क्या पलटनसे सब जीवोंको सज़ा दिलावेगा ? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा ? यदि क़यामत तक खुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतानको पकड़ ले तो उसका राज्य निष्कंटक हो जाय इसका नाम खुदाई है ॥ १५१ ॥

१५२—जब कि सूर्य लपेटा जावे ॥ और जब कि तारे गदले हो जावें ॥ और जब कि पहाड़ चलाये जावें ॥ और जब आसमानकी खाल उतारी जावे ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १। २। ३। ११ ॥

समीक्षक—यह बड़ी बेसमझकी बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा ? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे ? और पहाड़ जड़

होनेसे कैसे चलेंगे ? और आकाशको क्या पशु समझा कि उसकी खाल निकाली जावेगी ? यह बड़ी ही बेसमझ और जङ्गलीपनकी बात है ॥ १५२ ॥

१५३—और जब कि आसमान फट जावे ॥ और जब तारे झड़ जावें ॥ और जब दर्या चीरे जावें ॥ और जब क़बरें जिला कर उठाई जायें ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८२ । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

समीक्षक—वाहजी कुरानके बनानेवाले फ़िलासफर आकाशको क्योंकर फाड़ सकेगा ? और तारोंको कैसे झाड़ सकेगा ? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा ? और क़बरें क्या मुर्दे हैं जो जिला सकेगा ? ये सब बातें लड़कोंके सदृश हैं ॥ १५३ ॥

१५४—क़सम है आसमान बुर्जों वालेकी ॥ किन्तु वह कुरान है बड़ा बीच लोह महफ़ूज़ (रक्षा) के ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८५ । आ० १ । २१ ॥

समीक्षक—इस कुरानके बनानेवाले ने भूगोल खगोल कुछ भी नहीं पढ़ा था नहीं तो आकाशको क़िलेके समान बुर्जों वाला क्यों कहता ? यदि मेषादि राशियोंको बुर्ज कहता है तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं ? इसलिये ये बुर्ज नहीं हैं किन्तु सब तारे लोक हैं ॥ क्या वह कुरान ख़ुदाके पास है ? यदि यह कुरान उसका किया है तो वह भी विद्या और युक्तिसे विरुद्ध अविद्यासे अधिक भरा होगा ॥ १५४ ॥

१५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूं एक मकर ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८६ ॥ आ० १५ । १६ ॥

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपनको क्या ख़ुदा भी ठग है ? और क्या चोरीका जवाब चोरी और झूठका जवाब झूठ है ? क्या कोई चोर भले आदमीके घरमें चोरी करे तो क्या भले आदमीको चाहिये कि उसके घरमें जाके चोरी करे ? वाह ! वाहजी ! ! कुरानके बनानेवाले ॥ १५५ ॥

१५६—और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांधके॥ और लाया जावेगा उस दिन दोज़खको॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २१। २२॥

समीक्षक—कहो जी जैसे कोटपालजी सेनाध्यक्ष अपनी सेनाको लेकर पंक्ति बांध फिरा करें वैसा ही इनका खुदा है? क्या दोज़खको घड़ासा समझा है कि जिसको उठाके जहां चाहे वहां लेजावे यदि इतना छोटा है तो असंख्य कैदी उसमें कैसे समा सकेंगे॥ १५६॥

१५७—बस कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर खुदाकेने रक्षा करो ऊंटनी खुदाकीको और पानी पिलाना उसकेको॥ बस झुठलाया उसको बस पांव काटे उसके बस मरी डाली ऊपर उनके रब उनकेने॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३। १४॥

समीक्षक—क्या खुदा भी ऊंटनीपर चढ़के सैल किया करता है? नहीं तो किसलिये रक्खी और विना क़यामतके अपना नियम तोड़ उनपर मरी रोग क्यों डाला? यदि डाला तो उनको दण्ड किया फिर क़यामतकी रातमें न्याय और उस रातका होना झूठ समझा जायगा इस ऊंटनीके लेखसे यह अनुमान होता है कि अरब देशमें ऊंट ऊंटनीके सिवाय दूसरी सवारी कम होती है इससे सिद्ध होता है कि किसी अरबदेशीने कुरान बनाया है॥ १५७॥

१५८—यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे उसको हम साथवालों माथेके॥ वह माथा कि झूठा है और अपराधी॥ हम बुलावेंगे फरिश्ते दोज़खकेको॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५। १६। १८॥

समीक्षक—इस नीच चपरासियोंके काम घसीटनेसे भी खुदा न बचा। भला माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है? सिवाय जीवके भला यह कभी खुदा हो सकता है कि जैसे जेलखानेके दारोगाको बुलवा भेजे?॥ १५८॥

१५९—निश्चय उतारा हमने कुरानको बीच रात क़दरके॥ और

क्या जाने तू क्या है रात क़द्र ॥ उतरते हैं फरिश्ते और पवित्रात्मा बीच उसके साथ आज्ञा मालिक अपनेके वास्ते हर कामके ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ९७। आ० १।२।४॥

समीक्षक—यदि एक ही रातमें कुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् उस समयमें उतरी और धीरे २ उतारा यह बात सत्य क्योंकर होसकेगी ? और रात्रि अन्धेरी है इसमें क्या पूछना है, हम लिख आये हैं ऊपर नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फरिश्ते और पवित्रात्मा खुदाके हुक्मसे संसारका प्रबन्ध करनेके लिये आते हैं इससे स्पष्ट हुआ कि खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। अबतक देखा था कि खुदा, फरिश्ते और पैग़म्बर तीनकी कथा है अब एक पवित्रात्मा चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह चौथा पवित्रात्मा क्या है ? यह तो ईसाइयोंके मत अर्थात् पिता पुत्र और पवित्रात्मा तीनके माननेसे चौथा भी बढ़ गया। यदि कहो कि हम इन तीनोंको खुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो परन्तु जब पवित्रात्मा पृथक् है तो खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बरको पवित्रात्मा कहना चाहिये वा नहीं ? यदि पवित्रात्मा है तो एक ही का नाम पवित्रात्मा क्यों ? और घोड़े आदि जानवर रात दिन और कुरान आदिकी खुदा क़समें खाता है, क़समें खाना भले लोगोंका काम नहीं ॥ १५९ ॥

अब इस कुरानके विषयको लिखके बुद्धिमानोंके सन्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है ? मुझसे पूछो तो यह किताब न ईश्वर न विद्वानकी बनाई और न विद्याकी हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ासा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखेमें पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। जो कुछ इसमें थोड़ासा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकोंके अनुकूल होनेसे जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मज़हबके हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानोंको ग्राह्य है इसके विना जो कुछ इसमें है वह सब अविद्या भ्रमजाल और मनुष्यके आत्माको पशुवत् बनाकर शांतिभङ्ग कराके उपद्रव मचा मनुष्योंमें विद्रोह फैला

परस्पर दुःखोन्नति करनेवाला विषय है। और पुनरुक्त दोषका तो कुरान जानो भण्डार ही है, परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सबसे सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरेके सुखकी उन्नति करनेमें प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरोंका दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्परका विरोध छूट मेल होकर आनन्दमें एकमत होके सत्यकी प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ासा कुरानके विषयमें लिखा, इसको बुद्धिमान धार्मिक लोग ग्रन्थकारके अभिप्रायको समझ लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रमसे अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें॥

अब एक बात यह शेष है कि बहुतसे मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मज़हबकी बात अथर्ववेदमें लिखी है इसका यह उत्तर है कि अथर्ववेदमें इस बातका नाम निशान भी नहीं है।

प्रश्न—क्या तुमने सब अथर्ववेद देखा है यदि देखा है तो अल्लोपनिषद् देखो यह साक्षात् उसमें लिखी है, फिर क्यों कहते हो कि अथर्ववेदमें मुसलमानोंका नाम निशान भी नहीं है॥

अथाल्लोऽपनिषदं व्याख्यास्यामः।

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते॥
इल्लल्लेवरुणो राजा पुनर्द्दुः॥ हया मित्रो इल्लां
इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥ १॥
होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः॥ अल्लो
ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥२॥
अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥३॥
आदल्लाबूकमेककम्॥ अल्लाबूक निखातकम्॥४॥

अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा ॥ अल्लासूर्य्य चन्द्र सर्व नक्षत्राः ॥ ५ ॥

अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्व माया परमन्तरिक्षाः ॥ ६ ॥

अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥ ७ ॥

इल्लाँ कबर इल्लाँ कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ ८ ॥

ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणा-श्यामा हुं ह्रीं जनानपशुनसिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट् ॥ ९ ॥

असुर संहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूल महमदरक-बरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥१०॥

इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता ।

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा है इससे सिद्ध होता है, कि मुसलमानोंका मत वेदमूलक है ॥

उत्तर—यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो तो हमारे पास आओ आदिसे पूर्ति तक देखो अथवा जिस किसी अथर्ववेदीके पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता अथर्ववेदको देख लो कहीं तुम्हारे पैग़म्बर साहबका नाम वा मतका निशान न देखोगे और जो यह अल्लोपनिषद् है वह न अथर्ववेदमें न उसके गोपथब्राह्मण वा किसी शाखामें है यह तो अकबरशाहके समयमें अनुमान है कि किसीने बनाई है इसका बनानेवाला कुछ अरबी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है क्योंकि इसमें अरबी और संस्कृतके पद लिखे हुए दीखते हैं देखो (अस्माल्लां

इल्ले मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते) इत्यादिमें जो कि दश अङ्कमें लिखा है जैसे—इसमें (अस्माल्लां और इल्ले) अरबी और (मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते) यह संस्कृत पद लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखनेमें आनेसे किसी संस्कृत और अरबीके पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम अयुक्त वेद और व्याकरण रीतिसे विरुद्ध है जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुतसी उपनिषदें मतमतान्तर-वाले पक्षपातियोंने बनाली है जैसी कि स्वरोपोपनिषत्, नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी, बहुतसी बनाली हैं।

प्रश्न—आज तक किसीने ऐसा नहीं कहा अब तुम कहते हो हम तुम्हारी बात कैसे मानें ?

उत्तर—तुम्हारे मानने वा न माननेसे हमारी बात झूठ नहीं हो सकती है. जिस प्रकारसे मैंने इसको अयुक्त ठहराई है, उसी प्रकारसे जब तुम अथर्ववेद गोपथ वा इसकी शाखाओंसे प्राचीन लिखित पुस्तकोंमें जैसाका तैसा लेख दिखलाओ और अर्थसंगतिसे भी शुद्ध करो तब तो सप्रमाण हो सकती है।

प्रश्न—देखो हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिसमें सब प्रकारका सुख और अन्तमें मुक्ति होती है।

उत्तर—ऐसे ही अपने अपने मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है बाकी सब बुरे विना हमारे मतके दूसरे मतमें मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बातको सच्ची मानें वा उनकी ? हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतोंमें अच्छे हैं बाकी वाद, विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतोंमें बुरे हैं। यदि तुमको सत्यमत ग्रहणकी इच्छा हो तो वैदिक-मतको ग्रहण करो ॥

इसके आगे स्वमन्तव्यामन्तव्यका प्रकाश संक्षेपसे लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये चतुर्दशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥१४॥

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदासे सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न होसके यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वालेके भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होनेसे प्रमाणके योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मासे लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तोंके माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयोंके सामने प्रकाशित करता हूं। मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता हूं कि जो तीन कालमें सबको एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलानेका लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्तमें प्रचरित मतोंमेंसे किसी एक मतका आग्रही होता किन्तु जो २ आर्य्यावर्त वा अन्य देशोंमें अधर्मयुक्त चाल चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्मसे बहिः है। मनुष्य उसीको कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्योंके सुख दुःख और हानि लाभको समझे, अन्यायकारी बलवानसे भी न डरे और धर्मात्मा निर्बलसे भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्यसे

धर्मात्माओंकी चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहांतक होसके वहांतक अन्यायकारियोंके बलकी हानि और न्यायकारियोंके बलकी उन्नति सर्वथा किया करे, इस काममें चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्मसे पृथक् कभी न होवे, इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहरिजी आदिने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

भर्तृहरिः ।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्,
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये,
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ २ ॥

महाभारते ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥३॥

मनुः ।

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ॥

येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ४ ॥

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥

उपनिषद् ।

इन्हीं महाशयोंके श्लोकोंके अभिप्रायके अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है अब मैं जिन २ पदार्थोंको जैसा २ मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेपसे यहां करता हूं कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थमें अपने २ प्रकरणमें कर दिया है इनमेंसे—

१—प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्यायसे फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूं ॥

२—चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होनेमें किसी अन्य ग्रन्थकी अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूपके स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादिके भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदोंके ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारहसौ सत्ताईस) वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदोंके अनुकूल होनेसे प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं ॥

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा

वेदोंसे अविरुद्ध है उसको "धर्म" और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको "अधर्म" मानता हूं॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसीको "जीव" मानता हूं॥

५—जीव और ईश्वरस्वरूप और वैधर्म्यसे भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्यसे अभिन्न है अर्थात् जैसे आकाशसे मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीवको व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूं॥

६—"अनादि पदार्थ तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत्का कारण इन्हींको नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं॥

७—"प्रवाहसे अनादि" जो संयोगसे द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोगके पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनोंको प्रवाहसे अनादि मानता हूं॥

८—"सृष्टि" उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्योंका ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना॥

९—"सृष्टिका प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वरके सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभावका साफल्य होना। जैसे किसीने किसीसे पूछा कि नेत्र किसलिये हैं? उसने कहा देखनेके लिये। वैसे ही सृष्टि करनेके ईश्वरके सामर्थ्यकी सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवोंके कर्मोंका यथावत् भोग करना आदि भी॥

१०—"सृष्टिसकर्तृक" है इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टिकी रचना देखने और जड़ पदार्थमें अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बननेका सामर्थ्य न होनेसे सृष्टिका "कर्त्ता" अवश्य है॥

११—"बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्तसे है। जो २ पापकर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसलिये यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है॥

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखोंसे छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टिमें स्वेच्छासे विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्दको भोगके पुनः संसारमें आना॥

१३—"मुक्तिके साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्यसे विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानोंका संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं॥

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्मसे सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं॥

१५—"काम" वह है कि जो धर्म और अर्थसे प्राप्त किया जाय॥

१६—"वर्णाश्रम" गुण कर्मोंकी योग्यतासे मानता हूं॥

१७—"राजा" उसीको कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभावसे प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्मकी सेवा, प्रजाओंमें पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मानके उनकी उन्नति और सुख बढ़ानेमें सदा यत्न किया करे॥

१८—"प्रजा" उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभावको धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्मके सेवनसे राजा और प्रजाकी उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजाके साथ पुत्रवत् वर्त्ते॥

१९—जो सदा विचार कर असत्यको छोड़ सत्यका ग्रहण करे अन्यायकारियोंको हटावे और न्यायकारियोंको बढ़ावे अपने आत्माके समान सबका सुख चाहे सो "न्यायकारी" है उसको मैं भी ठीक मानता हूं॥

२०—"देव" विद्वानोंको और अविद्वानोंको "असुर" पापियोंको "राक्षस" अनाचारियोंको "पिशाच" मानता हूं ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पतिका सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्त्तियोंको पूज्य और इतर पाषाणादि जड़मूर्त्तियोंको सर्वथा अपूज्य समझता हूं ॥

२२—"शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादिकी बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं ॥

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादिके बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हींको पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नामसे मानता हूं अन्य भागवतादिको नहीं ॥

२४—"तीर्थ" जिससे दुःखसागरसे पार उतरे कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हींको तीर्थ समझता हूं इतर जलस्थलादिको नहीं ॥

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्धसे बड़ा" इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरनेसे सब सुधरते और जिसके बिगड़नेसे सब बिगड़ते हैं इसीसे प्रारब्धकी अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभमें वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूं ॥

२७—"संस्कार" उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकारका है इसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाहके पश्चात् मृतकके लिये कुछ भी न करना चाहिये ॥

२८—"यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानोंका सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणोंका दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल,

ओषधिकी पवित्रता करके सब जीवोंको सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं ॥

२६—जैसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्योंको कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं ॥

३०—"आर्य्यावर्त्त" देश इस भूमिका नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टिसे आर्य्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पश्चिममें अटक और पूर्वमें ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारोंके बीचमें जितना देश है उसको "आर्य्यावर्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य्य कहते हैं ॥

३१—जो साङ्गोपांग वेदविद्याओंका अध्यापक सत्याचारका ग्रहण और मिथ्याचारका त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है।

३२—"शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्याको ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहणकी इच्छा और आचार्यका प्रिय करनेवाला है ॥

३३—"गुरु" माता पिता और जो सत्यको ग्रहण करावे और असत्यको छुड़ावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४—"पुरोहित" जो यजमानका हितकारी सत्योपदेष्टा होवे ॥

३५—"उपाध्याय" जो वेदोंका एकदेश वा अंगोंको पढ़ाता हो ॥

३६—"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्यसे विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण असत्यका परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहाता है ॥

३७—प्रत्यक्षादि आठ "प्रमाणों" को भी मानता हूं ॥

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सबके सुखके लिये प्रयत्न करता है उसीको "आप्त" कहता हूं ॥

३६—"परीक्षा" पांच प्रकारकी है इसमेंसे प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी

सृष्टिक्रम, चौथी आप्तोंका व्यवहार और पांचवीं अपने आत्माकी पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओंसे सत्याऽसत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण असत्यका परित्याग करना चाहिये ॥

४०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्योंके दुराचार दुःख छुटें श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें उसके करनेको परोपकार कहता हूं ॥

४१—"स्वतन्त्र" "परतन्त्र" जीव अपने कामोंमें स्वतन्त्र और कर्मफल भोगनेमें ईश्वरकी व्यवस्थासे परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करनेमें स्वतन्त्र है ॥

४२—"स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्रीकी प्राप्तिका है ॥

४३—"नरक" जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्रीकी प्राप्ति होना है ॥

४४—"जन्म" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेदसे तीनों प्रकारका मानता हूं ॥

४५—शरीरके संयोगका नाम "जन्म" और वियोगमात्रको "मृत्यु" कहते हैं ॥

४६—"विवाह" जो नियमपूर्वक प्रसिद्धिसे अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह "विवाह" कहाता है ॥

४७—"नियोग" विवाहके पश्चात् पतिके मरजाने आदि वियोगमें अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगोंमें स्त्री वा आपत्कालमें पुरुष स्ववर्ण वा अपनेसे उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुषके साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—"स्तुति" गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्यके उपरान्त ईश्वरके सम्बन्धसे जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वरसे याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है ॥

५०—"उपासना" जैसे ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं

वैसे अपने करना ईश्वरको सर्वव्यापक अपनेको व्याप्य जानके ईश्वरके समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्याससे साक्षात् करना उपासना कहाती है इसका फल ज्ञानकी उन्नति आदि है ॥

५१—"सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो जो गुण परमेश्वरमें हैं उनसे युक्त और जो जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति शुभ गुणोंके ग्रहणकी इच्छा और दोष छुड़ानेके लिये परमात्माका सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणोंसे सहित सब दोषोंसे रहित परमेश्वरको मानकर अपने आत्माको उसके और उसकी आज्ञाके अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना होती है ॥

ये संक्षेपसे स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं इनकी विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थोंमें भी लिखी है अर्थात् जो २ बात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तोंको स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तरके परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतवालोंने अपने मतोंका प्रचारकर मनुष्योंको फँसाके परस्पर शत्रु बना दिये हैं । इस बातको काट सर्व सत्यका प्रचारकर सबको ऐक्यमतमें करा, द्वेष छुड़ा, परस्परमें दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबसे सबको सुख लाभ पहुंचानेके लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है सर्वशक्तिमान् परमात्माकी कृपा सहाय और आप्तजनोंकी सहानुभूतिसे "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोलमें शीघ्र प्रवृत्त हो जावे" जिससे सब लोग सहजसे धर्म्मार्थ काम मोक्षकी सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्य्यमा ॥ शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत् ॥

॥ समाप्तम् ॥

सत्यार्थप्रकाश—परिशिष्ट

शंका-समाधान

(मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद शर्म्मा कृत 'दयानन्दतिमिरभास्कर' तथा श्री पं० तुलसी राम स्वामि कृत 'भास्करप्रकाश' के आधार पर)

प्रथम समुल्लासः

शंका—ओ३म्‌कारकी ३ मात्राओंसे जो अर्थ स्वामीजीने लिये हैं वे किसी मंत्र, ब्राह्मण, शास्त्र, पुराणादिसे नहीं मिलते।

समाधान—श्री स्वा० दयानन्दजी सरस्वतीने 'ओ३म्' का अर्थ करते हुए 'अ' का अर्थ विराट् अग्नि और विश्वादि, 'उ' का अर्थ हिरण्यगर्भ, वायु, तैजसादि और 'म' का अर्थ ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ किया है, वह माण्डूक्योपनिषद् तथा अन्य वैदिक शास्त्रोंके आधारोंपर किया है।

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा ।९।

माण्डूक्योपनिषद्।

जागरितस्थानः—जागरितं प्रकाशितं यथा स्यात् तथा स्थीयते जगत्। येन स जागरितस्थानः।

जिसकी सहायतासे जगत् सर्वदा जागरित प्रकाशित अर्थात् अपने नियममें रहता है इसीसे परमात्माका नाम 'जागरितस्थान' है। जागरितस्थान और विराट् दोनोंका अर्थ एक ही हैं इस कारण इसका अर्थ विराट् लिखा गया है।

वैश्वानरो अग्निः। वैश्वानरो विराड् इत्युच्यते

वेदान्तसारः खं० १७।

तृतीय अर्थ 'विश्व' किया है। जैसे वैश्वानर शब्दका एक देश विश्व शब्द है उसी प्रकार 'ओ३म्' में 'अ' है। जैसे 'अ' की व्याप्ति वाणीमें है उसी प्रकार 'ओ३म्' निष्ठ 'अ' पदवाच्य परमात्माकी व्याप्ति जगत्में है इस कारण 'ओ३म्' में 'अ' का अर्थ 'विश्व' किया है।

जैसा आचार्य गौड़पादने भी अपनी कारिकामें कहा है—

विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्।
मात्रासम्प्रतिपत्तिः स्याद्वाप्तिसामान्यमेव च॥

(गौड़पादीयकारिका १६)

'ओ३म्' की मात्रा 'अ' से विश्वको 'अ' कहा गया है इससे आदित्य और व्याप्तिसामान्य ये दो अर्थ स्पष्ट होते हैं।

इसी कारण 'अ' का अर्थ विराट्, अग्नि, और विश्व आदि अर्थ सयुक्तिक और सप्रमाण ही है।

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रा।१०।

माण्डूक्य उपनिषद्।

स्वप्नस्य स्थानं स्वप्नस्थानः। आर्षत्वात्तु पुंस्त्वम्॥

पुंस्त्वम्। जगत्के स्वप्न अर्थात् शयन करनेका स्थान वह परमात्मा ही है। स्वप्नस्थान और हिरण्यगर्भ दोनों शब्दोंके अर्थ एक ही हैं।

वायुका ओ३म्के 'उ' से साधर्म्य है इसी कारण उकारसे 'वायु' कहा गया है।

'सैषा अनस्तमिता देवता यद् वायुः, इत्यादि बृहदारण्यकके उत्कर्षबोधन करनेके कारण ही 'उकार' का अर्थ तैजस किया गया है।

तैजसस्योत्वविज्ञान उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम् ।
मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथाविधम् ॥

(गौड़पादीय कारिका २०)

'ओ३म्' में 'उ' से तैजसका ज्ञान होनेसे परमात्मामें उत्कर्षकी प्रतीति होती है ।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा ॥११॥

(माण्डूक्योपनिषद्)

सुषुप्तस्थान अर्थात् सुषुप्त अवस्थामें परमात्माके साक्षी रहनेके कारण ही परमात्माको सुषुप्तस्थान कहा गया है उस समय परमात्माका ऐश्वर्य अबाधित रूपसे विद्यमान रहता है। इसी कारण सुषुप्तस्थानका अर्थ ईश्वर है ।

अनादित्व और मान इन दो सामान्य धर्मोको बोधित करनेके लिये 'म्' का अर्थ आदित्य और प्राज्ञ किया गया है ।

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुच्यते ।
मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमुच्यते ॥२१॥

(गौड़पादीय कारिका)

प्राज्ञके साथ समानता होनेके कारण उसका अर्थ 'मान' सामान्य है । 'म' की आदित्यके साथ समानता होनेसे उसका अर्थ अनादित्व और प्रकाशकत्व प्रतीत होता है ।

शंका—"शन्नो मित्रः" इस मन्त्रका अर्थ "दिवसका अभिमानी देवता जो मित्र सो हमको सुखकारी हो" ऐसा अर्थ न करके स्वामीजीने मनमाना अर्थ किया है सो त्याज्य है ।

समाधान—स्वामीजीने जितने हेतु अपने अर्थकी पुष्टिमें दिये हैं उनका खण्डन किये विना, केवल "त्याज्य" है कहनेसे त्याज्य नहीं हो सकता । स्वामीजीने प्रकरण पर बल दिया है, कि स्तुति प्रार्थना

उपासनाके प्रकरणमें मित्रादि नामोंसे ईश्वर ही का ग्रहण योग्य है, जिसको उन्होंने विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है। और आपने अपने अर्थ की पुष्टिमें कोई प्रमाण नहीं दिया इसलिये आपकाही अर्थ त्याज्य है।

शंका—स्वामीजीने तो ईशादि दश उपनिषद् माने हैं परन्तु जब मतलब पड़ा तब कैवल्योपनिषद् भी मान बैठे तथा उसमेंसे "सब्रह्मा सविष्णु०" इस प्रमाणसे ब्रह्मा विष्णु आदि परमात्माके नाम सिद्ध किये हैं। ऐसा क्यों किया?

समाधान—स्वामीजी "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु" इत्यादि वेद मन्त्रोंसे सिद्ध कर चुके हैं कि ये सब नाम प्रार्थनोपासनामें ईश्वरके हैं। वेदके अनुकूल चाहे जिस उपनिषद् वा अन्य किसी ग्रन्थका प्रमाण दिया जा सकता है। कैवल्योपनिषद् तो क्या! आपके सम्मुख तो अल्लोपनिषद्का भी प्रमाण दिया जा सकता है क्योंकि आप उसको मानते हैं। जिन पुस्तकोंको आप मानते हैं, उनमेंसे किसी वाक्यको प्रमाण स्वरूप लिखना अन्यथा नहीं है, क्योंकि आपके मतमें तो "संस्कृत व्याक्यं प्रमाणम्" है।

शंका—जब स्वामीजी मंगलाचरणको नहीं मानते तो स्वयं "शन्नो मित्रादि" से मंगलाचरण क्यों किया?

समाधान—स्वामीजी तान्त्रिकादि लोगोंकी परिपाटी "भैरवायनमः, दुर्गायैनमः, हनुमतेनमः।" इत्यादिका खण्डन करते हैं। ऋषि लोगोंकी परिपाटी अथ आदिसे मङ्गलाचरण करना अच्छा मानते हैं अतः ऋषि परिपाटीसे उन्होंने मङ्गलाचरण किया है। देखो यही मन्त्र तैतिरीय उपनिषद्के आरम्भमें भी आया है।

(द्वितीय समुल्लासः)

शंका—स्वामीजीने शिक्षा विषयमें लिखा है "धन्य वह माता है जो गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलताका उपदेश करें" अतः गर्भाधानसे सुशीलताका उपदेश बालकको कैसे कर

सकती है ? यह असम्भव है।

समाधान—क्या आप नहीं जानते:—

आहार शुद्धेः सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

आहारकी शुद्धिसे सत्वकी शुद्धि और सत्वकी शुद्धिमें स्मृति निश्चल होती है। अर्थात् खाने पीने आदि व्यवहारोंका प्रभाव, शील आदिपर पड़ता है और माताके अङ्गोंसे सन्तानके अङ्ग बनते हैं। यथा

अङ्गादङ्गात्संस्रवसि हृदयादधि जायसे॥

हे पुत्र! तू अङ्ग २ से टपकता और हृदयसे अधिकृत हो उत्पन्न होता है। जब कि माताके अङ्ग अङ्गसे सन्तानके अङ्ग बनते और माताके भोजनादि व्यवस्थाका प्रभाव, शील आदि पर पड़ता है तब गर्भाधानसे ही लेकर माताके अच्छे व्यवहारोंका प्रभाव होकर सन्तान अवश्य सुशील हो सकती है।

(तृतीय समुल्लासः)

शंका—यज्ञोपवीत बिना वेद और गायत्री पाठका अधिकार नहीं फिर स्त्रियोंके लिये पठन पाठनकी व्यवस्था क्यों लिखी?

समाधान—देखो स्त्रियोंके लिये यज्ञोपवीत और वेद पाठकी आज्ञा शास्त्रोंमें है वा नहीं।

१ इमं मन्त्रं पत्नि पठेत्॥ श्रौतसूत्र॥

इस मन्त्रको पत्नि पढ़े!

२ वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत्॥ श्रौतसूत्र॥

स्त्रीको पुस्तक देकर वेद बचवावे।

याज्ञवल्क्य ऋषिकी स्त्री मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी यह बृहदारण्यक उपनिषद्में लिखा है। यदि स्त्रियोंको वेदपाठका अधिकार न होता तो मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी कैसे हुई?

शंकरदिग्विजयमें मण्डनमिश्रकी स्त्री विद्याधरीका श्रीशंकराचार्य

से शास्त्रार्थ करनेकी वार्ता प्रसिद्ध है, शास्त्रोंमें स्त्रियोंको पढ़नेका अधिकार न होता तो वेद विषयक शास्त्रार्थोंमें विद्याधरी, गार्गी, और सुलभादि देवियां कैसे भाग लेती और भी प्रमाण सुनो—

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनञ्च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥यमस्मृति॥

प्राचीन कालमें स्त्रियां भी ब्रह्मचर्य्य धारण करती थी और मूंजकी मेखला (यज्ञोपवीत) पहनती थी, वेद पढ़ती थी, और सावित्री-गुरुमन्त्र अर्थात् गायत्रीमन्त्रका पाठ करती थी।

स्त्रियोंको यज्ञ करनेका एक और प्रमाण—

शतपथ काण्ड ११—४—१ में प्रजापतिने मित्र विन्दाको उपदेश दिया है—"यज्ञैनेतान्न पुनर्याचस्व" इनकी याचना तुम यज्ञ द्वारा करो।

भागवतमें मुनि "कश्यप" अपनी स्त्री अदितिको कहते हैं।

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित्॥

(स्क० ८, अ० ४६)

हे सति! साध्वि! मेरे परदेशमें चले जानेपर ठीक समय यज्ञाग्निओंमें आहुति डालनेमें तूने भूल तो न की थी?

इसपर अदितिने उत्तर दिया है कि—मैं नियमसे अग्निहोत्र आदि कार्य करती थी। इत्यादि।

खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा मुद्रित सिद्धान्त कौमुदीकी पूर्व पीठिका पृष्ट १३—१४ में श्री काशीशेष वेंकटाचल शास्त्री कृत त्रिमुनी कल्पतरुमें उक्त विद्वान् लिखते हैं।

"स्त्रियोऽपि विद्याध्ययनाध्यापनयोरधिकारिण्यो भवन्ति"

स्त्रियां भी विद्याके पढ़ने और पढ़ानेकी अधिकारिणी होती हैं।

शंका—स्वामीजीने जो सृष्टि क्रमके विरुद्ध बातोंको असम्भव मानकर त्याज्य बताया है सो ठीक नहीं, क्योंकि परमात्माकी विभूतिका अन्त कोई नहीं जान सकता, जब नहीं जान सकता तब उसको सृष्टिका क्रम किसीको कैसे विदित हो सकता है। उसकी सृष्टिमें सब कुछ है और हो सकता है।

समाधान—निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उसकी समस्त सृष्टिका क्रम मनुष्यको अविज्ञेय है, परन्तु इससे क्या सम्भव असम्भवकी व्यवस्थाका लोप हो जायगा? स्वामीजीने उतनी ही बातोंको असम्भव लिखा है। जो रात्रि दिन एक क्रमसे हमारे आपके देखनेमें आती है परमात्माकी यह सृष्टि जहांतक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहे कैसी ही हो, परन्तु तथापि जानी हुई बातोंमें कोई क्रम अवश्य है। यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषकको यह विश्वास न होना चाहिये कि इसके फल गेहूं ही होंगे। कदाचित् चणे आदि हो जावें।

शंका—स्वामीजी ऋषियोंको पूर्ण विद्वान् लिखकर भी उनके ग्रन्थोंमें वेदानुकूल मानना अन्य न मानना लिखते हैं इसलिये वे नास्तिक हैं क्योंकि वे ऋषि प्रणीत आप्तोक्त ग्रन्थोंका अपमान करते हैं, मनुने लिखा है कि:—

योवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

जो वेद और शास्त्रोंका अपमान करे वह वेद निन्दक नास्तिक जाति, पंक्ति और देशसे बाहर किया जावे।

समाधान—"पूर्ण विद्वान् ऋषि थे" इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि वे वेद प्रणेता परमात्मासे भी अधिक थे, किन्तु मनुष्योंमें वे पूर्ण विद्वान् थे। उनके वेद विरुद्ध वचनको (यदि उनके ग्रन्थोंमें उनका वा उनके नामसे अन्य किसीका कोई वचन वेद विरुद्ध जान

पड़े) न मानना उनका अपमान नहीं, किन्तु मान्य है ? क्योंकि मनु आदि ऋषि लिख गये हैं कि वेद बाह्य स्मृति माननीय नहीं, यथाः—

या वेद बाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। इत्यादि

और जो वेद शास्त्रका अपमान करे वह बाहर किया जावे। यह वचन स्वामीजी पर नहीं, किन्तु आप पर घटता है क्योंकि स्वामीजी तो यह कहते हैं कि "वेद विरुद्ध स्मृति वाक्य नहीं मानना" इससे वे वेदोंका मान्य करते हैं और आप उनके विरुद्ध मानो यह कहते हैं कि वेद विरुद्ध भी स्मृतिवाक्य मानना। वेदका अपमान साक्षात् आप (पौराणिक) करते हैं और ऋषियोंका भी अपमान इसलिये करते हैं कि ऋषि लोग वेद बाह्य स्मृतियोंको नहीं मानते और आप मानते हैं। इस प्रकार, आप, वेद और ऋषि दोनोंका अपमान करते हैं। इसलिये आप ही नास्तिक ठहरते हैं आपको ही जाति, पंक्ति और देशसे बाहर कर देना उचित है।

(चतुर्थ समुल्लासः)

शंका—स्वामीजीने चौथे समुल्लासमें सामीप्यमें जो विवाह नहीं करनेका लिखा है सो ठीक नहीं। दूरके विवाहमें हम पुत्र पुत्रियोंके गुण दोषको नहीं जान सकते अतः विना जाने विवाह करना उचित नहीं। स्वामीजीने जो "परोक्षप्रियाइव हि देवा प्रत्यक्षद्विषः" शतपथका प्रमाण दिया है, वह भी "कहींका ईट कहींका रोड़ा" के समान है। शतपथ १४। १। १। १३ में "परोक्ष कामा ही देवाः" इस प्रकारका पाठ है, इसका अर्थ है "देवता परोक्ष प्रिय हैं प्रत्यक्षसे द्वेष करते हैं। स्वामीजीने इसे जबरदस्ती विवाहके प्रकरणमें जोड़ दिया।

समाधान—"असपिण्डा च०" इस मनुस्मृतिके अनुसार सामीप्यमें विवाह नहीं करना और उस मनु धर्मशास्त्रकी आज्ञाकी पुष्टिमें जो ८ युक्तियां स्वामीजीने दी उसे विचारपूर्वक देखिये।

"परोक्षप्रियाइव हि देवाः" इस वचनको स्वामीजीने विवाहपरक नहीं बताया, किन्तु दृष्टान्त दिया है कि "जैसे देवता परोक्ष प्रिय हैं. वैसे मनुष्योंके इन्द्रियोंमें भी देवता रहते हैं इस कारण मनुष्यको भी दूरसे मिली वस्तुमें प्रीति अधिक होती है इसलिये दूरस्थोंका विवाह अधिक प्रीति प्रद होगा, यह तात्पर्य है, और मनुके वाक्यको ब्राह्मण ग्रन्थसे पुष्ट किया है। रही यह बात कि शतपथमें यह पाठ ऐसा नहीं है जैसा स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाशमें उद्धृत किया है। इसका उत्तर यह है—गोपथ ब्राह्मणमें यह पाठ कई ठिकाने आया है।:—प्रपाठक १ कण्डिका १ तथा २ तथा कण्डिका ७ में ३ बार कण्डिका ३९ में ।

परोक्ष प्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्ष द्विषः ॥

गोपथ कण्डिका ३९ ॥

आपने जो "परोक्षकामाहि देवाः।" शतपथका वचन लिखा है उसका भी अर्थ यही है कि देवता परोक्ष वस्तुकी कामना करते हैं। सत्यार्थ प्रकाशमें गोपथके स्थानमें शतपथ कैसे लिखा गया सो सुनिये।

स्वामीजी लेख पण्डितोंको लिखाया करते थे स्वामीजीने गोपथ और शतपथ दोनों ही ब्राह्मणोंको देख लिखा था शतपथके "परोक्ष-कामाहि देवा" का और गोपथके "परोक्षप्रिया इवहि देवाः भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः" का एक ही आशय होनेसे सम्भव है "गोपथ" के स्थानमें "शतपथ" कह दिया हो वा पण्डितोंने लिख लिया हो। सन १८८४ प्रयागके छपे दूसरे संस्करण तकके सत्यार्थ प्रकाशमें जितने प्रमाण छपे हैं उनमें सब ग्रन्थोंके नाम मात्र ही छपे हैं विशेष पते नहीं छपे, यदि पते देख २ कर लिखाते तो सम्भव है यह भूल न होती। पीछेसे लोगोंके हल्ले मचानेसे सम्वत् १९४८ के अजमेरके छपे सत्यार्थ प्रकाशमें मनु आदि ग्रन्थोंके बहुतसे पते पण्डितोंसे ढुंढवा कर छपाये हैं। अबतक भी कई पते नहीं छपते तथा कई पते

ठीक नहीं किये गये इसके लिये परोपकारिणी तथा सार्वदेशिक सभाको इस ओर ध्यान अवश्य देना चाहिये।

शंका—स्वामीजीने जो नियोगकी बात लिखी है उसको कोई बुद्धिमान् तो क्या निर्बुद्धि, विषयी लम्पट स्त्री पुरुष भी नहीं मान सकते।

समाधान—नियोगका विषय स्वामीजीने अपने मनसे नहीं लिखा इसके लिये वेद, स्मृति तथा प्राचीन इतिहास महाभारतादिके अनेक प्रमाण दिये हैं।

प्राचीन वैदिक कालमें विवाहका मुख्योद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही था। उस समयमें सन्तान न होनेकी अवस्थामें कुलनाशके भयसे ऋषि मुनि विद्वान्, महापुरुषोंसे नियोग द्वारा वीर्य्य ग्रहण कर उच्चकुल तककी स्त्रियें सन्तानें उत्पन्न करती थीं जिसके प्रमाण स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाशमें दिये हैं। यह बात दूसरी है कि वर्तमान व्यभिचारके युगमें जब कि विवाह विषय वासनाकी तृप्तिके ही उद्देश्यसे किये जाते हैं नियोग भी व्यभिचारसा ही प्रतीत हो। किन्तु जो पुराणोंको धर्मग्रन्थ स्वीकार करते हैं वे नियोग पर कैसे आक्षेप कर सकते हैं जब कि पुराणोंमें नियोगसे भी बढ़ चढ़कर बातें लिखी हैं जैसे—

भागवत (स्क० ९, अ० ६) में लिखा है

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽतिथिः।
अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥२॥
एते क्षेत्रप्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसा स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥३॥

अम्बरीषके वंशमें पृषदश्वके पुत्र रथीरतके कोई सन्तान न था, उसने सन्ततिसूत्रकी रक्षाके लिये अंगिरा ऋषिसे प्रार्थना की। अंगिराने रथीतरकी भार्यामें ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र पैदा किये। जो रथीतरके

क्षेत्रज पुत्र होकर भी आंगिरस कहाये। रथीतर वंशियोंके वे ही प्रवर क्षत्रियोंके वंशमें होकर भी ब्राह्मण द्विजाति कहाते हैं।

भागवत (स्क० ६ अ० ६) में

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजः।
वशिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥

राजा विशापने किसी ब्राह्मणके इस शापभयसे कि भोग करते समय उसकी मृत्यु होगी सब प्रकारका विषयसुख छोड़ दिया। वशिष्ठने उसकी आज्ञासे मदयन्तीमें प्रजाको उत्पन्न किया।

महाभारत (आदि पर्व अ० १०४) में

ज्ञात्वा चैनं स वव्रेऽथ पुत्रार्थे भरतर्षभ ! ॥४३॥
संतानार्थं महाभाग भार्यासु मम मानद।
पुत्रान् धर्मार्थ कुशलान् उत्पादयितुमर्हसि ॥४४॥
एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवान् ऋषिः।
तस्मै स राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा ४५
तां स दीर्घतमाऽङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत्।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः ॥५२॥
अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ५३
अङ्गस्याङ्गोऽभवद्देशो वङ्गो वङ्गस्य च स्मृतः।
कलिंगविषयश्चैव कलिंगस्य च स स्मृतः ॥५४॥
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः सुम्हाः सुम्हस्य च स्मृताः
एवं बलः पुरावंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः ॥५५॥

काशीके चन्द्रवंशी राजा बलिने ऋषि दीर्घतमाको तेजस्वी विद्वान् देखकर अपने पुत्र उत्पन्न करानेके निमित्त वरण किया और प्रार्थनाकी 'हे महाभाग ! मेरी भार्याओंमें आप धर्म और अर्थमें कुशल पुत्रोंको उत्पन्न करें।' ऐसी प्रार्थना सुनकर तेजस्वी ऋषिने कहा 'तथास्तु'। राजा अपनी धर्मपत्नी सुदेष्णाको उसके पास भेज दिया।

ऋषि दीर्घतमाने उसके अंगोंको स्पर्श करके कहा 'देवि ! तुम्हारे पुत्र आदित्यके समान तेजस्वी होंगे। उनके नाम अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुम्ह, ये हैं। उनके नामसे भारतवर्षके बड़े बड़े राष्ट्र बने। ये बलिका वंश महर्षिके वीर्यसे उत्पन्न हुआ प्रसिद्ध है।

शान्तनुकी स्त्री सत्यवतीने सन्तानके निमित्त जब भीष्मसे कहा तब भीष्म कहते है (आदि०, अ० १०३)

शांतनोरपि संतानं यथा स्याद्क्षयं भुवि।
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥२५॥
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥२६॥

(अ० १०४) में—

जामदग्न्येन रामेण, पितुर्वधममृष्यता।
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥४॥
एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा।
ततः संभूय सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ॥५॥
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥६॥
धर्ममनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः।

लोकेप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥७॥

हे रानि ! शान्तनुकी सन्तान भी नष्ट न हो ऐसा सनातन धर्म मैं तुझे बतलाता हूं, उसको सुनकर आपद्धर्ममें कुशल बुद्धिमान पुरोहितों द्वारा लोकतन्त्र (लोकमर्यादा) पर दृष्टि रखकर उसपर विचार कर ।

राम जामदग्न्यने अपने पिताके बधको न सहन करके २१ बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करदिया ! तब सब क्षत्राणियोंने वेदके विद्वान ब्राह्मणोंसे संग करके पुत्र उत्पन्न कर लिये थे। क्योंकि वेदमें यह सिद्धान्त निश्चय किया गया है कि पुत्र 'पाणिग्रहण करनेवाले पतिका ही कहाते ।' इधर वैदिक धर्मको मनमें रखकर ब्राह्मणोंने उन क्षत्राणियोंसे सङ्ग किया और लोकमें भी क्षत्रियोंमें पुनर्भव (पुनः विवाह) द्वारा पुत्रको प्राप्त करनेकी रीति देखी जाती है।

इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, पाण्डुकी उत्पत्ति, भरद्वाजकी उत्पत्ति आदि सभी नियोग विधिसे हुई है। इसमें महाभारत पुराण आदि सभी समान रूपसे सहमत हैं। मनुने नियोगकी आज्ञा दी है। नियोगज पुत्रको धर्मशास्त्रकार क्षेत्रज पुत्रके नामसे पुकारते हैं।

(पञ्चम समुल्लास)

शंका—स्वामीजीका लिखना है कि—

"विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्"

नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन विविक्त अर्थात् संन्यासियोंको देवे। यह और भी धन लेनेको कपट जाल बनाया है। आर्य समाजी उपरिलिखित श्लोकका आधार मनुस्मृतिका निम्न श्लोक बताते हैं—

"धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥"

मनु० ११ । ६ ॥

सो विद्वान् लोग इसके अर्थको विचारें, इससे सन्यासियोंको द्रव्य देनेका कोई भी पद नहीं है। किन्तु इस श्लोकका यह अर्थ है कि अनेक प्रकारसे धन यथा शक्ति ब्राह्मणोंको देने चाहियें, जो कि वेद पढ़े हैं और (विविक्तेषु पुत्रकलत्रा द्यवरुद्धेषु) कुटुम्बी है। ऐसे ब्राह्मणोंको देनेसे शरीर त्यागने उपरान्त स्वर्ग होता है।

समाधान—हमारा कहना है कि मनु ११।६ के पाठसे सत्यार्थ प्रकाशस्थ पाठमें भी अर्थ भेद नहीं है। आप जो "विविक्तेषु" का अर्थ "पुत्री स्त्री आदिमें फँसे कुटुम्बी" कहते हैं सो "विचिर् पृथग्भावे" धात्वर्थसे उलटा है। उसका अर्थ पुत्रादिसे पृथक् सन्यस्त है, आप पुत्रादिमें फँसे गृहस्थ कुटुम्बीका अर्थ करते हैं।

(सप्तम समुल्लास)

शंका—सप्तम समुल्लासमें स्वामीजीने जो ३३ देवताओंका वर्णन किया है जिसके लिये "त्रयस्त्रिं शस्त्रिशता" वेदका प्रमाण दिया है। इस मन्त्रमें तो ३०३३ गिनतीका वर्णन है, फिर स्वामीजोने ३३ की ही गिनती कैसे की?

समाधान—"त्रयस्त्रिंशस्त्रिंशता" यह पाठ ही अशुद्ध छप गया है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है "त्रयस्त्रिंशता" जिसमें ३३ से अधिकका वर्णन नहीं। देखिये वेदोंके प्रमाण—

त्रयस्त्रिꣳशता॥ यजुः १४।३१॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासः॥ ऋ० ६।२।३५।१।

इसमें भी ३३ ही देवता लिखे हैं।

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिम्। अथर्व १०।७।२३॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे०॥ अथर्व १०।७।२७॥

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे देवतोंकी ३३ संख्या प्रमाणित होती है और शतपथ ब्राह्मणके कांड ११ के अनुसार भी ३३ ही सिद्ध होते हैं।

शंका—स्वामीजीने कहीं तो देवता शब्द विद्वानोंके लिये प्रयोग किया है कहीं इन्द्रादि शब्द ईश्वर वाचक कहे हैं। ऐसा क्यों?

समाधान—विद्वानोंको देवता मानना सूर्यादिके देवता माननेका बाधक नहीं हो सकता। क्या एक प्रकरणमें एक पदार्थको देवता मानकर दूसरे प्रकरणमें दूसरे पदार्थको देवता मानना कोई विरोधकी बात है?

देखिये निरुक्तकार क्या लिखते हैं:—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा॥ निरुक्त अ० ७ खं० १५॥

दान, दीपन, द्योतन और द्युस्थान (प्रकाश स्थान) होनेसे "देवता" होता है। यद्यपि पूर्णदान पूर्ण प्रकाश, पूर्ण द्योतन (जताना) का स्थान तो अचिन्तनीय ज्योतिष्मान् सच्चिदानन्द परमात्मा ही है और इस कारण ये सब अर्थ असीमभावसे उसीमें मुख्य करके घटते हैं, तथापि सांसारिक सुख भोगके अभिलाषी मध्यम अधिकारियोंके लिये उनके अभीष्ट इन्द्रियोपभोग्य स्वादु रस सुगन्धादिसे होने वाले सुखोंकी प्राप्तिके अर्थ सूर्यादि भौतिक पदार्थ भी (जो ब्रह्म बुद्धिसे उपास्य नहीं हैं) समीप प्रकाशादि दिव्य गुणोंके धारण करने वाले होनेसे गौण भावसे "देवता" हैं। जिनका वर्णन यजुर्वेदके अध्याय १४। २०॥ में भी आया है।

शंका—स्वामीजीने ईश्वरको मनुष्यवत् समझ लिया है यदि वह साकार हो जाय तो व्यापक न रहे, उसका कोई बनाने वाला हो जाय। जब कि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, तो वह आकार वाला होकर भी शक्ति वा ज्ञानसे रहित नहीं हो सकता। जिस समय प्रलय होती है उस समय वह निराकार, जब उसमें सृष्टि रचनाकी इच्छा होती है तभी उसको सगुण वा साकार कहते हैं, यहां न्यायी दयालु, आदि नाम साकारमें ही घटते हैं। यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट लिखा है:—

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चाऽनिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च यद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करेत्यथ यत् तूष्णो यदेवास्थानिरुक्तमपरिमित रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ॥ श०कां० १४।१।२।१८॥

परमेश्वर दो प्रकारका है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त इस कारण जो कर्म यजुर्वेदके मन्त्रोंसे करता है उसके द्वारा परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करता है, जो निरुक्त और परिमित नाम है और जो तृष्णोभाव सम्पन्न है अर्थात् अध्यात्म मन्त्रका ही मनन करता है उससे परमेश्वरके रूपका संस्कार करता है, जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है इससे प्रत्यक्ष परमेश्वरमें निराकारता साकारता पाई जाती है।

समाधान—यहां प्रथम तो प्रजापति शब्दसे यज्ञका ग्रहण है क्योंकि (यज्ञो वै प्रजापतिः) यज्ञ प्रजाका पालन करता है और कर्मकाण्ड सांसारिक अग्नि वायु भृगादि देवतोंके लिये होता है तथा ज्ञानकाण्ड वा उपासनाकाण्ड ईश्वर विषयक होता है इसलिये यहां कर्मकाण्डके प्रकरणमें भौतिक पदार्थोंका यज्ञ ही प्रजापति समझना चाहिये और ऐसा मानने पर यह अर्थ होगा कि—

(उभय वै एतत् प्रजापति) यज्ञ निश्चय दो प्रकारका है (निरुक्तश्चाऽनिरुक्तश्च) निरुक्त जिसका निर्वचन किया जाय और अनिरुक्त जिसका निर्वचन न किया जाय तथा (परिमितश्चाऽपरिमितश्च) परिमाणयुक्त और परिमाण रहित (तद्यद्यजुषा करोति) सो जोकि यजुर्वेदसे करता तब (यदेवास्य निरुक्त परिमितꣳरूपम्) जो इस यज्ञका निरुक्त और परिमित स्वरूप है (तदस्य तेन संस्करोति) इसके उस स्वरूपका उस यजुः से संस्कार करता है (अथ

यतुष्णीम्) और जो कि चुप होकर होमादि करता है तब (यदे-वास्याऽनिरुक्तमऽपरिमितꣳरूपम्) जो ही इसका अनिरुक्त और अपरिमित रूप हैं (तदस्य तेन संस्करोति) उस स्वरूपका चुप होकर इस कर्मसे संस्कार करता है (इति ब्राह्मणम्) यह ब्राह्मण पूरा हुआ अर्थात् यज्ञका थोड़ासा वर्णन मनुष्य कर सकता है समस्त नहीं, यज्ञके थोड़े स्वरूपका मनुष्य परिमाण जान सकता है सबको नहीं। बस जहां तक जान सकता है, वहां तक वर्णनकर सकता है। जहां तक वर्णन कर सकता है वहां तक परिमाण जानता है वहां तक यजुर्वेदके मन्त्रोंसे वर्णन करता हुआ अग्निहोत्रादि करे। और क्योंकि कुछ यज्ञका स्वरूप वर्णन और परिमाणसे बाहर हैं इस लिये कुछ चुप होकर भी करना चाहिये।

और यदि थोडी देरके लिये यह भी मानलें कि ईश्वरका ही वर्णन है तो भी उसका साकार निराकार होना इससे नहीं पाया जाता परमेश्वर भी समस्त भावसे निर्वचनमें नहीं आता अनन्त होनेसे परन्तु थोड़ासा निर्वचन उसका शास्त्र द्वारा हो सकता है, बस जितना कि परमात्माका हम वर्णन कर सकते हैं उस अंशमें वह निरुक्त और शेषमें अनिरुक्त और वर्णन करने तक परिमित और वर्णनसे बाहर अपरिमित है जैसा कि—

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ यजुः

वह सब जगत्के भीतर और जगत्से बाहर भी है बस जगत्के भीतर जितना परमेश्वर है उतना कथञ्चित् निरुक्त और परिमित तथा जो अनन्त जगत्के बाहर है उतना अनिरुक्त और अपरिमित है। परन्तु साकार और निराकार इससे भी नहीं पाया जाता।

प्रश्न—"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं चेति" ईश्वरके दो रूप हैं, एक मूर्तिमान् एक अमूर्तिमान् (एकं रूपं बहुधाया करोति) और एक रूपको जो बहुत प्रकारका करता है। इस मंत्रसे तथा औरोंसे

भी सर्व कारण बीजस्थानापन्न परमात्मामें साकारता इस प्रकारसे प्रकट है।

समाधान—ब्रह्मके दो रूप हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्म स्वरूपतः दो प्रकारका है। किन्तु यह तात्पर्य है कि मूर्त और अमूर्त दो प्रकारके पदार्थोंका स्वामी ब्रह्म है। यदि लोकमें यह कहा जाय कि देवदत्तके दो गौ है, एक लाल और एक काली। तो क्या इससे कोई यह समझ सकता है कि देवदत्त स्वयं काली और लाल गौके आकारका है। कभी नहीं। आपने एक आरम्भका टुकड़ा लिख दिया। यदि इससे अगला पाठ भी आप लिखते तो स्पष्ट प्रतीत हो जाता कि ब्रह्मके निजके दो रूप नहीं हैं किन्तु दो रूपोंका स्वामी ब्रह्म है। जैसा कि ठीक पाठ यह है—

"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवा मूर्तं च"

आगे चल कर इसे स्पष्ट किया है कि—

"तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च"

(बृहदारण्य उप० प्रपाठक ब्राह्मण ३ का० २)

अर्थात् यह मूर्त है जो वायु और अन्तरिक्षसे अन्य पदार्थ है। अर्थात् पृथ्वी, जल अग्नि मूर्त अर्थात् दृश्य हैं॥ फिर आगे

"अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षं च" कां० ३

और वायु तथा अन्तरिक्ष अमूर्त हैं अब विचारिए कि पांच तत्वोंमें दो अमूर्त तीन मूर्त स्पष्ट गिनाए हैं वा निजके ब्रह्म दो प्रकारके बनाये हैं?

शंका—स्वामीजीने ईश्वरको अज अकाय बता कर ईश्वरके अवतार होनेमें सन्देह करते हैं तो, जीवात्मा भी अज और व्यापक श्रवण करा जाता है, उसका भी जन्म न होना चाहिये।

समाधान—जीवात्मा केवल स्वरूपतः अज है परन्तु सर्व देशीय नहीं, यदि सर्व देशीय हो तो मृत्यु न होना चाहिये। तथा एक

देशमें होने वाले कामोंका वृतान्त अन्य देशस्थ जीवात्माओंको ज्ञात भी होना चाहिये। स्वामीजी केवल अज अकाय होनेसे ही परमात्माको निराकार अवतार रहित मानते हों सो नहीं किन्तु वह सर्वव्यापक होनेसे देह विशेषके बन्धनमें नहीं आसकता। यह स्वामीजीका कथन है।

शंका—"न तं विदाथ०" यजु० १७। ३१ में लिखा है कि "उस परमेश्वरको तुम नहीं जानते फिर यह स्वामीजीने कैसे जान लिया कि वह अवतारादि धारण नहीं कर सकता?

समाधान—हम पूछते हैं कि आपने यह कैसे जान लिया कि परमेश्वर अवतार धारण करता है? जब कि कहते हो कि उसे कोई नहीं जानता। हम तो (न तं विदाथ) का यह तात्पर्य समझते हैं कि परमात्मा मन और बुद्धिका पूर्णरूपसे विषय नहीं हो सकता।

(अमष्ट समुल्लासः)

शङ्का—"देवादिवदपि लोके" इस ब्रह्म सूत्रसे यह मालूम होता है कि जैसे लोकमें देवादि सिद्ध लोग बिना सामग्रीके अपनी विचित्र शक्तिसे पदार्थोंको रच लेते हैं, जैसे बकुली विना वीर्यके केवल मेघगर्जनसे ही गर्भवती होजाती है वा मकड़ी विना सूतके ही जाला पूरती है; ऐसे ही विना प्रकृतिके केवल ब्रह्मने जगत् रच लिया।

समाधान—जिस प्रकार देवादि सिद्ध कोटिके मनुष्योंके पास अदृश्य रूपसे विचित्र सामग्री वर्त्तमान रहती है, और बकुलीके गर्भार्थ मेघ गर्जन ही में वायु द्वारा वीर्य प्राप्त होता है और जिस प्रकार मकड़ीका आत्मा अपने स्थूल शरीरमें छिपे हुए सूतोंको फैलाता है, इसी प्रकार ब्रह्म भी अव्यक्त अदृश्य प्रकृतिको विकृति करके ही जगत्को बनाता है। यदि नियत सामग्री की आवश्यकता नहीं होती तो राजादि लोग देवादि सिद्ध पुरुषोंसे राज्यादि करणार्थ नवीन पृथिवी बनवाकर राज्य करते, बकुलीके समान काकी और मनुष्यकी स्त्री भी मेघ गर्जनसे गर्भवती हो जाती, मकड़ीके समान विना सूतके जुलाहे

भी कपड़ा बुन लेते। परन्तु विना सामग्री यथार्थमें कोई कार्य नहीं बनता। यह बात दूसरी है कि सामग्री प्रत्यक्ष हो वा छिपी अदृश्य हो।

शंका—इसमें कोई प्रमाण नहीं कि आदिमें तिब्बतमें ही मानुषी सृष्टि हुई।

समाधान—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्यान्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः ॥"

(तैत्ति० ब्रह्मानन्द वल्ली अनु० १)

अर्थात् प्रथम परमात्माने आकाश तत्त्वको उत्पन्न किया फिर वायु, फिर अग्नि, फिर जल, फिर पृथिवी, फिर अन्न, फिर वीर्य और फिर मनुष्यको।

इससे स्पष्ट है कि उत्पत्ति क्रममें पुरुषकी उत्पत्ति अन्नके पश्चात् है। अन्न पृथिवीसे उत्पन्न होते हैं ? पृथिवीका ऊंचा भाग तिब्बत ही प्रथम ठण्डा और अन्न उपजाने योग्य हो सकता था। इसी प्रकार अग्निमय पिण्डसे जलमय पिण्ड तत्पश्चात् मृण्मय पिण्ड, तत्पश्चात् अन्नसे मनुष्य जातिकी उत्पत्ति हो सकती है। इसी विचारसे स्वामी-जीने तिब्बतमें मनुष्योंकी आदि सृष्टि लिखी है।

शङ्का—त्रिविष्टपका नाम आर्यावर्त क्यों न हुआ जब कि आर्य प्रथम वहीं जन्मे।

समाधान—३ तीन वेदों, ३ तीन वर्णों तथा अन्य त्रयी विद्याओंका स्थान होनेसे उस देशका नम त्रिविष्टप हो गया। जो आर्यावर्त नामसे कुछ घटिया नाम नहीं। आर्य और दस्युओंका विभाग जब तक भिन्न २ देशोंमें न हुआ तब तक किसी देशका नाम आर्यावर्त रखना आवश्यक भी न था।

(दशम समुल्लासः)

शङ्का—स्वामीजीने लिखा है कि "उष्णदेश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये। सारांश प्रत्यक्ष शिखा न रखनेका आदेश है, यह ईसाई मुसलमानादि अवैदिक मनुष्योंकासा आदेश है।

समाधान—स्वामीजीने शिखा, सूत्र दोनोंके धारण करनेका स्पष्ट आदेश सत्यार्थ प्रकाशमें दिया है। देखो—सत्यार्थ प्रकाश १० वां समुल्लासः—

"क्षौर मुण्डन......के पश्चात् केवल शिखाको रखके अन्य डाढ़ी मुंछ और शिरके बाल सदा मुण्डवाते रहना चाहिये"

जहां शिखा छेदनका आदेश है उसके पहले लिखा है कि "जो शीत प्रधान देश हो तो कामाचार है (अर्थात् वहां लाचारी है) वहां चाहे जितने केश रक्खे" (इसी प्रकार) "जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये"

अति उष्ण देश आर्यावर्त देशको नहीं कह सकते, किन्तु अफ्रिका आदिको अत्युष्ण देश कहते हैं। स्वामीजीके लेखोंमें शिखा सूत्र त्यागकी निन्दा निम्न शब्दोंसे स्पष्ट पाई जाती है।

देखो सत्यार्थ प्रकाश ११ वां समुल्लास, ब्राह्म समाजकी आलोचना प्रकरणमें:—

"और जो विद्याका चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखाको छोड़ मुसलमान ईसाइयोंके सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है जब पतलुन आदि वस्त्र पहिरते हो और "तमगों" की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत, आदिका कुछ बड़ा भार हो गया था ?"

शङ्का—स्वमीजीने १० वें समुल्लासमें एक स्थान पर लिखा है कि "मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांसके परमाणुओंहीसे पूरित है, उनके हाथका न खावें। तो फिर शूद्रोंके हाथका खाना क्यों लिखा ? क्योंकि वे भी मांस खाते हैं।

समाधान—शूद्र आर्योंके चारों वर्ण (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के अन्तर्गत हैं जैसे ब्राह्मणादि द्विज शास्त्रानुसार

मांसाहारी नहीं वैसे शूद्र भी नहीं हैं (वैसे तो वर्तमानमें ब्राह्मणोंमें भी अनेक मांसाहारी हैं) स्वामीजीने खान पानका विषय आचार अनाचारके प्रकरणमें रक्खा है और "आचारः परमो धर्मः" शास्त्र वाक्य पर बड़ा बल दिया है और मनुस्मृतिका निम्न श्लोक—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च॥

मनु० ५।५॥

अर्थ—लहसन, शलगम, पियाज, कुकुर मूना और जो मलीन विष्टा मूत्रादिके संसर्गसे उत्पन्न हुए शाक, फल मूलादि द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको भी न खाना चाहिये। तथा—

वर्जयेन्मधुमांसं च॥ मनु० २।१७७॥

मद्य, मांस, गांजा, भांग, अफीम आदि भी वर्जित हैं। मद्य मांसाहारी म्लेच्छोंके हाथका खाना वर्जित करते हुए स्वामीजीने लिखा है कि "मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियोंके हाथके खानेमें आर्योंको भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है, परन्तु आपसमें आर्योंका एक भोजन होनेमें कोई दोष नहीं दीखता"।

(एकादश समुल्लास)

शङ्का—इस समुल्लासमें स्वामीजीने सब मत प्रवर्त्तक आचार्योंको बड़े ही अनादर युक्त शब्दोंमें वर्णन कर आलोचना की है। क्या यह स्वामीजीको उचित था?

समाधान—एक सिखने नाभानरेश श्री सरदार हीरासिंहको कहा था कि देखिये सत्यार्थ प्रकाशमें स्वामी दयानन्दने गुरुनानकके विषयमें कैसे अपमान जनक शब्द लिखे हैं, "इस पर वृद्ध महाराजने जो उत्तर दिया वह उपर्युक्त शंकाका अच्छी प्रकारसे समाधान करता है। महाराजने कहा "गुरुनानक बाबा थे और स्वामी दयानन्द भी बाबा थे दोनों ही एक कोटिके महापुरुष होनेसे परस्पर एक दूसरेकी आलो-

चना करनेका अधिकार रखते हैं। इसमें हम साधारण व्यक्तियोंको न पड़ना चाहिये। हमें तो दोनों ही के उपदेशोंसे लाभ उठाना चाहिये।"

शङ्का—स्वामी जीने गुरुनानकजीके मतके विषयमें आलोचना करते हुए जो "वेद पढ़त ब्रह्मा मरे" सुखमनी पौड़ी ७। चौ० ८ का वाक्य उद्धृत किया है वह सुखमनी अथवा सिखोंके किसी ग्रन्थमें यह वाक्य नहीं मिलते स्वामीजीने कैसे लिख दिया?

समाधान—प्रयागके छपे दूसरे संस्करण तकके सत्यार्थ प्रकाशमें जितने प्रमाण छपे हैं, उनमें सब ग्रन्थोंके नाम मात्र ही छपे हैं, पते विशेष नहीं छपे। पीछेसे लोगोंके हल्ले मचाने पर सम्वत १९४८ के अजमेरके छपे सत्यार्थ प्रकाशमें ग्रन्थोंके बहुतसे पते पण्डितोंसे ढूंढवा-कर छपाये गये हैं। "वेद पढ़त ब्रह्मा मरे" व्याक्यके अन्तमें भी सुख-मनी पौड़ी ७। चौ० ८।। का पता छपा है।

अजमेरके छपे पांचवें वा छट्ठे संस्करण सत्यार्थ प्रकाशमें एक विज्ञापन छपा है जिसमें लिखा गया है कि आर्य पथिक "पं० लेखरा-मजीसे सत्यार्थ प्रकाश संशोधित कराकर छापा है, जिसमें कि पाठ-भेद, आदि ठीक कर दिये गये हैं उस समय यदि सुखमनीमें "वेद पढ़त ब्रह्मा मरे" वाक्य न होते वा पाठ भेद होता तो ठीक कर दिये होते। अपितु पहले संस्करणमें पता नहीं लिखा था बादमें पता भी लिख दिया। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन छपी वा हस्तलिखित सन् १८८४ के पहलेकी "सुखमनी" में यह वाक्य अवश्य रहे होंगे पीछे निकाल दिये गये हों तो क्या आश्चर्य है। जब कि वर्त्तमानमें भी इस आशयके वाक्य सिखोंकी पुस्तकोंमें मिलते हैं जैसे कि—

नाभि कमलते ब्रह्मा उपजे, वेद पढ़े मुख कंठ सवार।
ताको अन्त न जाई लखणा, आवत जावत रहे गवार॥

राज गुजरी १। २। महल १

—:❀:—

ओ३म्

सत्यार्थप्रकाशः

प्रमाण सूची

अ

अइ सयपा वियपा वायम्मि ५८४
अकामस्य क्रिया ६१, ३४२
अग्निवायुरविभ्यस्तु; २६५
अग्निरुष्णो जलं शीतं ५४१
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टः ३८८
अग्निर्वा अश्वः, ३८०
अग्निहोत्रं त्रयो वेदाः ५४०
अग्निहोत्रं समादाय, १५५
अग्ने नय सुपथा, २४०
अग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजु०, २६५
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां, ३१८
अङ्गादंगात्सम्भवसि, १४६, ८०३
अंगो वंगः कलिङ्गश्च, ८०६
अङ्गस्यांगोऽभवद् शो, ८०६
अजामेकां लोहितशुक्ल २४७,२७४
अज्ञो भवति वै बालः, ३४६ ५२१
अणुमहदिति तस्मिन ७५
अत एव चानन्याधिपतिः, ३६४
अतपास्त्वनधीयानः, १२६
अनप्ततनूनं तदामो, ४०६
अतिथिदेवो भव, ३४१ ४२३
अतिथिगृहानागच्छेत्, ४२३
अत्र पूर्व महादेवः, ४२१
अत्ता चराचरग्रहणात्, १५
अथ किमेतैर्वा पयेऽन्ये, ३६७
अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं, ६५
अथतद्वचनेनैव, ५६२
अथ त्रिविधदुःखात्य०, २८, ३४०
अथ यान्यष्टाचत्वारिंशं ५१
अथ यानि चतुश्चत्वारिंशं ५०
अथ योगानुशासनम्, २८
अथ शब्दानुशासनम्, २७
अथातो धर्म जिज्ञासा, २७
अथातो धर्म व्याख्यास्यामः २८
अथातो ब्रह्म जिज्ञासा २८
अथो ज्ञानान्वितो वैभा० ५५२
अथा मूर्त वायुश्चा ८१६

अथोदरमन्तरं कुरुते २६१
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा २१६
अदुष्टं विद्या, ७७
अदेवृघ्न्य पतिघ्न्येधि० १४५
अद्भिर्गात्राणि शुध्य ४३, १०६
अद्यतेऽत्ति च भूतानि, १५
अधर्मचर्यया पूर्वोवर्णो० १०७
अधर्मदण्डनं लोके, २१६
अधर्मेणैधते तावत्, १२८
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः १३०
अध्यक्षान् विविधान् कुर्याद् १६०
अध्यापनमध्ययनं, १०८
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः १२०
अध्यात्मरतिरासीनो, १६१
अनादे रागमस्यार्थो ५६२
अनाहूतः प्रविशति, १३६
अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः ३१७
अनित्याशुचिदुःखाऽना० ३०७
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः २८३
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ३८५
अनुबन्धंपरिज्ञाय, २१६
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः, १८६
अनुसरणं सावद्, ५६७
अनेन क्रमयोगेन, ५८
अनेन विधिना सर्वा, १६३
अनेन आत्मना जीवेनानु० २५६
अन्तर्याम्यधिदेवादिषु ३६६
अन्तःशाक्तःबहिःशैवाः ४७३
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ३१५
अन्धंतमः प्रविशन्ति ४१५
अन्नंहि गौः ३८०
अन्यथा सर्वदोषाणां ४६३
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं० १४८
अन्यानपि प्रकुर्वीत, १८६
अपरस्मिन्नपरं युगपत्० ७०
अपाणिपादो जवनो गृहीता १४४
अपि यत्सुकरं कर्म, १८६
अप्यागनयस्तु वेलायां, ८०४
अपां समीपे नियतो, ४६
अप्रयत्नः सुखार्थेषु, १५६
अप्सु शीतता ६६
अभावाद् भावोत्पत्ति र्ना०, २८३
अभक्ष्याणि द्विजातीनां ३५५
अभावं बादरिराह ह्येवं, ३१५
अभिवादनशीलस्य, ५७
अभ्यंगमञ्जनं चाक्ष्णोः ५६
अभ्यादधामि समिध०, १५७
अमात्ये दण्ड आयत्तो, १८८
अमाययैव वर्त्तेत, १६४
अयमात्मा ब्रह्म, २५३
अरिहंदेवो सुगुरु ५७६
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो, ४२३
अर्थकामेष्वसक्तानां, १४२
अर्थसम्पादनार्थं च, [illegible]

अर्थानुपार्ज्य बहुशो ५४६
अलब्ध चैव लिप्सेत, १६३
अलब्धं मिच्छेद्दण्डेन, २६४
अल्ला यज्ञेन ७८७
अल्लो रसूलमहमद, ७८६
अल्लः पृथिव्या ७८७
अल्ला ऋषीणां ७८७
अविद्यायां बहुधा वर्त्त० १५६
अविद्यायां मन्तरे वर्त्त० १५६
अविद्याऽस्मितारागद्वेषा ३२५
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं, ६६
अव्रतानाममन्त्राणा, १८१
अष्टवर्षा भवेत गौरी ६७
अष्टादशपुराणानां; ४४०
अष्टापाद्यंतु शूद्रस्य; २२१
अश्वस्यात्र हि शिश्नंतु ५४२
अश्वालम्भं गवालम्भं १५१
अश्रुतश्च समुन्नद्धो १३६
असतो मा सद् गमय २४०
असद्वा इदमग्र आसीत्, २७५
असपिण्डाच या मातुः, ६४
असुरसंहारिणीह० ३८७
अस्माल्ला इल्ला ७८६
अस्मिन्नस्य च तद्योगं ३६५
अहन्यहन्यवेक्षेत, २२४
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्, १५
अहमिन्द्रो न पराजिग्ये, २२६
अहंब्रह्मास्मि, २५३
अहम्भुवं वसुनः पूर्व २२६
अहिंसयेन्द्रियासङ्गै १६२
अहंभैरवस्त्वं भैरवी, ३७६
अहिंसयैव भूतानां, ५७, ३४६
अहिंसा सूनृतास्ते ५८२

आ

आकारसहिताबुद्धिः, ५५२
आकृष्णेन रजसा वर्त्त०, ३०२
आचाराद्विच्युतो ६२
आचाराल्लभते ह्यायुः १३३
आचारः परमो धर्मः ६१, ३४
आचार्य उपनयमानो ३४६
आचार्यदेवो भव, ३४६, ४२३
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ४२२
आज्यं मेवः ३८०
आत्मज्ञानं समारम्भ, १३४
आत्मेहागच्छतु ४१५
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः ३१७
आत्मैवेदमग्र आसीत् २७५
आदल्लाबूकमेकम् ७८६
आदानमप्रियकरं २०७
आदावन्तेच यन्नास्ति, २७८
आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वः ७०
आधेनवो धुनयन्ताम० १०१
आधेयशक्ति योग इति, ७८

आनाः अंशकलाः प्रोक्ताः ५२१
आपो नारा इति प्रोक्ताः १६
आप्तोपदेशः शब्दः, ६७
आप्तःसर्वेषु वर्णेषु, २१६
आयतिं सर्वकार्याणां, २०५
आयत्यां गुणदोषज्ञः, २०५
आयं गौः पृश्निरक्रमीद्, ३०२
आरम्भरुचिता धैर्य, ३३५
आर्यता पुरुषज्ञान २१०
आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः, ३५३
आलस्यं मदमोहौच १३६
आवृत्तानां गुरुकुलाद्, १६०
आसनंचैव यानंच, २०१
आसमुद्रात्तु वै पूर्वाद्, २६६
आसीदीदं नमोभूतम् २८०
आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं, १६०
आहार शुद्धे सत्व ८०३

इ

इच्छाद्वेषप्रयत्न सुख, ७१, २५१
इतरथाऽन्धपरम्परा, ३७४
इतइदमिति यतस्तद्दिश्य, ७०
इतिवैराज्ञो दार्ढ्यो, ४५३
इतिहास पुराणः पञ्चमो, ४४१
इतिहासपुराणाभ्यां, ४४१
इत्यपि निगमो भवति, २६६
इन्यष्ट दशभि ४५३

इदानामिव सर्वत्र तत्प० ३१८
इन्द्रानिलयमार्काणां, १७७
इन्द्रियदोषात् संस्कार ७६
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु ४१५
इन्द्रियाणां जये योगं, १८२
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन ५६,३३८,३४५
इन्द्रियाणां विचरतां, ५६, ३४५
इन्द्रियाणां निरोधेन, १६२
इन्द्रियार्थसन्निकर्षो० ६४, २३२
इन्द्रो जयाति न पराजयाता १७६
इन्द्रोमह्ना रोदसी ४
इन्द्रंमित्रं वरुणमग्नि, ४
इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्, ६०, ८०३
इमं देवा असपत्नं सुवध्वं, १७६
इमां त्वमिन्द्र मीढवः १५१
इळां कवर इळां ७८७
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव २७२
इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः ७४

ई

ईशावास्य मिदं सर्वं, २२६
ईश्वरासिद्धेः, २४६
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्मा० २८३

उ

उक्षा दाधार पृथिवीमुत ३०१
उच्चावचेषु भूतेषु १६२
उतत्वः पश्यन्नददर्श वाचं, ८२

उत शूद्र उतआर्ये, २६७
उत्क्षेपणमवक्षेपणमा० ७३
उत्थाय पश्चिमे यामे २०१
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च ४१८
उत्पादितान्यपत्यानि ८१०
उदीर्ष्वनार्यभिजीव, १४४
उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ३७४
उपरुध्यारिमासीत, २०६
उपस्थमुदरं जिह्वा, २१९
उभयं वा एतत्प्रजा, ६२३

ऊ

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः ६९

ऋ

ऋग्वेदं विद्यजुर्विद्य १८१
ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् ८२,५२६
ऋतंच स्वाध्यायप्रवचनेच, ५४
ऋतुकालाभिगामी स्यात् ११६
ऋतं तपः सत्यं तप ४०८
ऋत्विक् पुरोहिताचार्यैः १२६
ऋषियज्ञं देवयज्ञं १२०
ऋषयो (मन्त्रद्रष्टय) २६८

ए

एक एव सुहृद्धर्मो २१३ ७६०
एकक्षणा भवेद् गौरी, ६८
एक पापानि कुरुते, १३१
एकः प्रजायते जन्तु १११
एकमेव तु शूद्रस्य १११
एक द्रव्यमगुणसंयोगविभागेष्व ७३
एकः शयीत सर्वत्र ५६
एकः शतं योधयति १८८
एकाकिनश्चात्ययिके २०१
एकोऽपि वेदविद् धर्मं १८१
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं २१७
एकादश्यामन्ने पापानि० ४६५
एगो अगारू एगो, ५६६
एतद्देशप्रसूतस्य, ३३५
एतमग्नि वदन्त्येके, ४
एतेस्मि दिगन्तरालानि व्या० ७१
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तं ७७
एते क्षेत्रप्रसूता वै ८०८
एतेषु हि दृष्टं सर्वं वसु ३०४
एवं गृहाश्रमे स्थित्वा १५५
एवं नि क्षत्रिये लोके ८१०
एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावा० ३६४
एवमुक्तः स तेजस्वी ८०९
एवमेव खलु सोम्यानेन २७६
एवं विजयमानस्य १६४
एवं सर्वं मिदं राजा २११
एवं सर्वविधायेद् १६६
एवं सर्वानिमान् राजा २२४
एष वोऽभिहितो धर्मो १६६
एषामन्यतमे स्थाने २१९
एषु स्थानेषु भूयिष्ठं २१३

ऐ

ऐन्द्रस्थानमभि प्रेप्सुः २२१
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै ४७१

ओ

ओं अग्नये स्वाहा० १२५
ओं अक्षा इक्लां ७८७
ओं खं ब्रह्म ३
ओं नमोनारायणाय, ४०७
ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् १२२
ओं मरीच्यादय ऋषयः १२३
ओमित्येतदक्षरमुद्गी ३, २८
ओमित्येतदक्षरमिदं, ३, २८
ओं सानुगायेन्द्राय नमः १२५
ओं सत्य नाम कर्त्ता पुरुष, ४८२
औरसः क्षेत्रजश्चैव १४७

क

कइया होही दिवसो, ५६४
कतम एको देव इति, ४२३
कन्यानां सम्प्रदानं ४१, ६२
कस्य नूनं कतमस्यामृतानां ३१८
कव्वं अणो गजस्भं ६००
कश्यपः कस्मात्पश्यको ४४७
कामजस्य प्रसक्तो हि १८३
काममामरणात्तिष्ठेत्, १००
कामात्मता न प्रशस्ता ५५, ३४२
कामादूदश गुणं पूर्वं, २१६
कारणगुणपूर्वकः कार्य, ७५, २७६
कारणभावात् कार्यभावः, ७५
कारणाभावात्कार्याभावः, ७५
कार्यकारणभावाद्वा, ५४६
कार्यान्तरप्रादुर्भावाच्च, ७०
कार्योपाधिरयं जीवः २५७
कार्षापणं भवेद् दण्ड्यः २२१
किं सोऽपि जगणि जाओ ५८६
किं भणिमो किं करिमो ५८६
कुरु नई कुलसी सहसा, ६२५
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवि २४१
कुड्स्विद् दोषा कुह वस्तो, १४४
कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं, ५५२
कृत्वा विधानं मूलेतु, २०५
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः, १६१
केशान्तं षोडशे वर्षे. ३४३
क्रियागुणवत्समवायि ६८
क्रियागुण व्यपदेशाभावात् ७६
क्रुध्यंतं न प्रतिक्रुध्येत्, १६१
क्लेशकर्मविपाकाशयै० २४६
क्षणिकाः सर्व संस्काराः ५५२
क्षत्रियस्य परो धर्मः, १९९
क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो, ३६३
क्षीणस्यचैवक्रमशो; २०२
क्षिप्रंविजानाति; १३५

ग

गङ्गागङ्गेति योब्रूयाद्, ४३७
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा ३३८
गम्भीरोत्तानभेदेन, ५४६
गब्भणरति पलियाउ, ६२२
गिरिपृष्ठं समारुह्य २००
गुरुणानुमतः स्नात्वा ६३
गुरुलोभी चेला लालची ४४०
गुरुं वा बालवृद्धौ वा २२२
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः ४३६
गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु ३२
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् २०६
गुहां प्रविष्टवात्मानौ हि, ३६५
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्० १५५
ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद् १६५
ग्रामे दोषान समुत्पन्नान् १६५

घ

घस्य कया क्रोशदशैकमधः ४०१

च

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य, ५२
चतुर्भिरपि चैवैतैः, १६२
चारणाश्च सुपर्णाश्च, ३३८
चितितन्मात्रेण तदात्मक, ३६४
चिदचिद् द्वे परेतत्त्वे ५५७
चियवन्दणगो, ५६७
चेतना लक्षणो जीवो, ५७५
चेसाण वन्दियाणय ५८८

छ

छन्दोब्राह्मणानिच तद्वि, २६६
छिन्नेमूले वृक्षो नश्यति, ३३४
छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं ४५७

ज

जइन कुणसि तवचरणं ५८०
जउक्कब्बं मन्नाण ६००
जइ जाणसि जिणनाहो ५६५
जगाम गोकुलं प्रति ४५१
जच्छ पसुमहिसलरका, ५८७
जन्माद्यस्य यतः २७३
जम्मीर जिणस्स, ५६३
जम्बुद्वीपपमाणं तुल जोयाण, ६२५
जल चन्दनधूपनैस्थ ५६८
जलपवितर स्थल पवितर ४८०
जह जह तुट्टई धम्मो, ५८६
जागरितस्थानो वैश्वानरो, ७६६
जातोवा नचिरं जीवेत् ६६
जामदग्न्येन रामेण, ८१०
जिण आणा ए धम्मो, ५६०
जिनवर आणाभंग ५८३
जीवेशोच विशुद्धा चित् २५७
ज्येष्ठोपवीयसो भार्या १४७
जो अश्रुणि अगुण ५५१
जोगो, ५६७
जो देहशुद्धधम्म ५६१

ज्ञात्वा चैव संन्यसेऽथ ८०६
ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव ५४६
ज्ञानं परमगुह्यं मे ४४८

झ

झल्ला मल्ला नटाश्चैव ३३८

ट

टका धर्मष्टका कर्म, ५२१

त

त आकाशेन विद्यन्ते, ७०
तं इया हमाण अहमा, ५६३
तच्चैतन्य विशिष्ट देह एव, ५३६
तच्चेदेतस्मिन् वयसि, ५०, ५१
तत ऊर्ध्वं तत्याज, ८०६
ततश्च जीवनोपायो ५४२
ततो विराडजायत विराजो, ७
तत्रयत्प्रीति संयुक्तं ३३४
तत्रस्थिताः प्रज्ञाः सर्वाः २००
तत्राहिंसा सत्यास्तेय, ५५, २४२
तत्त्वमसि २५३
तत्सृष्ट्वा तदेवाणु २५
तत्स्याद्वायुध सम्पन्नं, १८८
तथा काय्यं समाप्यैव, ४६४
तदन्यास्योद्वहेद् भार्यां, १८८
तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ३१६
तदात्मकस्तत्वन्तर्यामी, २५५
तदन्तरस्य सर्वस्य ८१५
तदा द्रष्टुः स्वरूपे ३४०
तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय, २७६
तद् दुष्ट ज्ञान, ७७
तद्विज्ञानार्थं सगुरुमे, ५१८
तन्मामवतु तद्वक्तारं, १
तपत्यादित्यवच्चैव, १७८
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्य०, १५६
तपोष्पवित्रं विततं ४०७
तम आसीत्तमसा गूढ़, २७२
तमसो लक्षणं कामो, ३३५
तदेतत्मूर्तं ८१६
तस्मात्काश्यप्य इमाः ४४७
तस्मादहोरात्रस्य संयोगे, १२०
तस्मादादौ सर्वकार्ये, ४६४
तस्माद्वा एतस्मादात्मन ७, २८६
तस्मादेताः सदा पूज्याः, ११७
तस्माद्धर्मं सहायार्थं, १३२
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय, ५१८
तस्याहुः संप्रणेतारं, १७६
तस्यमध्ये सुपर्याप्तं, १८८
ताण अन्नन्तुनो अस्थि, ६००
तामनेन विधानेन, १४६
तापसा यतयो विप्राः ३३८
तापः पुण्ड्रं तथा नाम ४०६
तां स दीर्घतमांश्चेत् ८०१
तिच्छराणं पूजा सम्मत्त, ५६०
तिहु अण जणं मरन्तं, ५६२

तीक्ष्णश्चैवमृदुश्चैव; १९६
तेजो रूपंस्पर्शवन्, ६६
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, २३७
तेथूलापल्ले विहुस, ६२४
ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले, ३१६
तेषां ग्राम्याणि कर्माणि, १६५
तेषामर्थे नियुंजीत, १८६
तेषांमाद्यं ऋणादानं २१३
तेषां स्वं स्वमभिप्रायं, १८६
तैजसस्योत्वविज्ञान, ८०१
ते सार्धं चिन्तयेन्नित्यं १८६
तं प्रतीतं स्वधर्मेण, ६३
तं राजा प्रणयन् सम्यक् १७६
तं सभा च समितिश्च सेनाच १७५
त्रयस्त्रिंशत् शता ८१२
त्रयाणामपि चैतेषां, ३३४
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो ५४२
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि, १३०
त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत, १००
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि, १७४
त्रैविद्योहैतुकस्तर्की, १८१
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां, १८२
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, १, ४२३

द

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः, १७८
दण्डो हि सुमहत्तेजो, १७६
दण्डस्य पातनं चैव, १८३
दण्डव्यूहो न तन्मार्गं २०६
दशावरा वा परिषद्, १८१
दश कामसमुत्थानि, १८३
दशमे ऽहनि किंचित्पुराण०, ४४१
दह्यन्ते ध्यायमानानां, ४४, १६२
दं दुर्गायै नमः, ४७१
दिवि सोमोऽधिश्रितः ३०२
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः ३६६
दीर्घध्वनि यथादेशं, २२४
दुःख जन्मप्रवृत्तिदोष ३१६
दुःख मायतनं चैव ५५२
दुःखसंसारिणः स्कन्धा ५५२
दुराचारो हि पुरुषो १३३
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च, १७६
दुहिता दुर्हिता दूरेहिता, ६५
दूतंचैवप्रकुर्वीत, १८६
दूत एव हि संधत्ते, १८८
दूषितोऽपि चरेद् धर्मं, १६२
दूरेकरण दूरेम्मि, ५६४
दृढ़कारी मृदुर्दान्तः, १३२
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, ३६, १६१
देवत्वं सात्विका यान्ति, ३३७
देवराद्वा सपिण्डाद्वा, १४७
देवो दानाद्वा ८१३
देवरः कस्माद् द्वितीयो वरः १४५
देवाधीन जगत्सर्वं, ४५५

देशना लोकनाथानां,	५४६	द्यूतं च जनवादं च	५६
दोससि दोरविघंति,	६१६		
द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं०,	७३	**न**	
द्रव्यगुणयोः सजातीया०,	७४	न काष्ठे विद्यते देवो,	४१३
द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वंच,	७४	नगरे नगरे चैव,	१६५
द्रव्याणां द्रव्यं कार्यसामान्यं	७३	न ग्राह्यमिति वाक्यं हि,	४६४
द्रव्याश्रय्यगुणवान संयोग,	७२	न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्ति०	६७
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां	१६३	नच पुनरावर्तते,	३१७
द्वयोरप्येतयो मू०,	१८३	नच हन्यात् स्थलारूढं	१६०
द्वादशाहवदुभयविधं,	३१५	न चागम विधि	५६०
द्वासुपर्णा सयुजा सखाया	२७४	न जातु कामः कामानां,	३४५
द्वेवावब्रह्मणो	८१६	नचान्यर्थ प्रधाने	५६०
		नजातुकामान्नभया०,	७६०
ध		न तस्य कार्यं करणं च०	२४५
धनानितु यथा शक्ति	८११	न तस्य प्रतिमा अस्ति,	४१५
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं	१८८	न तिष्ठति तु यः पूर्वां,	१२०
धर्म एव हतो हन्ति,	२१३	नतु कार्याभावात् कार,	७५
धर्मचर्यया जघन्यो वर्णा,	१०७	न तेन वृद्धोभवति,	३४६
धर्म प्रधान पुरुषं,	१३२	न निरोधो नचोत्पत्तिः,	३०८
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च।	२१०	न मित्रकरणाद्राजा,	२२२
धर्मध्वजी सदालुब्धः,	१३०	नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो,	१
धर्ममनसि संस्थाप्य,	८१०	नमो अरिहाणं,	६००
धर्मविशेष प्रसूता०,	६८	नमुक्कार उ पढे	६००
धर्मोविद्धस्त्वधर्मेण,	२१३	नर्क्षवृक्ष नदीनाम्नीं,	६६
धर्म शनैः संचिनुयात्,	१३१	नमस्तीर्थ्याय च	४३८
धिक्-धिक् कपालं भस्म,	६८	न मांस भक्षणे दोषो	३७६
धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं,	१६३	न वदेद् यावनीं भाषां	३६६

नवकारेण विवोढो, ५६७
न वेत्तियो यस्य गुणप्रकर्ष, ५३०
नवै सशरीरस्य सतःप्रिया०, १६०
न हायनैर्न पलितैः, ३४६
नहि सत्यात् परोधर्मो ७६१
नष्टे मृते प्रव्रजिते . १५१
नष्टे मूले नैव फलं ३५६
नसुप्तं न विसन्नाहं १६०
नस्वर्गो नापवर्गोवा ५४१
नाततायिवधे दोषो, २२२
नाधर्मश्चरितो लोके, १२८
नानक महाज्ञानी आप ४८३
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्, ३४५
नाप्राप्यमभिवांछन्ति, १३५
नामंपितस्सअसुहं ५८४
नामुत्रहि सहायार्थं, १३१
नायुधव्यसनं प्राप्तं, १६१
नारायणं पद्मभवंच देवं ५२५
नाविरतो दुश्चरितान् १५८
नास्यच्छिद्रं परोविद्यात्, १६४
नास्तिको वेदनिन्दकः ४१८
नास्ति घटो गेह इति ७६
नासतो विद्यते भावो, २६२
नाहं मोहं ब्रवीमि०, ५३६
निग्रहं प्रकृतीनां च - २०२
नित्यायाः सत्वरजस्तमसां, २६१
नित्येष्वभावादनित्येषु ७८
निन्दन्तुनीतिनि०, ७६०
नियतं धर्मसाहित्यमुभयोः, ७७
निवर्तितास्य यावद्भिः १८६
निवेदिभिः समन्यैव, ४६३
निषेवते प्रशस्तानि, १३४
निष्क्रमणं प्रवेशनमि० ७०
नेतरोऽनुपपत्तेः, ३६५
नेह नानास्ति किंचन, १७७
नैत्यिके नास्त्यनध्यायो, ५७
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं, १६६
नोच्छिष्टं कस्यचिद् ३५७
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां ६६

प

पंचविंशे ततो वर्षे ५३
पंचावयवयोगात्सुखम्, ६११
पंचाशद् भाग आदेयः, २११
पंचेन्द्रियाणि शब्दावा०, ५५२
पठितव्यं, ४७६
पण्डताई पाने पढ़ी ४८६
पणपालल्लरक योयण, ६२३
पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठः, १५१
परीक्ष्य लोकान् कर्म०, १५६
परोक्षप्रिया हि देवाः, ६४, ८०७
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते ४०७
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ३८१, ५४१
पशूनां रक्षणं दानं, ११०

पानं दुर्जन संसर्गः, १३८
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव, १८३
पादो धर्मस्य कर्त्तारं, २१३
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् १२६
पाशबद्धो भवेज्जीवः, ३७८
पिताचार्यः सुहृन्माता, २२१
पितृदेवो भव, ३४६, ४२३
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः ४२३, ११६
पीत्वा पीत्वा पुनःपीत्वा, २७५
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः ८०६
पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाः० १६०
पुमां सं कल्पयेद्राजा, २२४
पुराकल्पेतु नारीणां, ८०४
पुराणं विद्यावेदः, ४४१
पुराणान्यखिलानि च, ४४१
पुरुषएवेदंॅ सर्वंयद्, २७२
पुरुषा बहवो राजन् ११८
पुरुषोवावै यज्ञस्तस्य; ५०
पुरोहितं प्रकुर्वीत, १८८
पूज्याभूषयितव्याश्च ४२३
पूज्योदेववत्पति ४२३
पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणाः, १०१
पृथिव्यापस्तेजो वायुरा०, ६८
पृथिव्यादिरूपरसगन्ध, ७७
पैशुन्यं साहसं द्रोहः १८३
प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां ४४
प्रजाना रक्षणंदानं ११०
प्रज्ञानं ब्रह्म; २५३
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च; २१२, २२६
प्रत्यक्षानुमानंच; ५५२
प्रधानशक्तियोगाच्चे ा २४६
प्रमाणानि च कुर्वीतः २०७
प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धेः २४६
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ १३१
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे ३७५
प्रश्नावतारयोश्चैव ४५२
प्रशासितारं सर्वेषाम० ३
प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्य० ६६
प्रहर्षयेद्बलं २०६
प्राजापत्यां निरूप्येष्टि १६०
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्व १६०
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च २१०
प्राणा इहागच्छन्तु ३१५
प्राणापाननिमेषोन्मेष, ७१, २५१
प्राणाय नमो यस्यसर्व० ४
प्राणायामा ब्राह्मणस्य १६२
प्राणायमैर्दहेद्दोषान् १६२
प्रातःकाले शिश्नं दृष्ट्वा ४२०
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो १२०
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं १४८

फ

फलं कतकवृक्षस्य; १६१

ब

बन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे; १४८
बलस्य स्वामिनश्च २०२
बहुगुण विद्यानिलयो ५८३
बहुत्वं परिगृह्णीयान् २१६
बाना बड़ा दयालका ४०६
बुद्धिवृद्धिकराण्याशु ११९
बुद्ध्वा च सर्वं तत्वेन १८८
बोधन्तीतिहि प्राहु ४५२
बौद्धानां सुगतो देवो ५५१
ब्रह्मचर्याश्रम समाप्य १५५
ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं ६०
ब्रह्मजेग हिंमाणियं; ५१५
ब्रह्मादयो देवास्तृ १२२
ब्रह्मसम्बन्धकरणात् ४१३
ब्रह्मवा इदमग्र आसीत् २७५
ब्रह्माविश्वसृजोधर्मो ३३८
ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः ३०१
ब्राह्मप्राप्तेन संस्कारं १७४
ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत १२८
ब्राह्मणेण जैमिनिरुप० ३६४
ब्राह्मो देवस्तथैवार्षः ११२
ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानां ४६
ब्रह्मणस्य चतुःषष्टिः २२१
ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद १०५
ब्राह्मणानीतिहासान् ८५, ४४२

भ

भरम हेत अवतारहिं ४८६
भर्त्तारं लंघयेद्या स्त्री २२४
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् ११८
भं भैरवाय नमः ४७१
भरम रोग तब ही मिट्या, ४८६
भवान कल्प विकल्पेषु ४४८
भावं जैमिनि विकल्पो ३१५
भावोनुवृत्ते रेवहेतु ७५
भिद्यते हृदयग्रन्थिः; ३३२
भिन्द्याच्चैव तड़ागानि, २०३
भुंक्ते न केवलं न स्त्री; ६०६
भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ४७
भूरसि भूमिरस्य, ४
भूर्भुवः स्वः तत्सवितु० ४२
भेदव्यपदेशाच्च; ३६५
भेदव्यपदेशाच्चान्यः ३६५

म

मकारभावे प्राज्ञस्य, ८०१
मघवन मर्त्य वाइदंशरीर ३१६
मद्यं मांसंच मीनं च, ३७५
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनाम २६८
मन्येतारिं यदा राजा, २०२
महान्त्यपि समृद्धानि ६५
महमा नांव प्रतापकी, ४८६
माताचैव पिता तस्या, ६७

माता पिता तथा भ्राता, ९८
मातापितृभ्यां यामीभिः, १२९
माता शत्रु पिता वैरी ३९
मातृदेवोभव० ४२३
मातृ देवोभव पितृदेवो भव. ३४९
मातृमान् पितृमान, २९
मातृयोनिपरित्यज्य, ३७५
मानसं मनसैवायं ३३४
मानोमहान्तमुत, २४०
मानो बधीः पितरं मोत ३४८,४२२
मांसानां खादनं तद्वत्, ५४२
मारय उच्चाटय०, ४७१
मुन्यन्ने विविधैर्मेध्यै, १५५
मृतं शरीरमुत्थाप्य, १३१
मृतानामपि जन्तूनां, ५४१
मृतानामिह जन्तूनां, ५८१
मृगयाक्षो दिवास्वप्न, १८३
मूले मूलाभावाद् मूलं २८३
मेरोर्हरेश्च द्वौवर्षौ, ३४९
मोहाद् राजा स्वराष्ट्रंयः, १९४
मौलान् शास्त्रविदः शूरान्, १८६
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः २९८
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः २९८

य

य आत्मा अपहतपाप्मा ३१६
य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनो, २५५
यन्नास्य सुकृतं किंचित् १९१
यच्चक्षुषा न पश्यति, ४१६
यच्चान्यदसदनस्तदसत्, ७६
यच्छेद्वा मनसी प्राज्ञः १५८
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति ४१६
यच्चरखाणं तुविहितुच्छम् ५९७
यज्जाग्रतोदूरमुदैति, २३७
यज्ञ्वान ऋषयो देवाः ३३८
यतीनां कांचनं दद्यात् १७०
यतश्च भयमाशंकेत् २०६
यतो वा इमानि भूतानि, २७२
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च, ३३५
यत्तु दुःख समायुक्तं, ३३४
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तं, ३३४
यत्प्राणेन न प्राणिति, ४१६
यत्प्रज्ञानमुत चेतो, २३८
यत्रधर्मो ह्यधर्मेण २१३
यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते, ११७
यत्रश्यामोलोहिताक्षो, १७६
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातं, ३३५
यथाकाष्ठमयो हस्ती, ३४६
यथा नदी नदा सर्वे: १५२
यथा प्लवंनौपलेन, १३०
यथा फलेन युज्येत, १९९
यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं, १९६
यथा यथाहि पुरुषः, ११६
यथावस्थिततत्वानां ५८१

यथावायुं समाश्रित्य १५३
यथेमां वाचं कल्याणी, ८१
यथोद्धरतिनिर्दाता, १९५
यथोर्णनाभिः सृजते, २७८
यथैनं नाभिसंदध्युः, २०५
यदहरेव विरजेत १५८
यदातुस्यात्परीक्षीणो, २०२
यदा पश्चात्तिष्ठन्ते, ३१५
यदापरबलानांतु, २०२
यदाप्रहृष्टामन्येत, २०२
यदा भावेन भवति, १६२
यदामन्येत भावेन, २०२
यदा यदाहि धर्मस्य, २४८
यदावगच्छेदायत्यां २०२
यद्यत्परवशं कर्म, १३३
यदिगच्छेत्परं लोकं ५४१
यदि तत्रापि संपश्येद् २०३
यदिहि स्त्री नरोचेत, ११६
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते ३१८
यद्वयोरनयोर्वेत्थ, २१६
यद्वाचानभ्युदितं ४१६
यन्मनसामनुते ४१६
यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा, १६
यमान् सेवेत सततं, ५४
यमेन वायुना ४६२
यमुत्तरा उताउ ६२६
यस्तु भीतः परावृत्तः १९१
यस्माद्दचोऽपातक्षन्, २६४
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणः, १५३
यस्मादेते मुख्यास्तस्मा, १०६
यस्मिन्नृचः साम० २३८
यं वदन्ति तमो भूता, १८१
यस्यत्रय स्त्रिशद्देवा ८१२
यस्यनाममहद्यशः ४३१
यस्यमन्त्रं न जानन्ति, २००
यस्यविद्वान्हि वदतः, २१७
यस्यवाङ्मनसेशुद्धे, ५८
यस्यस्तेनः पुरे नास्ति २२२
यस्मेदकार्य्यं कारणं ७७
यादृशी शीतला देवी, ७३३
यां मेधांदेवगणाः २३७
यान्यनवद्यानि कर्माणि, २७
यान्यस्माकं सुचरितानि ३८
यावज्जीवं सुखं जीवेत् ५३८ ५४१
या वेदबाह्या स्मृतयः, ४१८ ८०६
युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिः, ७१
युवाः सुवासाः परिवीत, १०१
येकार्मिकभ्योऽर्थमेव, १९५
येत्रिंशति ८१२
येनयेन यथांगेन २२१
येनकर्माण्यपसो २३०
येनास्मिन् कर्मणा लोके ३५
येनास्य पितरो याता १०४
येनेदं भूतं भुवनं २१८

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धि ४४
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ३४०
योदत्वा सर्वभूतेभ्यो १६१
योऽनधीत्यद्विजा वेद् ५८
योऽवमन्येत ते मूले ६२, ३४३
योवे ब्रह्माणं २६५
यो यदेषां गुणो देहे ३३४

र

रजस्वला पुष्करं तीर्थं ३७६
रंग है कालिया कन्नको ४३०
रथाश्वं बलिनं छत्रं १९१
रथीतरस्या प्रजस्य ८०८
रथेन वायु वेगेन ४४५
रागादि ज्ञान सन्तान ५५२
रागादीनां गणो यः स्यात् ५५२
राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि १७४
राजाभवत्यनेनास्तु २१३
राजानः क्षत्रियाश्चैव ३३८
राज्ञश्चदद्युरुद्धारं १९१
राज्ञो हि रक्षाधिकृता: १९५
राम रटत जग जोर न ४८७
राम बिना सब भूठ ४८६
राष्ट्रमेव विश्याहन्ति १७५
राष्ट्रं वा अश्वमेधः ३८०
राष्ट्रस्य संग्रहं नित्यं १९४
रुचिर्जिनोक्त तत्वेषु ५८२
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे ३९९
रूपरसगन्धस्पर्शवती ६९
रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या ७२
रूपरसस्पर्शवत्यापो ६९
रूपविज्ञानवेदना संज्ञा ५४९
रे जीव भव दुहाई इका ५७१

ल

लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तुः ७८
लुञ्चिता पिच्छिका हस्ता ६०६
लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्यं ३३५
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु २१९
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्राद् २१९

व

वकवच्चिन्तयेदर्थान् १९४
वर्जयेन्मधुमांसंच ५८, ३५५
वनेषु च विहृत्यैवं १५७
वन्ने मिनारया उ विजे ५९०
वयणे विसु गुरुजिण ५९२
वयाई इमे ५९६
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं ३४५
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद् २१९
वाच्यार्था नियताः १३२
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव २२२
विक्रोशन्त्योयस्य राष्ट्राद् १९६
विक्रीय शूर्पं विचचार योगी ४०८
विजानीह्यार्यान्येच दस्यवः २६७

वित्तम् बन्धुर्वयः कर्म	३४६	वैश्वदेवस्य सिद्धस्य	१२६
विनाशकाले विपरीत	३७०	व्यवस्थितः पृथिव्यां	६१
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्	३४६	व्यसनस्य च मृत्योश्च	१८३
वित्ति चउरिन्द्रि सशरीरम्	६२०	**श**	
विद्याञ्चाऽविद्याञ्च	३०७		
विद्याविलास मनसो	४०	शत्रुसेविनि मित्रेच	२०६
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिः	३४२	शरीरकर्षणात्प्राणाः	१६४
विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च	१७२	शरीरजैः कर्म दोषैः	३३४
विविधानि च रत्नानि	१७०,८११	शन्नो मित्रः शंवरुणः	१, ७६८
विंशतीशस्तु तत्सर्वं	१६५	शमो दमस्तपः	१०१
विशेषण भेद व्यपदेशाभ्यां	३६५	शरीरश्चोभयेऽपिहि भेदेन	३६६
विश्वरूपात्व विवक्षायां	८००	शान्तनोरपि सन्तानं	८१०
विश्वानिदेव सवित	४७	शाश्वतीभ्यः समाभ्यः	२७४
वृषो हि भगवान् धर्म	२१३	शुचिना सत्यसन्धेन	१७१
वेतनस्यैव चादानं	२१२	शुद्धे मार्गे जाया	५८१
वेद पढ़त ब्रह्मा मरे	४८२	शुनांच पतितानां च	१२६
वेद पत्न्यै प्रदाय	८०३	शूद्रो ब्राह्मणतामेति	१०७
वेद मनूव्याचार्यो अन्ते	५१	शून्यं तत्वभावो	२८३
वेदशास्त्रपुराणानि	३७५	शोचन्ति जामयो यत्र	११७
वेदः स्मृतिः सदाचारः	६२, ३४३	शौचसन्तोष तपः	५६, २४३
वेदाभ्यासस्तपोज्ञानं	३३५	शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं	११०
वेदानधीत्य वेदौ वा	६३	शृण्वन् श्रोत्रम्भवति	३१४
वेदान्त विज्ञान सुनि	१५१	श्रावणस्यामलं पक्षं	४६३
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च	५७, ३४५	श्रीकृष्णः शरणं मम	४६२
वेदोपकरणे चैव	५७	श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्र	४६२
वेदोऽखिलो धर्म मूलम्	३४२	श्रीमन्नारायण चरणं	४०७
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः	३४३	श्रीमते नारायणाय	४०७

श्रीमते रामानुजाय ४०७
श्रीमद्भागवत नाम ४५२
श्रुत्वा तत्प्रतिपद्यस्व ८१०
श्रुत्वा स्पृष्ट्वाच मेधावी ३४५
श्रुतिरपि प्रधान २४६
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम् ३४२
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य १३७
श्रोतुः परीक्षितो जन्म ४५३
श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धि ७२
श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि २८५

ष

षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्यं ५०
षडभिज्ञो दशबलो ये ५५६

स

स एष पूर्वेषामपि २६७
संकल्पमूलः कामो वै ३४२
सच्चासत् ७६
सतान् अनुपरिक्रामेत् १६५
सत्तामात्राच्चेति लब्धैश्वर्य २४६
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ११८
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं १५५
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् २१६
सत्येनोत्तभिता ३००
सत्येन पूयते साक्षी २१७
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु १२६
सत्यमेव जयते ३६०
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ३३२
सत्ये रतानां सततं १३७
सत्व रजस्तमसां २७५
सत्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं ३३४
स्वप्नस्थानस्ते ८००
स्थाणुरयं भारहारः ८२
सदकारणवन्नित्यं ७७
सदसत् ७६
सदा प्रहृष्टया भाव्यं ११७
स दाधार पृथिवीं ३०२
सदिति यज्ञो द्रव्यगुण ७५
सदेशान् त्रिविधान् ३४६
सदेवेदं सौम्येदमग्र आसीत् २५४
सदेव सौम्येदमग्र २५४, ३७५
सन्तानार्थं महाभाग ८०६
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता १०१,११६
सन्धिन्तु द्विविधं विद्यात् २०१
स ब्रह्मा स विष्णुः ४
सपर्यगात् शुक्रमकाय, २३६
स पूर्व्वेषामपि गुरुः, १६
सप्पो इक्कं मरणं, ५८५
समकस्यास्य वर्गस्य; १८३
सभा वा न प्रवेष्टव्या, २१३
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तान्, २१६
सभ्य सभामे पाहि, १७५
समक्षदर्शनात् साक्ष्यं, २१६
समत्त चरण सहिता, ६२१

समाधिनिर्धूतमलस्य; २४२
समानतीर्थे वासी, ४३८
समान यानकर्माच, २०१
समीक्ष्य सधृतः सम्यक्, १७६
समोत्तमाधमैः राजा, १६०
सम्पाद्य ऽविभक्तः स्वेन ३६४
सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यं, ५८
सम्बन्धाभावान्नानुमानं, २४६
स य एषो अणिमा, २५४
सरजो हरण भैक्ष भुजो, ६०६
सरस्वती दृषद्वत्योः; २६६
स राजा पुरुषोदण्डः; १७८
स वा एष एतेन दैवेन ३१६
सर्व मनित्यमुत्पत्ति २८४
सर्वमभावो भावे २८४
सर्वंनित्यं पञ्चभूत २८४
सर्वं पृथगभावलक्ष २८४
सर्वं खल्विदं ब्रह्मतज्जला; २७७
सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह २७६
सर्व परवशं दुःखं; १३३
सर्वंतु समवेक्ष्येदं; ३४२
सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः ५५६
सर्वज्ञो दृश्यते ५६०
सर्वज्ञो वीतरागादिः ५५६
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं ५६२
सर्वथाऽनवद्ययोगानां ५८२
सर्वस्य संसारस्य दुःखा ५४८
सर्वे वेदा यत्पदमा, ३
सर्वेष मेव दानानां, ६२
सर्वोपायैस्तथा कुर्यात्; २०४
सशाक्य सिंहः सर्वार्थः ५५६
ससंधार्यः प्रयत्नेन; १५३
संगोविजाण अहिरेत ५८७
संशोध्य त्रिविधं मार्ग; २०५
सहजा देशकालोत्था; ४६३
संहतान्योधयेदल्पान् २०६
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्; २१६
साचेदक्षतयोनिः स्याद् १३६
सामि अणाई अणन्ते; ५६८
सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षं ७४
साम्मृतैः पाणिभिर्व्वन्ति; ३७
सायं सायं गृहपतिर्नो; १२०
सांवत्सरिकमाप्तैश्च; १६०
साहसेषु च सर्वेषु; २१६
साहसे वर्तमानस्तु; २२२
सीमाविवादधर्मश्च; २१२
सुखार्थिनः कुतोविद्या १३७
सुषारथिरश्वानिव; २३८
सुप्तघ्नद्रोण्यभिभवस्तद् ४५३
सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो, ८०१
सूर्याचन्द्रमसौ धाता० २८६,३०५
सेनापति बलाध्यक्षौ २०६
सैनापत्यंच राज्यञ्च, १८०
सोऽग्निर्भवति वायुश्च; १७८

सोमः प्रथमो विविदे १४६
सोमसद् पितर १२३
सोऽसहायेन मूढ़ेन; १७६
सौत्रामण्यां सुरांपिबेत्; ३७६
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या; ११८
स्त्रियां तु रोचमानायां ११६
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च २१२
स्त्री शूद्रौ नाधीयताम् ८८
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युः २१६
स्थाणुरयं भारहारः किला, ८२
स्थावराः कृमिकीटाश्च ३३७
स्थिरा दः सन्त्वायुधः १७७
स्पर्शवान् वायुः ६६
स्यन्दनाश्वैः समे युद्धयेद् २०६
स्वर्गस्थिता यदातृप्तिं; ५४१
स्यादस्ति जीव इति प्रथमो० ५५६
स्यान्नास्तिजीवो द्वितीय ५५
स्यादवक्तव्यो जीवः ५५६
स्यादस्तिनास्ति नास्ति; ५५६
स्यादस्ति अवक्तव्यः ५५६
स्यान्नास्ति अवक्तव्यः ५५६
स्यादस्ति नास्ति अवक्त० ५५६
स्वभावेनैव यद् २१३
स्वयं भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्; ८६४
स्वयं कृतश्च कार्मार्थ २०१
स्वाध्याये नार्चये १२०
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् १५६
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः ५६
स्वाध्यायेन जपैर्होमैः १०३

ह

हरिर्हरति पापानि; ४३७
हस्तिनश्च तुरंगाश्च; ३३८
हालां पिबति दीक्षितस्य ३७७
हा हा गुरु अ अ कजद्; ५८५
हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे ४५२
हिरण्यगर्भः समव; ८,२३१,२७२
हिरण्य भूमिसम्प्राप्त्या २१०,२१२
हीनक्रियं निष्पुरुषं; १५
ह्रां ह्रीं हूं वगलामुख्यै ४७१
ह्रीं श्रीं क्लीं; ४७१
हूं फट स्वाहा; ४७१
हेयंहिकर्तरागादि ५५८
होतारमिद्रो ७८६

ओ३म्

सत्यार्थप्रकाशः

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठतक
अ		
अग्निहोत्र	४६	४७
अनुभूमिका (उत्तरार्द्ध)	३६३	३६४
,, ,, (२)	५३६	५३७
,, ,, (३)	६२७	६२८
,, ,, (४)	७०२	७०३
अवतार खण्डन	२४७	२४६
अपाठ्य ग्रन्थ	८५	८६
अमृतसरका तालाव	४३३	
अल्लोपनिषद् समीक्षा	७८६	७८८
अश्वमेधादि यज्ञ व्याख्या	३८०	३८१
अष्टादश विवाद	२१३	२१५
असत्य साक्षीको दण्ड व्यवस्था	२१६	२२०
आ		
आचार अनाचार व्याख्या	३४२	३४६
आर्य और दस्यु	२६७	२६८
आर्यावर्त्तकी महिमा	३६५	३७०
आस्तिक नास्तिक संवाद	५६३	५६८

ई

ईश्वर जीवमें भेद	२५१	२५५
„ सगुणनिर्गुण व्याख्या	२६२	२६३
„ सर्वशक्तिमान	२८१	२८३
„ का सामर्थ्य	२४४	२४५
„ की प्रार्थना-उपासना	२३७	२४४
„ नाम व्याख्या	१	२६
„ सिद्धि	२३१	२३७
ईसाई मत समीक्षा	६२६	७०१
„ „ में ईश्वरकी असमर्थता	६३३	
„ „ में ईश्वर गोभक्षक	६४३	
„ „ „ ईश्वर देहधारी	६६१	
„ „ „ ईश्वरके बेटे बेटियां	६३८	
„ „ „ ईश्वर मांसाहारी	६३७	
„ „ „ पिता पुत्रीका मैथुन	६४५	
„ „ „ पोप लीला	६६७	
„ „ „ सृष्टि समीक्षा	६२६	६३१
„ „ „ राईके बराबर विश्वास	६७२	६७३
„ „ „ स्वर्ग विषयक गपोड़े	६६०	६६५
„ „ „ महा अन्याय	६७४	
„ „ „ असम्भव गप्पें	६८०	
ईसाईयोंके स्वर्गमें विवाह	६६७	
ईसायोंके स्वर्गका वर्णन	६६६	७०१
ईसाका लोभी चेला जिसने ईसाको पकड़वाया	६७७	६७६
ईसाके आधीन ईश्वर	६८५	
ईसाको फांसी	६८१	

ए

एकादशी समीक्षा	४६५	४६७

क

कबीर पंथ समीक्षा	४८१	५००
कन्या प्रबन्ध	२११	२१२
कर्णिष्ठ व्याख्या	३३५	३३१
कुपात्र सुपात्रका लक्षण	४६२	४६४
कुशिक्षा निवारण	३७	३६
कृष्णजी पर लांछन	४५३	
कुरान खुदाका बना हुआ नहीं	७०४	
कुरान कथित खुदा पक्षपाती है	७०५	
कुरानको न मानने वाला काफिर	७०७	
कुरान कथित बहिस्तका वर्णन	७०६	
कुरान में खुदाका मुर्दोंको जिलाना	७१३	
,, ,, खुदाके शरीकोंकी फौज़	७१५	
,, ,, खुदा कठोर दण्ड देनेवाला	७२०	
,, ,, बिना पुण्य पापके रिजक	७२३	
,, ,, कर्जेका भूखा खुदा	७२४	
,, ,, खुदाकी कुरसी	७२५	
,, ,, खुदा और शैतानकी तुलना	७३१	
,, ,, अमुसलमानोंको मारनेकी आज्ञा	७३१	
,, ,, धोखेबाज खुदा	७३३	
,, ,, पूर्वापर विरोध	७३७	
,, ,, खुदाकी निर्दय आज्ञा	७४१	
कुरान मनुष्योंका इतिहास है	७४६	
,, ,, कुरानकी व्यर्थ शिक्षा	७४७	

„ „ कुरानमें न्याय विषयमें गड़बड़ाध्याय	७४१	
कुरान कथित स्वर्ग	७५१	
कुरानमें तोबासे पाप क्षमा	७५३	७५४
„ „ महाबुतपरस्ती	७५५	
कुरानी किरानी आदि चारोंकी किताबोंमें विरोध	४५७	
कुरानमें विद्या विरुद्ध बातें	७६१	
कुरान कथित खुदा पापी, अन्यायी और निंदयी	७६३	७६६
कुरानमें उटपटांग बातें	७६७	७६८
कुरानमें बहिश्तका वर्णन	७७८	७७९
कुरानके विरुद्ध आचरण	७८१	
कुरानका रातको उतरना	७८४	७८५

ख

खाखियोंकी समीक्षा	४७७	४८०

ग

गङ्गा महात्म्य समीक्षा	४३७	४३८
गर्भाधान रक्षा	११३	११४
गया श्राद्ध समीक्षा	४२६	
गरुड़ पुराण समीक्षा	४५१	४५२
गुरु मन्त्र व्याख्या	४२	४३
गुरु महात्म्य समीक्षा	४३९	४४०
गोकलिये गुसांई मत समीक्षा	४९०	५००
गोमेधादि यज्ञ समीक्षा	३८०	३८१
ग्रहफल समीक्षा	३३	३४
„ „	४५४	४५८
गृहस्थोंके धर्म और व्यवहार	११५	११६
गृहाश्रमकी श्रेष्ठता	१५२	१५४

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
च		
चक्रांकितोंकी माया	४०७	४०९
चारवाक मत समीक्षा	५३८	५४६
चिदाभास अध्यारोप आलोचना	३०८	३१२
ज		
जगतकी उत्पत्ति और आधार	२९९	३०१
जगन्नाथ समीक्षा	४२७	४२९
जन्म पत्र समीक्षा	३४	३५
जन्मोंकी अनेकता	३२७	
ज्वाला मुखी समीक्षा	४३२	४३३
जातिभेद	५०९	
जीवकी स्वतन्त्रता परतन्त्रता	२५०	
जीव और ईश्वरमें भेद	२५०	२५७
जीव ब्रह्मका भेद	३६३	३६८
जीवोंकी गति	३३१	३३२
जैनियोंसे मूर्त्ति पूजाका आरम्भ	४०९	४१०
जैन मत समीक्षा	५५४	५५८
जैन बौद्ध सम्बन्ध	५५९	
जैनोंका ईश्वरपर आक्षेप	५६०	५६३
जैन ग्रन्थोंमें जगतकर्त्ता नहीं	५६८	५७६
जैन ग्रन्थोंमें मुक्ति	५७६	५७८
जैनोंका धर्म	५७९	५९:
जैन ग्रन्थोंमें मूर्त्तिपूजा	५९७	६०३
जैनोंकी मुक्तिका वर्णन	६०३	६०४
जैन ग्रन्थोंमें कुआं, तलावादि बनानेका निषेध	६०५	

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
जैन साधुओंके लक्षण	६०६	६१२
जैन ग्रन्थोंमें हरे शाक आदिका निषेध	६१२	६१५
जैनोंके तीर्थंकरोंके शरीरोंकी लम्बाई और आयु	६१५	६१८
जैनग्रन्थोंमें भूगोल विद्या	६१९	६२६
त		
तपकी महिमा	४०८	
तीर्थ माहात्म्य	४३६	४३८
द		
दण्ड धर्म	१०६	१८२
दण्ड कोमल और कठोर	२२१	२२८
द्रव्यगुण कर्म निरूपण	६८	७६
दादु पन्थ समीक्षा	४८५	
दुर्ग विधान	१८९	
देवी भागवत समीक्षा	४०२	४०३
देशाटनसे हानि लाभ विवेचन	३४६	३५२
ध		
धर्म जिज्ञासा और परीक्षा	५१५	५३०
न		
नरसिंह महताकी हुंडी	४३२	
नवीन वेदान्त मत समीक्षा	३८५	३८८
नाककटोंका सम्प्रदाय	५०१	५०५
नानक पन्थ समीक्षा	४८१	४८५
नास्तिकोंका खण्डन	२८३	२८८
नियोग मीमांसा	१४०	४५०

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
प		
पञ्चमहायज्ञविधि-व्याख्या	१२०	१२६
पञ्चायतन पूजा	४२३	४२४
पठन पाठन व्यवस्था	७८	८४
पण्डितोंके लक्षण	१३४	१३६
पाखण्डियोंके लक्षण	१३०	१३३
पाठ्य अपाठ्य ग्रन्थ	८५	८६
पांच प्रकारकी परीक्षा	६४	
पुनर्विवाह समीक्षा	१३६	१४०
पुराणोंके कर्त्ता	४४०	४४२
पुराणोंकी समीक्षा	४४३	४५२
पृथ्वीका घूमना	३०२	३०४
प्रमाण आठ प्रकारके	६४	६८
प्राणायाम शिक्षा	४४	४५
ब		
बन्ध और मोक्ष व्याख्या	३०८	
बाइबिलमें नियोग	६५१	
बाल शिक्षा	२६	३१
बाल विवाह समीक्षा	६७	१००
बुतपरस्त ईसाई	६४६	
बौध मत समीक्षा	५४३	५५४
ब्रह्मचर्य्य शिक्षा	५०	५४
ब्रह्मचारीके वृत	५८	५६
ब्राह्मण और पोप	३७१	३७५
ब्राह्म समाजके गुण दोष	५१०	५१५

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
बिन्ध्येश्वरी देवी	४६५	
भ		
भक्ष्याभक्ष्य विवेचन	३५४	३६२
भूतप्रेत निषेध	३२	३३
भस्म धारण समीक्षा	४०३	
म		
मथुरा तीन लोकसे निराली	४३६	
मनुष्योंकी सृष्टि	२६४	२६५
मरियमका गर्भ	६६४	
मंगलाचरण समीक्षा	२६	२८
मुर्दे गाड़नेकी हानियां	६४६	६४८
मुक्ति और बन्ध	३१३	३२१
मुक्तिके साधन	३२१	३२७
मुक्तिमें जीव	३३३	
मुसलमानी मत समीक्षा	७०४	७८८
मुसलमानोंकी बुतपरस्ती	७१६	
” का पक्षपाती खुदा	७३६	
” की मतलब सिन्धुकी बात	७४३	
” का स्वर्ग	७६१	
मुहम्मद साहबकी कामातुरता	७७७	७७८
मुहम्मद साहबका (लेपालक) बेटेकी स्त्रीसे निकाह	७६३	७६४
मूर्खके लक्षण	१३६	
मूर्तिपूजा समीक्षा	४११	४२२
मूर्तिका चमत्कार	४२४	४२५

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
मूर्त्तिपूजा वैदिक नहीं	४६७	४७०
य		
यम नियम व्याख्या	५५	५७
योगाभ्यास	४४	४५
र		
राज आर्य सभा	१७४	१७८
राजवंशावली	५३१	५३५
राजधर्म व्याख्या	१७४	२२८
राजाकी दिनचर्या	२००	२०१
राज्यके अधिकारी	१०७	१०८
राज्य प्रबन्ध	१६५	२००
रुद्राक्ष धारण	४०३	
रामेश्वर समीक्षा	४२६	४३०
रामसनेही समीक्षा	४८५	४६०
ल		
लड़के लड़कियोंकी शिक्षा	४०	४२
लाटभैरव और औरङ्गजेब	४२५	
व		
वर्ण व्यवस्था	६४	६७
वानप्रस्थविधि	१५५	१५६
वाममार्गका खण्डन	३७५	३७६
वाममार्ग समीक्षा	४७१	४७२
विद्या अविद्या	७६	७८
" "	३०७	३०८

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
विद्यार्थियोंके लक्षण	१३६	१३७
विवाहमें त्याज्य कुल	६४	६७
विवाह आठ प्रकारके	११२	
वेदोंका प्रकाश	२६५	२६८
,, की शाखा	२६६	२७०
,, की नित्यता	२७०	२७१
,, का प्रकाश अन्यलोकमें	३०५	३०६
वैष्णव मत समीक्षा	४७३	४७६
व्यूह रचना	२०८	२११

श

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
शत्रुसे व्यवहार	२०६	२०७
शास्त्रों में अविरोध	८६	८७
,, ,,	२८६	२९१
शिष्योंको उपदेश	६०	६३
शीतला और जन्त्र, मन्त्र, तन्त्रादि समीक्षा	३५	३६
शुद्धि	४३	४४
शूद्रके हाथका खाना	३५३	
शैवोंका उदय	३९९	४०२
शैव मत समीक्षा	४७२	४७३
शंकराचार्यका उदय	३८३	३८५

स

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
सखरी निखरी विवेचन	३५२	
सनातन शब्दकी व्याख्या	१०४	
सब तिथियोंमें उपवास	४६५	
सबमतोंसे सत्य ग्रहणका विचार	५११	

विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ
सन्धिके छ अङ्ग	२०३	२०५
सर्वशक्तिमानका अर्थ विवेचन	२३५	
सर्वशक्तिमान्का अर्थ विवेचन	२८१	
संजीवनी नामक इतिहास	४००	
संन्यासविधि-कर्त्तव्य शिक्षा	१५७	१७३
साधुओंके लक्षण	५७८	
साक्षी कई प्रकारके	२१७	२१८
सुख दुःखका लक्षण	१३४	
सूर्य ज्योतिष सिद्धान्त	३०३	३०४
सूर्यादि चन्द्रलोक	३०४	३०५
सोमनाथ समीक्षा	४३०	४३२
स्त्रीशिक्षा	८८	९२
स्वदेशी राज्यकी उत्तमता	२९६	
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	७८६	७९८
स्वयम्बरकी रीति	१००	१०२
स्वामीनारायण मत समीक्षा	५००	५०१
सृष्टि उत्पत्ति	२७२	२७३
„ „ के तीन कारण	२७५	२८०
„ का क्रम	२९१	२९४
सृष्टिका प्रलय	२८०	

ह

हरिवर्ष अर्थात् यूरोप	३५०	
हरद्वार समीक्षा	४३३	४३४
होमके लाभ	४७	४९

वेदतत्व प्रकाश

ऋषि दयानन्द प्रणीत पुस्तकों में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वैदिक सिद्धान्तों के मनन करने के लिये मुख्य ग्रन्थ है। इसमें वेद विषयक जानने योग्य ६० विषयों का वेदादि सत् शास्त्रों के प्रमाण देकर विचार-पूर्ण प्रतिपादन किया गया है। जैसे—वेदोत्पत्ति, वेदों में विज्ञान, कर्म, उपासना काण्ड, वेदोक्त धर्म, वेदों में तार, रेल तथा विद्युत आदि। वेदों पर पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के द्वारा किये गये आक्षेपों के उत्तर भी दिये गये हैं।

महर्षि ने यह ग्रन्थ स्वयं संस्कृत में रचा था। इसका हिन्दी अनुवाद ऋषि के पास रहने वाले पौराणिक संस्कार वाले पण्डितों ने किया था। जिन्होंने ऋषि के भावों के प्रतिकूल तथा कई स्थलों पर ऋषि सिद्धान्त-विरुद्ध भी अनुवाद कर दिया है जो कि आज भी अजमेर से वही अशुद्ध टीका वाले संस्करण निकल रहे हैं। हमने इस ऋषि प्रणीत ग्रन्थ को गुरुकुल कांगड़ी के विद्वान् स्नातक श्री पं० सुखदेव जी वेदालङ्कार से सम्पादन कराकर ऋषि प्रणीत संस्कृत के अनुकूल भाषा टीका टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया है। जिसकी आर्य जगत के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है तथा इसे प्रत्येक वैदिक धर्मी के स्वाध्याय-योग्य बना दिया है। ६५० पृष्ठ के बृहत् ग्रन्थ का मूल्य कपड़े की पक्की जिल्द सहित २) मात्र रक्खा है।

पता—**गोविन्दराम हासानन्द**

आर्य साहित्य भवन नई सड़क देहली।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.
4 JUL 1994	[illegible]		

121516
. LBSNAA

H
294.5563 LIBRARY 4295
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
सत्यार्थ MUSSOORIE

Accession No. 121516

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving